❀ ॐ ❀

उपनिषत्

(५१)

भाग पहिला।

अनुवादक

पं० शंकरलाल कौशल्य (भोला बाबा)

भूतपूर्व सम्पादक वेदान्त केसरी।

ब्रह्मचारी विष्णु

सम्पादक वेदान्त केसरी।

वेदान्त केसरी कार्यालय,

बेलनगंज—आगरा।

१०००] संवत् १९८८ [मूल्य २॥)

मुद्रक—रामस्वरूप शर्मा,
केसरी प्रेस, बेलनगंज-आगरा।

प्रकाशक—
जीवनराम गंगाराम
नं० ११३ मनोहरदास कटरा-कलकत्ता।

प्रस्तावना

भारतवर्षके प्राचीन ज्ञान भंडार वेद नामसे प्रसिद्ध है। वे इह तथा परलोक के असीम सुखको प्राप्त करने के लिये तथा मानव जातिको एक उच्चतम लक्ष्य की ओर निश्चित रूप से जानेके लिये उपदेश देते हैं, इनके पूर्व भागमें कर्मकाण्ड दिया है; तथा इनके अन्तिम भाग में तत्त्व ज्ञान के सर्व श्रेष्ठ सिद्धान्त तथा उसके आधार स्वरूप ऋषियोंके आत्मानुभव ग्रथित किये गये हैं। वेदों के अन्त में होने से इस भाग को वेदान्त कहते हैं। इसी विभाग में उपनिषत् आते हैं। उपनिषदों की संख्या बहुत बतायी जाती है; परन्तु आज कल एक सौ आठ ही का प्रचार है। इनमें से दस ही अत्यन्त प्राचीन होने से अधिक माने जाते हैं और इन दस उपनिषदों पर सभी आचार्यों ने भाष्य लिखे हैं तथा कुछ महत्त्व रखने वाली सभी भाषाओं में इनका अनुवाद भी होगया है। वेद का शिरो भाग रूप प्राचीनता आदि के कारण दस उपनिषदों को महत्त्व दिया जाता है वह योग्य ही है; परन्तु इससे अन्य उपनिषदों का महत्त्व घटता नहीं है, अन्य उपनिषत् भी अपना स्वतंत्र स्थान और महत्त्व रखते हैं। इनकी अर्वाचीनता ही इनका एक भूषण बनगया है। जिस प्राचीन कर्मकाण्ड युगमें दस उपनिषदों का प्रचार हुआ उससे वर्तमान कालीन प्रजा अत्यन्त अपरिचित है, इसलिये उस काल में प्रचलित बातों के दृष्टांत और रूपक देकर समझाई हुई बातों का इस समय दुर्बोध होना स्वाभाविक है। परन्तु अन्य उपनिषत् अर्वाचीन होने से

उनमें जो भाषा लिखी है, जिन दृष्टांतों का और रूपकों का प्रयोग किया गया है वे हमारे लिये इतने दुर्बोध नहीं है। उन्हीं प्राचीन दस उपनिषदों का आशय इनमें अधिक सुबोध शैली में मिलता है। इसलिये मुमुक्षुओं को स्वाध्याय के लिये ये एक अनमोल साधन रूप है। वैसे ही, मनुष्य की विभिन्न प्रकृति के अनुसार विभिन्न प्रकार की उपासनाओं का तथा योग क्रियाओं का वर्णन इनमें स्थान स्थान पर आता है इसलिये सभी मनुष्यों के लिये ये एकसे उपयोगी हैं। ऐसे अत्यन्त उपयोगी साहित्य का लाभ सामान्य भाषा जानने वाले भी ले सकें इस उद्देश्य से "वेदान्त केसरी" में इनका अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। नौ वर्ष में आये हुए इक्यावन उपनिषदों का यह संग्रह पाठकों के आगे उपस्थित है। इस अनुवाद को पुस्तकाकार प्रकाशित करने के पूर्व इसमें यथा संभव संशोधन किया गया है।

इस पुस्तक का प्रकाशन कलकत्ते के जीवनराम गंगाराम फर्म वाले धर्मनिष्ठ श्री० सूरजमल मिमाणी ने किया है। इसके लिये हम आपके आभारी हैं। आपकी सहायता विना इस पुस्तक का इतना शीघ्र प्रकाशन संभव नहीं था।

ब्रह्मचारी विष्णु,

सम्पादक वेदान्त केसरी।

सूर्यमल मिमाणी

अनुक्रमणिका ।

उपनिषत् पृष्ठ

उपनिषत् ... पृष्ठ

सिवा आत्म कोई नहीं दूसरा है।
सभी विश्वमें एक आत्मा भरा है॥
न मैं हूँ, न तू है नहीं ये पसारा।
यही ब्रह्म विद्या यही ज्ञान सारा॥

उपनिषत् ।

[५१]

भाग पहिला ।

॥ शान्ति पाठ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

शब्दार्थः—यह पूर्ण है, वह पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण बनता है, पूर्ण में से पूर्ण ले लेने से पूर्ण ही शेष रहता है। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ सह नाववतु । सहनौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

शब्दार्थः—वह हम दोनों का रक्षण करे, वह हम दोनों का पालन करे, हम दोनों एक साथ सामर्थ्य को प्राप्त हो, हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम परस्पर द्वेष न करें। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्र मथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्व निराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि संतु ते मयि संतु। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

शब्दार्थः—मेरे अंग वृद्धि को प्राप्त हों, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, बल और सब इन्द्रियां वृद्धि को प्राप्त हों। सब उपनिषत् ब्रह्म है। मुझसे ब्रह्म का त्याग न हो और ब्रह्म मेरा त्याग न करे, मेरा त्याग न करे। इसमें रत हुए मुझको उपनिषत् में प्रतिपादित धर्म की प्राप्ति हो। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनोमे वाचि प्रतिष्ठितमाविराविर्म एधि वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रात्संदधा-

न्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ।

मेरी वाणी मनमें स्थित है, मेरा मन वाणीमें स्थित है। हे स्वप्रकाश ब्रह्म, तुम मुझे प्रकट हो, मुझे ज्ञान प्राप्त हो। मेरा श्रवण किया हुआ मुझसे भुलाओ नहीं, मैं रात दिन पढ़े हुए का अनुसंधान करता हूँ। मैं शास्त्रानुसार भाषण करूंगा, मैं सत्य भाषण करूंगा। वह मेरी रक्षा करें, वक्ताकी रक्षा करें, मेरी रक्षा करे तथा वक्ताकी रक्षा करे।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रंपश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

हे देव, हम कान से कल्याण की बातें सुनें, आखों से कल्याण देखें। दृढ़ अंगों से तथा शरीर से अपनी ईश्वर प्रदत्त आयु हम तुम्हारी स्तुति करते हुए व्यतीत करें।

नमन ।

ॐ नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं चतत्पुत्र पराशरंच । व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्द योगीन्द्र मथास्य शिष्यम् ॥ १ ॥

श्री शंकराचार्य मथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम्। तं त्रोटकं वार्तिककार-मन्यानस्मद्गुरून्संततमानतोऽस्मि ॥२॥

नारायण, ब्रह्मा, वसिष्ठ, शक्ति तथा उनका पुत्र पराशर, व्यास, शुक, गौडपाद, गोविंद, योगीन्द्र तथा उनके शिष्य।

श्री शंकराचार्य तथा उनके शिष्य पद्मपाद, हस्तामलक, त्रोटकाचार्य और वार्तिककार सुरेश्वराचार्य तथा अन्य सद्गुरुओं को मेरा सदा नमस्कार है।

श्रुति स्मृति पुराणानामालयं करुणालयं।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोक शंकरम् ॥३॥

श्रुति स्मृति और पुराण के मर्मज्ञ, जगत, के कल्याण कर्ता, करुणा सागर भगवत्पाद श्री शंकराचार्य को मेरा नमस्कार है।

शंकर शंकराचार्यं केशवं बादरायणं।
सूत्रभाष्य कृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥

शंकर स्वरूप शंकराचार्य हैं तथा विष्णु स्वरूप बादरायण हैं इस प्रकार इन सूत्रकार और भाष्यकार महात्माओं को मेरा बार बार नमस्कार है।

ब्रह्मबिन्दु उपनिषत् ।

[१]

मन दो प्रकार का है—शुद्ध और अशुद्ध । कामना वाले मन को अशुद्ध कहते हैं कामना रहित मन को शुद्ध कहते हैं ॥१॥ मनुष्य के वन्धन और मोक्ष का कारण मन है । जो मन विषयासक्त हो तो वन्धन को प्राप्त होता है और विषय वृत्ति से रहित मन मुक्त होता है ॥२॥ इसलिये मुक्ति की इच्छा वाले मनुष्य को चाहिये कि मन को शुद्ध करे निर्विषय मन वाले की ही मुक्ति होती है ॥३॥ विषय संग से पृथक् हुआ हृदय में स्थित मन जव उन्मनी भाव को प्राप्त होता है तव वह परम पद को प्राप्त होता है ॥४॥ जव तक हृदय में मन का क्षय (नाश) न हो तव तक उसको निरोध करना चाहिये । मन के निरोध को ज्ञान और मोक्ष कहते हैं और इससे भिन्न मात्र ग्रन्थ का विस्तार रूप है ॥५॥ अशुद्ध मन से ब्रह्म का चिन्तवन नहीं हो सक्ता परन्तु शुद्ध मन से ब्रह्म अचिन्त्य नहीं है इसलिये ब्रह्म अचिन्त्य होते हुए भी चिन्तवन हो सक्ता है । इस प्रकार चिन्तवन करने से पक्षपात रहित ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥६॥

प्रथम स्वरमें (सगुण ब्रह्म) मनको लगाकर फिर अस्वर (निर्गुण ब्रह्म) की धारणा करनी चाहिये; निर्गुण भावनासे भाव (परमार्थ वस्तु) अभावरूप नहीं होता॥७॥ यही सव प्रकारकी कलासे रहित, सव विकल्पसे रहित और मायासे रहित ब्रह्म है, इस प्रकारका

ब्रह्म स्वरूप मैं हूँ ऐसे ज्ञान की जब प्राप्ति होती है तब निश्चय ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥८॥ ब्रह्म में किसी प्रकार का विकल्प नहीं है। वह अन्त रहित है उसमें हेतु दृष्टान्त (कार्य कारण) भाव नहीं होता। वह प्रमाण रहित है उससे प्रथम कोई नहीं है। ऐसे परम शिव का ज्ञान प्राप्त होने से ज्ञानी को किसी प्रकार बन्धन नहीं रहता, उसमें उत्पत्ति भाव नहीं रहता उसको वन्दन करने योग्य कोई नहीं होता, उसका शासन रूप कोई नहीं होता, उसको मुक्ति की इच्छा नहीं होती और मुक्ति का भाव भी नहीं होता यह स्थिति परमार्थता है ॥९-१०॥

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में एक ही आत्मा है, ऐसे मानना चाहिये। इन तीनों अवस्थाओं को अतिक्रमण (उल्लंघन) करने वाले को पुनर्जन्म नहीं होता ॥११॥ प्रत्येक प्राणी में रहा हुआ आत्मा एक ही है। जैसे चन्द्रमा एक रूप से और जल में अनेक रूपों से भासता है, वैसे ही वह आत्मा एक रूप से तथा अनेक रूप से दीखता है ॥१२॥ जब घट का नाश होता है तब उसमें रहने वाला आकाश महाकाश में लय होता है परन्तु घट में रहने वाले आकाश का नाश नहीं होता इसी प्रकार देह के नाश होने से जीव का नाश नहीं होता ॥१३॥ देह का नाश होने से घट की समान जीव अनेक प्रकार के देह बारम्बार धारण करता है। देह, जिसका नाश होता है, कुछ भी नहीं जानता परन्तु आत्मा, जो नित्य है वह सब जानता है ॥१४॥ जीव जब तक शब्द की माया में आवृत्त है यानी शब्द ज्ञान

होते हुए लक्ष्य नहीं होता तब तक वह हृदयाकाश में टिकता है परन्तु अज्ञान के नाश होने से सब एक रूप हैं, ऐसे देखता है ॥१५॥ देहादिक के नाश होने से जिसका नाश नहीं होता वह शब्दाक्षर परब्रह्म है। जो अधिकारी पुरुष आत्मा के कल्याण की इच्छा करता हो उस अधिकारी को अक्षर ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये ॥१६॥ शब्द ब्रह्म और परब्रह्म (परा और अपरा) ऐसी दो प्रकार की विद्या जानो, जो शब्द ब्रह्म के जानने में कुशल होता है उसको परब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥१७॥ जैसे धान की इच्छा वाले, धान को ग्रहण करके पराल को त्याग देते हैं, वैसे बुद्धिमान् पुरुष ग्रन्थों का अभ्यास करके ज्ञान विज्ञान के तत्त्व को जानने के पश्चात् सब ग्रन्थों का त्याग कर दे ॥१८॥ जैसे अनेक रंग वाली गौओं का दूध एक ही रंग का श्वेत होता है वैसे ही ज्ञान दूध के समान सर्वत्र एक ही है, भेद जैसे गौओं में है ऐसे देहों में है ॥१९॥ जैसे दूध में घी अवश्य रहता है वैसे ही सब भूतों में विज्ञानात्मा रहता है। इस विज्ञानात्मा का मन रूप रई से मन्थन करे ॥२०॥ इस रई में ज्ञान रूप नेति जोड़े, इसके पीछे उसमें से उत्पन्न हुए मक्खन में से घी निकाले, (योग रूप) अग्नि पर धरे, इस प्रकार करने से 'सब कलाओं से रहित शुद्ध और शान्त ब्रह्म मैं ही हूँ' ऐसी स्मृति होती है ॥२१॥ जो सब प्राणियों का आधार है और जो सब प्राणियों में अनुग्रह कर के भीतर स्थित है वही वासुदेव रूप आत्मा मैं स्वयं हूँ वासुदेव रूप वही आत्मा मैं स्वयं हूँ ॥२२॥

कैवल्य उपनिषत् ।

[२]

आश्वलायन मुनि ब्रह्माके पास जाकर कहने लगे, हे भगवन्! सत्पुरुषों के सेवन करने योग्य, गुप्त ब्रह्म विद्याका मुझको उपदेश कीजिये, जिससे दीर्घ काल के किये हुए अनेक पापों का नाश करके पर से पर, परम पुरुष को विद्वान् प्राप्त होते हैं ॥१॥ तब पितामह ब्रह्मा कहने लगे "श्रद्धा, भक्ति और ध्यान से इस ब्रह्म-विद्या को जान ॥२॥ कर्म से, प्रजा से तथा धन से इस ब्रह्मभाव की प्राप्ति नहीं होती, मात्र त्याग से अमृत रूप ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। वह स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है, हृदय रूप गुफा में विराजता है और उसीको यति प्राप्त होते हैं ॥३॥ जो मुनि लोग वेदान्त के विज्ञान से निशंक होते हैं तथा संन्यास योग से शुद्ध अन्तःकरण वाले होते हैं, विशुद्ध अन्तःकरण वाले वे सब मोक्ष स्वरूप मरने पर ब्रह्मलोक में जाते हैं परम अमृत रूप वे सब ब्रह्मा के साथ मुक्त होजाते हैं ॥४॥ संन्यासी एकान्त प्रदेश में शुचिर्भूत होकर सुखा-सन पर ग्रीवा, मस्तक तथा सब शरीर सीधा रखकर बैठ जाय, फिर इन्द्रियोंका निरोध करके सद्‌गुरुको भक्तिसे प्रणाम करे ॥५॥ रजोगुण से रहित और शुद्ध होकर, सुख दुःखादि से रहित, हृदय में कमल रूप रहे हुए आत्मा का चिंतन करना आत्मा का स्वरूप अचिंत्य है, अव्यक्त है, अनंत रूप वाला है, शिव रूप है, प्रशान्त

है, अमृत रूप है, ब्रह्म योनि रूप है ॥६॥ वह आदि, मध्य और अन्त से रहित है, एक है, सर्वत्र व्यापक है, चिदानन्द रूप है, सर्व रूप से रहित है, और अद्भुत है। उमा सहाय है जिसकी ऐसा प्रभु रूप त्रिनेत्र वाला, नील कंठ वाला, प्रशांत ऐसे परमेश्वर का ध्यान करके मुनि प्राणी मात्र के कारण रूप, सर्व के द्रष्टा रूप अज्ञान से भिन्न ऐसे परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥७॥ यह परमात्मा ही ब्रह्मा है, वह ही शिव है, वह ही इन्द्र है, वह ही अक्षर है वही परम है स्वयंप्रकाश है, विष्णु है, प्राण रूप, काल रूप, अग्नि रूप तथा चन्द्र रूप है ॥८॥ वही सर्व रूप से तथा भूत, भविष्य, वर्तमान तथा सनातन रूप है, ऐसे परमात्मा का ज्ञान जिसको होता है वह मृत्यु को अतिक्रमण करता है। इसके सिवाय मुक्ति का और कोई मार्ग नहीं है ॥९॥ सब भूतों में मेरा आत्मा रहता है और मेरे आत्मा में सब भूत रहते हैं, ऐसा जो जानता है उसको परब्रह्म भाव की प्राप्ति होती है, दूसरे को किसी कारण से नहीं होती ॥१०॥ अपने आत्मा को अरणि (मथने योग्य लकड़ी) रूप करके और प्रणव रूप ॐकार को नीचे की अरणि करके ज्ञानाग्नि को मन्थन दंड से मन्थन करने से विवेकी पुरुष सब पापों का नाश करता है ॥११॥ माया से मुग्ध बना सो ही आत्मा शरीर को प्राप्त करके, स्त्री, अन्न, पानादि अनेक प्रकार के भोगों को भोग कर जाग्रत में तृप्त होता है ॥१२॥ सोही (जीव) स्वप्नावस्था में अपनी माया से कल्पित जीव लोक में सुख दुःख का भोक्ता बनता है वैसे ही सुषुप्तावस्था में तम से आच्छादित हुआ

सो जीव सब इन्द्रियों का लय होने से सुखको प्राप्त होता है ॥१३॥ पूर्व जन्म में किये हुए कर्म के योग से जाग्रत भाव को प्राप्त हुआ जीव पुनः सुषुप्ति भावको प्राप्त होता है। जीव इस प्रकार से तीनों शरीरों की तीनों अवस्थाओं में क्रीड़ा करने वाला होने से सब विचित्र भावों को उत्पन्न करता है; यह जीवात्मा सबका आधार रूप, आनन्द रूप और अखंड ज्ञान रूप है। इस आत्मा में तीनों प्रकार की अवस्थायें लय को प्राप्त होती हैं ॥१४॥ इस आत्मा में से प्राण, मन, सब इन्द्रिय, आकाश, वायु, ज्योति, जल और विश्व धारण करने वाली पृथ्वी उत्पन्न हुई है ॥१५॥ जो परब्रह्म सर्वात्म रूप विश्व का कारण रूप तथा महत् रूप है सो ही परमात्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म नित्य सत्य स्वरूप तथा त्वं रूप (जीव रूप) है ॥१६॥ जो ब्रह्म जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति आदि प्रपंच को प्रकाश करता है सो ब्रह्म मैं स्वयं हूँ इस प्रकार के ज्ञान को प्राप्त होकर मुनि सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होता है ॥१७॥ यह आत्मा तीनों अवस्थाओं में भोक्ता, भोग्य और भोग रूप बनता है तो भी सब से विलक्षण साक्षी, चिन्मात्र, नित्य, शिव रूप मैं हूँ ॥१८॥ मुझ में सबकी उत्पत्ति स्थिति और लय होती है। यह अद्वय ब्रह्म रूप मैं स्वयं हूँ ॥१९॥ प्रथम खंड समाप्त।

मैं अणु से भी अणु तथा महान् भी मैं हूँ। विचित्र विश्व रूप भी मैं हूँ, मैं ही पुरातन पुरुष, ईश, हिरण्यमय तथा शिव रूप हूँ ॥२०॥ हाथ पैर से रहित आत्मा मैं हूँ। अचिंत्य शक्ति

वाला भी मैं हूँ। नेत्र से रहित होकर भी देखता हूँ। कर्ण से रहित सुनता हूँ, मेरा जानने वाला कोई नहीं है बहुत प्रकार के रूपों को जानने वाला मैं ही ज्ञान स्वरूप हूँ और मैं ही चित् रूप और नित्य रूप हूँ ॥२१॥ अनेक वेद वाक्यों से जानने योग्य मैं ही हूँ। वेदान्त का बनाने वाला और जानने वाला मैं हूँ। मुझ में पुण्य पाप नहीं है। मेरा नाश नहीं है, जन्म नहीं है तथा देह इन्द्रिय और बुद्धि भी नहीं है ॥२२॥ मैं भूमि नहीं हूँ, जल नहीं हूं, अग्नि नहीं हूँ, वायु और आकाश नहीं हूं, ऐसे जो जानता है सो कला से रहित अद्वितीय, हृदयाकाश में रहे हुए परमात्म रूप, सर्व के साक्षी रूप, सत् असत् से रहित शुद्ध परमात्म रूप को प्राप्त होता है।

जो शत रुद्र का पाठ करता है सो अग्नि से, वायु से, शरीर से, सुरापान से, ब्रह्म हत्या से, सुवर्ण की चोरी से, कृत्याकृत्य से पवित्र होता है सो ईश्वर का आश्रय वाला है। इसी कारण हमेशा या प्रति दिन एक वार संन्यासियों को इस रुद्र का जप करना चाहिये। इस प्रकार करने से ज्ञान की प्राप्ति और संसार का नाश होता है। ज्ञान के बाद कैवल्य परमपद की प्राप्ति होती है ॥२३-२४॥

हंसोपनिषत् ।

[३]

गौतम और सनत्कुमार का संवाद ।

गौतम ने कहा ! हे सब धर्मों के जानने वाले ! हे सर्व शास्त्रों में कुशल ! हे भगवन् ! ब्रह्मविद्या का ज्ञान किस उपाय से उत्पन्न होता है ॥१॥ सनत्कुमार ने कहा, हे गौतम ! सर्व वेदों के सार को जान के महादेवजी ने जो पार्वतीजी से कहा है वह सर्व हे गौतम ! तू मुझसे सुन ॥ २ ॥ यह सार किसी (अनधिकारी) से कहना योग्य नहीं है और योगी के लिये एक कोश (खजाने) के समान है । हंस यानी आत्मा के स्वरूप का वर्णन करने वाला यह उपनिषत् तथा मोक्षरूपी फल का प्राप्त कराने वाला है ॥ ३ ॥

इस को, ब्रह्मचारी, शान्त, जितेन्द्रिय और जो गुरु में भक्ति वाला है उसके आगे हंस तथा परम हंस का निर्णय प्रकट करना योग्य है । यह जीव " हंस हंस " ऐसा ध्यान करता हुआ सर्व देह मेंव्यापक हो कर रहा हुआ है जैसे काष्ट में अग्नि व्यापक हो कर रहा हुआ है तथा तिलों में तेल व्यापक रहा हुआ है इस प्रकार जिस को ज्ञान होता है वह मृत्यु को उल्लंघन करता है ।

गुदा का अवरोधन करके आधार चक्र में से वायु को बाहर निकाल कर स्वाधिष्ठान चक्र में तीन प्रदक्षिणा करके, मणि पूरक

को प्राप्त करना ! उस के पीछे अनाहत चक्र का अतिक्रमण (उल्लंघन) करके विशुद्ध चक्र में प्राणों को रोकना चाहिये पीछे आज्ञा चक्र का ध्यान करके ब्रह्म रन्ध्र का ध्यान करना चाहिये ! और त्रिमात्र आत्मा मैं हूँ इस प्रकार ध्यान करने से आधारचक्र से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक नाद होता रहता है वही शुद्ध स्फटिक के समान ब्रह्म परमात्मा है ऐसा कहा जाता है ॥१॥ इस में हंस यह ऋषि है अव्यक्त गायत्री छन्द है परमहंस देवता रूप है अहं यह बीज रूप है, सुशक्ति रूप है, सोहं यह कीलक रूप है। इसी प्रमाण से ऋषि आदि छः संख्या द्वारा एक दिन तथा रात्रि में इक्कीस हजार छः सौ वार श्वास लेने में आता है। " सूर्याय सोमाय निरञ्जनाय निराभासाय तनुसूक्ष्म प्रचोदयात् इति अग्निपोमाभ्यां वौषट " ऐसा कह कर हृदयादि अंगन्यास तथा करन्यास करना। न्यास करने के पीछे अष्ट पत्र वाले हृदय कमल में हंसात्मक का ध्यान करना। इस हंस के अग्नि तथा सोम पक्ष रूप हैं ओंकार उसका मस्तक रूप है। विन्दु नेत्र रूप रुद्र मुख रूप रुद्राणी दो चरण रूप, दो वाहु काल रूप तथा अग्नि दो वगल रूप हैं। पश्यन्ति (सगुण ब्रह्म) तथा अनाकार (निर्गुण ब्रह्म) इस श्रेष्ठ के दोनों कांख के नीचे का हिस्सा बगल रूप है ! इस परमहंसका प्रकाश करोड़ सूर्य के समान है। इस परम हंस से सर्व व्याप्त हैं। (जब वह हंस हृदय कमल के पृथक् २ भागों पर वैठता है तब) इस की आठप्रकार की वृत्तियां होती हैं। पूर्व दिशा के पत्र पर वैठता है तब पुण्य में बुद्धि जुड़ती है, आग्नेय दिशा के पत्र पर बैठता है तब निद्रा तथा

आलस्य होता है। दक्षिण दिशा के पत्र पर बैठता है तब क्रूर बुद्धि होती है, नैऋत दिशा के पत्र पर बैठता है तब पाप में बुद्धि जाती है, पश्चिम दिशा की पांखडी पर बैठता है तब क्रीड़ा करने की बुद्धि होती है। वायव्य दिशा पर बैठता है तब गमनादि की बुद्धि होती है। उत्तर दिशा की पांखडी पर बैठता है तब विषय में प्रीति होती है। ईशान पांखडी पर बैठता है तो द्रव्यादि का लोभ होता है तथा जब मध्य में बैठता है तब इस लोक तथा परलोक से वैराग्य होता है। जब हंस पद्म के केसर पर जाकर बैठता है तब जाग्रतावस्था आती है, जब पद्म की कर्णिका पर बैठता है तब स्वप्नावस्था होती है तथा जब मध्य प्रदेश में सूक्ष्म भाग में रहता है तब सुषुप्ति अवस्था आती है। जब हंस पद्म का त्याग करता है तब हंस तुरीयावस्था को प्राप्त होता है। जब हंस नाद के विषे लीन होता है तब उसे तुर्यातीत, उन्मन अजयोपसंहार ऐसे नाम से कहने में आता है इस प्रकार से सर्व भाव हंस के वश होता है इसलिये मन में रहे हुए हंस ही चिन्तवन करता है। यह ही हंस जब एक करोड़ जप किये जाते हैं तब नादका अनुभव करता है यह सब हंस के वश में है। नाद दस प्रकार का होता है। १ चिणि, २ चिंचिणिनाद ३ घण्टानाद, ४ शंखनाद, ५ तंत्रीनाद, ६ तालनाद, ७ वेणुनाद, ८ मृदंगनाद ९ भेरीनाद, १० मेघनाद इस प्रकार के नौ नादों को त्याग कर दसवें नाद का अभ्यास करना। प्रथम नाद के अनुभव से गात्र चिनमिनाता है, द्वितीय नाद के अनुभव से गात्र का भंग होता है

तृतीय नाद के अनुभव से प्रस्वेद (पसीना) होता है, चतुर्थ नाद के अनुभव से शिरोकम्प, पंचम नाद के अनुभव से तालु टपकता है, षष्ठ नाद के अनुभव से अमृत वृष्टि होती है, सप्तम के अनुभव से गूढ़ विज्ञान होता है, अष्टम के अनुभव से श्रेष्ठ वाणी होती है, नवम नाद के अनुभव से अदृश्य विद्या तथा दिव्य नेत्र प्राप्त होते हैं। दशम नाद के अनुभव होने से परब्रह्म भाव प्राप्त होता है तथा ब्रह्मात्मा का साक्षात्कार होता है ! मन उस में (हंस में) लय होता है तथा संकल्प विकल्प का मन में लय होता है पीछे पुण्य तथा पाप का नाश होता है तथा वह हंस सदाशिव रूप से, शक्ति रूप से, सर्वत्र स्थिति कर्ता रूप से, स्वयं ज्योति रूप से, शुद्ध रूप से, बुद्ध रूप से अर्थात् ज्ञानरूप से, नित्य रूप से, माया रहित रूप से तथा शान्तरूप से प्रकाशता है ऐसा वेद वचन है, ऐसा वेद वचन है ॥२॥

जाबालोपनिषत् ।

[१]

बृहस्पति ने याज्ञवल्क्य मुनि से पूछा:-प्राणों का स्थान क्या है ? इन्द्रियों का देवयजन क्या है ? तथा सब भूतों का ब्रह्मसदन क्या है ?" "अविमुक्त ही सर्व प्राणों का स्थान, इन्द्रियों का देवयजन रूप तथा प्राणियों का सदन रूप है। इससे कोई भी स्थान जहां कोई भी जाय वहां यह अविमुक्त ही प्राणों का आश्रय स्थान, देवों का यजन रूप और ब्रह्म का निवास स्थान है ऐसे मानना। जब प्राणी के प्राण का उत्क्रमण होता है तब भगवान् रुद्र तारने वाले ब्रह्म के सम्बन्ध में उपदेश करते हैं जिससे प्राणी अमृत भाव को तथा मोक्ष भाव को प्राप्त होता है। इसलिये अविमुक्त की उपासना करना चाहिये और उसका त्याग कभी भी न करना चाहिये," ऐसे याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा ॥१॥

इसके बाद अत्रि मुनि याज्ञवल्क्य से पूछने लगे "इस अनंत और अव्यक्त आत्मा का ज्ञान किस रीति से हो ?" तब याज्ञवल्क्य ने कहा, "अविमुक्त की उपासना करनी चाहिये क्योंकि अव्यक्त ऐसा आत्मा, अविमुक्त में ही रहा हुआ है।" तब अत्रि ने पूछा, "अविमुक्त किस विषे रहा हुआ है।" तब याज्ञवल्क्य ने कहा, "वरणा और नाशी नाम की दो शक्तियों में जीव रहा हुआ है।" अत्रि ने पूछा "वरणा क्या है और नाशी क्या है ?" याज्ञ-

वल्क्य ने कहा "जो शक्ति इन्द्रियों के किये हुए दोषों को रोकती है उसे वरणा, ऐसे ही सब इन्द्रियों के किये हुए पापों का जो नाश करती है उसको नाशी कहते हैं" "इस जीव का स्थान कहां है?" ऐसा अत्रि ने पूछा। याज्ञवल्क्य ने कहा, "दो भ्रकुटी और नासिका के बीच में जो भाग है सो अविमुक्त का स्थान है। यह सन्धि ही इस लोक और परलोक दोनों की सन्धि रूप कही जाती है। ब्रह्मज्ञानी सायं प्रातः इस संधि की उपासना करते हैं। अविमुक्त उपासना के योग्य है। इस प्रकार उपासना करने से जिसको अपना ज्ञान होता है वह आत्मज्ञान का उपदेश कर सकता है॥२॥

याज्ञवल्क्य के शिष्यों ने याज्ञवल्क्य से पूछा "किस का जाप करने से अमृतत्व प्राप्त होता है सो कहो।" तब याज्ञवल्क्य ने कहा "शत रुद्र का जाप करने से अमृत भाव प्राप्त होता है, रुद्र के नाम अमृत रूप हैं, उन नामों से मृत्यु को अतिक्रमण कर सकते हैं।" ॥३॥

विदेह देश के राजा जनक एक समय याज्ञवल्क्य के पास आकर कहने लगे "हे भगवान्! संन्यासाश्रम सम्बन्धी मुझको उपदेश दीजिए।" याज्ञवल्क्य ने कहा "ब्रह्मचर्यावस्था को समाप्त करके गृहस्थाश्रम का पालन करना, गृहस्थाश्रम को पूर्ण करके वानप्रस्थाश्रम लेना और वानप्रस्थ को पूर्ण करके संन्यस्त दीक्षा लेना अथवा दूसरी रीति से, ब्रह्मचर्य से, गृहस्थाश्रम से अथवा वानप्रस्थ से संन्यास लेना। व्रत से रहित हो या सहित हो,

स्नातक (वेद कुशल) हो या न हो, अग्नि का ग्रहण करके स्त्री के मरने से उसका त्याग करना पड़ा हो अथवा असंस्कार के कारण अग्नि का ग्रहण न हुआ हो जिस दिन से विराग वृत्ति उत्पन्न हो उस दिन से ही संन्यास को ग्रहण करे। "कोई प्रजापति की इष्टि करते हैं परन्तु वह नहीं करनी चाहियें; अग्नि ही की इष्टि करनी चाहिये अग्नि ही निश्चय करके प्राण है, क्योंकि इस इष्टि से अग्नि प्राण को वढ़ाती है। पश्चात् त्रैधातवी इष्टि करना चाहिये। तीन धातु ये इस प्रकार हैं:—सत्व, रज और तम, "हे अग्नि! यह प्राण तुम्हारा कारण रूप है, क्योंकि प्राण से तुम्हारी उत्पत्ति हुई है, तुम प्रकाश को प्राप्त हो, प्राण को जानने वाले हे अग्नि देव! तुम वृद्धि को प्राप्त हो, और हमारी सम्पत्ति वढ़ाओ।" इस मंत्र से अग्नि को सूंघना। "जो प्राण अग्नि का कारण रूप है उस प्राण में अग्नि देव! तुम प्रवेश करो" ऐसा कह कर आहुति देना। जो अग्निहोत्र न लिया हो तो उस गांव में जिस के यहां अग्नि हो उसके यहां से अग्नि लाकर ऊपर कहे प्रकार से पूज कर सूँघना। गांव में भी अग्नि न प्राप्त हो तो जल में आहुति देना। "जल सव देव रूप है, यह आहुति मैं सव देवों को देता हूं" ऐसे जल में आहुति देने के वाद उस घृत युक्त पवित्र हवि को लेकर भक्षण करना, मोक्ष मंत्र ही वेद है ऐसा जानना। "यह ब्रह्मरूप है इसकी उपासना करना। हे भगवन्! यह इस प्रकार है" ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा ॥४॥

इसके वाद अत्रि मुनि याज्ञवल्क्य से पूछने लगे "हे याज्ञवल्क्य! मैं पूंछता हूँ कि यज्ञोपवीत से रहित ब्राह्मण किस प्रकार

कहा जाय ?" याज्ञवल्क्य ने कहा "आत्मा ही इसका यज्ञोपवीत है। जो संन्यासी है उसके लिये वीर मार्ग में आहार त्याग में, जल प्रवेश में, अग्नि प्रवेश में अथवा महाप्रस्थान में यह ही विधि है।" "संन्यासी गेरुये वस्त्र धारण करके शिखा रहित, परिग्रह रहित शुचि हो और द्रोह रहित होकर भिक्षा वृत्ति करता है वह ब्रह्मको प्राप्त होता है। जो आतुर संन्यास लिया हो तो मन और वाणी से सबका त्याग करना चाहिये। यह मार्ग वेद में प्रसिद्ध है ब्रह्मज्ञानी संन्यासी इसी मार्ग से जाता है। यह ऐसा है ऐसा, भगवन् याज्ञवल्क्य ने कहा ॥५॥

जो परमहंस संन्यासी है उनमें से असंवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, दुर्वासा, ऋभु, निदाघ, जड़ भरत, दत्तात्रेय और रैवतक आदि परमहंस वर्ण आश्रम के सब चिन्हों से रहित थे। उनके आचार विचार जानने में न आवें ऐसे थे। वे उन्मत्त भाव से रहित होकर भी उन्मत्त की समान रहते थे। संन्यासियोंको त्रिदंड, कमंडलु, छींका, जल से शुद्ध ऐसा पात्र, शिखा और यज्ञोपवीत इन सब का 'भु स्वाहा' कर जल में त्याग कर के आत्मा को ढूंढ़ना चाहिये।

संन्यासी दिगम्बर यानी नग्न और सब प्रकार के बंधन से रहित होता है। वह प्रतिग्रह का त्याग करता है। वह ब्रह्म मार्ग में भली प्रकार आगे बढ़ा हुआ होता है, शुद्ध मन वाला होता है। वह मुक्त है तो भी प्राण के टिकाने के लिये योग्य समय पर

उदर रूपी पात्र में आहार डालता है। लोभालोभ में समान दृष्टि वाला होता है। एकान्त स्थान, देव मन्दिर, घास की गंजी, सर्प का विल, वृक्षों का मूल, कुम्हार का घर, अग्निहोत्र वाला मकान, नदी रेतिया, पर्वत, गड्ढा, गुफा, भेंटा, छिद्र तथा छोटे छोटे झरणों वाले स्थान में रहने के लिये सब प्रकार के घर से रहित होता है। 'मेरा' यह अभिमान भी उसको नहीं होता है। शुद्ध ज्योति के ध्यान में तत्पर होता है। अध्यात्म ज्ञान में निष्ठा होती है और शुभ अशुभ कर्म के छेदन करने में तत्पर रहता है। इस रीति का संन्यास करके जो अपने देह को त्याग करता है वह परमहंस संन्यासी है! वह ही परमहंस संन्यासी है!! ॥६॥

नारायणोपनिषत् ।

[५]

पुरुष रूप नारायण भगवान् ने इच्छा की कि प्रजा उत्पन्न होनी चाहिये। नारायण में से प्राण की उत्पत्ति हुई, मन और सब इन्द्रियां भी उन्हीं में से हुई। आकाश, वायु, ज्योति, जल और विश्व को धारण करने वाली पृथ्वी नारायण में से हुई। नारायण में से ब्रह्मा, नारायण में से रुद्र, नारायण में से इन्द्र, उसी में से बारह आदित्य, आठ वसु और सब छन्द उत्पन्न हुए। वे सब नारायण में से होते हैं और फिर उसी में लय को प्राप्त होते हैं। इस ऋग्वेद के श्रेष्ठ भाग का विद्वान् अभ्यास करते हैं॥१॥

नारायण नित्यरूप, ब्रह्मरूप, इन्द्ररूप, कालरूप, दिशारूप, विदिशारूप, ऊर्ध्वरूप, अधोरूप, अन्तर और बाह्यरूप है। जो कोई उत्पन्न हुआ है और जो कोई उत्पन्न होगा वह सब नारायण रूप है। यह नारायण कलंक से रहित, माया से रहित, विकल्प से रहित, वर्ण से रहित, शुद्धदेव रूप और एक है। इन नारायण के विषे द्वैतभाव नहीं होता। जो इस प्रकार जानता है सो विष्णु रूप होता है, सो विष्णु होता है। विद्वान् यजुर्वेद के इस श्रेष्ठ भागका अध्ययन करते हैं॥२॥

प्रथम भाग में ॐ उच्चारण करना पीछे नमः मन्त्र का उच्चारण करना, और अंत में नारायण का उच्चारण करना। ॐकार में एक अक्षर है, नमः इसमें दो अक्षर हैं; और नारायणाय इसमें पांच अक्षर हैं। जो नारायण के आठ अक्षर वाले पद का जाप करता है, सो ध्यान करने वाला अकाल मृत्यु से रहित पूरी आयु को प्राप्त होता है। वह प्रजा को, लक्ष्मी को और पशु को प्राप्त करता है, पीछे अमृत भाव को प्राप्त होता है, सो अमृत भाव को प्राप्त होता है। इस सामवेद के मुख्य भाग का जो अध्ययन करता है ॥३॥

अकार, उकार और मकार यह प्रत्यक् आनन्द रूप; ब्रह्म-पुरुषरूप और प्रणव रूप है। सो मात्रा अनेक प्रकार से सम हैं, यह ॐकार करके कहने में आता है; जिसको उच्चारण करने से योगी लोग जन्म मरण संसार के बंधन से मुक्त होते हैं। ॐ नमो नारायणाय इस प्रकार के मन्त्र की उपासना करने वाला वैकुण्ठ लोक में जाता है। हृदय कमल विज्ञान घन रूप है; उससे विद्युत् प्रकाशती है, ब्रह्मण्य को देवकीपुत्र, मधुसूदन, पुण्डरीकाक्ष और विष्णु कहने में आता है। वह सब प्राणी मात्र में रहा हुआ है; वह एक नारायण रूप है, कारण पुरुष रूप, कारण भाव से रहित और परब्रह्म रूप है। इस अथर्व वेद के मुख्य भाग का अध्ययन करना ॥४॥

प्रातःकाल में इसका अध्ययन करने से रात्रि में किया हुआ पाप नाश होता है। सायंकाल को इसका जाप करने से दिन में किये हुए पाप का नाश होता है। जो सायंकाल और प्रातःकाल इसका पठन करता है वह पापी होय तो भी पवित्र होता है। मध्याह्न में सूर्य के सामने इसका पाठ करे तो पंच महापातकों और उपपातकों से मुक्त होता है। सब वेद के पारायण का फल उसको मिलता है, और उसको नारायण का साक्षात्कार होता है। जो इस प्रकार जानता है उसको नारायण का साक्षात्कार होता है॥५॥

परमहंसोपनिषत् ।

[६]

"जिसने परमहंस दीक्षा ली है ऐसे योगी का मार्ग किस प्रकार का है और उसकी स्थिति किस प्रकार की होती है?" इस प्रकार नारद मुनि ने भगवान् ब्रह्मा के पास जाकर कहा तब भगवान् ब्रह्मा मुनि से कहने लगे "परमहंस संन्यासियों का मार्ग इस लोक में अत्यन्त दुर्लभ है! ऐसे परमहंस बहुत नहीं हैं, एकाद परमहंस संन्यासी होता है। वह नित्य कूटस्थ भाव में टिका हुआ रहता है वही वेद पुरुष रूप है, ऐसा विद्वान् लोग मानते हैं। ऐसे महापुरुष का चित्त मुझ में रहता है इसलिये मैं उसमें स्थिति करके रहता हूँ। इस रीति से मानने वाला संन्यासी अपना पुत्र, मित्र, स्त्री और बांधव आदिक का तथा शिखा और यज्ञोपवीत का, याग का, सूत्र का, स्वाध्याय का और सब कर्मों का त्याग कर, तथा इस ब्रह्माण्ड का त्याग करके कौपीन, दण्ड और चद्दर अपने शरीर के भोग के लिये और लोगों के कल्याण के लिये धारण करना; परन्तु यह संन्यास दीक्षा मुख्य नहीं है।" तब मुख्य संन्यास दीक्षा किस प्रकार की है? उसके विषे कहा है "दंड, कमंडल, शिखा, यज्ञोपवीत और चद्दर नहीं रखना, ऐसा धर्म परम दीक्षा लेने वाला आचरता है। वह शीत, उष्ण, सुख, दुःख, मान, अपमान इन छः ऊर्मी से रहित होता है तिस में शब्द स्पर्श रूप रस गंध और मन भी नहीं रहता, इसी प्रकार

निन्दा गर्व, मत्सर, दंभ, दर्प, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, असूया और अहंकारादि को त्यागकर अपने शरीर को मृतक के समान देखता है, क्योंकि उसके छिन्न भिन्न हुए संशय और मिथ्या ज्ञान के कारण (अविद्या) का समूल नाश हो गया है। वह नित्य ज्ञान रूप है, वह स्वयं स्थिति रूप है अर्थात् प्रत्येक आश्रय रहित होता है। मैं स्वयं शांत अचल, अद्वयानन्द और विज्ञान घन रूप हूँ ऐसे वह मानता है, वही अद्वय ब्रह्म मेरा परम धाम है, वही मेरी शिखा और यज्ञोपवीत है। परमात्मा और आत्मा के ऐक्यज्ञान से उसको भेद भाव नहीं रहता, उसकी वही संध्या है, वह सब कामनाओं का त्याग करके परम अद्वैत ब्रह्म में स्थित है। जिस परमहंस ने ऐसा ज्ञान रूप दण्ड धारण किया है उसको एक दण्डी कहते हैं! जिसने काष्ठ का दण्ड ग्रहण किया है जिसके सर्व आशा भरी हैं, जिसको ज्ञान नहीं है, क्षमा, ज्ञान, वैराग्य और शमादि गुणों से रहित है और भिक्षा मात्र से जीता है सो पापी यति वृत्ति का नाश करने वाला हैं और महा रौरव नर्क में पड़ता है। इस प्रकार के भेद को जानने वाले परमहंस संन्यासी को आकाश वस्त्र रूप होता है, वह नमस्कार स्वाहाकार, निन्दा और स्तुति से रहित होता हैं, भिक्षा करने वाला सो यति इच्छानुसार विचरता हैं, जिसको आवाहन, विसर्जन, मंत्र, ध्यान, उपासना, लक्ष्य, अलक्ष्य, भिन्न भाव, समान भाव, सत्य भाव, या सर्व भाव कुछ भी नहीं होता; उसके रहने का स्थान नहीं होता, वह स्थिर बुद्धि

वाला होता है। इस प्रकार भिक्षा मात्र करने वाला यति सुवर्ण, अलंकार इत्यादि का कभी भी संग्रह न करे। उसको कुछ देखने योग्य नहीं होता उसको कुछ सुन्दर नहीं लगता। उसे कौन वस्तु बाधक होती है? बाधक यह है:—जो भिक्षा वृत्ति वाला—यति सुवर्ण को प्रीति से स्पर्श करे तो उसको ब्रह्म हत्या का पाप लगता है। जो वह भिक्षु प्रीति से सुवर्ण का स्पर्श करे तो चाण्डाल से भी नीच होता है और जो सुवर्ण को प्रीति से ग्रहण करे तो आत्मघाती है इसलिये परमहंस सुवर्ण को प्रीति से देखता नहीं, स्पर्श करता नहीं, और ग्रहण करता नहीं। उसके मन में रहने वाली कामनायें नष्ट हो जाती हैं। दुःख से उसको उद्वेग नहीं होता, सुख में उसकी स्पृहा नहीं होती, वह प्रीति का त्याग कर देता है, शुभ और अशुभ किसी में उसको स्नेह नहीं होता, वह किसी से द्वेष नहीं करता, तथा कभी हर्ष को प्राप्त नहीं होता। उसकी सब इन्द्रियां उपराम को प्राप्त हो जाती हैं। वह अपने आत्मा में ही स्थिति करके रहता है। जो ब्रह्म पूर्ण आनन्द रूप, अद्वितीय रूप है सो मैं स्वयम् हूं, इस प्रकार मानने वाला कृत कृत्य होता है, सो ही कृत कृत्य होता है।

ब्रह्मोपनिषत्।

[७]

पुरुष के चार स्थान हैं:—नाभी, हृदय, कंठ और मस्तक। चारों स्थानों में चार पाद वाला ब्रह्म प्रकाशता है। जाग्रत अवस्था में ब्रह्मारूप है, स्वप्न अवस्था में विष्णुरूप है, सुषुप्ति अवस्था में रुद्र रूप है और तुर्यावस्था में अक्षर रूप है वह आदित्य विष्णु और ईश्वर है। वह स्वयं रूप अमन रूप, श्रोत्र, हाथ और पाद से रहित ज्योति रूप और ज्ञान रूप है। जहां लोक अलोक, देव अदेव, वेद अवेद यज्ञ अयज्ञ, माता अमाता, पिता अपिता, वधू अवधू चांडाल अचांडाल, पौक्कस (एक प्रकार की जाति) अपौक्कस, श्रमणः अश्रमणः और तापस अतापस रूप होजाते है यही एक रूप, परब्रह्म प्रकाश रूप और निर्वाण रूप से प्रकाशता है। उसमें देव ऋषि और पित्रोंकी कुछ श्रेष्टता नहीं है वह ज्ञेय और ज्ञानरूप है।

सब देव हृदय में रहे हुए हैं हृदय में प्राण रहा हुआ है और इसी प्रकार हृदय में ज्योति रही हुई है। यही तीन लड़ों वाला यज्ञोपवीत है और वह हृदय में अर्थात् चैतन्य में रहता है। हे यज्ञोपवीत तू ब्रह्म रूप भगवान् की सूचना करने वाला, परम पवित्र प्रजापति के साथ उत्पन्न हुआ प्रथम रूप आयुष्य रूप श्वेत और श्रेष्ठ है। हे शिष्य! भगवन् को दिखलाने वाले उस यज्ञोपवीत को धारण कर वह तुझ में बल की और तेज की वृद्धि करे।

ज्ञानी को शिखा और बाहर के सूत्र का त्याग करना। जो अक्षर और परब्रह्म रूप सूत्र है उस को धारण करना। ब्रह्म को सूत्र कहने का कारण यह है कि ज्ञान का प्रतिपादक है, सूत्र ही परम स्थान रूप है। इस सूत्र को जान कर ब्राह्मण वेद के पार पहुंचता है। जैसे सूत्र में मणि पोये हुए होते हैं वैसे ब्रह्म सूत्र में सब ओत प्रोत हैं। योग को जानने वाले और तत्त्वदर्शी ऐसे योगियों को यह परब्रह्म सूत्र धारण करना। ऐसे उत्तम योग का जिसने आश्रय लिया है उस योग्य पुरुष को बाह्य सूत्र का त्याग करना। जो योगी ब्रह्मभाव रूप सूत्र को धारण करने वाला है वह चेतन रूप है। ऐसे ब्रह्म सूत्र को धारण करने वाला कभी उच्छिष्ट और पापी नहीं होता। ज्ञान रूप यज्ञोपवीत को धारण करने वाला, जिसके हृदय में ब्रह्म सूत्र रहा हुआ है वह ही ब्रह्म ज्ञानी और सच्चे यज्ञोपवीत को धारण करने वाला है। जैसे अग्नि की शिखा अग्नि रूप है तैसे जिस ने ज्ञानमय शिखा धारण की है वह ज्ञान स्वरूप है ऐसे समझना औरों को शिखा धारण करने वाला नहीं जानना परन्तु बालों को धारण करने वाला समझना। जिन ब्राह्मणादि वर्णों को वैदिक कर्म में अधिकार है उन को बाह्य सूत्र धारण करना चाहिये क्योंकि वह क्रिया का अंग भूत है यह प्रसिद्ध है जिस की ज्ञानमय शिखा और उपवीत है उस को सब ब्रह्म रूप हैं ऐसे ब्रह्मज्ञानी जानता है। इस श्रेष्ठ और आश्रय स्वरूप ब्रह्म को जो यज्ञोपवीत जानता है वह ही यज्ञोपवीत धारण करने वाला है।

वह ही यज्ञरूप है और उस को ही यज्ञ कर्ता रूप जानना। यह एक ही परमात्मा सब प्राणियों में व्यापक होकर रहा है सो सर्व व्यापक और सब भूत मात्र का आत्मा है, सो ही पर ब्रह्म परमात्मा कर्म का अध्यक्ष, सब प्राणियों में निवास करने वाला, साक्षी चैतन्य, अद्वय और गुण से रहित है। सो परमात्मा एक रूप है। उसके वश में सब हैं और सब प्राणियों का अंतरात्मा है एक होते हुए जो अनेक प्रकार का है उस हृदयात्मा में रहे हुए ऐसे परब्रह्म परमात्मा का जो दर्शन करता है वही ब्रह्म ज्ञानी है। उस को ही शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है औरों को नहीं। आत्मा को ऊपर की अरणी रूप बनाकर और प्राण रूप ॐकार को नीचे की अरणी बना कर ध्यान रूप मथन दंड से मथन करने से गूढ़ ऐसे आत्मा के दर्शन होते हैं। जैसे तिलों में तेल, दही में घी, झरणे में जल और अरणी (एक प्रकार की लकड़ी) में अग्नि गुप्त रहा हुआ है तैसे आत्मा में से आत्मा की उत्पत्ति होती है। इस आत्मा का अधिकारी पुरुष सत्य और तप रूप साधन से दर्शन करता है। जिस प्रकार मकड़ी तन्तु को उत्पन्न करती है और फिर अपने में खींच लेती है इसी प्रकार जाग्रत और स्वप्नावस्था में जीव का आना जाना बारम्बार हुआ करता है। जाग्रत (विश्व) नेत्र में, स्वप्न (तैजस्) कंठ में, सुषुप्त (प्राज्ञ) हृदय में और तुर्य मस्तक में रहता है इस प्रकार जानना। वाणी इसको कथन करने में असमर्थ है, मन उसको नहीं पहुंचता, सो ब्रह्म जीव का आनन्द रूप है, जिस

के ज्ञान होने के पीछे अधिकारी जन्म मरण के चक्कर से निवृत्त होता है। जैसे दूध में घी गुप्त रहता है वैसे आत्मा सब में रहता है। आत्मज्ञान ही सब तप का कारण रूप है और ब्रह्म को जनाने वाला है।

गर्भोपनिषत् ।

[८]

यह पंचात्मक शरीर पांच के विषे रहता है छः का आश्रय रूप और छः गुणों के योग वाला है, सात धातु वाला है, तीन मल वाला है, दो योनि वाला है, चार प्रकार के भोजनों वाला है।

प्रश्न:—यह शरीर पंचात्मक किस प्रकार है ?

उत्तर:—यह शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंच महाभूतों से बना हुआ है।

प्रश्न:—इस पंच भूतात्मक शरीर में पृथ्वी का जल का तेज का वायु का और आकाश का कौन कौन भाग है ?

उत्तर:—शरीर में जो कठिन भाग है वह पृथ्वी, द्रव भाग है वह जल, उष्ण भाग है वह तेज, गति वाला भाग वायु और पोल का भाग आकाश है। पृथ्वी का गुण धारण करना, जल का गुण सब को एकत्र करना, तेज का गुण प्रकाश करना, वायु का गुण वहन करना और आकाश का गुण अवकाश (जगह) देना है। कर्ण का विषय शब्द, त्वचा (चमड़ी) का विषय स्पर्श, चक्षु का विषय रूप, जिह्वा का विषय स्वाद, नासिका का विषय गंध, उपस्थेन्द्रिय का विषय आनन्द, गुदा का विषय मल त्याग है। बुद्धि का विषय ज्ञान, मन का विषय संकल्प करना, वाणी का विषय बोलना है।

प्रश्नः—शरीर छः का आश्रय रूप कहाता है सो क्या है ?

उत्तरः—मीठा, खट्टा, खारा, कड़वा, तीखा और कषाय रसको प्राप्त करता है। षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत निषाद, इष्ट, अनिष्ट और प्रणिधान ये दश प्रकार के शब्द गुण हैं। शुक्ल, रक्त, कृष्ण, धूम्र, पीत, कपिल और पांडर ॥१॥

प्रश्नः—शरीर सप्त धातु वाला किस कारण कहाता है ?

उत्तरः—देवदत्तादि अमुक मनुष्य के द्रव्यादि विषय इस प्रकार उत्पन्न होते हैं, एक दूसरे की अनुकूलता के कारण, रस छः प्रकार का होता है, रस में से रुधिर, रुधिर में से मांस, मांस में से मेद, मेद में से स्नायु, स्नायु में से हड्डी, हड्डी में से मज्जा, मज्जा में से शुक्र की उत्पत्ति होती है। पुरुष का वीर्य और स्त्री का रुधिर दोनों का संयोग होता है तब गर्भ होता है। सो हृदय में इस प्रकार की व्यवस्था करता है:—अग्निस्थान में जठराग्नि को रखता है, पित्त के स्थान में पित्त को रखता है, वायु, वायु में से और हृदय प्रजापति में से क्रम से होता है ॥२॥

ऋतुकाल में संगम होने से प्रथम रात्रि में गर्भ कलल रूप बनता है, सात रात्रि में बुदबुदा रूप होता है अर्ध मास के भीतर पिंड रूप होता है, एक मास में कठिन दूसरे मास में शिर की उत्पत्ति, तीसरे मासमें पैरके भाग की उत्पत्ति होती है। चौथे मास में उस गर्भमें गुल्फ, जठर और कटि प्रदेश होता है, पांचवें मास में पीठ, छटे मास में मुख, नासिका, चक्षु और कर्ण होते हैं, सातवें मास में जीव से युक्त होता है, आठवें मास में गर्भ

सर्व लक्षणों से पूर्ण होता है। पिता का वीर्य माता के रज से प्रमाण में विशेष हो तो पुत्र की उत्पत्ति होती है, और माता का रज पिता के वीर्य से प्रमाण में विशेष हो तो पुत्री की उत्पत्ति होती है, और जो दोनों का प्रमाण समान हो तो नपुंसक होता है। संयोग समय पर जो मन व्याकुल हो तो संतान अंध, खंडित, कुबड़ी और वामन (नाटी) होती हैं। स्त्री पुरुष की अपान वायु के दोष से शुक्र के दो भाग हों तो दो की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार गर्भ, पंचात्मक के योग्य होता है, मन से पंच भूतात्मक को प्राप्त हुई बुद्धि, गंध रसादिक का ज्ञान कर के अक्षर से भी अक्षर ऐसे ओंकार का चिन्तन करती है, इस प्रकार एकाक्षर का ज्ञान होने के पश्चात् उस गर्भ के देह की आठ प्रकृति और सोलह विकार होते हैं, तत् पश्चात् उसकी माता जो कुछ खाती पीती है उससे नाड़ी के सूत्र से गर्भ के प्राण का रक्षण होता है। यह गर्भ नव मास में सब लक्षण और ज्ञानेन्द्रियों से पूर्ण होता है, उसको अपनी पूर्व जाति का स्मरण होता है, वह अपने शुभाशुभ कर्म को जानता है ॥३॥

"मैंने पूर्व हजारों योनियों में प्रवेश किया और मैंने अनेक प्रकार के भोग भोगे तथा मैंने अनेक प्रकार के स्तन पान किये। मैं बारम्बार जन्म को प्राप्त हुआ, बारम्बार मृत्यु को प्राप्त हुआ, मैंने कुटुम्ब के कारण जो कुछ शुभाशुभ कर्म किये उनसे मैं अकेला ही दुःख भोगता हूँ, मेरे कर्म करने से जो सुख को भोगते

थे वे मुझको अकेला छोड़कर चले गये। मैं दुःख रूप महान् समुद्र में डूबा हुआ हूं, इसको तर जाने का उपाय मैं नहीं देखता हूं। जब मैं इस योनि से बाहर निकलूँगा तब मैं महेश्वर की शरण में जाऊंगा, जब मैं इस योनि से बाहर निकलूंगा तब मैं अशुभ कर्म के क्षय करने वाले, फल और मुक्ति के देने वाले नारायण भगवान् के शरण में जाऊंगा। जब मैं इस योनि से मुक्त होऊंगा तब मैं अशुभ का क्षय करने वाले और मुक्ति फल के देने सांख्य शास्त्र और योग का अभ्यास करूंगा, और सनातन परब्रह्म का ध्यान करूंगा, तत्त्व ज्ञान को प्राप्त करूंगा।" छोटे स्थान में सुकड़ कर रहा हुआ अत्यंन्त दुःख से दुखी जब योनि द्वार के पास आता है तब उसको वैष्णव वायु का स्पर्श होता है, इस कारण उसको जन्म मरण का स्मरण नहीं रहता और शुभाशुभ कर्म को नहीं जानता ॥४॥

प्रश्नः—इस देह को शरीर कहने का क्या कारण है ?

उत्तरः—इसका यह कारण है कि अग्नि इस देह का आश्रय करके रहा हुआ है, यह अग्नि तीन प्रकार का है :—ज्ञानाग्नि, दर्शनाग्नि और कोष्टाग्नि। कोष्टाग्नि अन्न, पान, लेह्य और चोष्य का पाचन करता है, दर्शनाग्नि रूप का दर्शन करता है और ज्ञानाग्नि शुभाशुभ कर्म जानता है। इन तीनों अग्नियों के भिन्न भिन्न स्थान हैं, मुख विषे आहवनीय अग्नि है, उदर में गार्हपत्याग्नि है और हृदय में दक्षिणाग्नि है।

आत्मा यजमान रूप है, मन ब्रह्मा रूप है, लोभादि पशु रूप हैं, दीक्षा धति और संतोष रूप है यज्ञ का पात्र रूप बुद्धि और इन्द्रियां हैं, कर्मेन्द्रियां यज्ञ का हविरूप हैं; शिर यज्ञ का कपाल रूप है, केश यज्ञ का दर्भ रूप हैं, मुख अन्तर वेदी है! चार कपाल का माप वाला मस्तक है, बाजू में सोलह दंतपंक्ति हैं, एक सौ सात मर्म हैं, एक सौ अस्सी सन्धि हैं, एक सौ नौ स्नायु हैं, सात सौ शिरा हैं, पांच सौ मज्जा हैं, तीन सौ साठ हड्डियां हैं, साढ़े तीन करोड़ रुवां हैं, आठ पल का माप वाला हृदय है, बारह पल की माप वाली जीभ है, एक प्रस्थ पित्त है, एक आढ़क कफ है, एक कुड़व शुक्र है, दो प्रस्थ मेद है और मल मूत्र और आहार का नियम नहीं है। यह पिप्पलाद मुनि का कहा हुआ मोक्ष शास्त्र है पिप्पलाद का कहा हुआ मोक्ष शास्त्र है।

निरालंब उपनिषत् ।

[६]

शिव गुरु सच्चिदानन्द मूर्ति निष्प्रपंच शांत, अधिष्ठान रहित तेज को नमस्कार है। जो निरालम्ब का आश्रय करके अवलम्बन सहित का त्याग करता है, वह संन्यासी और योगी है, वह ही परमपद को प्राप्त करता है। अज्ञानी जीवों के दुःख की शांति के लिये जो ज्ञान कहने योग्य है उसको मैं प्रश्नोत्तर रूप से वर्णन करता हूं।

"ब्रह्म क्या है? ईश्वर किसको कहें? जीव, प्रकृति, परमात्मा, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, यम, सूर्य, चन्द्र, सुर, असुर, पिशाच, मनुष्य, स्त्री, पश्वादि, स्थावर, ब्राह्मणादि जाति, कर्म, अकर्म, ज्ञान, अज्ञान, सुख, दुःख, स्वर्ग, नरक, बंध, मोक्ष, उपास्य, शिष्य, विद्वान्, मूढ़, आसुर, तप, परमपद, ग्राह्य, अग्राह्य और संन्यासी किसे कहें?" तब ब्रह्मा ने कहा—

ब्रह्म——महत, अहंकार, पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाशादि बड़े अंडे के समान तथा कर्म और ज्ञान से जिसका भास होता है, जो अद्वितीय है, अखिल उपाधिसे रहित है, सब शक्तियों से आवृत हैं; अनादि, अनंत, शुद्ध, शिव, शांत और निर्गुण होने से जो अनिर्वाच्य चैतन्य है सो ब्रह्म है।

ईश्वर——ब्रह्म प्रकृति नाम की अपनी शक्ति का आश्रय करके लोकों को उत्पन्न करके अन्तर्यामीपने से प्रवेश करता है और ब्रह्मादिक की बुद्धि और इन्द्रियों का नियामक होने से उसको ईश्वर कहते हैं।

जीव——ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र आदि नाम रूप के कारण मैं स्थूल रूप हूँ, इस प्रकार के मिथ्या अध्यास से जीव बनता है। यद्यपि मैं जीव एक हूँ तो भी अनेक देहों के भेद से जीव अनेक रूप से भासता है।

प्रकृति——ब्रह्म में से उत्पन्न हुए, विविध, विचित्र जगत् को निर्माण करने वाली बुद्धि रूप जो ब्रह्म की शक्ति है उसको प्रकृति कहते हैं।

परमात्मा——देहादि के श्रेष्ठपने से ब्रह्म ही परमात्मा रूप से, ब्रह्मा रूप से, विष्णु रूप से, इन्द्र रूप से, यम रूप से, चन्द्र, सुर, असुर, पिशाच, मनुष्य, स्त्री, पश्वादि, स्थावर और ब्राह्मणादि रूप से है। सब मात्र ब्रह्म है। उसमें किसी प्रकार विविध भेद नहीं है।

जाति——चर्म, रक्त, मांस, अस्थि और जाति आत्मा की नहीं है। ये व्यवहार में कल्पना किये हुए हैं।

कर्म——क्रियमाण इन्द्रियों से मैं इस कर्म को करता हूँ, इस प्रकार अध्यात्म निष्ठा से जो कर्म किये जाते हैं, उसको कर्म कहते हैं।

अकर्म——कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अहंकार से बंध रूप जन्मादि का जो कारण है और जो नित्य नैमित्तिक याग, व्रत तप और दान में फल के साथ जोड़ता है यह अकर्म है।

ज्ञान——देह इन्द्रियों के निग्रह से, सद्गुरु की उपासना से तथा श्रवण, मनन और निदिध्यासन से जो दृग् और दृश्य स्वरूप से है, जो सर्वांतर रूप से रहता है, सबको समान रूप से है, जो घट पटादि के पदार्थ के विकारों में अविकारी समान रूप से जो कुछ चैतन्य है उसके सिवाय कुछ भी नहीं है इस प्रकारके साक्षात्कार के अनुभव को ज्ञान कहते हैं।

अज्ञान——रज्जु में सर्प की भ्रांति के समान अद्वितीय, सब में ओत प्रोत और सर्वमय ब्रह्म में देव, पक्षी, नर, स्थावर, स्त्री, पुरुष, वर्णाश्रम और बंध मोक्ष रूप उपाधि से ज्ञान की जो अनेक रूप से कल्पना करने में आती है सो अज्ञान है।

स्वर्गादि——सच्चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान होने के पश्चात् आनन्द रूप जो स्थिति है सो सुख है। अनात्म रूप विषय का जो संकल्प है सो दुःख है। संतों का समागम सो स्वर्ग है। अनात्म रूप संसार का और विषयी जनों का जो संसर्ग है सो नरक है।

बंध——'अनादि अविद्या की वासना के कारण मैं जन्मा हूँ' इत्यादि संकल्प सो बंध है। माता, पिता, मित्र, स्त्री, लड़के, गृह,

वगीचा, क्षेत्रादिक में ममता से संसार का आवरण रूप संकल्प सो वंध है। कर्तापने में अहंकार का संकल्प वंध है। अणिमादि अष्ट ऐश्वर्य की आशा की सिद्धि का संकल्प वँध है। देव और मनुष्यादिक की उपासना वाला काम संकल्प सो बंध है। यमादि अष्टांग योगका संकल्प सो वंध है। वर्णाश्रम धर्म कर्म का संकल्प सो वंध है। आज्ञा, भय और संशय ये गुण आत्माके हैं ऐसा जानना यह वंध है। याग, व्रत, तप, दान, विधि और विधानके ज्ञान का संभव सो वंध है। मात्र मोक्ष की इच्छा का संकल्प हो सो भी वंध है। संकल्प मात्र की उत्पत्ति ही वंध है।

मोक्ष——नित्य और अनित्य वस्तु के विचार से अनित्य संसार के सुख दुःख विषय में और सव क्षेत्रों में रहने वाली ममता रूप वंधन का नाश सो मोक्ष है।

उपास्य आदि——सव शरीरों में रहने वाले चैतन्य ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाला गुरु उपास्य है। विद्या से नाश हुए प्रपंच के कारण संस्कार वाला ज्ञानावशेष रूप ब्रह्म हो शिष्य है। सब के भीतर जो रहता है सो अपना चैतन्य स्वरूप है ऐसा जो जानने वाला है सो विद्वान् है। कर्तृत्वादि अहं भाव में जो रहता है सो मूढ़ है ब्रह्मा विष्णु, ईशान, इन्द्रादिक के ऐश्वर्य की इच्छा से जो उपवास, जप, अग्निहोत्रादिक कर के आत्मा को संताप देने वाला है तथा अत्युग्र राग द्वेष, हिंसा और दंभादिक से युक्त जो तप है सो आसुर तप है। ब्रह्म सत्य

रूप है, जगत् मिथ्या रूप है इस प्रकार के अपरोक्ष ज्ञानाग्नि से ब्रह्मा आदिक ऐश्वर्य की आशा से युक्त बीज रूप संकल्प की उत्पत्ति का जो संताप सो तप है। प्राणेन्द्रियादि अन्तःकरण के गुणों से परे सच्चिदानन्दमय नित्य मुक्त जो ब्रह्म स्थान सो परम पद है। देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित जो चिन्मात्र स्वरूप सो ग्राह्य स्वस्वरूप है। स्वस्वरूपसे अतिरिक्त मायामय बुद्धि इन्द्रिय का विषय रूप जगत् का सत्य रूप से जो चिंतवन है सो अग्राह्य है। सब धर्मों का त्याग करके ममता और अहंकारसे रहित होकर ब्रह्मके शरण में जाना, तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, सर्वंखल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किंचन: इत्यादि महा वाक्यों के अनुभव वाले ज्ञान से "मैं ही ब्रह्म रूप हूं" इस प्रकार के निश्चय होने के पश्चात् निर्विकल्प समाधि मे स्वतंत्र जो यति विचरता है वह ही संन्यासी, मुक्त, पूज्य, योगी, परमहंस, अवधूत और ब्राह्मण है। जो गुरु के अनुग्रह से इस निरालंब उपनिषत् का अध्ययन करता है वह अग्नि से व वायु से पवित्र होता है उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। फिर जन्म नहीं लेता पुनः उत्पन्न नहीं होता।

क्षुरिका उपनिषत्

[१०]

क्षुरिका अर्थात् छुरी की समान संसार को काटने वाली धारणा का योग की सिद्धि के लिये व्याख्यान करता हूँ। इस धारणा की प्राप्ति के पश्चात् योगी का पुनर्जन्म नहीं होता ॥१॥ वेद तत्त्व के अर्थ की विधि के अनुसार जैसा ब्रह्मा ने कहा है एकान्त देश में आसन लगा कर बैठे ॥२॥ जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है तैसे मन को हृदय में संकोच करके बारह मात्रा से प्रणव युक्त पूरक करके सब शरीर धीरे धीरे ॥३॥ पूर्ण करे और सब द्वारों को बन्द करले। छाती, मुख, ग्रीवा और हृदय को किंचित् ऊंचा रक्खे ॥४॥ नासिका के मध्य भाग में रहने वाले प्राण को हृदय में धारण करे, वहां रहने वाले प्राण को धीरे से उत्सर्ग करे ॥५॥ स्थिरता से अंगुष्ट से आरम्भ करके दो गुल्फों के भाग में जंघाओं में तीन तीन ॥६॥ दो जानुओं में दो ऊरू में गुदा और शिश्न इन में तीन तीन समाहार करके वायु का स्थान जो नाभि प्रदेश है, उसमें आश्रय करे ॥७॥ इस नाभि प्रदेश में सुषुम्ना नाड़ी अनेक नाड़ियों से आवृत्त है। अणु, रक्त, पीत, कृष्ण, ताम्र, विलोहित अनेक नाड़ियां हैं ॥८॥ परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म शुक्ल विस्तार वाली नाड़ी का आश्रय करे। जैसे मकड़ी, तंतु का विस्तार

करती है तैसे योगी को प्राण का संचार करना चाहिये ॥९॥ उस स्थान पर रक्तोत्पल के समान महा पुरुपायतन—पुरुष का स्थान है इसको वेदान्त में दहर अर्थात् पुण्डरीक कहते हैं ॥१०॥ उसको भेदन करके प्राण कंठ में ले जावे। निर्मल बुद्धि रूप तीक्ष्ण खड्ग को ग्रहण करे ॥११॥ पग के ऊपर के भाग में रहने वाले सब मर्मों का छेदन करे तीक्ष्ण दृढ़ मन से सर्वदा योग का आश्रय करे ॥१२॥ मर्म और जंघा का जो छेदन है उसको इन्द्रवज्र कहते हैं। उसको ध्यान के बल वाली योग की धारणा से छेदन करना चाहिये ॥१३॥ उरु के मध्य भाग में प्राण की स्थापना करे और मर्म स्थानों में से प्राण का विसर्जन करे; इन चार रीति के योग के अभ्यास से सब ग्रन्थियोंका निर्भयतासे छेदन करे ॥१४॥ योगी कंठ प्रदेशमें नाड़ी समूह को इकट्ठा करता है, सब नाड़ियोंमें एक सौ एक नाड़ी उत्तम हैं ॥१५॥ सुषुम्ना नाड़ी पर (परब्रह्म) में लीन होती है यह विशुद्ध नाड़ी ब्रह्म रूपिणी है। वाम में इड़ा नाड़ी रहती है और पिंगला दक्षिण में रहती है ॥१६॥ इन दोनों नाड़ियों के मध्य में जो स्थान है, उसको जो जानता है सो आत्म ज्ञानी है। सूक्ष्म नाड़ियों का विस्तार बहत्तर हजार का है ॥१७॥ ध्यान से सब नाड़ियों का छेदन होता है परन्तु सुषुम्ना का छेदन नहीं होता। योग रूपी निर्मल धार वाले और अग्नि के तेज वाले खड्ग द्वारा ॥१८॥ समाधि की प्रभा से योगी इस जन्म में ही सौ नाड़ियों का छेदन करता है। जैसे मालती पुष्पों के योग से पुष्प की वास तेल में आती है ॥१९॥ इस

रीति से शुभाशुभ भाव से विस्तार वाली सुषुम्ना नाड़ी का ध्यान करे इससे पुनर्जन्म का नाश होता है ॥२०॥ जिसने तप से चित्त को जीत लिया है, ऐसा पुरुष एकांत का आश्रय करके और अपेक्षा से रहित होकर निस्संग रूप योग के तत्त्व का जानने वाला धीरे २ ॥२१॥ पाश का छेदन करके जिस प्रकार हंस शंका रहित होकर आकाशमें उड़ जाता है इसी प्रकार यह जीव पाश का त्याग करके संसार को तर जाता है ॥२२॥ जैसे दीपक सबको भस्म करके लय को प्राप्त होता है वैसे ही योगी सब कर्मों का दहन करके लय को प्राप्त होता है ॥२३॥ योगवान् उत्कृष्ट प्राणायाम से दृढ़ किये हुए वैराग्य रूप पत्थर से घिसे हुए मात्रा के आधार रूप मन से बंध का नाश करके मोक्ष को प्राप्त होता है ॥२४॥ जब कामनाओं से मुक्त होता है तब अमृतपने को प्राप्त होता है। सब ईषणाओं से मुक्त होकर तंतु का छेदन करके बंधन को प्राप्त नहीं होता ॥२५॥

सर्वसारोपनिषत् ।

[११]

वंध किस प्रकार है ? मोक्ष किस प्रकार है ? विद्या किसको कहते हैं ? अविद्या किसको कहते हैं ? जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति और तुरीयावस्था कैसे होती है ? अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय क्या हैं ? कर्ता, जीव, पंच वर्ग, क्षेत्रज्ञ, साक्षी, कूटस्थ और अंतर्यामी क्या हैं ? प्रत्यगात्मा, परात्मा और माया किसको कहते हैं ?

वंध——देहादिक अनात्म में जीव का जो आत्मपने का अभिमान है सो वंध है।

मोक्ष——अभिमान का नाश सो मोक्ष है।

अविद्या——जो अभिमान कराती है वह अविद्या है।

विद्या——जिससे अभिमान निवृत्त होता है वह विद्या है।

जाग्रत——आदित्य से अधिष्ठित मन आदि चौदह इन्द्रियों से शब्दादिक स्थूल विषयों की जब प्राप्ति होती है तब आत्मा की जाग्रत अवस्था होती है।

स्वप्न——शब्दादिक का अभाव होते हुए भी जब वासना सहित चौदह इन्द्रियों से वासनामय शब्दादिक की जब प्राप्ति होती है तब आत्मा की स्वप्नावस्था है।

सुषुप्ति——जब चौदह इन्द्रियां विराम को प्राप्त हो जाती हैं और विशेष ज्ञान के अभाव के पश्चात् जब शब्दादिक की प्राप्ति नहीं होती तब आत्मा की सुषुप्ति अवस्था होती है।

तुरीया——तीनों अवस्थाओं के भावाभाव का साक्षी, स्वयं भाव से रहित, जब निरन्तर चैतन्य रूप होता है तब तुरीय-चैतन्य कहलाता है।

अन्नमय——अन्न के कार्य रूप कोशों का समूह अन्नमय कोश कहा जाता है।

प्राणमय——अन्नमय कोश में जब प्राणादि चौदह वायु रहते हैं तब वह प्राणमय कोश कहलाता है।

मनोमय——जब इन दोनों कोशों से युक्त (होकर) आत्मा मन आदि चौदह इन्द्रियों से शब्दादि विषयों को और संकल्पादि धर्मों को ग्रहण करता है तब मनोमय कोश कहलाता है।

विज्ञानमय——जब आत्मा ऊपर के तीन कोश युक्त उनमें रहने वाले विशेष भावों को जानता है तब विज्ञानमय कोश कहलाता है।

आनन्दमय——जैसे वट के बीज में वट वृक्ष रहता है ऐसे जब आत्मा इन चार कोशों से युक्त और स्वकारण के अज्ञान में अर्थात् अव्यक्तपने में होता है तब आनन्दमय कोश कहलाता है।

कर्ता——जब अन्तःकरण सुख दुःख बुद्धि का आश्रय होता है तब (अंतः) कर्ता कहलाता है। जब इष्ट विषय में बुद्धि होती है तब सुख कहलाता है और जब अनिष्ट विषय में बुद्धि होती है तब दुःख कहलाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये सुख दुःख के हेतु हैं।

जीव——कर्म के अनुसार पुण्य पाप से शरीर को प्राप्त होता है तो भी शरीर प्राप्त न हुआ हो ऐसा जब जाना जाय तब वह उपाधि युक्त जीव कहलाता है।

पंच वर्ग——मनादि, प्राणादि, इच्छा आदि, सत्व आदि और पुण्यादि पांच वर्ग हैं।

क्षेत्रज्ञ——इन पांचों वर्गों के धर्म वाला आत्मा विना ज्ञान इन धर्मों से रहित नहीं होता और जो मैं हूँ यह उपाधि आत्मा की संनिधि में शाश्वत रूप से भासती है वह लिङ्ग शरीर है, उसको हृदय ग्रन्थि कहते हैं, उसमें जो चैतन्य प्रकाशता है उसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं।

साक्षी——ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय इन तीनों के आविर्भाव और तिरोभाव को जानने वाला, स्वयं ज्योति आत्मा जो आविर्भाव और तिरोभाव रहित और स्वयं प्रकाश होता है, उसको साक्षी कहते हैं।

कूटस्थ——ब्रह्मा से लेकर चेंटी पर्यन्त सब प्राणियों की बुद्धिमें जो अवशेष रूपसे देखनेमें आता हुआ और सब प्राणियों की बुद्धि में जो रहता है, उसको कूटस्थ कहते हैं।

अंतर्यामी——कूटस्थ और उपहित जीव के स्वरूप की पृथक प्राप्ति का कारण रूप होकर जो मणियों के समूह में सूत्र की समान सब क्षेत्रों में प्रोया हुआ भासता है उसको अन्तर्यामी कहते हैं।

प्रत्यगात्मा——सत्य, ज्ञान, अनंत और आनन्द रूप, सब उपाधियों से रहित, कड़े, कुण्डल आदि उपाधियों से रहित घन सुवर्ण की समान विज्ञान चिन्मात्र स्वभाव वाला आत्मा जब प्रकाशता है तब वह 'त्वं' पद के अर्थ रूप है।

परात्मा——ब्रह्म, सत्य, ज्ञान और अनंत रूप है। सत्य का अर्थ अविनाशी है। देश, काल और वस्तुओं के परिच्छेदों के नाश होने पर भी जिसका नाश नहीं होता उसको अविनाशी कहते हैं। उत्पत्ति, विनाश रहित जो अखण्ड चैतन्य है उसको ज्ञान कहते हैं। मट्टी के विकार में मट्टी के समान, सुवर्ण के विकार में सुवर्ण समान, तंतु के विकार में तंतु समान और अव्यक्तादि सृष्टि के प्रपञ्चों में पूर्ण व्यापक रूप से जो चैतन्य है उसको अनन्त कहते हैं। सुख चैतन्य स्वरूप वाला, परिमाण रहित, आनन्द के समुद्र रूप और अवशिष्ट सुख रूप वाला आनन्द कहलाता है। जिसके ये चारों लक्षण हैं और जो देश, काल और निमित्त में अव्यभिचारी—निश्चल रहता है, वह परमात्मा 'तत्' पद का अर्थ है।

परब्रह्म——त्वं पदार्थ रूप उपाधि से और तत्पदार्थ रूप उपाधि के भेद से विलक्षण, आकाश के समान सूक्ष्म, सत्ता मात्र स्वभाव वाला परब्रह्म कहलाता है।

माया——अनादि, अन्त वाली, प्रमाण और अप्रमाण दोनों को समान, सत् नहीं, असत् नहीं तथा सदसत् भी नहीं, आप ही अधिक रूप से, विकार से रहित दीखती, सत् आदि अन्य लक्षणों से रहित माया है। यह माया अज्ञान रूप, तुच्छ और तीनों काल में असत् रूप है तो भी लौकिक मूढ़जनों की उसमें वास्तविक सद्बुद्धि होने से यह ऐसी ही है ऐसा कहना नहीं बनता।

मैं आत्मा उत्पत्ति से रहित, दश इन्द्रियों से रहित, बुद्धि मन अहंकार से रहित ॥१॥ अप्राण रूप, अमन रूप, शुभ्र रूप, बुद्धि आदि का सर्वदा साक्षी रूप, सर्वदा नित्य रूप और चिन्मात्र रूप हूँ इसमें संशय नहीं है ॥२॥ मैं कर्ता रूप भोक्ता रूप नहीं हूँ। प्रकृति का साक्षी रूप हूँ। मेरी समक्षता से देहादि चैतन्य के समान प्रवृत हों ऐसे दीखते हैं ॥३॥ मैं स्थाणु, नित्य, सदानन्द, शुद्ध, ज्ञानमय, मल रहित, सब भूतों का आत्मा रूप, विभु, साक्षी रूप हूँ इसमें संशय नहीं है ॥४॥ ब्रह्मरूप, सर्व वेदान्त से जानने योग्य, आकाश वायु के समान होने से अवेद्य नाम, रूप और कर्म से रहित मैं ही ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ ॥५॥ मैं देह नहीं हूँ मुझको जन्म मृत्यु कैसे हो ? मैं प्राण रूप नहीं हूँ इससे मुझमें क्षुधा पिपासा नहीं हैं। मैं चेतस् रूप नहीं हूँ इसलिये मुझमें शोक और मोह कैसे होवें ? मैं कर्ता से रहित होने से बंध मोक्ष भाव से रहित हूँ।

आत्मप्रबोध उपनिषत् ।

[१२]

प्रत्यक् आनन्द रूप और ब्रह्म पुरुष प्रणव रूप है । अकार, उकार और मकार ये तीन अक्षर प्रणव रूप हैं, इसको ॐकार कहते हैं । इसका उच्चारण करने से योगी जन्मरूप संसार बंधन से मुक्त होता है । शंख चक्र और गदा को धारण करने वाले नारायण को नमस्कार । नमोनारायण इस मंत्र की उपासना करने वाला वैकुण्ठ में जायगा । जो ब्रह्मरंध्र रूप कमल है, वह विजली के समान प्रकाशता है । यह ब्रह्मण्य देवकीपुत्र रूप से, मधुसूदन रूप से, पुण्डरीकाक्ष रूप से, विष्णु रूप से और अच्युत रूप से है । सब प्राणियों में जो एक नारायण स्थिति करता है । वह कारण रूप पुरुष, कारण से रहित, परब्रह्म रूप ओंकार, शोक मोह रहित और विष्णु रूप है । इस विष्णु के ध्यान करने वालों का नाश नहीं होता । वह द्वैत से अद्वैत रूप होकर अभय होजाता है । जो भिन्नता को देखता है, वह अनेक प्रकार के मृत्यु को प्राप्त होता है । हृदय कमल में जो कुछ उसकी स्थिति प्रज्ञा में है । लोक प्रज्ञा नेत्र है, प्रज्ञा प्रतिष्ठा रूप से और ब्रह्म रूप से है । इस प्रज्ञा से इस लोक का उत्क्रमण करके दूसरे लोक अर्थात् स्वर्ग में मनुष्य सब कामनायें प्राप्त करता हैं । वह अमृत रूप होता है । सतत ज्योति जिस लोक में रहती है वह लोक मुझको दीजिये । यह

अक्षत लोक मान से रहित और अच्युत रूप है। जो इस लोक को प्राप्त होता है, वह अमृत होता है अमृत रूप ओंकार को नमस्कार है ॥१॥

मुझमें से माया का नाश हुआ है, स्वच्छ दृष्टि रूप वस्तु मात्र मैं हूँ। अस्मिता का नाश करने वाला, जगत्, ईश और जीव के भेद से रहित हूँ (१) प्रत्यक् अभिन्न रूप हूँ, विधि निषेध का नाश रूप हूँ, आश्रयों से पर हूँ, परमानन्द रूप पूर्ण संवित् रूप हूँ, (२) अपेक्षा रहित साक्षी हूँ, अपनी महिमा में स्थित हूँ, अचल हूँ, अजर हूँ, अव्यय हूँ, पक्ष विपक्ष भेद से रहित हूँ। (३) एक रस ज्ञान स्वरूप हूँ, मोक्ष आनन्द का एक सिन्धु भी मैं ही हूँ, सूक्ष्म हूँ, अक्षर हूँ, गुण समूह से रहित केवल आत्मा हूं, (४) तीन गुणों से रहित पद हूँ, कुक्षी स्थान में लोक कलना रूप हूँ, कूटस्थ चैतन्य हूँ, निष्क्रियमान हूँ, तर्क से रहित हूं। (५) एक हूं, कला से रहित हूँ, निर्मल, निर्वाण मूर्त्ति भी हूँ, निरवयव हूँ, अज हूँ, केवल सन्मात्र सार भूत हूँ। (६) अवधि रहित निज बोध रूप हूँ, शुभतर भाव रूप हूँ, अभेद्य हूँ, विभु हूँ, निन्दा से रहित, अवधि रूप हूं, परमतत्त्व मात्र हूं। (७) जानने योग्य हूँ, वेद में आराधन करने योग्य, सब भुवनों में सुंदर हूँ, परमानन्द घन हूँ, परमानन्द का एक भूमा रूप हूँ। (८) शुद्ध हूँ, अद्वय हूं, सर्व भाव रूप हूँ, आदि शून्य हूं, देशकाल और वस्तु इनके परिच्छेद से रहित हूँ, बंध मुक्त हूँ, अद्भुत आत्मा हूँ, (९) शुद्ध हूँ, अन्तर हूं, शाश्वत विज्ञान एक रस आत्मा हूँ, शोधन किया हुआ परम तत्त्व मैं हूँ,

बोध और आनन्द की एक मूर्ति भी हूँ। (१०) विवेक और युक्ति की बुद्धि वाला हूं, अद्वय आत्मा को जानता हूँ तो भी बंध मोक्ष आदि व्यवहार प्रतीत होता है। (११) निवृत्त-हुआ प्रपंच भी मुझको सत्य के समान सर्वदा भासता है। जैसे सर्प आदि में रज्जु की सत्ता है, ऐसे प्रपंच में केवल ब्रह्म सत्ता ही है। (१२) मैं प्रपंच का आधार रूप हूँ इसलिये जगत् है ही नहीं, जैसे ईख में रस रूप से शक्कर रहती है तैसे ही (१३) अद्वितीय ब्रह्म रूप से तीनों लोकों में व्याप्त हूँ। ब्रह्मा से लेकर कीटपर्यन्त सब प्राणी मुझमें कल्पित हैं। (१४) बुद्बुदे से लेकर तरंग तक जितने विकार समुद्र में दीखते हैं, उन तरङ्गों में स्थित विकारों को जैसे सिंधु नहीं चाहता तैसे ही (१५) आनन्द रूप होने से मुझे विषयानन्द की इच्छा नहीं होती, जैसे धनवान् को दरिद्र होने की इच्छा नहीं होती तैसे ही (१६) मुझ ब्रह्मानन्द में निमग्न को विषय की आशा नहीं होती, विष और अमृत को देखकर बुद्धिमान् पुरुष विष को त्यागता है। (१७) तैसे ही आत्माको देखकर मैं अनात्मा का त्याग करता हूँ, घट में प्रकाशने वाले सूर्य का घट के नाश से नाश नहीं होता (१८) तैसे ही देह को प्रकाशने वाले साक्षी का देह के नाश होने से नाश नहीं होता। मुझको बंध, मोक्ष, शास्त्र और गुरु कोई नहीं है। (१९) ये सब केवल माया का विकाश मात्र है और मैं माया से रहित अद्वय हूँ। उसके धर्मों से प्राण चला करो और मन कामना से भरता रहो। (२०) आनन्द बुद्धि से पूर्ण मुझको दुःख कहां से हो? मैं आत्मा को प्रत्यक्ष

जानता हूँ, मेरा अज्ञान नष्ट हुआ है। (२१) मेरा कर्तृत्व नष्ट हो गया है, अब कर्तव्य कुछ नहीं है। ब्राह्मणपना, कुल, गोत्र, नाम, सौन्दर्य, जाति (२२) ये स्थूल देह में रहते हैं, स्थूल देह से भिन्न मुझमें नहीं रहते। भूख, प्यास, अन्धापना, बहिरापना, काम, क्रोधादि (२३) ये सम्पूर्ण लिङ्ग देह में होते हैं. परन्तु मैं लिंग देह से रहित होने से मुझमें कुछ भी नहीं है। जड़पना, प्रिय, मोद, आदि धर्म कारण देह के हैं। (२४) परन्तु मैं नित्य निर्विकारी हूं, इसलिये वे मेरे नहीं हैं। जैसे घुग्घू को सूर्य अन्धकार रूप से दीखता है। (२५) तैसे मूढ़ को स्वप्रकाश परानन्द में अन्धेरा दीखता है। चक्षु दृष्टि की बादल से रोक होने के कारण सूर्य नहीं है; ऐसा माना जाता है (२६) तैसे ही अज्ञान से ढका हुआ जीव 'ब्रह्म नहीं है' ऐसा मानता है। जैसे अमृत विषसे भिन्न है और विषके दोषोंसे लिपायमान नहीं होता (२७) तैसे ही जड़से भिन्न मुझको जड़ादि दोषोंका स्पर्श नहीं होता, जैसे एक छोटे से दीपक की ज्योति बहुत अन्धकार का नाश करती है (२८) तैसे थोड़ा सा भी ज्ञान महान् अज्ञान का नाश करता है। जैसे तीनों काल में रज्जु में सर्प नहीं है, वैसे ही मुझमें। (२९) अहंकारादि से देह पर्यंत का जगत् नहीं है। मैं अद्वय रूप हूं। मैं चेतन रूप होने से मुझमें जड़ता नहीं है। मैं सत्य रूप होने से मुझमें असत्य नहीं है (३०) मैं आनन्द रूप होने से मुझमें दुःख नहीं है। अज्ञान से मुझको दुःख सत्य रूपसे भासता है। आत्म प्रबोध उपनिषत् की जो एक मुहूर्त भी उपासना करता है, उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती, पुनरावृत्ति नहीं होती।

कालाग्नि रुद्र उपनिषत्।

[१३]

एक समय भगवान् कालाग्नि रुद्र से सनत्कुमार ने पूछा "हे भगवन्! मुझे त्रिपुण्ड्र की विधि तत्त्व सहित श्रवण कराइये। त्रिपुण्ड्र क्या है, उसका स्थान कौन है, प्रमाण क्या है, कौनसी रेखा है, मन्त्र कौन से हैं, कौनसी शक्ति का दैवत कौन कर्ता है और उसका क्या फल है?" भगवान् कालाग्नि रुद्र ने कहा "जो द्रव्य है, सो अग्निहोत्र की भस्म है। 'सद्यो जातादि' पांच मन्त्र से इस भस्म को ग्रहण करना, 'अग्नि रिति भस्म, वायु रिति भस्म, व्योमेति भस्म, जल मिति भस्म और स्थल मिति भस्म' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके 'मान स्तोक' इस मन्त्र से अंगुली पर लेकर 'मानो महान्' इस मन्त्र से जल लेकर 'त्रियायुप' इस मंत्र से शिर, ललाट वक्ष और स्कंध पर 'त्रियायुप' और 'त्र्यंबक' इस मंत्र से तीन रेखा करना। यह शांभव व्रत कहलाता है। सब देवताओं में इस व्रत को वेद वेत्ताओं ने कथन किया है। पुनः जन्म लेना न पड़े इसलिये मुमुक्षुता धारण करने वाला इसका आचरण करे।" सनत्कुमार ने पूछा "तीन रेखा करने में आती हैं इसका क्या कारण है?" उत्तर:—"तीन रेखाओं में से प्रथम रेखा गार्हपत्य रूप, आकाश रूप, रजो रूप, भूलोक रूप, स्वात्म रूप, क्रिया शक्ति रूप,

ऋग्वेद रूप, प्रातः सवन रूप और महेश्वर रूप है। दूसरी रेखा दक्षिणाग्नि रूप, उकार रूप, सत्व रूप, अन्तरिक्ष रूप, अंतरात्मा रूप, इच्छा शक्ति रूप, यजुर्वेद रूप, मध्य दिन सवन रूप और सदाशिव रूप है। तीसरी रेखा अद्वितीय रूप, मकार रूप, तम रूप, द्यौलोक रूप, परमात्मा रूप, ज्ञान शक्ति रूप, सामवेद रूप, तृतीय सवन रूप और महादेव रूप है। जो कोई विद्वान्, ब्रह्मचारी, गृहस्थाश्रमी, वानप्रस्थाश्रमी अथवा यति हो और वह जो त्रिपुण्ड्र को धारण करे तो महापातकों और उपपातकों से मुक्त होता है। सब तीर्थों में उसने स्नान किया सा होता है, उसने सब वेदों का अध्ययन किया सा होता है। सब देवताओं का वह ज्ञाता होता है, वह सब रुद्र मंत्रों का जप करने वाला होता है. वह सब भोग का भोगता है और देह त्याग करके वह शिवपने को प्राप्त होता है। उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती।" इस प्रकार कालाग्नि रुद्र ने कहा। जो इसका अध्ययन करता है, वह भी उसके समान होता है।

तुरीयातीत उपनिषत्

[१४]

पितामह ब्रह्मा अपने पिता भगवान् नारायण के समीप आकर पूछने लगे "तुरीयातीव अवधूत का मार्ग कैसा है और उसकी स्थिति कैसी होती है ?" भगवान् नारायण ब्रह्मा से कहने लगे "जो अवधूत मार्ग में होता है, ऐसा पुरुष दुर्लभ्य है, ऐसे पुरुष बहुत रूप से नहीं होते। यदि कहीं एकाध होता है; तो वह हमेशा पवित्र है, वैराग्य मूर्ति रूप है, ज्ञानाकार रूप से है और वेद पुरुष रूप से है, ऐसा ज्ञानी मानते हैं। जो महा पुरुष है, वह अपना चित्त मुझमें स्थित करके रहा हुआ है और मैं उसमें स्थिति करके रहा हुआ हूं। वह प्रथम कुटीचक संन्यासी रूप होता है, पीछे क्रम से वहूदक होता है। वहूदक हंस संन्यस्त का अवलम्बन करके पीछे परमहंसरूप होता है और स्वरूपानुसंधानसे सब प्रपंचको जान कर, दंड, कमंडलु, कटिसूत्र, कौपीन, आच्छादन और विधि अनुसार कही हुई सब क्रियादिक का जल में त्याग करके दिगम्बर रूप होकर, विवर्ण और जीर्ण वल्कल, अजिन का भी त्याग करके विधि निषेध रहित जीवन विताता है। वह क्षौर, तेल मर्दन, स्नान और ऊर्ध्व पुंड्रादिक (तिलक) का त्याग करता है। वह पुण्य, अपुण्य से रहित होता है। वह ज्ञान और अज्ञान का भी त्याग करता है। उसको शीत, उष्ण, सुख

दुःख मान और अपमान नहीं होता। तीन वासनाओं सहित, निन्दा, अनिन्दा, गर्व, मत्सर, दंभ, दर्प, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, अमर्ष, असूया और अपने देह का संरक्षण आदिक का उसने दहन किया होता है। वह अपने शरीर को मृतक के आकार के समान देखता है। वह यत्न से रहित होता है, नियम से रहित होता है, उसको लाभ हानि सब समान होते हैं। एक गायके समान घास आदि जो कुछ प्राप्त हो उससे निर्वाह करता है और वह लालच से रहित होता है। उसने सब विद्या और पांडित्य रूप प्रपंच का त्याग किया होता है इसलिये वह अपने को गूढ़ रखता है और ज्येष्ठ और कनिष्ठ के भेद को पूर्ववत कायम रखता है वह सर्वोत्कृष्ट और सर्वात्मक अद्वैत रूप से कल्पना करता है। 'मुझसे अन्य् कुछ भी नहीं है,' ऐसा वह मानता है वह देव, गुरु आदि धन का आत्मा में उपसंहार करता है। वह दुःख से दुखी नहीं होता, सुख से हर्ष नहीं मानता। उसे राग में प्रीति नहीं होती, उसकी सब इन्द्रियां शुभाशुभ से उपराम को प्राप्त हुई होती हैं। पूर्व प्राप्त हुए आश्रम, आचार, विचार, विद्या, धर्म प्रभाव आदि की स्मृति उसकी नहीं होती। उसने वर्णाश्रम और आचार का त्याग किया हुआ होता है। रात्रि और दिन उसको समान होता है इसलिये वह सोता नहीं वह विचरता रहता है उसके पास देह मात्र रहा हुआ होता है। उसको जल और स्थल कमंडल रूप से हैं और वह हमेशा उन्मत्तपने से रहित है तो भी बालक, उन्मत्त और पिशाच के समान

अकेला विचरता है, किसी से बोलता नहीं परन्तु स्वरूप के ध्यान में रहा हुआ होता है। निरालम्ब का अवलम्बन करके आत्मनिष्ठा मे वह और सब विस्मरण करता हैं, ऐसा तुरीयातीत अवधूत वेष वाला अद्वैत निष्ठा में तत्पर, प्रणव के भाव से युक्त होकर देह का त्याग करता है वह अवधूत है। वह ही कृत कृत्य हो जाता है॥ ॐ तत् सत्॥

अध्यात्म उपनिषत्।

[१५]

शरीर के मध्य भाग में अज, एक और नित्यरूप आत्मा रहता है। इस आत्मा का पृथिवी शरीर है। वह पृथिवी के मध्य भाग में रहता है तो भी पृथिवी उसे जान नहीं सकती। इस आत्मा का जल शरीर है। जल के मध्य में आत्मा रहता है तो भी जल आत्मा को नहीं जानता। इस आत्मा का तेज शरीर है। तेज के मध्य में आत्मा रहता है तो भी तेज उसको नहीं जानता। इस आत्मा का वायु शरीर है। वह वायु के मध्य में रहता है तो भी वायु उसको नहीं जानता। आत्मा का आकाश शरीर है, आकाश में संचार करने पर भी आकाश उसको नहीं जानता। आत्मा का मन शरीर है, वह मनमें रहता है तो भी मन उसको नहीं जानता। आत्मा का बुद्धि शरीर है। आत्मा बुद्धि में रहता है तो भी बुद्धि आत्मा को नहीं जानती। अहंकार उसका शरीर है, वह अहंकार में रहता है तो भी अहंकार उसको नहीं जानता। चित्त उसका शरीर है, वह चित्त में रहता है तो भी चित्त उसको नहीं जानता। अव्यक्त उसका शरीर है, वह अव्यक्त में रहता है तो भी अव्यक्त उसको नहीं जानता। अक्षर उसका शरीर है, वह अक्षर में रहता है तो भी अक्षर उसको नहीं जानता। मृत्यु उसका शरीर है, वह मृत्यु में रहता है तो भी मृत्यु

उसको नहीं जानता। यह सब प्राणियों का अंतरात्मारूप शुद्ध, दिव्य, प्रकाशरूप और नारायणरूप है।

देह, चक्षु, आदिक अनात्म वस्तुओं में जो 'मैं' और 'मेरा' ऐसा भाव होता है, उसको अध्यास कहते हैं। विद्वान् पुरुषों को ब्रह्म में आसक्ति रखकर अध्यास का त्याग करना चाहिये ॥१॥ बुद्धि और उसकी वृत्ति के साक्षीरूप इस प्रत्यक् आत्मा को 'आत्मा मैं ही हूं' ऐसी वृत्ति रखकर अपने और दूसरे में आत्म-बुद्धि का त्याग कर दे ॥२॥ लोगों के अनुसार वर्तने के भाव को त्याग कर देह के अनुवर्तन के भाव का त्याग करे, शास्त्र के समान वर्तने के भाव का त्याग कर दे, और अपने अध्यास का भी त्याग कर दे ॥३॥ आत्मा के सर्वात्मपने को जान कर, श्रुतियों और युक्तियों से उसका अनुभव करके योगियों का मन स्वात्मा में हमेशा स्थिति करके नाश को प्राप्त होता है ॥४॥ निद्रा को, लोक वार्ता को, शब्दादिक को और आत्मविस्मृति को कभी भी अवकाश न देकर आत्मा में आत्मा का चिंतन करे ॥५॥ माता पिता के मल से उत्पन्न हुए ऐसे मल मांस वाले शरीर का चण्डाल के समान त्याग करके ब्रह्मरूप से तू कृतार्थ हो ॥६॥ जैसे घटाकाश का महाकाश में लय होता है तैसे आत्मा का परमात्मा में लय करके हे मुनि! तू मौनी होजा ॥७॥ आत्मा से हमेशा अधिष्ठान रूप स्वप्रकाश का अनुभव करके शरीर का और ब्रह्माण्ड का भी मैले के पात्र के समान त्याग कर ॥८॥

आनन्द रूप चिदात्मा में, देह में रहने वाली अहं बुद्धि को स्थापन करके, सब चिन्हों का त्याग करके तू केवल रूप हो ॥९॥ जैसे दर्पण में अंतःपुर का भास होता है तैसे जिसमें जगत् का भास होता है 'वह ब्रह्मरूप मैं स्वयं हूं' ऐसा मान कर कृत-कृत्य हो ॥१०॥ अहंकाररूप मगर से मुक्त हुआ अपने स्वरूप को प्राप्त होता है, वह चन्द्र के समान निर्मल, पूर्ण, सदानन्दमय और स्वयंप्रभा रूप होकर रहता है ॥११॥ क्रिया के नाश होने से चिंता का नाश होता है, चिंता के नाश होने से वासना का क्षय होता है और वासना क्षय होने से मोक्ष होता है, उसको जीवन-मुक्ति कहते हैं ॥१२॥ सबमें और सब दिशाओं में एक ब्रह्म का ही अवलोकन करने और सद्भाव रूप भावना दृढ़ होने से वासना का लय होता है ॥१३॥ किसी समय भी ब्रह्मनिष्ठा में प्रमाद न करना चाहिये। ब्रह्मवादियों को ब्रह्मविद्या में प्रमाद करना मृत्यु-रूप कहलाता है ॥१४॥ जैसे हाथ से हटाई हुई जलकी काई थोड़ी देर भी नहीं रहती तैसे परांगमुख ऐसे प्राज्ञ को माया आवरण करती है ॥१५॥ हे निष्पाप जो मनुष्य जीता हुआ ही केवल अवस्था को प्राप्त हुआ है, वह ही केवल विदेह रूप है, (इसलिये) समाधि को प्राप्त करके तू निर्विकल्प हो ॥१६॥ जब निर्विकल्प समाधि से अद्वैत आत्मा का साक्षात्कार होता है तब अज्ञान रूप हृदय ग्रन्थि का समूल नाश होता है ॥१७॥ इस आत्मा में अहंभाव को दृढ़ कर देहादि में उसका त्याग करते हुए घट पटादिक के समान सब में उदासीन रहना चाहिये ॥१८॥

ब्रह्मा से लेकर स्तंभ पर्यन्त सब मिथ्या उपाधि रूप हैं इसलिये उनमें एक आत्म रूपसे रहने वाले स्वात्म स्वरूपका दर्शन करना चाहिये ।।१९।। मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, शिव और विश्व रूप हूँ और मेरे सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है ।।२०।। आभास सहित सब वस्तुओं का निरास करके जिसने उनको अपने आत्मा में आरोपण किया है और जो आप पूर्ण, अद्वय और अक्रिय रूप से हुआ है ।।२१।। एक ही परमार्थ वस्तु में विश्व जैसी कल्पना असत् कल्पना रूप है, पर वस्तु ब्रह्म है, जो निर्विकार, निराकार, और निर्विशेष है, उसमें भेद भाव कहां से हो ? ।।२२।। आत्मा द्रष्टा, दर्शन और दृश्यादि भाव से रहित है, निरामय रूप है, कल्पना रहित है, महान समुद्र के समान अत्यन्त परिपूर्ण है ।।२३।। जैसे तेज में अंधकार का लय होता है, तैसे जिसमें सब भ्रांति का लय होता है ऐसे चिदात्मा में भेद कहां से हो ? ऐसे एक परम तत्त्व में भेद का कर्ता किस प्रकार संभवित हो सके ।।२४।। एक परम तत्त्व में भेद किस प्रकार हो ? सुख मात्र सुषुप्ति में भेद किसने देखा है ।।२५।। यह विश्व चित्त में से उत्पन्न हुआ है और चित्त के अभाव से उसमें का कुछ भी नहीं रहता इसलिये परमात्मा में चित्त को एकाग्र करना चाहिये ।।२६।। अखंडानन्द आत्मा जो अपना स्वस्वरूप है उसको जानकर बाहर और भीतर सदानन्द रसका आस्वाद आत्मामें होता है ।।२७।। बोध इस वैराग्य का फल है, बोधका फल उपरति है, उपरति का फल स्वानंद के अनुभव से होने वाली शांति है ।।२८।। उत्तर २ के अभाव से

पूर्व २ का रूप निष्फल है, निवृत्ति ही परम तृप्ति है और उपमा से रहित आनंद है ॥२९॥ मायारूपी उपाधिसे युक्त, जगत्‌का कारणरूप, सर्वज्ञत्वादि लक्षण वाला, परोक्ष और सत्यादि लक्षण वाला तत्पद कहा जाता है ॥३०॥ जो अन्तःकरण वाला चैतन्य 'मैं' ऐसे विषयपने से प्रतीत होता है, वह त्वंपद से कहा जाता है ॥३१॥ माया तथा अविद्या जो ईश्वर और जीव की उपाधि हैं, उनको छोड़कर अखंड सच्चिदानन्द परब्रह्म का अनुभव होता है ॥३२॥ इस प्रकार वेदान्त वाक्यों से प्रतिपादन किये हुए अर्थ का जो अनुसंधान है वह श्रवण है, युक्ति से निश्चित किये हुए का जो अनुसंधान है वह मनन है ॥३३॥ श्रवण मनन द्वारा संशय से रहित हुए अर्थ में जो चित्त की एकाग्रता का होना है वह निदिध्यासन कहलाता है ॥३४॥ ध्याता और ध्यान का त्याग करके केवल ध्येय का विषय करने वाली निर्वात स्थान में दीप शिखा के समान स्थिर चित्त की जो अवस्था है, वह समाधि कहलाती है ॥३५॥ वृत्तितो आत्मगोचर होने से उस काल में अज्ञात हैं समाधि से उठे हुए के स्मरण से अनुमान होती हैं ॥३६॥ इस अनादि संसार में करोड़ों प्रकार के कर्म संचय हो रहे हैं इस समाधि से सब लय को प्राप्त हो जाते हैं और शुद्ध (आत्म) धर्म की वृद्धि होती है ॥३७॥ योग जानने वाले इस समाधि को धर्म मेघ कहते हैं यह धर्म रूप अमृत की हजारों धारायें वर्षती हैं ॥३८॥ इससे वासना जाल का समग्र नाश होजाता है और पाप पुण्य रूप जितने कर्मों का संचय हुआ होता है वे सब मूल सहित नाश हो

जाते हैं ॥३९॥ पहिले जिन वाक्यों का प्रतिबंध रहित सत्य भास परोक्ष होता था और अब हाथ में आमला हो इस प्रकार अपरोक्ष बोध की उत्पत्ति होती है ॥४०॥ भोग्य पदार्थों में वासना की उत्पत्ति न हो, यह वैराग्य की अवधि है, अहंता का उदय न हो, यह बोध की अवधि है ॥४१॥ लीन हुई वृत्तियों की फिर से उत्पत्ति न हो यह उपराम की अवधि है और स्थित प्रज्ञा वाला वही यति है जिसको सदानन्द प्राप्त होता है ॥४२॥

ब्रह्म और आत्मा की उपाधियों को छोड़ कर, एकता करने वाला योगी निर्विकार, क्रिया रहित ब्रह्म में लीन वृत्ति होता है ॥४३॥ ब्रह्म और आत्मा को एक विषय करने वाली विकल्प रहित चेतन मात्र वृत्ति को प्रज्ञा कहते हैं वह सर्वदा वह प्रज्ञावान् जीवन्मुक्त कहलाता है ॥४४॥ जिसको देह और इन्द्रियों में कभी अहंभाव और अन्य में 'यह' भाव कहीं भी नहीं होता उसको जीवन्मुक्त जानना चाहिये ॥४५॥

जो पुरुष अपनी बुद्धि से जीव और ब्रह्म में और ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं जानता वह जीवन्मुक्त है ॥४६॥ सत्पुरुषों से पूजित होने से और दुर्जनों से दुःख प्राप्त होने से जो समभाव में रहता है, वह जीवन्मुक्त है ॥४७॥ जिसने ब्रह्म तत्त्व को जाना है, उसको प्रथम के समान संसार नहीं रहता और जो प्रथम के समान ही रहे तो जानना चाहिये कि वह ब्रह्मतत्त्व से अज्ञात—बहिर्मुख है ॥४८॥ जब तक सुखादि का अनुभव होता है तब तक प्रारब्ध

मानने में आता है; क्योंकि फल का उदय पूर्व की क्रिया स ही होता है, क्रिया विना कभी भी नहीं होता ॥४९॥ जैसे जाग्रत अवस्था प्राप्त होने से स्वप्न कर्म का लय होजाता है तैसे ही 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा ज्ञान होने से सैकड़ों और करोड़ों कल्पों के बने हुए संचित कर्मों का लय होता है ॥५०॥ जैसे आकाश किसी से लेपायमान नहीं होता ऐसे ही जिस यति को 'मैं असंग उदासीन हूँ' ऐसा ज्ञान उत्पन्न हुआ है वह किसी प्रकार के कर्मों से कभी भी लेपायमान नहीं होता ॥५१॥ जैसे आकाश घट का योग करके और दारू की गंध से लेपायमान नहीं होता तैसे आत्मा उपाधि के योग व उनके धर्मों से लेपायमान नहीं होता ॥५२॥ ज्ञान होने के प्रथम जिसका फल प्राप्त होना आरम्भ हो चुका है ऐसा प्रारब्ध कर्म निशान लगाने के उद्देश से छूट चुके हुए वाण के समान, फल दिये विना नाश को प्राप्त नहीं होता ॥५३॥ वाघ समझकर वाण छोड़ दिया, पीछे से जाना गया कि गाय है तो भी वह वाण स्थिर नहीं होता, वेग से भरा हुआ निशान पर जाकर लगता ही है ॥५४॥ 'मैं अजर हूं अमर हूँ' इस प्रकार आत्मा को जानने वाले को—आत्मा में टिके हुए को प्रारब्ध कर्म की कल्पना ही कहां से हो ? ॥५५॥ जब देह रूप से स्थिति होती है तब प्रारब्ध सिद्ध होता है, देहात्म भाव ही इष्ट नहीं है इसलिये प्रारब्ध को छोड़ देना चाहिये ॥५६॥ देह का प्रारब्ध कहना भी भ्रांति की कल्पना है ॥५७॥ अध्यस्त पदार्थ सत्य नहीं होता, असत्य का जन्म नहीं होता, जो जन्मा नहीं है उसका नाश नहीं होता और

असत् का प्रारब्ध नहीं होता ॥५८॥ ज्ञान से अज्ञान के कार्य का मूल सहित, नाश होता है तब देह का रहना ही किस प्रकार संभवे ? ऐसी शंका जड़ पुरुषों की होती है। उसका समाधान करने के लिये श्रुति ने "बाह्य दृष्टि" से प्रारब्ध रहता है ऐसा कहा है ॥५९॥ देहादिक सत्य हैं, ऐसा विद्वान् पुरुषों के जानने के निमित्त नहीं।

ब्रह्म परिपूर्ण आदि और अन्त से रहित, क्रिया के अयोग्य और विक्रिया रहित है ॥६०॥ सद्रूप, चिद्रूप, आनन्द रूप और अव्यय, सबका अपना आप, एक रस, पूर्ण, अनन्त और सब तरफ मुख वाला है ॥६१॥ छोड़ा न जाय ऐसा, ग्रहण न किया जाय ऐसा, विषयों से रहित, आश्रय से रहित, निर्गुण, अक्रिय, सूक्ष्म, निर्विकल्प और निरंजन है ॥६२॥ जिसको मन और वाणी नहीं पहुँचते, इसलिये जिसका स्वरूप निरूपण नहीं होसक्ता ऐसा, सत्य, परिपूर्ण, स्वतः सिद्ध, शुद्ध, ज्ञान स्वरूप उपमा रहित ऐसा ब्रह्म एक और अद्वितीय है, उसमें नानापना कुछ भी नहीं है ॥६३॥ अपने अनुभव से अपने ही आत्मा को स्वयं अखंडित जानकर, सिद्ध होकर, अपने ही निर्विकल्प रूप से सुख पूर्वक आत्मा में रहना ॥६४॥ यह जगत् कहां गया, वह कहां लीन होगया, और उसे कौन ले गया ? यह तो अभी मेरे देखने में आया था ! क्या यह बड़ा आश्चर्य नहीं है ? ॥६५॥ अखंड आनन्द रूप अमृत से भरा हुआ, ब्रह्मरूप महा सागर में क्या लेना ? क्या छोड़ना ? क्या भिन्न है ? और क्या विलक्षण है ? कुछ भी नहीं ॥६६॥ इस

स्थिति में मैं कुछ भी देखता नहीं हूँ, सुनता नहीं हूँ और जानता भी नहीं हूँ! मैं तो सदानन्दमय अपने स्वरूप से स्व लक्षण: हूँ॥६७॥ मैं असंग हूं, अंग रहित हूं, लिंग रहित हूं, शांत हूं, अनंत हूँ, निर्मल हूँ और सनातन हूँ॥६८॥ मैं अकर्ता हूँ, अभोक्ता हूँ, निर्विकार हूं, क्रिया रहित हूँ, शुद्ध बोध रूप हूँ, केवल हूँ और हमेशा मंगल स्वरूप हूँ॥६९॥ यह विद्या प्रथम हिरण्यगर्भ को दी गई, हिरण्यगर्भ से ब्रह्मा को मिली ब्रह्मा ने घोर आंगिरस को दी, घोर आंगिरस ने रैक को दी, रैक ने राम को दी, राम से सब भूत प्राणियों में प्रवृत्त हुई। यह निर्वाण का उपदेश है, वेद का उपदेश है, वेद का उपदेश है।

स्कन्दोपनिषत् ।

[१६]

स्कन्द कहते हैं:—हे महादेव ! मैं आपकी किंचित् कृपा से अच्युत रूप, शिव स्वरूप हूँ और विज्ञानघन हूं, इससे अधिक क्या होगा ! ॥१॥ जब अन्तःकरण विषयाकार होकर विस्तार को प्राप्त होता है तब अपने स्वरूपका भान नहीं होता और जब अंतःकरण का नाश होजाता है तब ज्ञान स्वरूप हरि ही रहता है ॥२॥ मैं ज्ञान स्वरूप में स्थित हूं और अजन्मा हूं, इससे अधिक और क्या है ! इसके सिवाय सब जड़ स्वप्न के समान नष्ट होने वाला है ॥३॥ चैतन्य और जड़ का जो द्रष्टा है वह ही अच्युत, ज्ञान स्वरूप है, वह ही महादेव है, वह ही महा हरि है ॥४॥ वह ही ज्योतियों का ज्योति है, वह ही परमेश्वर है, वह ही परब्रह्म है, वह ही ब्रह्म मैं हूँ, इसमें संशय नहीं है ॥५॥ जीव शिव है, शिव जीव है, वह जीव केवल शिव है, जिस प्रकार छिलके से ढका हुआ धान होता है, छिलका उतर जाने से चांवल होजाता है ॥६॥ इसी प्रकार (कर्म में) वंधा हुआ जीव है, कर्म (वासना) नाश होने पर सदा शिव है, इसी प्रकार पाश में बांधा हुआ जीव है, पाश से छुटा हुआ सदा शिव है ॥७॥ शिव विष्णुरूप है और विष्णु शिव रूप है, शिवका हृदय विष्णु है और विष्णु का हृदय शिव है ॥८॥ जैसे शिवमय विष्णु है ऐसे ही विष्णुमय शिव है

इनमें जब मैं अन्तर नहीं देखता हूँ तब मैं इसी शरीर में कल्याण को प्राप्त हुआ हूँ ॥९॥ जिस प्रकार शिव और केशव में भेद नहीं है इसी प्रकार देह को देवालय कहा है और जीव केवल शिव है, अज्ञान निर्माल्य को छोड़ कर सोऽहं (वह मैं हूँ) इस भाव से उसका पूजन करे ॥१०॥ अभेद देखना ज्ञान है, मन का विषय (वृत्ति) रहित होना ध्यान है, मन के मल का त्याग स्नान है और इन्द्रियों को रोकना शौच है ॥११॥ ब्रह्म रूपी अमृत का पान करे, देह रक्षा के लिये भिक्षा का भोजन करे, द्वैत से रहित एकान्त स्थान में अकेला वास करे, जो बुद्धिमान् इस प्रकार का आचरण करे सो मुक्ति को प्राप्त हो ॥१२॥ श्री परमधाम, कल्याण स्वरूप, चिरायु को नमस्कार है, हे नृसिंह देवेश ! आपके प्रसाद से विरिंचि, नारायण, शंकर स्वरूप, अचिन्त्य, अव्यक्त, अनंत, अव्यय, वेद स्वरूप ब्रह्म को आत्म स्वरूप से जानते हैं ॥१३॥ जो विद्वान् पुरुष उस विष्णु के परम पद को स्वर्ग के विस्तार के समान नेत्रों से प्रत्यक्ष देखते हैं ॥१४॥ वे विद्वान् ब्रह्म भाव में लीन होकर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं वह विष्णु का परम पद है, वह ही निर्वाण का उपदेश है, वह ही वेद का उपदेश है, वह ही वेद का उपदेश है ॥१५॥

तेजो बिन्दु उपनिषत्।

[१७]

विश्वात्मा हृदय में टिका हुआ ॐकार स्वरूप तेजोबिन्दु परंध्यान रूप है। जो अणु रूप, शंभु रूप, शान्त, स्थूल, सूक्ष्म और पर है ॥ १ ॥ दुःख से प्राप्त होने योग्य, कठिनाई से आराधना करने योग्य, कठिनाई से देखने योग्य मुक्त और अव्यय स्वरूप है। मुनि और विद्वानों को उसका साक्षात् ध्यान दुर्लभ है ॥२॥ नियमिताहार करनेवाला, क्रोधको जीतने वाला, संग को जीतनेवाला, इन्द्रियोंको जीतनेवाला, द्वन्द्व रहित, अहँकार रहित, आशारहित, परिग्रहरहित, ॥३॥ जो अगम्य वेदका कर्ता, स्थिर मनसे प्राप्त होनेयोग्य और तीनों (वेदों) को जिसके मुखमें जानता है, वह तीन धाम वाला हंस कहलाता है ॥४॥ उस विष्णु के परम पद को तन्द्रा रहित, आश्रय रहित, चन्द्र रूप कला वाला, सूक्ष्म, परम और अत्यंत गुप्त जानो ॥५॥ वही तीन मुख वाला, तीन गुण के स्थान रूप, तीन धातु वाला, रूप रहित, निश्चल, विकल्प रहित, आकार रहित और आश्रय रहित ॥६॥ उपाधि रहित स्थान, वाणी और मनका अविषय, भाव से ग्रहण करने योग्य स्वभाव वाला, शरीर रहित और अविनाशी पद है ॥७॥ वह अद्वितीय, आनन्द से अतीत, दुःख से देखने योग्य, मुक्त, अव्यय स्वरूप,

चिंतवन करने योग्य, विशेष मुक्त, सनातन, अचल और नाश रहित है ॥८॥ वह ब्रह्म है, वह अध्यात्म है, वह विष्णु है, वह शरण है। चिंतन न किया जाय ऐसा जो चिन्मय आत्मा है, वह परम आकाश रूपसे स्थित है ॥९॥ वह शून्यसे विरुद्ध, शून्य भाव वाला परंतु शून्य से अतीत और हृदय में स्थित है। न ध्यान है, न ध्यान करने वाला है और न ध्यान करने योग्य ध्येय ही है ॥१०॥ न सब है, केवल परम शून्य है, उससे ॐ न पर है न अपर, न अपर से पर है। वह चिंतवन करने के अयोग्य, और न जानने योग्य है, न सत्य न पर है ऐसा जानो ॥११॥ मुनियों से न मिला हुआ, देवताओं से न मिला हुआ परं जानो लोभ, मोह, भय, गर्व, काम, क्रोध और पाप रूप नहीं है ॥१२॥ शीत उष्ण भूख प्यास और संकल्प विकल्प रूप नहीं है। उसमें न ब्रह्म कुल का दर्प है, न मुक्ति की ग्रन्थि का संचय है ॥१३॥ न भय है, न सुख दुःख है, न मान अपमान है। इन भावों से छुटा हुआ, वह ब्रह्म ग्रहण करने योग्य है और वही परम है ॥१४॥

यम, नियम, त्याग, मौन देश और काल। आसन, मूल बंध, देह की समानता और दृष्टि की स्थिरता ॥१५॥ प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा आत्म ध्यान और समाधि ये क्रम से अंग कहे हैं ॥१६॥ सब ब्रह्म है इस प्रकार के ज्ञान से और इन्द्रिय समूह का संयम यह यम कहा जाता है, इस प्रकार कहे हुए यम का बारम्बार अभ्यास करना चाहिये ॥१७॥ सजातीय

(मैं असंग ब्रह्म हूँ इस प्रकार) का प्रवाह और विजातीय (मैं जीव हूँ इस प्रकार) का तिरस्कार यह परानन्द रूप नियम विद्वानों से नियम से किया जाता है ॥१८॥ त्याग अत्यन्त पूज्य और शीघ्र मोक्ष का देने वाला है॥१९॥ मन सहित वाणी जिसको न प्राप्त करके निवृत्त होती है ऐसे योगियों को प्राप्त होने योग्य मौन का पण्डित सदा आचरण करे ॥२०॥ जो वाणी का विषय न हो उसे कौन कह सकता है? यद्यपि प्रपञ्च का कथन हो सकता है, तो वह भी शब्द से रहित अनिर्वचनीय है ॥२१॥ अथवा जो सब स्वाभाविक हो जाय वह मौन है। वाणी का मौन तो बालकों के लिये है, ब्रह्मवादियों के लिये अयोग्य है ॥२२॥ जिसमें आदि, अंत और मध्य में जगत् नहीं है, जिस करके यह हमेशा व्याप्त है, वह देश निर्जन कहा गया है ॥२३॥ ब्रह्मा आदि सब भूतों की कल्पना निमेष (जितनी देर में पलक बन्द किये जांय उस काल—क्षण का १६२०० वां भाग) से है और अखण्ड आनन्द, अद्वितीय ब्रह्म काल शब्द से कहा गया है ॥२४॥ जिसमें नित्य ब्रह्म का चिंतवन सुख से ही हो, उसको आसन जाने, जो इससे अन्य प्रकार का है वह सुख का नाश करने वाला है ॥२५॥ सिद्धि प्राप्त करने के लिये सब भूतों के आदि रूप और विश्व के अद्वितीय अधिष्ठान आसन है जिसमें टिकने से सिद्धों को सिद्धि प्राप्त हुई है, उसको सिद्धासन कहते हैं ॥२६॥ जो सब लोकों का मूल है, जो मूल चित्त का बंधन है, वह मूल बंध ब्रह्मवादियों को सेवन करने योग्य है ॥२७॥

समान ब्रह्म में लीन होने को अंगों की समानता जाने, सूखे वृक्ष के समान सीधा रहना समानता नहीं है ॥२८॥ ज्ञानमयी दृष्टि करके जगत् को ब्रह्ममय देखे, वही दृष्टि परम उदार है, नासिका के अग्र भाग को देखने वाली उदार नहीं है ॥२९॥ अथवा जहां द्रष्टा, दर्शन और दृश्य का अंत हो जाय वहां ही दृष्टि करनी चाहिये, नासिका के अग्र भाग को देखने वाली नहीं ॥३०॥ चित्त आदि सर्व भावों में ब्रह्म रूप की भावना करके सब वृत्तियों का रोकना प्राणायाम कहलाता है ॥३१॥ प्रपञ्च का निषेध करना रेचक कहा गया है। मैं ब्रह्म ही हूँ, यह वृत्ति पूरकवायु कहलाती है ॥३२॥ उस वृत्तिकी निश्चलता कुंभक प्राणायाम है; यह प्राणायाम ज्ञानियोंके लिये है अज्ञानियोंके लिए नाकका दबाना है ॥३३॥ विषयोंमें आत्मपना देखकर मनका चैतन्यमें रंग जाना प्रत्याहार जानना चाहिये, उसका बारम्बार अभ्यास करना चाहिये ॥३४॥ जहां जहां मन जाता है वहां वहां ब्रह्म के देखने से मन की धारणा होती है, वह धारणा उत्तम मानी गई है ॥३५॥ 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस प्रकार की निरालम्ब सद्वृत्ति से परमानन्द देने वाली स्थिति का नाम ध्यान है ॥३६॥ और निर्विकार बुद्धि ब्रह्माकार होकर फिर वृत्ति का विस्मरण होना समाधि कहलाती है ॥३७॥ जब तक इस प्रकार के अकृत्रिम (वास्तविक) आनन्द की प्राप्ति न हो तब तक साधु अच्छी प्रकार से अभ्यास करे; जब तक पुरुष का लक्ष्य स्वयं प्रत्यक्ष न हो जावे ॥३८॥ बाद योगीराज साधन से मुक्त होकर सिद्ध होता है तब उसके मन

और वाणी का विषय ही अपना स्वरूप हो जाता है ॥३९॥ परन्तु समाधि करते हुए विघ्न अवश्य आते हैं। अनुसंधान का त्याग, आलस्य, भोग की इच्छा ॥४०॥ लय, अन्धकार, विक्षेप, तेज, पसीना और शून्यता, इस प्रकार के बहुत से विघ्न ब्रह्म ज्ञानियों को त्यागने चाहिये ॥४१॥ भाव वृत्ति से भावना है, शून्य वृत्ति से शून्यता है, ब्रह्म वृत्ति से पूर्णता है, उस (ब्रह्म वृत्ति) से पूर्णता का अभ्यास करे ॥४२॥ जो मनुष्य इस परम पवित्र ब्रह्म नाम वाली वृत्ति को छोड़ते हैं वे पशुओं के समान वृथा ही जीते हैं ॥४३॥ जो इस वृत्ति को जानते हैं और जान कर जो उसे बढ़ाते हैं वे पुरुष धन्य हैं, और तीनों लोकों में वन्दना करने के योग्य हैं ॥४४॥ जिनकी वृत्ति समान होकर वृद्ध हुई है और फिर परिपक्व हुई है, वे ही सत्य ब्रह्म भाव को प्राप्त हुए हैं, दूसरे शब्दवादी नहीं प्राप्त होते ॥४५॥ ब्रह्म वार्ता में कुशल, वृत्ति हीन और राग वाले वे भी अज्ञानता के कारण बारम्बार आते जाते हैं ॥४६॥ वे (ज्ञानी) ब्रह्ममती वृत्ति के बिना आधे क्षण भी नहीं टिकते जैसे कि ब्रह्मादि, सनकादि शुकादि टिकते हैं ॥४७॥ जिसका कार्य कारण रूप होता है, उसके कार्य में कारण ही उत्पन्न होता है। इस प्रकार कार्य के अभाव का विचार करने से स्वरूप से कारण नाश हो जाता है ॥४८॥ जब वाणी की अविषय रूप वस्तु शुद्ध होती है तब शुद्ध चित्त वालों को परम वृत्ति का ज्ञान उदय होता है ॥४९॥ तीव्र वेग से भावना की हुई जो वस्तु निश्चय स्वरूप है उसका दृश्य

अदृश्य करके ब्रह्माकार से चिंतवन करे ॥५०॥ बुद्धि को चैतन्य रस से पूर्ण करके विद्वान् नित्य सुख में टिके ॥

दूसरा अध्याय।

कुमार ने शिवजी से पूछा कि अखण्ड एक रस चिन्मात्र का स्वरूप कहिये। वे परम शिव बोले:—अखण्ड एक दृश्य है, अखण्ड एक रस जगत् है। अखण्ड एक रस भाव है, अखण्ड एक रस आप है ॥१॥ अखण्ड एक रस मन्त्र है, अखण्ड एक रस क्रिया है, अखण्ड एक रस ज्ञान है, अखण्ड एक रस जल है ॥२॥ अखण्ड एक रस पृथ्वी है, अखण्ड एक रस आकाश है, अखण्ड एक रस शास्त्र है, अखण्ड एक रस श्रुति है ॥३॥ अखंड एक रस ब्रह्म है, अखंड एक रस व्रत है, अखण्ड एक रस जीव है, अखण्ड एक रस अज है ॥४॥ अखंड एक रस ब्रह्मा है, अखंड एक रस विष्णु है। अखंड एक रस रुद्र है, अखंड एक रस मैं हूँ ॥५॥ अखंड एक रस आत्मा है, अखंड एक रस गुरु है, अखंड एक रस लक्ष्य है, अखंड एक रस महर्लोक है ॥६॥ अखंड एक रस देह है, अखंड एक रस मन है, अखंड एक रस चित्त है, अखंड एक रस सुख है ॥७॥ अखंड एक रस विद्या है, अखंड एक रस अव्यय है, अखंड एक रस नित्य है, अखंड एक रस परम है ॥८॥ अखंड एक रस किंचित् है, अखंड एक रस पर है, अखंड एक रस से अन्य षडानन नहीं है, नहीं है ॥९॥ अखंड एक रस से नहीं है,

अखण्ड एक रस से निश्चय नहीं है, अखण्ड एक रस से किंचित् है, अखण्ड एक रस से मैं हूँ ॥१०॥ अखण्ड एक रस स्थूल है और सूक्ष्म अखण्ड स्वरूप वाला है, अखंड एक रस वेद्य है, अखंड एक रस आप हैं ॥११॥ अखंड एक रस गुह्य है, अखंड एक रसादिक हैं, अखंड एक रस जानने वाला है, अखंड एक रस स्थिति है ॥१२॥ अखंड एक रस माता है, अखंड एक रस पिता है। अखण्ड एक रस भाई है अखंड एक रस पति है ॥१३॥ अखंड एक रस सूत्रात्मा है, अखंड एक रस विराट है, अखंड एक रस शरीर है, अखंड एक रस शिर है ॥१४॥ अखंड एक रस भीतर है, अखण्ड एक रस बाहर है, अखण्ड एक रस पूर्ण है, अखंड एक रस अमृत है ॥१५॥ अखण्ड एक रस गोत्र है, अखण्ड एक रस घर है, अखण्ड एक रस गुप्त रखने योग्य है, अखण्ड एक रस चन्द्रमा है ॥१६॥ अखण्ड एक रस तारे हैं, अखण्ड रस सूर्य है। अखण्ड एक रस क्षेत्र है, अखण्ड एक रस पृथ्वी है ॥१७॥ अखण्ड एक रस शान्त है, अखण्ड एक रस निर्गुण है, अखण्ड एक रस साक्षी है, अखण्ड एक सुहृद् हैं ॥१८॥ अखण्ड एक रस बन्धु है, अखण्ड एक रस सखा है, अखण्ड एक रस राजा है, अखण्ड एक रस नगर है ॥१९॥ अखण्ड एक रस राज्य है, अखण्ड एक रस प्रजा है, अखण्ड एक रस तार (ऊंची ध्वनि) है, अखण्ड एक रस जप है ॥२०॥ अखण्ड एक रस ध्यान है, अखण्ड एक रस पद है, अखण्ड एक ग्रहण करने योग्य है, अखण्ड एक रस महान् है ॥२१॥ अखण्ड एक रस

ज्योति है, अखण्ड एक रस धन है, अखण्ड एक रस भोजन है, अखण्ड एक रस हवि है ॥२२॥ अखण्ड एक रस होम है, अखण्ड एक रस जप है, अखण्ड एक रस स्वर्ग है, अखण्ड एक रस आप हैं ॥२३॥ सब कुछ अखण्ड एक रस और चिन्मात्र हैं, इस प्रकार भावना करे। अखण्ड एक रस ऐसा परम चिन्मात्र ही चिन्मात्र है ॥२४॥ संसार से रहित चिन्मात्र है (और संसारी) सब चिन्मात्र ही है, यह सब चिन्मात्रमय, निश्चय चिन्मय ही है ॥२५॥ आत्म भाव और चिन्मय अखण्ड एक रस जानो सर्वलोक के चिन्मात्र तूपने और मैंपने को चिन्मय जानो ॥२६॥ आकाश, भूमि, जल, वायु, अग्नि, विष्णु, शिव जो किंचित् और किंचित् नहीं है, सब चिन्मात्र ही है ॥२७॥ सब अखंड एक रस हैं जो जो है चिन्मात्र ही हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य सब चिन्मात्र ही है ॥२८॥ द्रव्य और काल चिन्मात्र है, ज्ञान ज्ञेय चित् ही है, ज्ञाता चिन्मात्र रूप है और सब चिन्मय ही है ॥२९॥ बोलना चिन्मात्र है, जो जो है चिन्मात्र ही है। असत् और सत् चिन्मात्र है, आदि और अंत सदा चिन्मय है ॥३०॥ आदि और अंत चिन्मात्र है, गुरु और शिष्य आदि चिन्मय है। यदि दृष्टि और दृश्य चिन्मात्र है तो सदा चिन्मय ही है ॥३१॥ सब आश्चर्य ही चिन्मात्र है देह भी चिन्मात्र है। लिंग, कारण चिन्मात्र सिवाय विद्यमान नहीं रहते ॥३२॥ मैं, तू भी चिन्मात्र हैं, मूर्त, अमूर्तादि चिन्मय हैं। पुण्य पाप चिन्मात्र हैं, जीव चिन्मात्र स्वरूप हैं ॥३३॥ चिन्मात्र से सिवाय संकल्प नहीं हैं, चिन्मात्र से सिवाय जानना

नहीं है, चिन्मात्र से सिवाय मंत्रादि नहीं हैं, चिन्मात्र के सिवाय देवता नहीं है ॥३४॥ चिन्मात्र के सिवाय दिकपाल नहीं हैं, चिन्मात्र से व्यवहार है, चिन्मात्र से परब्रह्म है, चिन्मात्र के सिवाय कोई भी नहीं है ॥३५॥ चिन्मात्र के सिवाय माया नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय पूजन नहीं है। चिन्मात्र के सिवाय मानने योग्य नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय सत्यता नहीं हैं ॥३६॥ चिन्मात्र के सिवाय कोशादि नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय वसु नहीं हैं। चिन्मात्र के सिवाय मौन नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय अमौनता नहीं है॥३७॥ चिन्मात्र के सिवाय वैराग्य नहीं है, सब चिन्मात्र से ही है। जो और जितना चिन्मात्र है, जो और जितना दीखता है ॥३८॥ जो, जितना और दूर स्थित सब चिन्मात्र ही है। जो और जितने भूतादि, जो और जितने समझ में आते हैं ॥३९॥ जो और जितने वेदान्त हैं, सब चिनमात्र ही हैं। चिनमात्र के सिवाय गमन नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय मोक्ष नहीं है ॥ ४० ॥ चिनमात्र के सिवाय लक्ष्य नहीं है, सब चिन्मात्र ही है। अखंड एक रस ब्रह्म चिन्मात्रके सिवाय विद्यमान नहीं है ॥४१॥ शास्त्रमें, मुझमें, तुझमें और ईशमें अखंड एक रस आप हैं। इस प्रकार जो एक रूपता से अथवा मैं ही हूँ, इस प्रकार जानता है ॥४२॥ उसको एक बार ही ऐसा जानने से मुक्ति होती है। यथार्थ जानने से वह स्वयं गुरु होता है ॥४३॥

तीसरा अध्याय ।

कुमार ने पिता से पूछाः—आत्मा का अनुभव फिर कहिये । वे परम शिव बोलेः—मैं परब्रह्म स्वरूप हूं, मैं परमानन्द हूँ, मैं केवल ज्ञान हूँ, मैं केवल परम हूँ ॥१॥ मैं केवल शान्त रूप हूँ । मैं केवल चिन्मय हूँ । मैं केवल नित्य रूप हूँ । मैं केवल सनातन हूं ॥२॥ मैं केवल सत्व रूप हूँ, मुझको छोड़कर मैं ही मैं हूँ । मैं सर्व रहित स्वरूप हूँ, मैं चिदाकाशमय हूँ ॥३॥ मैं केवल तुर्य रूप हूँ, केवल तुर्यातीत हूं, सदा चैतन्य रूप हूँ, मैं सच्चिदानंदमय हूँ ॥४॥ केवल आकार रूप हूँ, मैं सदा शुद्ध रूप हूं । मैं केवल ज्ञान रूप हूँ । मैं केवल प्रिय हूं ॥५॥ निर्विकल्प स्वरूप हूँ, चेष्टा रहित हूँ, रोग रहित हूं । सदा असंग स्वरूप हूं, मैं अव्यय निर्विकार हूं ॥६॥ सदा एक रस रूप हूँ, सदा चिन्मात्र स्वरूप हूँ, अपरिच्छिन्न रूप हूँ । अखंड आनन्द रूप वाला हूँ ॥७॥ सत्य परमानन्द रूप हूँ, मैं चित् परानन्द हूँ । मैं वाणी और मन का अविषय भीतर और बाहर का रूप हूँ ॥८॥ मैं आत्मानन्द स्वरूप हूँ, मैं सदा सत्य आनन्द हूँ । मैं आत्मा रामस्वरूप हूँ, मैं ही सदा शिव आत्मा हूं ॥९॥ आत्म प्रकाश रूप हूँ, मैं आत्म ज्योति रस हूँ । आदि मध्य और अन्त से रहित हूँ, मैं आकाश के समान हूँ ॥१०॥ मैं नित्य, शुद्ध, चित्, आनन्द, अव्यय, सत्ता मात्र हूँ, मैं नित्य, बुद्ध, विशुद्ध, एक सच्चिदानन्द हूँ ॥११॥ नित्य शेष स्वरूप हूं, मैं सदा सब से अतीत हूँ । रूप से अतीत स्वरूप, परमाकाश स्वरूप

हूं ॥१२॥ भूमा आनन्द स्वरूप हूँ, मैं सदा भाषा रहित हूँ। सबका अधिष्ठान रूप हूँ मैं हमेशा चैतन्य घन हूं ॥१३॥ देह भाव से रहित हूं। हमेशा चिन्ता से रहित हूँ। मैं चित् वृत्ति रहित हूँ, एक रस चिदात्मा हूँ ॥१४॥ मैं सब दृश्य से रहित हूँ, मैं ही दृष्टि रूप हूँ। हमेशा पूर्ण रूप हूँ। मैं सदा नित्य तृप्त हूँ ॥१५॥ मैं ब्रह्म ही सब होऊं, मैं चतन्य ही हूँ। भूमि आकाश स्वरूप मैं ही मैं हूँ ॥१६॥ मैं महान् आत्मा हूँ, मैं ही पर से पर हूँ। मैं ही अन्य के समान भासता हूँ, मैं ही शरीर के समान हूँ ॥१७॥ मैं शिष्य के समान भासता हूं, तीनों लोकों का आश्रय हूँ। मैं तीनों काल से अतीत हूँ, मैं वेदों से उपासना किया जाता हूँ ॥१८॥ मैं शास्त्र से निर्णय किया गया हूँ, मैं चित्त में स्थित हूँ, मेरे सिवाय कुछ नहीं है, मेरे सिवाय पृथिवी नहीं है ॥१९॥ मेरे सिवाय जो जो हैं, वह नहीं है, निश्चय करो। मैं ब्रह्म हूँ, सिद्ध हूं, मैं सदा नित्य शुद्ध हूं ॥२०॥ मैं निर्गुण केवल आत्मा हूं, मैं सदा निराकार हूँ। केवल ब्रह्म मात्र हूँ, मैं अजर अमर हूँ ॥२१॥ आप ही आप भासता हूँ, आप ही सदा आत्म स्वरूप हूँ। आप ही आत्मा में स्थित, आप ही परम गति हूँ ॥२२॥

आप ही आप भोगता हूं, आप ही आप रमण करता हूं। आप ही ज्योति, आप ही आप महान् हूं ॥२३॥ आप अपने आत्मा को देखने को अपने आत्मा में आप प्रवेश करता हूँ। अपने आत्मा की विशेष मात्रा से अपने आत्मा में ही सुख से बैठा हुआ हूं ॥२४॥ अपने चैतन्य में आप स्थित होता हूं, अपने

आत्म राज्य के सुख में रमण करता हूँ, अपने आत्मा के सिंहासन पर बैठकर, अपने आत्मासे अन्य का चिंतवन न करे ॥२५॥ चित् रूप मात्र ब्रह्म ही, सच्चिदानन्द रूप अद्वितीय आनन्द घन मैं हूँ, मैं केवल ब्रह्म हूँ ॥२६॥ मैं हमेशा सब से शून्य हूँ, मैं सर्वात्म आनन्द वाला हूँ, मैं नित्यानंद स्वरूप हूँ, मैं नित्य आत्माकाश हूँ ॥२७॥ मैं ही चैतन्य आदित्य स्वरूप वाला हृदय आकाश हूँ, आत्मा से आत्मा में तृप्त हूं, मैं अव्यय, रूप रहित हूँ ॥२८॥ मैं नित्य मुक्त स्वरूप वाला एक की संख्या से रहित हूँ, मैं आकाश से भी सूक्ष्म हूँ, मैं आदि अंत के अभाव वाला हूँ ॥२९॥ मैं सर्व प्रकाश रूप हूँ, मैं वार पार सुख हूँ, मैं सत्ता मात्र स्वरूप हूँ, शुद्ध मोक्ष स्वरूप वाला हूं, ॥३०॥ मैं सत्य आनन्द स्वरूप हूं, मैं ज्ञान आनन्द घन हूं, मैं सच्चिदानन्द लक्षण वाला विज्ञान मात्र रूप हूं, ॥३१॥ यह सर्व ब्रह्म मात्र है, ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं है, वह ही सदानन्द मैं हूं, मैं ही सनातन ब्रह्म हूं ॥३२॥ तू और यह वह और यह मेरे सिवाय कुछ नहीं है। मैं चित्त चैतन्य स्वरूप हूं, मैं ही परम शिव हूं ॥३३॥ अत्यन्त भाव स्वरूप मैं हूं, मैं ही सुख स्वरूप हूं, साक्ष्य वस्तु के अभाव से मुझमें सदा साक्षीपना नहीं है ॥३४॥ केवल ब्रह्म मात्रपने से मैं सनातन आत्मा हूं, मैं ही आदि शेष हूं मैं ही मैं शेष हूं ॥३५॥ मैं नाम रूप रहित हूं मैं आनन्द स्वरूप हूं, सर्व भाव स्वरूप वाला इन्द्रियों का अभाव रूप हूं ॥३६॥ मैं सदा आनन्द स्वरूप बंध और मोक्ष से रहित हूं, मैं आदि चैतन्य मात्र हूं, मैं अखंड

एक रस हूं ॥३७॥ मैं वाणी और मनका अविषय हूं, मैं सर्वत्र सुख वाला हूं, मैं सर्वत्र पूर्ण रूप हूं, मैं भूमा आनन्दमय हूं ॥३८॥ मैं सर्वत्र तृप्त रूप हूं, मैं परम अमृत का रस हूं, एक अद्वितीय सत् ब्रह्म मैं ही हूं, इसमें संशय नहीं है ॥३९॥ सब वेदों का विषय, सर्व शून्य स्वरूप हूं, मैं मुक्त हूं, मैं मोक्ष रूप हूं निर्वाण सुखरूप वाला हूं ॥४०॥ मैं सत्य विज्ञानमात्र हूं, मैं सन्मात्र आनंद वाला हूं, मैं निर्विकल्प स्वरूप वाला तुरीयातीत रूप हूँ ॥४१॥ मैं सर्वदा अज रूप हूं निरंजन, निरोग हूँ, मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, नित्य हूँ, मैं प्रभो हूँ ॥४२॥ ओंकार का अर्थ स्वरूप हूँ, मैं निष्कलंक हूँ, चैतन्याकार स्वरूप हूँ, न मैं हूँ, न वह मैं हूँ ॥४३॥ व्यापार रहित स्वरूप वाला मैं किंचित् स्वरूप हूँ, मैं आभास रहित और अंश रहित हूँ, मैं न मन हूँ, न इन्द्रिय हूं ॥४४॥ मैं न बुद्धि हूं, न विकल्प हूँ, न मैं देहादि तीनों हूँ, मैं जाग्रत स्वप्न रूप नहीं हूं, न सुषुप्ति स्वरूप वाला हूँ ॥४५॥ न मैं तीन ताप रूप हूँ, न तीन ऐषना वाला हूं, मुझ चैतन्य आत्मा में श्रवण और मनन सिद्ध नहीं होता ॥४६॥ मुझमें कुछ सजातीय नहीं है, न मुझमें कहीं विजातीय है, न मेरा कोई स्वगत है, न मुझमें कहीं तीनों भेद हैं ॥४७॥ मन रूप असत्य है, बुद्धि रूप असत्य है। अहंकार की सिद्धि नहीं है इसलिये मैं नित्य शाश्वत और अजन्मा हूँ ॥४८॥ तीनों देहों को असत् जानो, तीनों काल को हमेशा असत् जानो, तीनों गुणों को असत् जानो, क्योंकि मैं ही एक पवित्र सत्य स्वरूप हूँ ॥४९॥ सब सुने हुए को असत्य जानो, सब वेदों को

सदा असत्य जानो, सब शास्त्रों को असत्य जानो, मैं ही सत्य चैतन्य स्वरूप हूँ ॥५०॥ तीनों मूर्तियों को असत्य जानो, सब भूतों को सदा असत्य जानो, तत्त्वों को असत्य जानो, मैं भूमा सदा शिव हूँ ॥५१॥ गुरु शिष्य को असत्य जानो, गुरु के मंत्रको असत्य जानो, जो दृश्य है उसको असत्य जानो, मुझे इस प्रकार का न जानो ॥५२॥ जो चिंतवन करने योग्य है उसको असत्य जानो, जो न्याय है उसे सदा असत्य जानो। जो हित है उसको असत्य जानो, मुझे इस प्रकार का मत जानो ॥५३॥ सब प्राणों को असत्य जानो, सब भोगों को असत्य जानो। देखे हुए और सुने हुए को असत्य जानो, ओत प्रोत सब असत्य मय है ॥५४॥ कार्य अकार्यको असत्य जानो, नष्ट हुए और प्राप्त हुए को असत्य जानो। दुःख अदुःख को असत्य जानो, सर्व और असर्व को असत्य जानो ॥५५॥ पूर्ण अपूर्णको असत्य जानो, धर्म अधर्म को असत्य जानो लाभ अलाभ को असत्य जानो, जीत हार को असत्य जानो ॥५६॥ सब शब्दों को असत्य जानो, सब स्पर्शको सदा असत्य जानो, सब रूपको असत्य जानो, सब रसोंको असत्य जानो ॥५७॥ सर्व गँध को असत्य जानो, सर्व अज्ञान को असत्य जानो सदा सब असत्य ही है, संसारकी उत्पत्ति असत्य है ॥५८॥ सब गुण भी असत्य हैं, सत्य मात्र मैं ही हूं। अपने आत्म मंत्र को सदा देखे, अपने परम मंत्र का सदा अभ्यास करे ॥५९॥ "मैं ब्रह्म हूँ" यह मंत्र दृश्य पापों का नाश करता है। "मैं ब्रह्म हूँ" यह मंत्र अन्य मंत्रों का नाश करता है ॥६०॥ "मैं ब्रह्म हूँ" यह मंत्र देह के दोषों का नाश करता है। "मैं ब्रह्म हूँ" यह मंत्र जन्मों के पाश

को नाश करता है ॥६१॥ "मैं ब्रह्म हूं" यह मंत्र मृत्यु के पाश को नाश करता है "मैं ब्रह्म हूं" यह मन्त्र द्वैत के दुःख को नाश करता है ॥६२॥ "मैं ब्रह्म हूं" यह मन्त्र भेद बुद्धिको नाश करता है। "मैं ब्रह्म हूँ" यह मंत्र चिंता के दुःखको नाश करता है ॥६३॥ "मैं ब्रह्म हूँ" यह मंत्र बुद्धि की व्यक्ति को नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' चित्त के बँधन को नाश करता है ॥६४॥ 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मंत्र सब व्यक्तियों को नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मंत्र सर्वशोक को नाश करता है ॥६५॥ "मैं ब्रह्म हूँ" यह मंत्र कामादि को चरण भर में नाश कर देता है 'मैं ब्रह्म हूँ' क्रोध शक्ति को नाश करता है ॥६६॥ 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मंत्र चित्त वृत्ति का नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मँत्र संकल्प आदि को नाश करता है ॥६७॥ 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मंत्र करोड़ों दोषों को नाश करता है। "मैं ब्रह्म हूँ" यह मंत्र सब तंत्रों को नाश करता है ॥६८॥ 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मंत्र आत्मा के अज्ञान को नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मंत्र आत्म लोक की जय को देने वाला है ॥६९॥ 'मैं ब्रह्म हूं' यह मंत्र अखंड सुख का देने वाला है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह मंत्र चैतन्यता को देता है ॥७०॥ 'मैं ब्रह्म हूं' यह मंत्र अनात्म रूप असुर को मारने वाला है। 'मैं ब्रह्म हूं' यह वज्र अनात्म रूप पर्वतों को हरण करता है ॥७१॥ 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मंत्र अनात्म रूपी असुरों को हरण करता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मंत्र उन सबसे छुड़ा देता है ॥७२॥ 'मैं ब्रह्म हूं' यह मंत्र ज्ञान आनन्द को देता है। सात करोड़

महामंत्र हैं, वे सौ करोड़ जन्म के देने वाले हैं ॥७३॥ इसलिये इन सब मंत्रों को त्यागकर इसी मंत्र का अभ्यास करे। शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करता है इसमें जरा सा भी संदेह नहीं है ॥७४॥

चौथा अध्याय।

कुमार ने परमेश्वर से पूछा:—जीवन्मुक्त और विदेह मुक्त की स्थिति कहिये। वे परम शिव बोले:—मैं चिदात्मा हूँ, परात्मा हूँ, मैं निर्गुण पर से पर हूँ ऐसा जानकर जो आत्म मात्र रूपसे स्थित है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥१॥ मैं तीनों देहों से भिन्न हूँ, मैं शुद्ध चैतन्य हूँ। मैं ब्रह्म हूँ, इस प्रकार जिसका निश्चय है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥२॥ मैं आनन्द घन रूप हूँ, परानन्द घन हूँ, जिसकी देहादिक नहीं हैं, जो ब्रह्म ही है इस प्रकार जिसका निश्चय है, जो परमानंद से पूर्ण है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥३॥ जिसको किंचित् अहंकार नहीं है, जो चिन्मात्र रूप से स्थित है। चिन्मात्र जिसका (अन्तः) निश्चय है, जो एक चिन्मात्र स्वरूप वाला है ॥४॥ जो सर्वत्र पूर्ण रूप आत्मा है, सर्वत्र आत्म स्वरूप वाला, आनन्द रति वाला, अविकारी, परिपूर्ण चित् स्वरूप वाला ॥५॥ शुद्ध चैतन्य रूप सर्व संग से रहित, नित्य आनन्द स्वरूप, प्रसन्न आत्मा और जो अन्य चिंताओं से रहित ॥६॥ जो किंचित् अस्तित्व से भी रहित है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। न मेरा चित्त है, न मेरी बुद्धि और अहंकार है, न इन्द्रियां हैं ॥७॥

न मेरा कभी देह है न मेरे कहीं प्राणादिक हैं न मेरी माया है न मेरा काम है, न मेरा क्रोध है, मैं पर हूँ ॥८॥ न मेरा किंचित् यह है, न मेरा किंचित् कहीं जगत् है, न मेरा दोष है, न मेरा लिंग है, न मेरे नेत्र हैं, न मेरा मन है ॥९॥ न मेरे कान हैं, न मेरी नासिका है, न मेरी जिह्वा है, न मेरे हाथ हैं, न मेरा जाग्रत है, न मेरा स्वप्न है, न मेरा जरासा भी कारण है ॥१०॥ न मेरा तुरीय है, ऐसा जो है सो जीवन्मुक्त कहलाता है। यह सब मेरा कुछ नहीं है, यह सब मेरा कहीं नहीं है ॥११॥ न मेरा काल है, न मेरा देश है, न मेरी वस्तु है, न मेरी बुद्धि है, न मेरा स्नान है, न मेरी संध्या है, न मेरा देव है, न मेरा मन्दिर है ॥१२॥ न मेरा तीर्थ है, न मेरी सेवा है, न मेरा ज्ञान है, न मेरा पद है, न मेरा बन्धन है न मेरा जन्म है, न मेरा वचन है, न मेरा सूर्य है ॥१३॥ न मेरा पुण्य है, न मेरा पाप है, न मेरा कार्य है, न मेरा शुभ है, न मेरा जीव है, इस प्रकार मेरे—स्वात्मा में तीनों जगत् किंचित् भी नहीं हैं ॥१४॥ न मेरा मोक्ष है, न मेरा द्वैत है, न मेरा वेद है, न मेरी विधि है, न मेरा पास है, न मेरा दूर है, न मेरा बोध है, न मेरा एकांत है ॥१५॥ न मेरा गुरु है, न मेरा शिष्य है, न मेरा न्यून है, न मेरा अधिक है, न मेरा ब्रह्मा है, न मेरा विष्णु है, न मेरा रुद्र है, न चन्द्रमा है ॥१६॥ न मेरी पृथ्वी है, न मेरा जल है, न मेरा वायु है, न मेरा आकाश है, न मेरा अग्नि है, न मेरा गोत्र है, न

मेरा लक्ष्य है, न मेरा संसार है ॥१७॥ न मेरा ध्याता है, न मेरा ध्येय है, न मेरा ध्यान है, न मेरा मंत्र है, न मेरा शीत है, न मेरा उष्ण है, न मेरी प्यास है, न मेरी भूख है ॥१८॥ न मेरा मित्र है, न मेरा शत्रु है, न मेरा मोह है, न मेरा जय है, न मेरा आगे है, न मेरा पीछे है, न मेरा ऊपर है, न मेरी दिशा हैं ॥१९॥ न मेरा जरा सा भी वक्तव्य--कहने योग्य है, न मेरा जरा सा भी श्रोतव्य-सुनने योग्य है। न मेरा थोड़ा सा भी मन्तव्य है, न मेरा: जरा सा भी ध्यातव्य है ॥२०॥न मेरा जरा सा भी भोक्तव्य है, न मेरा जरा सा भी स्मरण करने योग्य है, न मेरा भोग है न मेरा राग है, न मेरा योग है, न मेरा लय है ॥२१॥ न मेरी मूर्खता है, न मेरी शांति है, न मेरा बंध है, न मेरा प्रिय है। न मेरा मोद, प्रमोद है, न मेरा मोटा है, न मेरा पतला है ॥२२॥ न मेरा लम्बा है, न मेरा छोटा है, न मेरी वृद्धि है, न मेरा नाश है। न मेरा अध्यारोप अथवा अपवाद है; न मेरा एक है, न मेरे बहुत हैं ॥२३॥ न मेरा अंधपना है, न मेरा मंदपना है, न मेरी जरासी भी चातुर्यता है। न मेरा मांस है, न मेरा रक्त है, न मेरा मेद है, न मेरी चर्बी है ॥२४॥ न मेरी मज्जा है, न मेरी हड्डी है, न मेरी त्वचा है, न मेरे सात प्रकार के धातु हैं। न मेरा सफेद है, न मेरा लाल है, न मेरा नीला है, न मेरा पृथक् है ॥२५॥ न मेरा ताप है, न मेरा लाभ है, मेरा मुख्य गौण कुछ भी नहीं है। न मेरी भ्रांति है, न मेरी स्थिरता है, न मेरा गुप्त है न मेरा कुल है ॥२६॥ न मेरा त्याज्य है, न मेरा ग्राह्य है, न मेरा हास्य है, न मेरी नीति है, न मेरा वृत्त है, न मेरी

ग्लानि है, न मेरा सोच है, न मेरा सुख है ॥२७॥ न मेरा ज्ञाता है, न मेरा ज्ञान है, न मेरा ज्ञेय है, न मेरा स्वयं है, न मेरा तू पना है, न मेरा मैं पना है, न मेरा तू है, न मेरा मैं है ॥२८॥ न मेरा बुढ़ापा है, न मेरा बालकपन है, न जरासा भी योवन है। मैं ब्रह्म हूं, मैं ब्रह्म हूं. मैं ब्रह्म हूं, इस प्रकार निश्चय है ॥२९॥ मैं चैतन्य हूं, ऐसा वह जीवन्मुक्त कहा जाता है। ब्रह्म ही मैं हूँ, चित् ही मैं हूँ, मैं पर हूँ इसमें संशय नहीं है ॥३०॥ आपही आप हंस हूँ आपही आप स्थित, आप ही आप को देखे, अपने आत्म राज्य में सुख से निवास करे ॥३१॥ अपने आत्मानन्द को आप भोगे, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। आगे आप ही एक वीर, आप हीं प्रभु स्मरण किया गया, अपने स्वरूप में आप आनन्द माने वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥३२॥ ब्रह्म स्वरूप, शान्त आत्मा, ब्रह्मानन्द युक्त, सुखी। स्वच्छ रूप महा मौनी, वह विदेह मुक्त है ॥३३॥ सर्वात्मा, समान रूप आत्मा, शुद्ध आत्मा, और मैं के उत्थान रूप एकसे रहित एक आत्मा, सब की आत्मा, अपना आत्म मात्र स्वरूप ॥३४॥ अज आत्मा और अमृत आत्मा सब मैं हूं, स्वयं निर्विकार आत्मा मैं हूँ। लच्च आत्मा, सुन्दर आत्मा मैं हूं, चुपचाप आत्म स्वभाव वाला मैं हूं ॥३५॥ आनन्द आत्मा, प्रिय आत्मा, मोच्च आत्मा, बंध से रहित, ब्रह्म ही मैं हूं अथवा चित् ही मैं हूं, इस प्रकार भी वह चिंतवन नहीं करता ॥३६॥

जो चिन्मात्र से ही स्थित हो, वह ही विदेह मुक्त है ॥३७॥ निश्चय मैं ब्रह्म हूँ, इस निश्चय को भी त्याग कर आनन्द से

परिपूर्ण आंतर: वाला हो वह ही विदेह मुक्त है ॥३८॥ सर्व ह तथा नहीं है इस प्रकार के निश्चय को त्याग कर टिकता है। मैं ब्रह्म हूँ और नहीं हूँ इस प्रकार सच्चिदानन्द मात्र स्वरूप मैं हूँ ॥३९॥ वह किंचित्, कहीं कभी आत्मा का स्पर्श नहीं करता चुप ही स्थित है चुपचाप, और कुछ सत्य नहीं है ॥४०॥ वह परमात्मा, गुणोंसे अतीत, सर्वात्मा, भूत भावन है। काल भेद, वस्तु भेद, देश भेद, स्वभेद ॥४१॥ ऐसा उसको किंचित् भी भेद नहीं है। अथवा मैं, तूं, यह, वह किंचित् भी विद्यमान नहीं है। यह काल का आत्मा, काल से रहित है ॥४२॥ यह शून्य आत्मा, सूक्ष्म रूप आत्मा, विश्व आत्मा, विश्व से रहित है। देव आत्मा, देव रहित आत्मा मेय आत्मा, मेयं रहित है ॥४३॥ वह सर्वत्र जड़ रहित आत्मा, सब का आंतरात्मा सब संकल्पों से रहित आत्मा, ऐसा मैं हमेशा चिन्मात्र हूं ॥४४॥ मैं केवल परमात्मा हूँ, केवल ज्ञान स्वरूप हूं। सत्तामात्र स्वरूप आत्म हूँ, जगत्का अन्य किंचित् भी भय नहीं है ॥४५॥ जीव ईश्वर की वाणी कहां, इसी प्रकार वेद शास्त्रादि कहां और मैं कहां? यह चैतन्य ही है, मैं भी चैतन्य ही हूँ ॥४६॥ जो इस प्रकार के निश्चय से भी जो शून्य है, वह ही विदेह मुक्त है। चैतन्य मात्र ससिद्ध, अपने आत्मा में प्रसन्न सुख से बैठा हुआ ॥४७॥ जो अपरिच्छिन्न अणु स्थूल आदि से रहित तुर्य का तुर्य परानन्द है, वह ही विदेह मुक्त है ॥४८॥ वह नाम रूप रहित संवित्से पर, सुख स्वरूप, तुरीयसे अतीत रूप शुभ अशुभ से रहित है ॥४९॥ वह योग रूप और योग युक्त आत्मा

दृश्य रूप और दृष्टि रूप है सब शसे के सींग के समान है ॥७५॥ भूमि जल अग्नि वायु आकाश मन और बुद्धि अहंकार, तेज लोक भुवन मण्डल ॥७६॥ नाश जन्म सत्य पुण्य पाप जय आदि का राग काम क्रोध लोभ ध्यान श्रेष्ठ ध्येय तथा गुण ॥७७॥ गुरु शिष्य उपदेश आदि आदि अन्त समय शुभ भूत भविष्य वर्तमान लक्ष्य लक्षण अद्वय ॥७८॥ समय विचार संतोष भोक्ता भोग आदि रूप यमादि अष्टांग योग जाना और आना ॥७९॥ आदि मध्य और अन्तरंग ग्रहण के योग्य छोड़ने योग्य हरि शिव इन्द्रियां और मन तथा तीनों अवस्थाएँ ॥८०॥ चौबीस तत्त्व और चार साधन सजातीय विजातीय क्रम से भू आदि लोक ॥८१॥ सब वर्णाश्रम का आचार मंत्र तंत्रादिकों का संग्रह विद्या अविद्या सर्व वेद जड़ अजड़ ॥८२॥ बंध मोक्ष का विभाग ज्ञान विज्ञान का रूपक अथवा बोध अबोध का स्वरूप द्वैत अद्वैत का कथन ॥८३॥ सब वेदान्त का सिद्धान्त सब शास्त्रार्थ का निर्णय अनेक जीवों का सत्य भाव अनेक जीव आदि का निर्णय ॥८४॥ जो जो चित्त से ध्यान किया जाता है जो जो संकल्प किया जाता है जो बुद्धि से निश्चय किया जाता है जो गुरु से सुना जाता है ॥८५॥ जो जो वाणी कहती है जो २ आचार्यका कथन है। जो जो इन्द्रियों से प्रतीत होता है जो जो पृथक् विचारा जाता है ॥८६॥ जो कुछ महान् वेद के पारदर्शियों से न्याय द्वारा निश्चय किया गया है शिव लोकों का संहार करता है विष्णु लोनों जगत् को पालता है ॥८७॥ ब्रह्मा लोकों को उत्पन्न करता

ब्रह्मानन्द रस युक्त है, ब्रह्मानन्द एक चिन् घन है और ब्रह्मानन्द रस का प्रवाह है, ब्रह्मानन्द रस से पूर्ण है ॥६०॥ वह ब्रह्मानन्द रूपी मित्रों से युक्त है, ब्रह्मानन्द आत्मा में स्थित है, उसके लिये यह सब आत्म रूप है, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं है ॥६१॥ सब आत्मा है, मैं आत्मा हूँ, परम आत्मा हूं, पर आत्मा हूँ। शिवानन्द स्वरूप आत्मा हूं ऐसा अनुभव करे वह ही विदेह मुक्त है ॥६२॥ जो पूर्ण रूप महान् आत्मा है जिसको आत्मा ही प्रिय है, जो शाश्वत सबका अन्तर्यामी रूप है निर्मल और निरात्मा स्वरूप है ॥६३॥ जो निर्विकार स्वरूप, शुद्ध, शांत रूप वाला तथा शांत और अशांत दोनों स्वरूप हैं, जिसको आत्मा के नानापना का भाव नहीं है ॥६४॥

जो जीवात्मा और परमात्मा इस प्रकार के सब चिंतवनसे रहित मुक्त अमुक्त स्वरूप और मुक्त अमुक्त भाव से रहित है ॥६५॥ बंध मोक्ष स्वरूप और बंध मोक्ष से रहित, द्वैत अद्वैत स्वरूप और द्वैत अद्वैत से रहित ॥६६॥ सर्व असर्व स्वरूप और सर्व असर्व से रहित, मोद प्रमोद रूप और मोद आदि से रहित है ॥६७॥ तथा सब संकल्पों से रहित, वह ही विदेह मुक्त है। जो पाप रहित, निर्मल, प्रबुद्ध, पुरुष स्वरूप ॥६८॥ आनंदादि से रहित, अमृतमय और अमृत स्वरूप, तीन काल स्वरूप और तीनों काल से रहित है ॥६९॥ जो संपूर्ण, प्रमाण न करने योग्य, जो प्रमाण रूप और प्रमाण से रहित जो नित्य प्रत्यक्ष रूप, नित्य प्रत्यक्ष रूप नित्य-प्रत्यक्षनिर्णय किया गया हुआ ॥७०॥

अन्य से रहित स्वभाव वाला, अन्य से रहित स्वयं प्रकाश, जो विद्या और अविद्या से अनुमान करने योग्य परन्तु विद्या अविद्या से रहित है ॥७१॥ जो नित्य अनित्य से रहित, यहां और वहां से रहित, शम आदि छःओं से रहित, मुमुक्षुता आदि से रहित ॥७२॥ स्थूल देह से रहित सूक्ष्म देह से रहित, कारण आदि से रहित, तुरीय आदि से रहित ॥७३॥ अन्नकोश से रहित, प्राणकोश से रहित मनोमयकोश से रहित, विज्ञान आदि कोशों से रहित ॥७४॥ आनन्दकोश से रहित तथा पञ्च कोशों से रहित है। जो निर्विकल्प स्वरूप, विकल्प से रहित ॥७५॥ दृश्य के सम्बन्ध से रहित और शब्द के सम्बन्ध से रहित है; जो सदा समाधि से शून्य, आदि, मध्य और अन्त से रहित ॥७६॥ प्रज्ञान वाक्य से रहित, 'अहं ब्रह्मास्मि' से रहित। 'तत्त्वमसि' आदि से रहित, 'अयमात्मा ब्रह्म' से रहित ॥७७॥ ओंकार वाच्य से रहित, सर्व वाच्य से रहित, तीनों अवस्थाओं से रहित, नाश रहित, चेतन स्वरूप ॥७८॥ आत्मा अब जिसको ज्ञेय नहीं है, जो कुछ है यह है, इस स्वरूप वाला तथा जो भान और अभान से रहित है, वह ही विदेह मुक्त है ॥७९॥ आत्मा को ही देख, अपने आत्मा ही को जान हे षडानन ! अपने आत्मा को ही आप भोग और स्वस्थ हो ॥८०॥ अपने आत्मा में ही आप तृप्त होकर अपने आत्मा में आप विचर। आत्मा में ही मोद-आनन्द कर और विदेह मुक्त हो, यह उपनिषत् है ॥

पांचवां अध्याय।

निदाघ नाम मुनि ने ऋभु से पूछा—हे भगवन्! आत्म अनात्म का विवेक कहिये। वे ऋभु बोले:—ब्रह्म सब प्राणियों की अवधि है, गुरु सब चिंताओं की अवधि है। आत्मा सबका कारण और कार्य है परंतु स्वयं कार्य कारण से रहित है ॥१॥ वह सब संकल्प से रहित, सर्व नादमय शिव है। सबसे रहित चिन्मात्र है, सर्व आनन्दमय है, पर है ॥२॥ सर्व तेज रूप प्रकाश रूप है, नाद आनन्दमय आत्मा है। सब अनुभवों से मुक्त, सर्व ध्यान से रहित है ॥३॥ सब नाद कलाओं से अतीत अव्यय और आत्म अनात्म विवेक आदि भेद अभेद से रहित ऐसा यह आत्मा मैं हूँ ॥४॥ शांत अशांत से रहित जो नाद का आंतर्ज्योति रूप है, जो महा वाक्य के अर्थ से दूर है, 'ब्रह्मास्मि' से अति दूर है ॥५॥ तत् शब्द से रहित, त्वं शब्द से रहित तथा वाक्य के अर्थ से रहित है, जो चर अचर से रहित है, वह ही नाद का आन्तर्ज्योति है ॥६॥ अखंड एक रस अथवा 'मैं आनन्द हूँ' इससे रहित, सबसे अतीत स्वभाव वाला, वही नाद का आन्तर्ज्योति है ॥७॥ आत्म शब्द से रहित तथा जो आत्म के शब्दार्थ से रहित है तथा जो सच्चिदानंद से रहित है ऐसा ही यह सनातन आत्मा है ॥८॥ इसका कथन करना अशक्य है, जो वेद वाक्यों से अगम्य है, जिससे बाहर कुछ नहीं है, भीतर कुछ नहीं है और न कुछ है ॥९॥ जिसका कार्य और कारण ब्रह्म ही है ऐसा आत्मा

ही है, इसमें संशय नहीं है; जिसका शरीर नहीं अथवा जीव नहीं है तथा भूत भौतिक नहीं है ॥१०॥ जिसका नाम रूप, भोज्य, भोग अथवा भोक्ता नहीं है, जो सत्, असत् नहीं है अथवा जिसकी स्थिति भी नहीं है, जो क्षर अक्षर नहीं है ॥११॥ गुणी अथवा गुण रहित भी नहीं है, वह सब आत्मा ही है, इसमें संशय नहीं है। जिसका वाच्य, वाचक अथवा श्रवण मनन नहीं है ॥१२॥ अथवा जिसमें गुरु शिष्यादि भेद, देव, लोक, सुर असुर अथवा धर्म अधर्म अथवा शुद्ध अशुद्ध जरा भी नहीं है ॥१३॥ जिसमें काल अकाल, निश्चय या संशय नहीं है, जिसमें मंत्र अमंत्र अथवा विद्या अविद्या नहीं है ॥१४॥ जिसमें द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जरा सा नाम मात्र भी हो तो अनात्मत्व का प्रसंग आता है अथवा अनात्म मन ॥१५॥ अथवा अनात्म जगत् भी जहां नहीं है, कभी भी नहीं है, इस प्रकार निश्चय कर वह सर्व संकल्प शून्य होने से, सर्व कार्य रहित होने से ॥१६॥ केवल ब्रह्म मात्र होने से, अनात्मा नहीं है, ऐसा निश्चय कर। तीनों देह रहित होने से, तीनों काल रहित होने से ॥१७॥ जीव के तीनों गुणों के अभाव से, तीनों ताप से रहित होने से, तीनों लोक रहित होने से सब आत्मा है, इस प्रकार के उपदेश से (यह अनात्म नहीं है, ऐसा निश्चय कर) ॥१८॥ उसके चित्त के अभाव से चिंतवन करने योग्य और देह के अभाव से बुढ़ापा नहीं है, पैरों के अभाव से उसकी गति नहीं है; हाथ के अभाव से क्रिया नहीं है ॥१९॥ जीव के

अभाव से मृत्यु नहीं है, बुद्धि के अभाव से सुखादिक नहीं हैं, धर्म नहीं है, पवित्र नहीं है, सत्य नहीं है और भय नहीं है ॥२०॥ उसके लिये अक्षरों का उच्चारण नहीं है, गुरु शिष्यादि भी नहीं है; एक के अभाव में दूसरा नहीं है और दूसरे के अभाव में एकता नहीं है ॥२१॥ सत्यता है तो किंचित् असत्य सम्भव नहीं है और यदि सत्यता होवे तो सत्यता न घटेगी ॥२२॥ यदि शुभ है तो अशुभ जान क्योंकि अशुभ से शुभ कहा जाता है, यदि भय है तो अभय जान, अभय से भय प्राप्त होवे ॥२३॥ बंध है तो मोक्ष है, बंध के अभाव में मोक्षता कहां ? यदि मरण हो तो जन्म हो, जन्म के अभाव में मरण नहीं है ॥२४॥ यदि तू हो तो मैं हो, तू नहीं तो मैं भी नहीं । यह है तो वह है, वह के अभाव में यह नहीं है ॥२५॥ है है तो नहीं है, नहीं है तो है किंचित् नहीं है कार्य है तो कुछ कारण भी है, कार्य के अभाव में कारण नहीं है ॥२६॥ द्वैत है तो अद्वैत है द्वैत के अभाव में दोनों नहीं हैं । यदि दृश्य है तो द्रष्टा भी है, दृश्य के अभाव में द्रष्टा भी नहीं है ॥२७॥ यदि भीतर है तो बाहर है, भीतर के अभाव में बाहर नहीं है । पूर्णता है तो कुछ अपूर्णता उत्पन्न करती है ॥२८॥ इसलिये यह तू, यह मैं, ये ऐसा कहीं नहीं है । सत्य में दृष्टांत नहीं है अज में दार्ष्टान्त नहीं है ॥२९॥ परब्रह्म मैं हूँ, इस प्रकार स्मरण करने वाला मन नहीं है, यह जगत ब्रह्म मात्र है, मैं और तू भी ब्रह्म मात्र है ॥३०॥ मैं केवल चिन्मात्र हूं; अनात्मा नहीं हूँ इस प्रकार निश्चय कर । यह प्रपंच

है ही नहीं, न कहीं उत्पन्न हुआ है, न कहीं स्थित हैं ॥३१॥ चित्त को प्रपंच कहते हैं वह सर्वदा नहीं है, नहीं है; न प्रपंच है, न चित्तादि न अहंकार, न जीव ॥३२॥ माया के कार्य आदिक नहीं है, माया नहीं है और भय नहीं हैं। कर्ता नहीं है, क्रिया नहीं है, श्रवण मनन नहीं है, ॥३३॥ दो प्रकार की समाधि नहीं है, प्रमाता प्रमाण आदि नहीं है अज्ञान भो नहीं है अविवेक भी कभी नहीं है ॥३४॥ तथा चार अनुबंध और तीन संबंध भी नहीं हैं। न गंगा न गया सेतु है न भूत न अन्य ही है ॥३५॥ न कहीं भूमि है न जल हैं न अग्नि है न वायु है न आकाश है न देवता न दिक्पाल न वेद न गुरु हैं ॥३६॥ न कहीं दूर न पास न कहीं अन्त हैं न मध्य है न कहीं स्थित है न द्वैत है न अद्वैत है न सत्य है न असत्य है न यह है ॥३७॥ बंध मोक्षादिक नहीं हैं सत् या असत् या सुखादि या जाति नहीं है गति नहीं है वर्ण नहीं हैं न लौकिक है ॥३८॥ सब ही ब्रह्म है ब्रह्म नहीं है इस प्रकार भी नहीं है। चित्त हीं है और नहीं भो है मैं चित् हूँ इस प्रकार कहना नहीं है ॥३९॥ मैं ब्रह्म हूँ ऐसा नहीं हैं या मैं नित्य शुद्ध हूँ यह नहीं है वाणी से कहा हुआ या मन से माना हुआ कुछ भी नहीं है ॥४०॥ बुद्धि से निश्चय किया हुआ वह नहीं है चित्त से जाना हुआ नहीं है योगी का योगादि नहीं है सदा सब सदा सब नहीं हैं ॥४१॥ वह दिन रात्रि आदिक नहीं है स्नान ध्यान आदिक नहीं हैं भ्रान्ति नहीं है अनात्मा नहीं है ऐसा निश्चय कर ॥४२॥ वेद

शास्त्र पुराण कार्य कारण ईश्वर लोक भूत प्रजा एकता सब मिथ्या हैं इसमें सँशय नहीं है ॥४३॥

बंध मोक्ष सुख दुःख ध्यान चित्त सुर असुर गौण मुख्य पर और अन्य सब मिथ्या है इसमें संशय नहीं है ॥४४॥ वाणी जो कुछ कहती है संकल्पों से जो कुछ कल्पा जाता है मन से जो चिंतवन किया जाता है सब मिथ्या हैं इसमें संशय नहीं है ॥४५॥ जो कुछ बुद्धि से निश्चय किया जाता है चित्त से जो कुछ निश्चय किया जाता है शास्त्र से जो रचा जाता है नेत्रों से जो जो देखा जाता है ॥४६॥ कानों से जो सुना जाता है जो अन्य सद्भाव है तथा नेत्र कान और शरीर यह सब मिथ्या है यह अच्छी प्रकार से निश्चय किया गया है ॥४७॥ यह इस प्रकार ही कहागया है। यह इस प्रकार ही कल्पा गया है। तू मैं वह यह वह मैं और अन्य सद्भाव ॥४८॥ जो कुछ लोक में प्रतीत होता है सब संकल्प और भ्रम है। सब अभ्यास है सब गोप्य है सब भोगों का भेद है ॥४९॥ सब दोषों के भेद से है, आनात्मा नहीं है, ऐसा निश्चय कर। मुझ और तुझ मेरा और तेरा ॥५०॥ मेरे लिये, तेरे लिये मुझसे इत्यादि यह सब मिथ्या हो। रक्षक विष्णु है इत्यादि, ब्रह्मा सृष्टि का कारण ॥५१॥ और सँहार रुद्र करता है यह सब मिथ्या है ऐसा निश्चय कर। स्नान, जप; तप; होम, स्वाध्याय, देव पूजन ॥५२॥ मंत्र, तंत्र, सत्संग, गुण दोष बताना, अन्तःकरण का सद्भाव, अविद्या का संभव ॥५३॥ तथा

अनेक करोड़ ब्रह्मांड सब मिथ्या हैं, ऐसा निश्चय कर। सब उपदेशकों की वाणी का कथन, जिस किसी का निश्चय किया हुआ ॥५४॥ जो कुछ जगत में दीखता है, जो कुछ जगत् में देखा जाता है; जो जो जगत् में वर्तता है; सब मिथ्या है ऐसा निश्चय कर ॥५५॥ जिस किसी अक्षर कर के कहा हुआ जिस किसी से निश्चय किया हुआ जिस किसी से कहा हुआ जिस किसी से विचारा हुआ ॥५६॥ जिस किसी से जो दिया गया जिस किसी से जो किया गया; जहां जहां शुभ कर्म है जहां जहां अशुभ कर्म है ॥५७॥ जो जो तू करता है; सच मुच सब मिथ्या हैं ऐसा निश्चय कर। तू ही परमात्मा है, तू ही परम गुरु है ॥५८॥ तू ही आकाश रूप है, तू हमेशा साक्षी रहित है, तू ही सर्व भाव है तू ब्रह्म है, इसमें संशय नहीं है ॥५९॥ तू काल रहित है, काल है, सदा चैतन्य परब्रह्म है। सर्व प्रकार से तू अपना ही स्वरूप है, तू चैतन्य घन स्वरूप है ॥६०॥ तूं सत्य है, तू सिद्ध है, तू सनातन है, तू मुक्त है, तू मोक्ष है, तू आनंद अमृत है। तू देव है, तू शांत है, तू निरामय है, तू ब्रह्म है, तू पूर्ण है, तू पर से पर हैं ॥६१॥ तू सम है, सत्य है, सनातन है, सत्य आदि वाक्य से तू जाना जाता है। तू सब अंगों से रहित है। तू सदा स्थित है, तू ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र आदि विशेप भाववाला है ॥६२॥ तू सर्व प्रपंच भ्रम से रहित है, तू सब भूतों में प्रकाशमान है। तू सर्वज्ञ संकल्प से रहित है। तू सर्व वेदान्तों के अर्थ से प्रकाशित है ॥६३॥ सर्वत्र संतोप वाला

तू सुख से बैठा हुआ है। सर्वत्र गति आदि से तू रहित है। सर्वत्र लक्ष्यादि से तू रहित है, सर्वदा विष्णुआदि देवताओंसे ध्यान किया जाता है ॥६४॥ तू चैतन्य आकार स्वरूप है तू अङ्कुश रहित चिन्मात्र है। तू आत्मा में ही स्थित है तू निर्गुण सबसे शून्य ॥६५॥ तू आनन्द है, तू पर है, तू एक ही अद्वितीय स्वरूप है। तू चैतन्य घन आनन्द रूप है, परिपूर्ण स्वरूप वाला है ॥६६॥ तू सत्य है, तू तू है, तू ज्ञाता है, तू वह है, तू जानता है, तू देखता है। तू सच्चिदानन्द रूप है, तू निश्चय प्रभु वासुदेव है ॥६७॥ तू अमृत है, तू विभु है, तू चंचल और अचल है। तू सर्व है, तू सर्व रहित है, शान्त अशान्त से रहित है ॥६८॥ तू सत्तामात्र प्रकाश है, तू ही सामान्य सत्ता है। तू नित्य सिद्ध स्वरूप है, सब सिद्धियों से रहित है ॥६९॥ तू किंचित्मात्र विशेष शून्य है, अणु मात्र से रहित है। तू होनेपने से रहित है, नहीं होनेपने आदि से रहित है ॥७०॥ तू लक्ष्य और लक्षण से रहित है, निर्विकार निरामय है। तू सब नादों के भीतर है, कला काष्ठा से रहित है ॥७१॥ तू ब्रह्मा, विष्णु और ईश्वर से रहित है, तू अपने स्वरूप को देखता है, तू अपने स्वरूप का शेष है, तू अपने आनन्द समुद्र में मग्न है ॥७२॥ अपने आत्म राज्य में तू आप ही है, स्वयं भाव से रहित है। तू श्रेष्ठ पूर्ण स्वरूप है, तू अपने से कुछ भी नहीं देखता ॥७३॥ तू अपने स्वरूप से नहीं चलता, तू अपने स्वरूप से फैलता है। तू अपने स्वरूप से अन्य नहीं है; निश्चय कर कि मैं ही तू हूँ ॥७४॥ जो कुछ यह प्रपंच है, जो जो जगत् में विद्यमान है;

वंध मोक्ष से रहित है, गुण अगुण से रहित देश काल आदि से रहित है ॥५०॥ साक्ष्य, साक्षी से रहित, (यदि ऐसा) वह कुछ है (ऐसा कहो तो वह ठीक नहीं है) वह कुछ भी नहीं है। जिस को न प्रपंच का भान है, न ब्रह्माकार का भान है ॥५१॥ वह अपने स्वरूप में आप प्रकाशता है, अपने स्वरूप में आप प्रेम रखता है। उसका आनंद वाणी का अविषय है और वह आप वाणी और मनका अविषय है ॥५२॥ इस प्रकार जो पर से भी पर भाव वाला है, वह ही विदेह मुक्त है। चित् वृत्ति से अतीत जो चित्त वृत्ति का प्रकाशक है ॥५३॥ और सर्व वृत्ति से रहित है, वह ही विदेह मुक्त है। उस काल में 'मैं विदेही हूँ' इस प्रकार देह स्मरण से वह रहित है ॥५४॥ यदि कुछ भी स्मरण हो तो सब वह से युक्त है यानी विदेह नहीं है। उसका बाहरी स्वरूप दूसरों से अदृष्ट है और वह परमानन्द चैतन्यघन है ॥५५॥ औरों को न दीखता हुआ उसका बाह्य आत्मा सब वेदान्तों का विषय है। वह ब्रह्म रूप अमृत का रसास्वाद है, ब्रह्म रूपी अमृत रसायन है ॥५६॥ ब्रह्म रूपी अमृत रस युक्त है, ब्रह्म रूप अमृत का रस आप है, ब्रह्म रूपी अमृत के रस में मग्न होकर ब्रह्मानन्द से शिवका पूजन करता है ॥५७॥ ब्रह्म रूप अमृत के रस से तृप्त हुआ वह ब्रह्मानन्द का अनुभव करने वाला है। वह ब्रह्मानन्द और शिवानन्द रूप है और ब्रह्मानन्द रस का प्रकाश करने वाला है ॥५८॥ ब्रह्मानन्द परम ज्योति है, ब्रह्मानन्द अखंड है। ब्रह्मा-नन्द के रस से ब्रह्मानन्द का कुटुम्ब रूप नाद है ॥५९॥ वह

है इस प्रकार आदि की क्रिया आदिक जो जो पुराणों में है जो जो वेदों में निर्णय है ॥८८॥ सब उपनिषदों का भाव सब शशे के सींगों के समान है। मैं देह हूं इस प्रकार का संकल्प अन्तःकरण का माना हुआ है ॥८९॥ मैं देह हूँ इस प्रकार का संकल्प महान् संसार कहलाता है। मैं देह हूँ यह संकल्प ही वंध कहलाता है ॥९०॥ मैं देह हूँ इस प्रकार का संकल्प दुःख कहलाता है। मैं देह हूँ इस प्रकार का जो भान है उसको नरक समझे ॥९१॥ मैं देह हूँ इस प्रकार का संकल्प सब जगत् कहलाता है। मैं देह हूँ इस प्रकार का संकल्प हृदय की ग्रन्थि कहलाता है ॥९२॥ मैं देह हूँ इस प्रकार का ज्ञान अज्ञान कहलाता है। मैं देह हूं इस प्रकार का ज्ञान ही असत्य भावना है ॥९३॥ मैं देह हूँ इस प्रकार की बुद्धि अविद्या कहलाती है। मैं देह हूँ इस प्रकार का ज्ञान ही द्वैत कहलाता है ॥९४॥ मैं देह हूं इस प्रकारका संकल्प ही सच्चा जीव है। मैं देह हूं इस प्रकार का ज्ञान ही परिच्छिन्न कहा गया है ॥९५॥ मैं देह हूँ इस प्रकार का संकल्प प्रत्यक्ष महा पाप है मैं देह हूँ इस प्रकार की बुद्धि ही प्रसिद्ध तृष्णा दोष रूप रोग है ॥९६॥ जो कुछ भी संकल्प है वह तीनों ताप कहा गया है। काम क्रोध बंधन है सर्व दुःख है सब दोष रूप है काल करके नाना स्वरूप धारण करते हैं यह जो कुछ है सब संकल्प का जाल है। हे सोम्य! ऐसे इस किंचित् को मनका विचार जान ॥९७॥ मन ही सब जगत् है मन ही महा शत्रु है। मन ही संसार है मन ही तीनों जगत् है ॥९८॥ मन ही महा दुःख है मन ही जरा आदिक । है मन ही काल

है और मन ही मल है ॥९९॥ मन ही संकल्प है मन ही जीव है। मन ही चित्त है मन ही अहंकार है ॥१००॥ मन ही महा बंध है मन ही अन्तःकरण है। मन ही पृथिवी है, मन ही जल है ॥१०१॥ मन ही तेज है मन ही महान् वायु है। मन ही आकाश है। मन ही शब्द रूप है ॥१०२॥ स्पर्श रूप रस गंध पांचों कोश मन से हुए हैं। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति आदि मनोमय कहे जाते हैं ॥१०३॥ दिक्पाल वसु रुद्र आदित्य मनोमय हैं। दृश्य जड़ द्वन्द्व जन्म अज्ञान मन के समझे गये हैं ॥१०४॥ जो कुछ संकल्प है वह नहीं ही है, ऐसा निश्चय कर। सब जगत नहीं है, नहीं है गुरु शिष्य आदिक भी नहीं है यह उपनिषत् है ॥१०५॥

छठा अध्याय।

ऋभु ने कहाः—सब सत् चित्मय जान सर्व सत् चित्मय व्यापक है। सच्चिदानन्द अद्वैत है सच्चिदानन्द अद्वय है ॥१॥ सच्चिदानन्द अमात्र है सच्चिदानन्द अन्य रूप है सच्चिदानन्द रूप मैं हूं सच्चिदानन्द ही आकाश है ॥२॥ सच्चिदानन्द ही तू है सच्चिदानन्द रूप मैं हूं ये मन बुद्धि अहंकार चित्त समूह ॥३॥ ये न तू है न मैं हूं न अन्य कोई है सब केवल ब्रह्म ही है। न वाक्य न पद न वेद न अक्षर न जड़ कहीं है ॥४॥ न मध्य न आदि न अन्त न सत्य न बंध न दुःख न सुख भाव, न माया, न प्रकृति है ॥५॥ न देह है, न मुख है, न

प्राण है, न जिह्वा है, न तालु है, न दांत, न ओष्ठ, न मस्तक है, न श्वास उश्वास ही है ।।६।। न पसीना, हड्डी, मांस है, न रक्त है, न मूत्र है। न दूर, न पास, न अंग, न उदर, न मुकुट है ।।७।। न हाथ पैर का चलना, न शास्त्र, न उपदेश न जानने वाला, न ज्ञान, न ज्ञेय है, न जाग्रत, न स्वप्न, न सुषुप्ति है ।।८।। मुझमें तुरियातीत किंचित् नहीं है, सर्व सचित्मय व्यापक है। न अध्यात्मिक है, न अधिभूत है, न अधिदेव है, न मायिक है ।।९।। न विश्व तैजस, प्राज्ञ, विराट्, सूत्रात्मा, ईश्वर है, न आगे जाने की चेष्टा है, न नष्ट है, न प्रयोजन है ।।१०।। त्यागने योग्य, ग्रहण करने योग्य वा दूषित नहीं है, न पवित्र अपवित्र है, न मोटा है, न पतला है, न क्लेद, न काल, न देश का कथन है ।।११।। न सब, न भय, न द्वैत, न वृक्ष, तृण पर्वत, न ध्यान, न योग संसिद्धि न ब्राह्मण, न क्षत्रीय, न वैश्य ।।१२।। न पक्षी, न मृग, न अंगी, न लोभ, न मोह ही है। न मद, न मत्सरता, न काम क्रोधादि हैं ।।१३।। स्त्री, शूद्र, बिल्ली आदि और भक्ष्य भोज्य आदिक नहीं हैं। न मोटा पतला है, न आस्तिक्य है, न वार्ता ही का अवसर है ।।१४।। न लौकिक है, न लोक हैं, न व्यापार है न मूढ़ता है, न भोक्ता, भोजन, भोज्य है, न पात्र है, न पान है, न पीने योग्य है ।।१५।। न शत्रु, मित्र, पुत्र आदि है, न माता, पिता, बहिन न जन्म है, न मृत्यु है, न वृद्धि है। मैं देह हूँ, यह भ्रम है ।।१६।। न शून्य है, न अशून्य है, न अन्तःकरण है, न संसार है, न रात्रि है, न दिन रात्रि हैं, न ब्रह्मा है, न हरि है, न

शिव है ॥१७॥ न वार, पक्ष मास आदिक हैं, न संवत्सर है न स्थूल है, न ब्रह्म लोक है न वैकुन्ठ लोक है, न कैलाश है, न अन्य लोक है ॥१८॥ न स्वर्ग है, न देवता इन्द्र है, न अग्नि है, न श्लोक है, न अग्निहोत्री है, न यम है, न यमलोक है; न लोक पाल हैं ॥१९॥ न भू, भुवः और स्वः ये तीन लोक हैं, न पाताल है न भूतल है न अविद्या है, न विद्या है, न माया है, न जड़ प्रकृति है ॥२०॥ न स्थिर है, न क्षणिक है, न नाश है, न गति है और न दौड़ना है। न मुक्त है न ध्येय है, न ध्यान है, न मंत्र है, न कहीं जप है ॥२१॥ न पदार्थ है, न पूजने योग्य है, न अभि-षेक है, न पूजा है। न पुष्प है, न फल है, न पत्र, गंध, पुष्प आदि धूप है ॥२२॥ न स्तोत्र हैं, न नमस्कार है, न थोड़ी सी भी प्रदक्षिणा है, न प्रार्थना है, न प्रथक् भाव है, न हवि है, न अग्नि की वन्दना है ॥२३॥ न होम है, न कर्म है, न दुर्वचन है, न सुन्दर भाषण है, न गायत्री है, न संधि है, न ध्यान है, न मन की दुष्ट स्थिति है, ॥२४॥ न दुराशा है, न दुष्टात्मा है, न चंडाल है, न पौल्कस (एक प्रकार की नीच जाति) है। न दुःसह है, न निन्दा है, न किरात है, न कैतव है ॥२५॥ न पक्षपात है, न पक्ष है, न आभूषण है, न चोर है, न दम्भ है, न दम्भ करने वाला है, न नीच है, न श्रेष्ठ ॥२६॥ एक, दो, तीन, चार, नहीं है, न महानता है, न अल्पपना है, न पूर्ण है, न परिच्छिन्न है, न काशी है, न व्रत है, न तप है ॥२७॥ न गोत्र है, न कुल है, न सूत्र है, न व्यापकता है, न शून्यता है, न स्त्री है, न युवती है, न बूढ़ी है, न

कन्या है, न तन्तु पना है, ॥२८॥ न सूतक है, न जन्म है, न आंतर्मुख है, न भ्रम है, न महा वाक्य है, न एकता है, न अणिमा आदि सिद्धियां हैं ॥२९॥ सर्व चैतन्य मात्र होने से सदा सब दोष नहीं हैं, सर्व सत्य मात्र रूप होने से सच्चिदानन्द मात्र है ॥३०॥ सब ब्रह्म ही है, अन्य नहीं है, इसी प्रकार वह मैं हूँ वह मैं हूं वह ही मैं हूँ, वह ही मैं हूँ, मैं सनातन ब्रह्म ही हूं ॥३१॥ मैं ब्रह्म ही हूँ, संसारी नहीं हूँ, मैं ब्रह्म ही हूं, मुझसे मन नहीं है, मैं ब्रह्म ही हूँ, मुझसे बुद्धि नहीं है, मैं ब्रह्म ही हूँ इन्द्रियां नहीं हूँ ॥३२॥ मैं ब्रह्म ही हूं देह नहीं हूँ, मैं ब्रह्म ही हूँ, विषय नहीं हूँ। मैं ब्रह्म ही हूं, जीव नहीं हूँ, मैं ब्रह्म ही हूं, भेद वाला नहीं हूँ ॥३३॥ मैं ब्रह्म ही हूँ जड़ नहीं हूँ, मैं ब्रह्म ही हूँ मुझमें मरण नहीं है। मैं ब्रह्म ही हूँ प्राण नहीं हूँ, मैं पर से परब्रह्म ही हूं।॥३४॥ यह ब्रह्म है, पर ब्रह्म है, सत्य ब्रह्म है, वह प्रभु है। काल ब्रह्म है, कला ब्रह्म है, सुख ब्रह्म है, स्वयं प्रकाश है ॥३५॥ एक ब्रह्म है, दो ब्रह्म है, मोह ब्रह्म है, शमादिक ब्रह्म है, दोष ब्रह्म है, गुण ब्रह्म है, दम, शान्त, विभु, प्रभु, ब्रह्म है, ॥३६॥ लोक ब्रह्म है, गुरु ब्रह्म है, शिष्य ब्रह्म है, सदाशिव ब्रह्म है। पूर्व ब्रह्म है, पर ब्रह्म है, शुद्ध ब्रह्म है, शुभ अशुभ ब्रह्म है, ॥३७॥ जीव ही सदा ब्रह्म है, मैं सच्चिदानन्द हूं। सर्व ब्रह्ममय कहा है, सब जगत् ब्रह्म मय है ॥३८॥ संदेह रहित आप ही ब्रह्म है, अपने से अन्य कुछ नहीं है। सब आत्मा ही है, शुद्धात्मा है, सब चिन्मात्र अद्वितीय है ॥३९॥ आत्मा नित्य निर्मल रूप है, आत्मा से अन्य

कुछ नहीं है। अणु मात्र शुद्ध रूप है, अणु मात्र यह जगत् है ॥४०॥ अणु मात्र शरीर है, अणु मात्र सत्य है। अणु मात्र अचिन्त्य है, अथवा अणु मात्र चिन्त्य है ॥४१॥ ब्रह्म ही सब चिन्मात्र है, ब्रह्म मात्र तीनों जगत् हैं, आनन्द परमानन्द है, अन्य कुछ न कुछ है ॥४२॥ चैतन्य मात्र ओंकार है, ब्रह्म ही सब आप है। मैं ही सब जगत् हूँ, मैं ही परम पद हूँ ॥४३॥ मैं ही गुणातीत हूँ, मैं ही पर से पर हूँ। मैं ही पर ब्रह्म हूँ, मैं ही गुरुओं का गुरु हूँ ॥४४॥ मैं ही सबका आधार हूं, मैं ही सुख का सुख हूँ। आत्मा से भिन्न जगत् नहीं है, और आत्मा से भिन्न सुख भी नहा है ॥४५॥ आत्मा से भिन्न गति नहीं है, सब जगत् आत्ममय है। आत्मा से भिन्न कहीं नहीं है, आत्मा से भिन्न तृण भी नहीं है ॥४६॥ आत्मा से भिन्न तुष (भूसा) नहीं है, सब जगत् आत्मामय है। ब्रह्म मात्र यह सब है, ब्रह्म मात्र असत् नहीं है ॥४७॥ सब सुना हुआ ब्रह्म मात्र है, ब्रह्म ही केवल आप है। ब्रह्म मात्र सब वृत है, ब्रह्म मात्र रस और सुख है ॥४८॥ ब्रह्म मात्र चिदाकाश सच्चिदानन्द अद्वितीय है, ब्रह्म के सिवाय अन्य नहीं है, ब्रह्म से भिन्न जगत् नहीं है ॥४९॥ ब्रह्म से भिन्न मैं नहीं हूँ, ब्रह्म के सिवाय फल नहीं है। ब्रह्म से भिन्न तृण नहीं है, ब्रह्म से भिन्न पद नहीं है ॥५०॥ ब्रह्म से भिन्न गुरु नहीं है, ब्रह्म विना शरीर असत्य है। ब्रह्म से अन्य अहंता तुझ पना, यह, वे कहीं नहीं है ॥५१॥ अपने को ब्रह्म स्वरूप जान। अपने से अन्य कुछ नहीं है, जो कुछ जगत् में देखा जाता है, जो कुछ लोगों से

कहा जाता है ॥५२॥ जो कुछ कहीं भी भोगा जाता है, वह सब असत्य ही है। कर्ता भेद, क्रिया भेद, गुण भेद रस आदिक ॥५३॥ यह सब लिंग भेद असत्य ही हैं। सदा सुख काल भेद, देश भेद, वस्तु भेद, जीत हार ॥५४॥ जो जो भेद हैं, वे केवल असत्य ही हैं। अन्तःकरण असत्य है, इन्द्रिय आदिक असत्य हैं ॥५५॥ प्राण आदिक सब असत्य हैं, शरीर असत्य है, पांच कोश असत्य हैं देवता असत्य हैं ॥५६॥ छः विकार आदि असत्य हैं, शत्रु वर्ग असत्य हैं, छः ऋतु असत्य हैं और छः रस असत्य हैं ॥५७॥ मैं सच्चिदानन्द मात्र हूं यह जगत् कभी उत्पन्न नहीं हुआ है। मैं परं सत्य आत्मा ही हूँ, अन्य संसार दृष्टि नहीं है ॥५८॥ मैं सत्य आनन्द रूप हूँ, चैतन्य घन आनन्द स्वरूप हूँ, मैं ही परानन्द हूँ, मैं ही पर से पर हूँ ॥५९॥ यह सब ज्ञानाकार है, मैं अद्वितीय ज्ञान आनन्द रूप हूँ, मैं सबका प्रकाश रूप हूँ, सर्व अभाव स्वरूप हूं, ॥६०॥ मैं ही सदा भासता हूं, कहां असत्य है, तू ही चिन्मात्र आनन्द रूप वाला परब्रह्म है ॥६१॥ चैतन्य आकार है, चैतन्य आकाश है, चैतन्य ही परम सुख है, मैं आत्मा ही हूँ, असत् नहीं हूँ, मैं कूटस्थ हूँ, श्रेष्ठ गुरु हूँ ॥६२॥

मैं सच्चिदानन्द मात्र हूँ और यह जगत् उत्पन्न ही नहीं हुआ है। काल नहीं है, जगत् नहीं है, माया-प्रकृति भी नहीं है ॥६३॥ मैं ही साक्षात् हरि हूँ, मैं ही सदाशिव हूँ, मैं शुद्ध सत्व को प्रकाश

करने वाला शुद्ध चैतन्य भाव हूँ ॥६४॥ मैं अद्वितीय आनन्द मात्र हूँ, चैतन्य घन एक रस हूं, सब सदा ब्रह्म ही है, सब केवल ब्रह्म ही है ॥६५॥ सब सदा ब्रह्म ही है, सब ही ब्रह्म चेतन है, मैं सबका अन्तर्यामी रूप हूँ, सर्व साक्षीपने के लक्षण वाला हूँ ॥६६॥ परमात्मा परंज्योति, परंधाम, परमगति, सब वेदान्त का सार हूँ, सब शास्त्रों से निश्चित किया गया हूँ ॥६७॥ मैं योगानन्द स्वरूप हूँ, मुख्य आनन्द महोदय हूं, मैं सब ज्ञान का प्रकाश हूँ, मुख्य विज्ञान स्वरूप हूँ ॥६८॥ मैं तुर्य अतुर्य का प्रकाश हूँ, तुर्य अतुर्य आदि से रहित हूँ, मैं चैतन्य अक्षर हूँ, मैं सत्य हूँ, वासुदेव अजर, अमर हूं ॥६९॥ मैं ब्रह्म चिदाकाश हूँ; नित्य ब्रह्म निरंजन हूँ, शुद्ध, बुद्ध सदामुक्त, अनाम, अरूप हूँ ॥७०॥ मैं सच्चिदानन्द रूप हूँ, यह जगत् उत्पन्न नहीं हुआ है। सत्य असत्य जगत् नहीं है, संकल्प, कलना आदिक नहीं हैं ॥७१॥ नित्य आनन्दमय ब्रह्म, केवल हमेशा आप है, अनन्त अविकारी, शांत, एक रूप और अनामय है ॥७२॥ यदि मुझसे कुछ अन्य है तो वह मृगजल के समान मिथ्या है। यदि वंध्या पुत्र के वचन में भय है तो यह कुछ है ॥७३॥ शशेके सींगों से सिंह मर जाय तो जगत है। मृग तृष्णा जल से तृप्त हो जाय तो यह जगत है॥७४॥ मनुष्य के सींगों से नष्ट हो जाय तो यह भी है। गंधर्व नगर के सत्य होने में जगत हमेशा है ॥७५॥ आकाश में नीलता सत्य हो तो जगत सत्य होगा। सीपी में रूपा सत्य हो तो जगत भूषण होगा ॥७६॥ रस्सी के सर्प से मनुष्य मर जाय तो संसार हो।

सोने के बाणं से ज्वाला अग्नि नाश हो जाय तो जगत है ॥७७॥ विन्ध्याचल के वन में खीर हो जाय तो जगत उत्पन्न हुआ है। केले के स्तंभके काठ से रसोई बनजाय तो जगत है ॥७८॥ गवार पाँठे के रूप से पाक सिद्ध होजाय तो जगत हो। चित्र के दीपक से अँधेरा चला जाय तो यह जगत है ॥७९॥ मास से पहिले मरा हुआ मनुष्य आजाय तो जगत है। यदि मठे का दूध हो जाय तो नित्य जगत है ॥८०॥ गौ के थन से निकाला हुआ दूध फिर भर दिया जाय तो जगत है। मट्टी के रेत में समुद्र उत्पन्न होजाय तो जगत हमेशा वस्तु है ॥८१॥ कछुये के रोमों से मस्त हाथी बांध दिया जाय तो जगत है। कमल की डन्डी के तन्तु से मेरु चलने लगे तो जगत हो ॥८२॥ तरंगों की माला से समुद्र बांध दिया जाय तो जगत है। अग्नि की ज्वाला नींचे को जाय तो सर्वदा जगत है ॥८३॥ अग्नि की ज्वाला ठन्डी हो तो जगत हो, जलती हुई अग्नि मन्डल में कमलों की वृद्धि हो तो यह जगत हो ॥८४॥ महान् हिमाचल में नील हो तो जगत हो, मेरु आकर नेत्र की पुतली में स्थित हो तो यह जगत है ॥८५॥ भ्रंग का शब्द वाणी रहित हो, मेरु चलायमान हो, मच्छर सिंह को मार डाले तो यह जगत सत्य हो ॥८६॥ अणु रूप कोटर के विस्तार होने में तीन लोक हों तो यह जगत है, चणिक के फूस की आग नित्य हो तो जगत हो ॥८७॥ स्वप्न की देखी हुई वस्तु जाग्रत में रहे तो जगत हो, नदी का वेग किसी प्रकार निश्चल होजाय तो जगत हो ॥८८॥ भूख का भोजन अग्नि हो तो जगत की कुछ कल्पना

हो। जन्मका अंधा रत्न परीक्षक हो तो यह जगत सदा हो ॥८९॥ नपुंसक के पुत्र को स्त्री का सुख हो तो जगत हो। शशे के सींगों से रथ बन जाय तो जगत हो ॥९०॥ हाल की जन्मी हुई कन्या भोग के योग्य हो तो जगत हो। बंध्या गर्भ प्राप्ति के सुख को जानने वाली हो तो जगत हो ॥९१॥ काक हंस के समान चले तो जगत निश्चल हो। गधा सिंह के साथ युद्ध करे तो जगत की स्थिति हो ॥९२॥ गधा हाथी की चाल चले तो जगत हो। चन्द्र सूर्य से प्रकाश किया हुआ संपूर्ण जगत स्वयं जड़ है ॥९३॥ चन्द्र सूर्य आदि को छोड़कर राहु दीखता हो, भृष्ट बीज उत्पन्न होकर वृद्धि हो तो जगत सत्य हो ॥९४॥ दरिद्री धनवानों का सुख भोगे तो जगत हो। कुत्ते के वीर्य से सिंह उत्पन्न हो तो जगत है ॥९५॥ मूढ़ ज्ञानी के हृदय को जान ले तो कल्पना हो। कुत्ता संपूर्ण समुद्र को पी ले तो मन हो ॥९६॥ शुद्ध आकाश मनुष्यों पर गिर पड़े तो जगत हो। अथवा भूमि पर आकाश गिरे, अथवा आकाश के पुष्प सुगंध वाले हों ॥९७॥ शुद्ध आकाश में वन उत्पन्न हो और चले तो जगत है। शुद्ध दर्पण में प्रतिबिम्ब नहीं पड़े तो जगत है ॥९८॥ अज की कुक्षि में जगत नहीं है, आत्म कुक्षि में जगत नहीं है। भेद कलना, द्वैत अद्वैत किसी प्रकार से विद्यमान नहीं है ॥९९॥ यदि यह माया का कार्य है ऐसा भेद है तो वह ब्रह्म की भावना है। मैं देह हूँ यह दुःख है तो मैं ब्रह्म हूँ यह निश्चय है ॥१००॥ हृदय ग्रन्थि के होने से ब्रह्म चक्र छेदा जाता है। संशय प्राप्त होने पर ब्रह्म के निश्चय का आश्रय

करे ॥१०१॥ अनात्म रूप चोर है तो आत्म रूप रत्न का रक्षण है। ब्रह्म नित्य आनन्दमय, केवल सर्वदा आप है ॥१०२॥ इस प्रकार के दृष्टांतों से ब्रह्म मात्र साधा जाता है। ब्रह्म सब भुवन है, भुवनों का नाम छोड़ दे ॥१०३॥ मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार निश्चय करके 'मैं' भाव को त्याग दे। सोये हुए के हाथ में रहे हुए पुष्प के समान सब ही लय हो जाता है ॥१०४॥ न देह है, न कर्म है, सब केवल ब्रह्म ही है। न भूत है, न कार्य है, न चार अवस्थायें है ॥१०५॥ तीन लक्षणाओं का विज्ञान सब केवल ब्रह्म ही है। सब व्यापार छोड़कर मैं ब्रह्म हूं, इस प्रकार भावना कर ॥१०६॥ संदेह रहित मैं ब्रह्म हूँ, मैं चैतन्य स्वरूप ब्रह्म हूँ। मैं सच्चिदानन्द मात्र हूँ, ऐसा निश्चय करके उसको भी छोड़ दे ॥१०७॥

यह शंकर का किया हुआ महाशास्त्र नास्तिक, कृतघ्न, दुराचारी, दुष्टात्मा हर किसी को न देना चाहिये ॥१०८॥ गुरु भक्ति से शुद्ध किये हुए अन्तःकरण वाले महात्मा को अच्छी तरह से मास, छः मास, एक वर्ष परीक्षा करके देना चाहिये ॥१०९॥ सब उपनिषदों के अभ्यास को दूर से त्याग कर आदर सहित तेजो विन्दु उपनिषत् का सर्वदा प्रसन्न होकर अभ्यास करे ॥११०॥ एक बार अभ्यास मात्र से आप ब्रह्म ही होता है, आप ब्रह्म ही होता है, यह उपनिषत् है ॥

योग चूडामणि उपनिषत् ।

[१८]

योगियों के हित की कामना से मैं योगचूडामणि उपनिषत् को कहता हूँ। यह योग वेत्ताओं से सेवन किया गया है, गूढ़ है और कैवल्य सिद्धि को देने वाला है ॥१॥ आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के छः अंग हैं ॥२॥ एक सिद्धासन और दूसरा पद्मासन कहा गया है। छः चक्र, सोलह आधार, तीन लक्ष्य और पांच आकाशों को ॥३॥ जो अपने देह में नहीं जानता, उसको सिद्धि किस प्रकार हो? आधार चक्र चार दल वाला है, स्वाधिष्ठान चक्र छः दल वाला है ॥४॥ नाभि में दश दल वाला कमल है, हृदय में बारह दल वाला पद्म है। विशुद्ध नाम का चक्र सोलह दल वाला है और भ्रकुटी के मध्य में दो दल वाला कमल है ॥५॥ महापथ ब्रह्म रन्ध्र में हजार दल की संख्या वाला चक्र है। आधार पहिला चक्र है, दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र है ॥६॥ योनि स्थान में है, दोनों के मध्य में है उसको काम रूप कहते हैं। काम नाम का चार दल वाला कमल गुदा के स्थान में है ॥७॥ उसके मध्य में काम नाम की, सिद्धों से वन्दना की गई, योनि कहलाती है। उसके मध्य में पश्चिम की तरफ मुख वाला लिंग स्थित है ॥८॥ नाभि में मणि के समान बिम्ब वाले को जो जानता है, वह योगवित्

है। तपे हुए सोने के समान प्रकाश वाला, बिजली की रेखा के समान चमकता हुआ ॥९॥ तीन कोण वाला मेढ़ू के नीचे स्थित वह्नि का पुर है। समाधि में अनन्त और विश्वतोमुख परम ज्योति दीखती है ॥१०॥ महा योग में उसको देखने से आना जाना नहीं रहता। स्व शब्द से प्राण होता है, स्वाधिष्ठान उसका आश्रय होता है ॥११॥ वह स्वाधिष्ठान के आश्रय होने से मेढ़ू भी कहा जाता है। यहां जो तंतु से पिरोये हुए मणि के समान सुषुम्ना से प्रोया हुआ कन्द है ॥१२॥ नाभि मण्डल में वह मणि पूरक चक्र कहलाता है। पुण्य पाप से रहित बारह दल वाले महा चक्र में ॥१३॥ जब तक जीव तत्त्व को नहीं जानता तब तक भ्रमण करता है। मेढ़ू से ऊपर नाभि से नीचे कन्द में पक्षी के अंडे के समान योनि है ॥१४॥ वहां बहत्तर हजार नाड़ियां उत्पन्न हुई हैं, उन बहत्तर हजार नाड़ियों में बहत्तर प्रधान कहलाती हैं ॥१५॥ उनमें से दश प्राण को चलाने वाली मुख्य समझी जाती हैं। इडा, पिंगला और तीसरी सुषुम्ना है ॥१६॥ गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुसा, कुहू और शंखिनी दशवीं कही गई हैं ॥१७॥ इस नाड़ी महा चक्र को योगियों को सदा जानना चाहिये। इडा वाम भाग में स्थित है, पिंगला दक्षिण भाग में स्थित है ॥१८॥ सुषुम्ना मध्य देश में, गांधारी बायें नेत्र में। हस्तिजिह्वा दक्षिण नेत्र में, पूषा दक्षिण कर्ण में ॥१९॥ यशस्विनी बायें कर्ण में, अलम्बुसा मुख में, कुहू लिंग देश में और शंखिनी मूल स्थान में है ॥२०॥ इस प्रकार क्रम से एक एक

द्वार का आश्रय करके सब नाड़ियां स्थित हैं, इडा. पिंगला और सुषुम्ना प्राण मार्ग में स्थित हैं ॥२१॥ चन्द्र, सूर्य और अग्नि देवता सदा प्राण को चलाने वाले हैं। प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान नाम के वायु हैं ॥२२॥ नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय (उपवायु है)। प्राण नित्य हृदय में स्थित है, अपान गुदा मंडल में ॥२३॥ समान नाभि देश में, उदान कण्ठ के मध्य में और व्यान सब शरीर में है, ये पांच प्राण ही मुख्य हैं ॥२४॥ डकार लेने में नाग और पलक मूँदने में कूर्म कहा गया है। कृकर छींक लाने वाला और देवदत्त जम्भाई लेने में जानो ॥२५॥ सर्व व्यापी धनंजय मरने पर भी नहीं छोड़ता। इन नाड़ियों में सब जीव जन्तु भ्रमण करते हैं ॥२६॥ जिस प्रकार भुज दण्ड से फेंकी हुई गेंद चलती है इसी प्रकार प्राण अपान से फैंका हुआ जीव नहीं ठहरता ॥२७॥ प्राण अपान के वश हुआ जीव नीचे, ऊपर, वाम और दक्षिण मार्ग से दौड़ता है; चंचल होने से दिखाई नहीं देता ॥२८॥ जिस प्रकार रस्सी से बांधा हुआ श्येन पक्षी गया हुआ भी खिंच आता है इसी प्रकार गुणों में बँधा हुआ जीव प्राण अपान करके खिंचता है ॥२९॥ प्राण अपान के वश हुआ जीव नीचे ऊपर जाता है। अपान प्राण को खैंचता है और प्राण अपान को खैंचता है ॥३०॥ ऊपर और नीचे स्थित इन दोनों को जो जानता है वह योगवित् है। वह हकार शब्द द्वारा बाहर आता है और सकार शब्द द्वारा फिर भीतर घुसता है ॥३१॥ इस

प्रकार 'हंस हंस' इस मन्त्र को जीव सदा जपता है। दिन रात में इक्कीस हजार छः सौ ॥३२॥ इस संख्या युक्त मंत्र को जीव सदा जपता है। यह अजपा नाम की गायत्री योगियों को सदा मोक्ष की देने वाली है ॥३३॥ इसके संकल्प मात्र से मनुष्य सब पापों से छुट जाता है। इसके समान विद्या, इसके समान जप ॥३४॥ इसके समान ज्ञान न हुआ न होगा। कुंडलिनी में उत्पन्न हुई गायत्री प्राण को धारण करने वाली है ॥३५॥ प्राण विद्या महा-विद्या है, जो उसको जानने वाला है, वह वेद को जानने वाला है। कन्द के ऊपर कुंडल के आकार वाली आठ प्रकार की कुण्डली शक्ति ॥३६॥ ब्रह्म द्वार के मुख को नित्य मुख से ढांप कर स्थित है। उपद्रव रहित ब्रह्म जिस द्वार में होकर जाना होता है ॥३७॥ परमेश्वरी उस द्वार को मुख से ढांप कर सोई हुई है। वह्नियोग से जगाई हुई वह मन और प्राण सहित ॥३८॥ मुख उठाकर सुषुम्ना में सुई के समान ऊपर जाती है। जिस प्रकार कुंजी से घर को खोलते हैं, इसी प्रकार कुण्डलिनी से योगी मोक्ष के द्वार का भेदन करे ॥३९॥

दोनों हाथों को संपुटित करके, दृढ़ रीति से पद्मासन लगा-कर और ठोड़ी को छाती पर दृढ़ रीति से लगा कर चित्त में बारम्बार उस (ब्रह्म) का ध्यान करता हुआ वायु को ऊपर खींचे, पूरण किये हुए वायु को छोड़ने से मनुष्य शक्ति के प्रभाव से अतुल बोध को प्राप्त होता है ॥४०॥ श्रम से उत्पन्न हुए पसीने से

अंगों को मले। कड़वे, खट्टे पदार्थ और लवण का त्याग कर दूध का भोजन करे ॥४१॥ ब्रह्मचारी, सूक्ष्म आहार करने वाला योग परायण योगी साल भर के बाद सिद्ध हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है ॥४२॥ चिकना, मधुर आहार पेट का चौथा अंश खाली छोड़कर, शिव की प्रीति के लिये भोजन करे, वह मिता-हारी कहलाता है ॥४३॥

कन्द के ऊपर कुण्डल के आकार वाली आठ प्रकार की कुण्डली शक्ति मूढ़ों को बंधन करने वाली और योगियों को सदा मोक्षकी देने वाली है ॥४४॥ महामुद्रा, नभमुद्रा, ओड्याण, जलंधर और मूलबंध को जो जानता है वह योगी मुक्ति का पात्र है ॥४५॥ एडी से दृढ़ दवा कर योनि को सकोड़े और अपान को ऊपर खेंचे; यह मूल बंध कहलाता है ॥४६॥ मूल बंध सदा करने से अपान और प्राण की एकता और मूत्र पुरीष की न्यूनता होने से वृद्ध भी जवान होजाता है ॥४७॥ जिससे थका हुआ महा पक्षी उड्याण करता है, वह उड्याण मृत्यु रूपी हाथी के लिये सिंह है ॥४८॥ उदर से नाभि के नीचे तानना पश्चिम ताण कह-लाता है। उड्याण बंध उदर में होता है, इसलिये वहां बंध कहा जाता है ॥४९॥ नीचे जाने वाले आकाश और जल को शिर में बांध देता है, इसलिये जालंधर बंध कष्ट और दुःख समूह को नाश करने वाला है ॥५०॥ कंठ संकोच लक्षण वाले जालंधर बंध के करने से अमृत अग्नि में नहीं पड़ता और न वायु दौड़ता

है ॥५१॥ जीभ को उलटी करके कपाल के छिद्र में प्रवेश करा कर दृष्टि भ्रकुटी के मध्य में लगाने से खेचरी मुद्रा होती है ॥५२॥ जो खेचरी मुद्रा को जानता है उसको रोग, मरण, निद्रा, भूख, प्यास और मूर्छा नहीं होती ॥५३॥ रोग से पीड़ा को नहीं प्राप्त होता, न कर्मों से लिपायमान होता है, किसी से बाधा नहीं पहुँचाया जाता, जो खेचरी मुद्रा को जानता है ॥५४॥ जिससे चित्त आकाश में विचरता है और जिह्वा आकाश में विचरती है, इसलिये वह खेचरी मुद्रा सब सिद्धों से नमस्कार की गई है ॥५५॥ पैर से लेकर मस्तक तक के शरीरों को पोषण करने वाली शिरायें जहां होती हैं ऐसा शरीर बिन्दु से स्थित है ॥५६॥ जिह्वा के ऊपर का छिद्र खेचरी द्वारा जिसने मूंद दिया है उसका बिन्दु कामिनी के आलिंगन से भी क्षय नहीं होता ॥५७॥ जब तक बिन्दु देह में स्थित है तब तक मृत्यु का भय कहां? और जब तक खेचरी मुद्रा बांधी हुई है तब तक बिन्दु नहीं जाता ॥५८॥ और निकला हुआ भी अग्निको प्राप्त हुआ बिन्दु योनि मुद्रा द्वारा शक्ति से रोका जाने से ऊपर जाता है ॥५९॥ वह बिन्दु सफेद और लाल दो प्रकार का है, सफेद शुक्ल कहलाता है और लाल महारज कहलाता है ॥६०॥

सिन्दूर समूह के समान चमकने वाले सूर्य के स्थान में रज स्थित है, चन्द्रमा के स्थान पर शुक्ल स्थित है, दोनों की एकता दुर्लभ है ॥६१॥ बिन्दु ब्रह्मा है, रज शक्ति है, बिन्दु चन्द्रमा है,

रज सूर्य है; दोनों के संगम से ही परमपद प्राप्त होता है ॥६२॥ जब वायु करके शक्ति को चलाने से प्रेरित हुआ रज बिन्दु के साथ सदा एकता को प्राप्त होता है तब दिव्य शरीर होजाता है ॥६३॥ शुक्ल चन्द्र से संयुक्त और रज सूर्य से संयुक्त है, उन दोनों की समान रस वाली एकता को जो जानता है, वह योगवित् है ॥६४॥ सब नाड़ियों का शोधन, चन्द्र सूर्य का चलाना और रसों का सुखाना महामुद्रा कहलाती है ॥६५॥ छाती पर ठोड़ी रख कर और योनि को बायें चरण से देर तक दबाकर और फैलाये हुए दक्षिण पाद को दोनों हाथों से पकड़ कर, दोनों बांधी हुई कांखों को श्वास से भर कर धीरे २ रेचन करे। यह मनुष्यों की व्याधि को नाश करने वाली महामुद्रा कहलाती है ॥६६॥ चन्द्र अंश से अभ्यास करके फिर सूर्य अंश से अभ्यास करे, जब संख्या बराबर होजावे तब मुद्रा को छोड़ देवे ॥६७॥ अपथ्य ही पथ्य नहीं होजाता किन्तु सब निरस भी रस होजाते हैं और खाया हुआ घोर विष भी अमृत के समान पच जाता है ॥६८॥ जो महामुद्रा का अभ्यास करे उसके क्षय, कुष्ठ, भगन्दर, गुल्म, अजीर्ण और आगे होने वाले रोग क्षय होजाते हैं ॥६९॥ मनुष्यों को महा सिद्धि की देने वाली यह महा मुद्रा कही है, यह प्रयत्न से गुप्त रखनी चाहिये और हर किसी को देनी न चाहिये ॥७०॥ पद्मासन लगा कर, शरीर और शिर को समान करके, नासिका के अग्र भाग में दृष्टि करके अव्यय ओंकार का एकांत में जप

करे ॥७१॥ ॐ नित्य, शुद्ध, बुद्ध, निर्विकल्प, निरञ्जन, नाम रहित, अनादि, मृत्यु रूप, एक, तुरीय, जो भूत, भविष्य और वर्तमान में सदा अवच्छेद रहित परब्रह्म है, उससे ज्योति रूप परा शक्ति उत्पन्न हुई। (पराशक्ति रूप) आत्मा से आकाश हुआ, आकाश से वायु हुआ, वायु से अग्नि हुआ, अग्नि से जल हुआ और जल से पृथ्वी हुई। इन पांच भूतों के पांच पति सदा शिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा हैं। उनमें ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उत्पत्ति स्थिति और लय करने वाले हैं। ब्रह्मा राजस है, विष्णु सात्विक है और रुद्र तामस है। इस प्रकार ये तीनों गुणयुक्त हैं। ब्रह्मा देवताओं में प्रथम हुआ। ब्रह्मा उत्पन्न करने के लिये, विष्णु स्थिति के लिये, रुद्र नाश करने के लिये और चन्द्रमा भोग के लिये; इस प्रकार प्रथम उत्पन्न होने वाले हुए। इनमें से ब्रह्मा से लोक, देवता, तिर्यक्, नर और स्थावर उत्पन्न होते हैं। उन मनुष्य आदि का शरीर पांच भूत समूह का है। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, ज्ञान और विषय, प्राणादि पांच वायु, मन बुद्धि चित्त और अहंकार स्थूल कल्पे हुए हैं। वह (शरीर) ही स्थूल प्रकृति कहलाता है। ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय ज्ञान और विषय, प्राणादि पांच वायु, मन और बुद्धि सूक्ष्म में स्थित लिंग कहलाता है। तीन गुणों से युक्त कारण है। इस प्रकार सबके तीन शरीर बर्तते हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय ये चार अवस्थायें हैं। उन अवस्थाओं के अधिपति विश्व, तैजस, प्राज्ञ और आत्मा ये चार पुरुष हैं। विश्व स्थूल का भोक्ता है, तैजस एकांत का भोक्ता है, आनन्द का भोक्ता

प्राज्ञ है, उससे पर सबका साक्षी है ॥७२॥ वह सब जीवों में भोग काल में सदा पृथक् रहता है और सब अवस्थाओं में अधो-मुख यानी तटस्थ रूप से आनन्द रूप है ॥७३॥ अकार, उकार और मकार तीन वर्णों को, तीन वेदों को, तीन लोकों को, तीन गुणों को, तीन अक्षरों को, तीन स्वरों को प्रणव प्रकाशता है। अकार सब जंतुओं में जाग्रत् में नेत्रों में वर्तता है, उकार स्वप्न में कंठ में और मकार सुषुप्ति में हृदय में ॥७४॥ अकार स्थूल, विराट और विश्व है। उकार सूक्ष्म, हिरण्यगर्भ और तैजस है। मकार कारण अव्याकृत और प्राज्ञ है। अकार राजस, रक्त, ब्रह्मा और चेतन कहलाता है। उकार सात्विक, शुक्ल और विष्णु कहलाता है ॥७५॥ मकार तामस, कृष्ण और रुद्र कहलाता है। प्रणव से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, प्रणव से विष्णु उत्पन्न हुआ ॥७६॥ प्रणव से रुद्र उत्पन्न हुआ, प्रणव ही पर हुआ। अकार में ब्रह्मा लय होता है, उकार में विष्णु लय होता है ॥७७॥ मकार में रुद्र लय होता है परन्तु प्रणव प्रकाशता रहता है। वह ज्ञानियों में ऊपर जाने वाला होता है, अज्ञानी में नीचे मुख वाला होता है ॥७८॥ इस प्रकार निश्चय प्रणव स्थित है, जो उसको जानता है, वह वेद का जानने वाला है। अनाहत स्वरूप से ज्ञानियों में ऊपर जाने वाला होता है ॥७९॥ तेल की अवच्छिन्न धारा और लम्बे घन्टों के नाद के समान प्रणव की ध्वनि है। उसका अग्र ब्रह्म कहलाता है ॥८०॥ वह अग्र ज्योतिमय और अवाच्य है। सूक्ष्म बुद्धि से महात्मा उसको देखते हैं। जो उसको जानता है, वह वेद

का जानने वाला है ॥८१॥ जाग्रत में दोनों नेत्रों के बीच में हंस ही प्रकाशता है। सकार खेचरी कहलाता है, निश्चित यह त्वं पद है ॥८२॥ हकार परमेश्वर है, यह तत् पद निश्चित है। जो जंतु सकार का ध्यान करता है, निश्चय हकार ही होजाता है ॥८३॥ इन्द्रियों करके जीव बांधा जाता है, आत्मा नहीं बांधा जाता। ममता से जीव होता है, ममता रहित केवल होता है ॥८४॥ भूः भुवः स्वः ये लोक, चन्द्र, सूर्य और अग्नि देवता जिसकी मात्राओं में स्थित हैं, वह परम ज्योति ॐ है ॥८५॥ क्रिया, इच्छा और ज्ञान तथा ब्राह्मी रौद्री और वैष्णवी, ये तीन प्रकार की मात्राएं जिसमें स्थित हैं, वह परम ज्योति ॐ है ॥८६॥ वाणी से उसे नित्य जपे, शरीर से उसका अभ्यास करे, मन से उसे नित्य जपे, वह परम ज्योति ॐ है ॥८७॥ पवित्र हो या अपवित्र जो प्रणव को सदा जपता है; वह कमल पत्र के समान पापों से लिपायमान नहीं होता ॥८८॥ वायु चलने पर विन्दु चलित होता है और निश्चल होने पर निश्चल होता है। (विन्दु स्थिर होने से) योगी निश्चलता को प्राप्त होता है, इसलिये वायु का निरोध करे ॥८९॥ जब तक वायु देह में स्थित है तब तक जीव नहीं मरता। उसका निकल जाना मरण है इसलिये वायु का निरोध करे ॥९०॥ जब तक वायु देह में स्थित है तब तक जीव नहीं जाता। जब तक दृष्टि भृकुटियोंके मध्यमें है तब तक कालका भय कहां ॥९१॥ अल्प कालके भयसे ब्रह्मा प्राणायाम परायण हुआ, इसलिये योगी और मुनि भी प्राणों का निरोध करें ॥९२॥ हंस छब्बीस अंगुल बाहर जाता

है। वाम और दक्षिण मार्ग से प्राणायाम किया जाता है ॥९३॥ जब सब मलयुक्त नाड़ी चक्र शुद्ध हो जाता है, तब ही योगी प्राण को रोकने में समर्थ होता है ॥९४॥ योगी पद्मासन लगा कर चंद्र से प्राण को पूर्ण करे, यथाशक्ति धारण करे और फिर सूर्य द्वारा निकाल देवे ॥९५॥ अमृत के समुद्र के समान, गौ के सफेद दूध की उपमा वाले चंद्रमा के बिम्ब का ध्यान करता हुआ प्राणायाम करने में सुखी होवे ॥९६॥ ककड़ते हुए प्रज्व-लित अग्नि रूप, हृदय में स्थित पूज्य आदित्य मण्डल का ध्यान करता हुआ योगी प्राणायाम करने में सुखी होवे ॥९७॥ इडा नाड़ी से प्राण को पिये फिर रोककर दूसरी (पिंगला) से निकाल देवे। फिर पिंगला से वायु को पीकर और रोककर बाईं (इडा) से निकाल देवे। इस प्रकार से सूर्य और चंद्रमा दोनों बिंदुओं के ध्यान करने से योगी की नाड़ियां दो मास के बाद शुद्ध हो जाती हैं ॥९८॥ इच्छानुसार वायु का धारण करना, अग्नि का प्रज्वलित करना, नाद का प्रकट होना और आरोग्यता ये नाड़ी शोधन करने से उत्पन्न होते हैं ॥९९॥ जब तक प्राण देह में स्थित है तब तक अपान को रोके। आकाश में ऊपर और नीचे गति वाली एक श्वास वाली मात्रा है ॥१००॥ रेचक, पूरक और कुम्भक प्रणव स्वरूप है। प्राणायाम बारह मात्रा युक्त होता है ॥१०१॥ बारह मात्रा संयुक्त सूर्य, चंद्रमा दोष समूह को नाश करने वाले हैं ऐसा योगियों को जानना चाहिये ॥१०२॥ बारह पूरक करे, कुम्भक सोलह हो और रेचक दश हो, वह ओंकार

प्राणायाम कहलाता है ॥१०३॥ हलकी में बारह मात्रा और मध्यम में दूनी मानी गई हैं, उत्तम में तीन गुणी कही हैं, यह प्राणायाम का निर्णय है ॥१०४॥ हलकी में पसीना उत्पन्न होता है, मध्यम में कम्प होता है, उत्तम में स्थान को प्राप्त होता है इसलिये वायु का निरोध करे ॥१०५॥ योगी पद्मासन लगाकर, गुरु रूप शिव को नमस्कार करके, नासिका के अग्र भाग में दृष्टि लगाकर एकांत में प्राणायाम का अभ्यास करे ॥१०६॥

नव द्वारों को तथा प्राणोंको रोककर दृढ़ धारणा पूर्वक शक्ति चालन करके काल रूप कुण्डलिनी को अग्नि और अपान के साथ ऊपर ले जाय। फिर इस विधि से आत्म ध्यान करते हुए उसके मस्तक में स्थिर करे। जब तक यह स्थिर रहे तब तक ही महात्माओं के संग की विशेषता हैं ॥१०७॥ यह प्राणायाम पातक रूपी ईंधन के लिये अग्नि है और संसार रूपी समुद्र का सेतु सदा योगियों से कहा जाता है ॥१०८॥ आसन से रोग को और प्राणायाम से पातक को नाश करते हैं, योगी मन के विकारों का प्रत्याहार से त्याग करता है ॥१०९॥ धारणा से मन के धैर्य को प्राप्त करता है; समाधि में अद्भुत चैतन्य को प्राप्त करता है और शुभाशुभ कर्मों का त्याग करके मोक्ष को प्राप्त करता है ॥११०॥ बारह प्राणायाम का प्रत्याहार कहलाता है, बारह प्रत्याहार से शुभ धारणा उत्पन्न होती है ॥१११॥ योग वेत्ताओं ने बारह धारणा को ध्यान कहा है और बारह ध्यान की समाधि कहलाती है ॥११२॥ समाधि में जो परम ज्योति, अनन्त

और विश्वतोमुख है, उसके देखने से उसका गमन और क्रिया कर्म नहीं रहता ॥११३॥ दोनों चरण मेढ़ पर लगा आसन बांध कर, कर्ण, नेत्र और नासिका के द्वारों को अंगुलियों से रोक कर पवन को मुख से पूर्ण करे, उसको अपान सहित छाती में रोक कर फिर मूर्धा में स्थिर धारण करे; इस प्रकार योगीश्वर उसमें मन् लगा कर तत्त्व की विशेष समता को प्राप्त करते हैं ॥११४॥ पवन आकाश में प्राप्त होने पर घंटादि बाजों की महान् ध्वनि उत्पन्न होती है, यह नाद सिद्धि कही गई है ॥११५॥ प्राणायाम से युक्त होने से, सब रोग नाश हो जाते हैं, प्राणायाम से रहित के सब रोग उत्पन्न होते हैं ॥११६॥ हुचकी, खांसी, श्वास, शिर, कर्ण, आंखों की पीड़ा अनेक प्रकार के रोग पवन के विकार से होते हैं ॥११७॥ जिस प्रकार सिंह, हाथी, व्याघ्र धीरे धीरे वश हो जाते हैं, इसी प्रकार सेवन किया हुआ वायु वश हो जाता है, नहीं तो साधक को मारता है ॥११८॥ नियम पूर्वक वायु को छोड़े, नियम पूर्वक भरे, नियम पूर्वक रोके, इस प्रकार सिद्धि को प्राप्त करे ॥११९॥ विषयों में यथा क्रम से चक्षु आदि का जो चलना है, उनका जो रोकना है, वह प्रत्याहार कहलाता है ॥१२०॥ जिस प्रकार तीसरे काल में सूर्य का प्रकाश कम हो जाता है इसी प्रकार योगी तीसरे अंग में स्थित मन के विकार को दूर करे, यह उपनिषत् है । इति योग चूडामणि उपनिषत् ॥

शारीरकोपनिषत् ।

[१६]

शरीर पृथिवी आदि महाभूतों का समुदाय है। जो कड़ी है, सो पृथिवी है, जो बहने वाला है, वह जल है। जो उष्ण है, वह तेज है, जो संचार करता है, वह वायु और जो पोला है, वह आकाश है। श्रोत्रादि ज्ञान इन्द्रियां हैं। आकाश में श्रोत्र, वायु में त्वचा, अग्नि में नेत्र, जल में जिह्वा और पृथिवी में घ्राण है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन्द्रियों के यथा क्रम से विषय हैं ये पृथिवी आदि महा भूतों से क्रम से उत्पन्न हुए हैं। वाणी, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ कर्मेन्द्रियां कही जाती हैं। उनके क्रम से वचन, ग्रहण करना, चलना, त्यागना और आनन्द ये विषय पृथ्वी आदि महाभूतों से क्रम से उत्पन्न हुए हैं। मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त ये चार अन्तःकरण हैं। उनके क्रम से संकल्प विकल्प, निश्चय, अभिमान और विचार स्वरूप ये विषय हैं। मन का स्थान कंठ, बुद्धि का मुख, अहंकार का हृदय और चित्त का नाभि है। हड्डी, चमड़ी, नाड़ी, रोंगटे और मांस ये पृथिवी के अंश हैं। मूत्र, कफ, लोहू, वीर्य और पसीना ये जल के अंश है। भूख, प्यास, आलस्य, मोह और मैथुन अग्नि के अंश हैं। फैलना, दोड़ना स्थूलादि (मुड़ना, सकोड़ना, चलना) पलक खोलना, बन्द करना आदि (डकार,

छींक, जंभाई और मृतक शरीर को फुलाना) वायु के अंश हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय आकाश के अंश हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध पृथ्वी के गुण हैं। शब्द, स्पर्श, रूप और रस जल के गुण हैं। शब्द, स्पर्श और रूप अग्नि के गुण हैं। शब्द और स्पर्श वायु के दो गुण हैं। शब्द एक गुण आकाश का है। सात्विक, राजस और तामस तीनों गुणों के लक्षण हैं। अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, क्रोध न करना, गुरु की सेवा करना, शौच, संतोष, सीधापन ॥१॥ मान रहितपना, पाखण्ड रहितपना, आस्तिकपना, अहिंसकपना, इतने गुण विशेष करके सात्विक के जानने चाहिये ॥२॥ मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, मैं अभिमान वाला वक्ता हूं। ब्रह्म वेत्ताओं ने ये गुण राजस के कहे हैं ॥३॥ निद्रा, आलस्य, मोह, राग मैथुन और चोरी। ब्रह्म वादियों ने ये गुण तामस के कहे हैं ॥४॥ सात्विक ऊपर है; मध्य में राजस है और नीचे तामस है। सत्य ज्ञान सात्विक है। धर्म ज्ञान राजस है। तिमिरांध तामस है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्य ये चार प्रकार की अवस्थायें हैं। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और चार अन्तःकरण, इन चौदह इन्द्रियों युक्त जाग्रत है। चार अंतःकरण से युक्त स्वप्न है, एक चित्त इन्द्रिय वाली सुषुप्ति है। तुरीय केवल जीव युक्त ही है। खुले हुए पलक और मुंदे हुए पलक के बीच में टिका हुआ जीव परमात्मा के मध्य में जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है, इस प्रकार जाना जाता है, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण

और बुद्धि इन सत्तरह का सूक्ष्म शरीर लिङ्ग कहलाता है ॥५॥ मन, बुद्धि, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल पृथिवी; ये प्रकृति के आठ विकार हैं, सोलह और हैं ॥६॥ श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण यह पांच। गुदा, उपस्थ, हाथ, पैर और वाणी दशमी है ॥७॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध; ये तेईस प्रकृतियां है ॥८॥ चौबीसवां अव्यक्त प्रधान है, पुरुष उससे पर है ॥

ब्रह्मविद्या उपनिषत्।

[२०]

ब्रह्मविद्या उपनिषत् को कहते हैं:—उस अद्भुत कर्म करने वाले विष्णुरूप के प्रसाद से ध्रुवाग्नि ब्रह्म विद्या का रहस्य कहना है ॥१॥ ब्रह्मवादियों ने जिस ब्रह्म को ॐ एकाक्षर कहा है, उस के शरीर, स्थान और तीन काल को मैं कहता हूँ ॥२॥ उस (ॐकार) में तीन देव, तीन लोक, तीन वेद और तीन अग्नि कहे हैं। उस तीन अक्षर रूप शिव की तीन और अर्ध यानी साढ़े तीन मात्रायें हैं ॥३॥ ऋग्वेद, गार्हपत्य, पृथ्वी और ब्रह्मा को ब्रह्मवादियों ने अकार का शरीर कहा है ॥४॥ यजुर्वेद अंतरिक्ष, दक्षिणाग्नि और देव विष्णु भगवान् उकार का (शरीर) कहा गया है ॥५॥ सामवेद, स्वर्ग, आहवनीय और परमदेव ईश्वर मकार का (शरीर) कहा गया है ॥६॥ शंख के मध्य का अकार सूर्य मंडल के मध्य में है। चन्द्र के समान उकार उस (चन्द्र) के मध्य में टिका हुआ है ॥७॥ मकार धूम रहित अग्नि के समान और बिजली की उपमा वाला है। इस प्रकार तीनों मात्राओं को चन्द्र, सूर्य और अग्नि रूप जानना चाहिये ॥८॥ जैसे दीपक की शिखा उसके ऊपर होती है। उसी प्रकार अर्ध मात्रा को प्रणव के ऊपर जानना चाहिये ॥९॥ वह पूरा शिखा कमल सूत्र के समान अत्यंत सूक्ष्म दिखलाई देती

है। वह सूर्यके समान नाड़ी सूर्यको भेदन करनेतथा अन्य ॥१०॥ बहत्तर हजार नाड़ियोंको भेदन करके सब प्राणियोंको वरदान देने वाली, सबको व्याप्त करके मूर्धामें टिकती है ॥११॥ कांसेके घंटोंके नाद जिस प्रकार शान्तिमें लीन होजाते हैं इसी प्रकार सब ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले को उसकी शान्ति के लिये ॐकार की योजना करनी चाहिये ॥१२॥ जिसमें शब्द लीन होता है वह परब्रह्म कहलाता है। और बुद्धि ब्रह्म में लीन हो जाती है, वह अमृत होने के योग्य समझी जाती है ॥१३॥ वायु, प्राण और आकाश तीन प्रकार की जीव की संज्ञा है। उस प्राण रूप जीव का प्रमाण बाल के अग्रभाग का सौंवा भाग कल्पा गया है ॥१४॥ नाभि स्थान में विश्व का शुद्ध तत्त्व, निर्मल शिव रूप आदित्य के समान किरणों से सबको प्रकाशता हुआ स्थित है ॥१५॥ सकार और हकार को जीव सदा जपता है। नाभि के छिद्र से निकलता हुआ यह विषयों की व्यापकता से रहित है ॥१६॥ इसलिये दूध में से निकले हुए घी के समान अपने कारण से युक्त इस कला रहित को पांच प्राणायाम द्वारा जाने ॥१७॥ जैसे लकड़ी से मथा हुआ दूध इस प्रकार जब चार कला से युक्त हृदय में स्थित देह में भ्रमण कराया जाता है ॥१८॥ (तब) इस (देह) में अविश्रांत महापक्षी शीघ्र वास करता है। जब श्वास रुक जाता है तब जीव निष्कलापने को प्राप्त होता है ॥१९॥ आकाश में स्थित कला रहित का ध्यान करके संसार बंधन से मुक्त होता है। जो हृदय में स्थित स्व प्रकाश चित् आनन्द रूप अनाहत ध्वनि युक्त हंस

को जानता है, वह हंस कहलाता है। रेचक पूरक को छोड़ कर कुम्भक से स्थित विद्वान् ॥२०-२१॥ नाभि के मूल में प्राण अपान को रोक कर समान करके मस्तक में स्थित अमृत के स्वाद को आदर सहित ध्यान द्वारा पी कर ॥२२॥ नाभि के मध्य में दीपक के आकार वाले तेज वाले महादेव को अमृत का सिंचन करते हुए जो हंस हंस इस प्रकार जप करता है ॥२३॥ उसको जरा मरण रोगादि पृथ्वी पर नहीं होते। इस प्रकार अणिमा आदि सिद्धियों के निमित्त दिन प्रतिदिन करे ॥२४॥ सदा अभ्यास में प्रीति वाला पुरुष ईश्वरत्व को प्राप्त करता है। बहुत से इस एक मार्ग से नित्यत्व को प्राप्त हुए हैं ॥२५॥ हंस विद्या के सिवाय नित्यत्व का अन्य कोई साधन नहीं है। जो हंस नाम की परमेश्वरी महा विद्या को देता है ॥२६॥ उसकी सदा शुद्ध बुद्धि से सेवा करनी चाहिये। इस जगत में शुभ, अशुभ या अन्य जो कुछ गुरु ने कहा हो ॥२७॥ उसको संतोष युक्त शिष्य विचारे बिना ही करे। इस हंसविद्या को मनुष्य गुरु से प्राप्त करके ॥२८॥ आत्मा से आत्मा को साक्षात् निश्चल ब्रह्म जान कर वर्णाश्रम से युक्त देह जाति आदि संबंधों को ॥२९॥ तथा वेद और अन्य शास्त्रों को पैर की रज के समान त्याग देवे और गुरु भक्ति सदा करे, इससे मनुष्य कल्याण को प्राप्त होता है ॥३०॥ गुरु साक्षात् हरि है, अन्य नहीं. ऐसा श्रुति कहती है ॥३१॥ श्रुति ने जो कहा है वह सब परमार्थ ही है, इसमें संशय नहीं है इसलिये श्रुति के विरोध होने पर कुछ भी प्रमाण नहीं है और जो अप्रमाण हो वह अनर्थकारी ही होती है ॥३२॥

देह में स्थित को सकल और देह से रहित को निष्कल कला से रहित जानना चाहिये। आप्त-गुरु के उपदेश से जानने योग्य वह सर्वत्र समान स्थित है ॥३३॥ जो हंस हंस इस प्रकार बोलता है। ब्रह्मा, हरि और शिव है, वह गुरु मुख से सर्वत्र मुख वाले परब्रह्म को प्रत्यक्ष प्राप्त करता है ॥३४॥ तिलों में जैसे तैल और पुष्प में गंध रहता है इसी प्रकार पुरुष के शरीर में बाहर और भीतर वह स्थित है ॥३५॥ जिस प्रकार लोक में पलीते को हाथ में लेने वाला वस्तु को देख कर उस पलीते को त्याग देता है इसी प्रकार ज्ञान से ज्ञेय को देख कर पीछे ज्ञान को भी त्याग दे ॥३६॥ सब को पुष्प के समान जाने और उसकी गंध को कला रहित जाने, सबको वृक्ष जाने और उसकी छाया को कला रहित जाने ॥३७॥ निष्कल और सकल भाव सर्वत्र ही स्थित है, कलायुक्त भाव उपाय है और उपेय (प्राप्त होने योग्य वस्तु ब्रह्म) कला रहित है ॥३८॥ कला सहित में सब भाव हैं, कला रहित में कोई नहीं है। एक मात्रा, दो मात्रा और तीन मात्रा भेद से ॥३९॥ अर्ध मात्रा को परा-उत्तम जाने। उसके ऊपर पर से पर है। पांच प्रकार का पांच दैवत वाला सकल पढ़ा जाता है ॥४०॥ ब्रह्माका हृदय स्थान है, विष्णु कंठमें स्थित है, तालूके मध्य में रुद्र स्थित है और मस्तकमें महेश्वर है ॥४१॥ नासाके अग्र भाग में अच्युतको जाने, उसके अन्तमें परमपद है परत्वसे पर कोई नहीं है, ऐसा शास्त्र का निर्णय है ॥४२॥ उस देहातीतको नासाके अग्र में बारह अंगुल का जाने, उसका अन्त उसको जाने, उसमें

स्थित प्रभु व्यापक है ॥४३॥ मनको अन्य में लगावें, अथवा नेत्र को अन्य पर डालें तो भी योगियों का योग अपरिच्छिन्न ही रहता है ॥४४॥

यह परम गुप्त है, यह परम शुभ है। इससे बढ़कर और कुछ नहीं है, इससे बढ़ कर और शुभ नहीं है ॥४५॥ शुद्ध ज्ञान रूपी अमृत को प्राप्त करके परम अक्षर का निर्णय होता है, गुप्त से भी अत्यन्त गुप्त को प्रयत्न करके ग्रहण करना चाहिये ॥४६॥ यह शास्त्र जो पुत्र न हो उसको न देना चाहिये, जो शिष्य न हो उसको कभी न देना चाहिये। गुरुदेव के भक्त, नित्य भक्ति परायण को ॥४७॥ यह शास्त्र देना चाहिये, दूसरे को नहीं देना चाहिये, यदि दे तो इसका दाता नरक को जाता है कभी सिद्धि नहीं प्राप्त होती ॥४८॥

गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी हो वह कहीं भी रहता हो वह अक्षर ब्रह्मको जानने वाला ज्ञानी ही है ॥४९॥

इस शास्त्र के ज्ञान से सब अवस्थाओं में विषयों में आसक्त विषयी मनुष्य भी दूसरे देह में शुभ को प्राप्त होता है ॥५०॥ ब्रह्म हत्या और अश्वमेधादि के पुण्य और पापों से लिप्त नहीं होता। प्रेरक, बोधक और मोक्ष देने वाले श्रेष्ठ समझे गये हैं ॥५१॥ संसार में इस प्रकार इन तीन प्रकार के आचार्यों को जाने, प्रेरक मार्ग दिखलाता है, बोधक स्थान पर चलाता है ॥५२॥ मोक्ष

देने वाला परम तत्त्व है, जिसको जान कर परमात्मा को प्राप्त होता है।

हे गौतम! देह में प्रत्यक्ष पूजन को संक्षेप से सुन ॥५३॥ इस पूजन को करने से वह मनुष्य सनातन अव्यय पद को प्राप्त होता है और स्वयं ही देह में कला रहित विन्दु को देखता है ॥५४॥ हे वत्स! दोनों अयनों के समान दिन रात्रि में प्रथम रेचक, पूरक और कुम्भक प्राणायाम को करके मार्ग जानने वाला सदा देखता है ॥५५॥ प्रथम दोनों का उच्चारण करके यथाक्रम से पूजन करे, नमस्कारसे, योगसे और मुद्रासे आरम्भ करके अर्चन करे ॥५६॥ हे वत्स! सूर्य का ग्रहण प्रत्यक्ष यजन कहा गया है। जैसे जल में जल इसी प्रकार ज्ञान से ही सायुज्य कहा है ॥५७॥ योगाभ्यास का श्रम करने से इतने गुण वर्तते हैं। इसलिये योग करके सब दुःखों को बाहर करके ॥५८॥ हंस मंत्र का उच्चारण करता हुआ योग रूप ध्यान करके ज्ञान की तन्मयता को प्राप्त करें। ज्ञान से परम स्वरूप को प्राप्त होता है ॥५९॥ प्राणियों के देह के मध्य में अच्युत हंस सदा स्थित है। हंस ही परम सत्य है, हंस ही शक्ति वाला है ॥६०॥ हंस ही परम वाक्य है, हंस ही वेदों का सार है, हंस ही परम रुद्र है, हंस ही पर से पर है ॥६१॥

सब देवों के मध्य में स्थित हंस ही महेश्वर है। पृथिवी से लेकर शिव पर्यन्त और अकारादि वर्णों से ॥६२॥ 'क्ष' कार तक हंस ही मात्राओं के समान स्थित है, मात्रा रहित मंत्र का

कहीं भी उपदेश नहीं दिया जाता ॥६३॥ हंस रूप उपमा रहित ज्योति देवों के मध्य में स्थित है। दक्षिण की तरफ मुख करके ज्ञान मुद्रा धारण करे ॥६४॥ और हंस मंत्र का स्मरण करता हुआ सदा समाधि करे। निर्मल स्फटिक के आकार वाले परम उत्तम दिव्य रूप ॥६५॥ मध्य देश में ज्ञान मुद्रा वाले आत्म रूप परमहंस का स्मरण करे। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान वायु ॥६६॥ पांच कर्मेन्द्रियों से युक्त होकर क्रिया शक्ति और बल वाले होते हैं। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय ॥६७॥ पांच ज्ञानेन्द्रियों से युक्त होकर ज्ञान शक्ति और बल वाले होते हैं। शक्ति में अग्नि और नाभि चक्र में सूर्य स्थित हैं ॥६८॥ प्रथम बंध मुद्रा करे, नासिका के अग्र और अपने नेत्रों में अकार में अग्नि कहा है, उकार में अग्नि हृदय में स्थित है ॥६९॥ मकार में और भ्रकुटियों के मध्य में प्राण शक्ति को लगावे। ब्रह्म ग्रंथि अकार में और विष्णु ग्रंथि हृदय में स्थित है ॥७०॥ रुद्र ग्रंथि भ्रकुटियों के मध्य में अक्षर वायु से भेदन की जाती है। अकार में ब्रह्मा स्थित है, उकार में विष्णु स्थित है ॥७१॥ मकार में रुद्र स्थित है, उसके अंत में पर से पर है। कण्ठ को सकोड़ कर नाड़ी आदि जिसकी शक्ति से अचल होजाती हैं ॥७२॥ जिह्वा को दबा कर सोलह आधार वाली, ऊपर जाने वाली, तीन शिखर वाली, तीन प्रकार की, ब्रह्मरंध्र में जाने वाली अत्यन्त सूक्ष्म उस सुषुम्ना नाड़ीको तथा ॥७३॥ त्रिशंख, वज्र रूप, ॐकार

रूप, ऊर्ध्व नाल वाली, भ्रकुटियों की तरफ जाने वाली कुण्डली और प्राणों को चला कर, चंद्र मण्डल को भेदन करके ॥७४॥ वज्र कुम्भ का साधन करते हुए नौ द्वारों को बन्द करे। प्रीति पूर्वक निर्गुण मन को पवन पर आरूढ़ करे ॥७५॥ तो ब्रह्म स्थान में नाद होवे और शाकिनी नाड़ी अमृत वर्षाने वाली होवे। षट्चक्र मण्डल के भेदन करने से ज्ञान दीपक प्रकाशित होता है ॥७६॥ सब भूतों में स्थित देव सबके ईश्वर का नित्य पूजन करे। उस आत्म रूप, ज्ञान रूप, रोग रहित को देख कर ॥७७॥ सर्व व्यापक माया रहित को दिव्य रूप से देखता हुआ 'हंस हंस' इस वाक्य को बोले, प्राणियों के देह में स्थित वह प्राण और अपान की ग्रंथि अजपा कहलाती है ॥७८॥ सदा इक्कीस हजार छः सौ उच्चारण करता हुआ हंस सोऽहम् कहलाता है ॥७९॥ कुण्डली के पूर्व भाग में अधोलिंग का, शिखा में पश्चिम लिंग का, भ्रकुटियों के मध्य में ज्योतिर्लिङ्ग का यती नित्य ध्यान करे ॥८०॥ मैं अच्युत हूं, मैं अचिंत्य हूं, मैं तर्क में न आऊँ ऐसा हूं, मैं अजन्मा हूं। मैं प्राण रहित हूँ, मैं काया रहित हूँ, मैं अंगों से रहित हूँ, मैं भय रहित हूँ ॥८१॥ मैं अशब्द हूँ, मैं अरूप हूँ, मैं स्पर्श रहित हूँ। मैं अद्वय हूँ, मैं रस रहित हूँ, मैं गंध रहित हूँ, मैं अनादि अमृत हूँ ॥८२॥ मैं नाश रहित हूँ, मैं लिंग रहित हूँ, मैं अजर हूँ, मैं कला रहित हूँ। प्राण रहित हूँ, मैं अमूक (गूँगा नहीं) हूँ, मैं अचिंत्य हूं, मैं अक्रिय हूँ ॥८३॥ मैं अंतर्यामी हूँ, मैं पकड़ने योग्य नहीं हूं, मैं कथन न करने योग्य

और लक्षण रहित हूं। मैं गोत्र रहित हूँ, मैं गात्र रहित हूँ, मैं चक्षु रहित हूं, मैं वाणी रहित हूं ॥८४॥ मैं अदृश्य हूं, मैं वर्ण रहित हूँ, मैं अखण्ड हूँ, मैं अद्भुत हूँ, मैं न सुना हुआ हूँ, न देखा हुआ हूँ, मैं खोजने योग्य हूँ, मैं अमर हूं ॥८५॥ मैं वायु रहित, आकाश रहित, तेज रहित, अव्यभिचारी हूँ, मैं न माना हुआ हूँ, न जन्मा हुआ, अति सूक्ष्म अविकारी हूँ ॥८६॥ मैं रजोगुण तमोगुण रहित हूँ, मैं सतोगुण रहित, गुण रहित हूँ, मैं माया रहित अनुभव स्वरूप हूँ, मैं अनन्य अविषय हूँ ॥८७॥ मैं अद्वैत हूँ, मैं अपूर्ण हूँ, मैं बाहर रहित हूँ, मैं भीतर रहित हूँ, मैं ओत रहित हूँ, मैं अदीर्घ हूं, मैं टुकड़ा रहित हूं, मैं रोग रहित हूँ ॥८८॥ मैं अद्वय आनन्द रूप विज्ञान घन हूँ, मैं विकार रहित हूँ। मैं इच्छा रहित हूँ, मैं लेप रहित हूँ, मैं अद्वय अकर्ता हूं ॥८९॥ मैं अविद्या के कार्य से रहित हूँ, वाणी और रसना का अविषय हूँ। मैं अल्प नहीं हूँ, मैं शोक रहित हूँ, मैं विकल्प रहित और विशेष अग्नि रहित हूं ॥९०॥ मैं आदि, मध्य और अन्त से रहित हूँ. मैं आकाश के समान हूं, मैं आत्म चैतन्य रूप हूँ, मैं आनन्द चेतन घन हूँ ॥९१॥ मैं आत्म संस्था हूँ, आनन्द अमृत रूप हूँ, मैं भीतर हूँ, मैं आत्मकाम हूँ, मैं आकाश से परम आत्मा ईश्वर हूँ ॥९२॥ मैं ईशान हूँ, मैं पूज्य उत्तम पुरुष हूँ, मैं उत्कृष्ट हूँ, मैं उपद्रष्टा हूँ, मैं पर से पर हूं ॥९३॥ मैं केवल हूँ, कवि हूँ, कर्म का अध्यक्ष और कारण का अधिपति हूँ, मैं गुप्त आशय हूँ, गुप्त रखने वाला हूँ, मैं नेत्रों का नेत्र

हूँ ॥९४॥ मैं चित् आनन्द हूँ, चेतनता देने वाला, चिद्घन, चिन्मय हूँ। मैं ज्योतिमय हूँ, मैं उत्तम ज्योतियों में ज्योति हूँ ॥९५॥ मैं अंधेरे का साक्षी हूँ, मैं अंधेरे से पर तुर्य का तुर्य हूँ, मैं दिव्य देव हूँ, मैं दुर्दर्श, दृष्टि का आधार ध्रुव हूँ ॥९६॥ मैं नित्य हूँ, मैं दोष रहित हूँ, मल रहित और क्रिया रहित हूं। मैं निर्मल और निर्विकल्प हूं, निश्चल और नाम रहित हूं ॥९७॥ मैं निर्विकार, नित्य पवित्र, निर्गुण और स्पृहा रहित हूँ, मैं इन्द्रिय रहित नियामक हूँ, मैं कला रहित और अपेक्षा रहित हूं ॥९८॥ मैं पुरुष परमात्मा हूं, मैं परम पुराण हूँ, मैं आर पार हूं, मैं प्राज्ञ प्रपंच का नाश करने वाला हूँ ॥९९॥ मैं परम अमृत हूँ, प्राचीन पूर्ण प्रभु हूँ, मैं पूर्ण आनन्द एक बोध रूप हूँ, मैं प्रत्यक्ष एक रस हूँ ॥१००॥ मैं प्रज्ञाता हूँ, मैं प्रशान्त, प्रकाश, परमेश्वर हूँ, मैं द्वैत अद्वैत से विलक्षण एक प्रकार से चिंतवन करने योग्य हूँ ॥१०१॥ मैं बुद्ध हूँ, मैं भूतपाल हूँ, मैं प्रकाश रूप भगवान् हूँ, मैं महान् महाज्ञेय महेश्वर हूं ॥१०२॥ मैं विमुक्त हूँ, मैं विभु हूं, श्रेष्ठ और व्यापक हूं, वैश्वानर, वासुदेव, विश्व का चक्षु हूँ ॥१०३॥ मैं विश्व से अधिक हूँ, निर्मल विष्णु विश्व का करने वाला हूं, मैं शुद्ध हूँ, शुक्ल शान्त हूँ, शाश्वत हूँ, शिव हूँ ॥१०४॥ मैं सब भूतों का अंतरात्मा सनातन हूं। मैं अपनी महिमा में सदा स्थित एक साथ प्रकाशित हुआ हूँ ॥१०५॥ मैं सब का आन्तर, ज्योति सबका अधिपति हूं, मैं सब भूतों का निवास स्थान हूँ, मैं सर्व व्यापक स्वयं राजा हूँ ॥१०६॥ सबका

साक्षी, सबका आत्मा सब भूतों का गुहाशय। सब इन्द्रियों और गुणों का प्रकाश, सब इन्द्रियों से रहित हूँ ॥१०७॥ मैं तीनों स्थानों से अतीत हूँ, मैं सब पर अनुग्रह करने वाला हूँ। मैं सच्चिदानन्द, पूर्ण आत्मा सबके प्रेम का विषय हूँ ॥१०८॥ मैं सच्चिदानन्द मात्र, स्वप्रकाश, चेतन घन हूँ। मैं सत्व स्वरूप, सन्मात्र सिद्ध और सबका आत्मा हूँ ॥१०९॥ अधिष्ठान, सन्मात्र, स्वआत्मा के बंध को हरने वाला हूँ। मैं सबका ग्रास करने वाला हूँ, मैं सबका द्रष्टा और सबका अनुभव हूँ ॥११०॥ जो इस प्रकार तत्त्व से जानता है, वह ही पुरुष कहलाता है, यह उपनिषत् है ॥

योग तत्त्वोपनिषत्।

[२१]

योगियों के हित की इच्छा से मैं योग तत्त्व को कहता हूँ, जिसके सुनने और पढ़ने से सब पापों से छूट जाता है ॥१॥ सब भूतों का आदि भगवान् विष्णु ही महान् तपस्वी और महा-योगी हैं। वह पुरुषोत्तम योग मार्ग में दीपक के समान दिखाई देता है ॥२॥ पितामह ब्रह्मा ने उस जगन्नाथ की आराधना करके और नमस्कार करके पूछा "अष्टांग सहित योग तत्त्व मुझसे कहिये" ॥३॥ उससे हृषीकेश भगवान् ने कहा मैं तत्त्व को कहता हूँ, सुनः—

सब जीव सुख दुःखके माया जालसे घिरे हुए हैं ॥४॥ उनकी मुक्ति करनेवाला माया जालको काटनेवाला, जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधिका नाश करने वाला और मृत्युसे पार करने वाला यही मार्ग है ॥५॥ कैवल्य परम पद अनेक मार्ग करके कठिनाई से प्राप्त होने योग्य है, (क्योंकि) शास्त्र जाल में पड़े हुओं की बुद्धि उससे मोहित है ॥६॥ स्वात्म प्रकाश रूप अकथनीय पद को देवता भी नहीं कह सकते तो उसका शास्त्र से किस प्रकार प्रकाश किया जाय ॥७॥ कला रहित, मल रहित, शांत, सबसे पर उपद्रव रहित ऐसा वह ही जीव रूप होने से पुण्य और पाप के फलों से युक्त होता है ॥८॥

वह परमात्मा पद, नित्य, सर्व भाव और पदसे अतीत, ज्ञान रूप, माया रहित है, तो वह किस प्रकार जीवत्व को प्राप्त हुआ ? ॥९॥

जलके समान उसमें से स्फुरन हुआ, उस (स्फुरन) में से अहंकार उत्पन्न हुआ, और पांच महा भूत रूप, धातु से बंधा हुआ, गुण रूप पिंड हुआ ॥१०॥ सुख दुःख से युक्त होकर जीने की भावना करने लगा इसलिये पंडितों ने परमात्मा में जीव भाव कहा है ॥११॥ काम, क्रोध, भय, मोह, लोभ, मद, रजोगुण, जन्म, मृत्यु, कृपणता, शोक, तन्द्रा, भूख, प्यास, ॥१२॥ तृष्णा, लज्जा, भय, दुःख, विषाद और हर्ष, इन दोषों से छुटा हुआ वह जीव केवल माना गया है ॥१३॥ इसलिये दोष के नाश करने के लिये मैं तुझे उपाय बताता हूं। योग रहित ज्ञान किस प्रकार अचल मोक्ष को देने वाला हो ? ॥१४॥ ज्ञान रहित योग भी मोक्ष करने में समर्थ नहीं है। इसलिये मुमुक्षु ज्ञान और योग का दृढ़ अभ्यास करे ॥१५॥ अज्ञान से ही संसार है, ज्ञान से ही निवृत्त होता है। आदि में ज्ञान स्वरूप ही है, और ज्ञान ही ज्ञेयका एक मात्र साधन है ॥१६॥ जिस करके कैवल्य, परमपद, कला रहित, निर्मल, साक्षात् सच्चिदानन्द रूप, उत्पत्ति, स्थिति, संहार और फुरना के ज्ञान से रहित, अपना रूप जाना जाय वह ज्ञान कहलाता है। अब मैं तुमसे योग कहता हूँ ॥१७-१८॥

हे ब्रह्मा ! व्यवहार के भेदसे योगके बहुत से भेद हैं मंत्रयोग, लययोग हठ और राजयोग ॥१९॥ आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति ये योग की अवस्थायें सर्वत्र कही गई हैं ॥२०॥ हे ब्रह्मा ! इनके लक्षण मैं संक्षेप से कहता हूँ, सुनः—जो मात्रा युक्त बारह सौ मंत्र जपे ॥२१॥ वह क्रम से अणिमा आदि गुण युक्त ज्ञानका प्राप्त करता है। इस योग को अल्प बुद्धि मन्द साधक करता है ॥२२॥ चित्त का लय रूप लययोग करोड़ों प्रकार का कहा गया है। चलते, बैठते, सोते, खाते, कला रहित ईश्वर का ध्यान करे ॥२३॥ वह ही लययोग है। अब हठयोग सुन। यम, नियम, आसन, प्राणों का संयम ॥२४॥ प्रत्याहार, धारणा और भ्रकुटी मध्य में हरि का ध्यान, समाधि—समतावस्था यह अष्टांग योग कहलाता है ॥२५॥ महामुद्रा, महाबन्ध, महा वेध और खेचरी, जालंधर, उड्डियाण और मूलबन्ध ॥२६॥ दीर्घ प्रणव का अनुसंधान, परम सिद्धांतका श्रवण, वज्रोली, अमरोली और सहजोली तीन प्रकार की मानी गई है ॥२७॥ हे ब्रह्मा ! इनमें से प्रत्येक के ठीक २ लक्षण सुन।

यमों में एक सूक्ष्म आहार ही मुख्य है, अन्य नहीं ॥२८॥ हे चतुरानन ! नियमों में एक अहिंसा ही मुख्य है। सिद्ध, पद्म, सिंह और भद्र ये चार आसन हैं ॥२९॥ हे चतुरानन ! प्रथम अभ्यास काल में विघ्न होते हैं। आलस्य, अपनी बड़ाई करना, धूर्तपने की बातें, मंत्र आदि साधन ॥३०॥ धातु और स्त्री की लोलुपता आदिक को बुद्धिमान् मृग तृष्णा और रोग जान कर

इन सब विघ्नों को पुण्य के प्रभाव से त्याग दे ॥३१॥ फिर स्वयं पद्मासन से बैठकर प्राणायाम करे। सूक्ष्म द्वार वाला छिद्र रहित सुन्दर मठ बनावे ॥३२॥ सुन्दर गोबर से लिपा हुआ प्रयत्न पूर्वक निर्मल किया हुआ हो। खटमल, मच्छर और मकड़ी से रहित हो और प्रयत्न पूर्वक ॥३३॥ दिन प्रतिदिन झाड़ कर शुद्ध किया जाय और विशेष करके धूप गुग्गल आदि सुगंधों से सुगंधित किया जाय ॥३४॥ मृगचर्म, वस्त्र और कुशा के न अत्यन्त ऊंचे और न अत्यन्त नीचे आसन पर बुद्धिमान् पद्मासन से बैठ-कर ॥३५॥ सीधा शरीर कर, हाथ जोड़, इष्ट देवता को नमन करे। फिर दक्षिण हाथ के अंगूठे से पिंगला (नाड़ी) को ॥३६॥ रोक कर इडा नाड़ी से धीरे २ वायु को भरे। फिर यथा शक्ति विरोध रहित कुम्भक करे ॥३७॥ फिर धीरे से पिंगला को छोड़े वेग से नहीं। फिर पिंगला से वायु खेंच कर धीरे २ उदर को भरे ॥३८॥ यथा शक्ति धारण करके इडा से धीरे २ निकाले। जिससे छोड़े उसीसे भर के विरोध रहित धारण करे ॥३९॥ न शीघ्र न विलम्ब से जानु की प्रदक्षिणा करके चुटकी बजावे इतने काल को मात्रा कहते हैं ॥४०॥ इडा द्वारा सोलह मात्रा से धीरे २ वायु को भर कर, कुम्भक करे पीछे चौसठ मात्रा तक कुम्भक करे ॥४१॥ फिर पिंगला नाड़ीसे बत्तीस मात्रासे निकाले। पिंगला से भर कर पूर्वके समान सावधान होकर ॥४२॥ सवेरे, दोपहर, संझा और आधी रात को चार बार धीरे २ अस्सी कुम्भकों तक का अभ्यास करे ॥४३॥ इस प्रकार तीन मास के अभ्यास से

नाड़ियों की शुद्धि होजाती है। जब नाड़ियों की शुद्धि होजाती है। तब जो वाहर के चिन्ह ॥४४॥ योगीके देह में उत्पन्न होते हैं, उन सबको कहता हूँ। शरीर का हलकापन, कांति, जठराग्नि का बढ़ना ॥४५॥ तथा तब शरीर की कृपता अवश्य होती है। योग में विघ्न करने वाला आहार श्रेष्ठ योगीको वर्जित है ॥४६॥ नमक, सरसों, खट्टा, उष्ण, रूखा और तीक्ष्ण पदार्थ, हरा शाक, हींग आदि अग्नि, स्त्री, मार्ग का सेवन ॥४७॥ सवेरे का स्नान, उपवास और कायाके क्लेशोंको योगी त्याग दे। अभ्यास कालमें प्रथम दूध घीके भोजन श्रेष्ठ हैं ॥४८॥ गेंहूँ, मूंग और चावलको योगकी वृद्धि करने वाला जाने। ऐसा करने से वायु धारण करने में इच्छा-नुसार समर्थ होता है ॥४९॥ इच्छानुसार वायु धारण करने से केवल कुम्भक सिद्ध होता है। रेचक पूरक रहित केवल कुम्भक सिद्ध होने पर ॥५०॥ उसको तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। प्रथम पसीना आता है, उसको मल लेवे ॥५१॥ फिर क्रम से धीरे २ वायु धारण करने से आसन पर स्थित देही के देह में कम्प होता है ॥५२॥ फिर अधिक अभ्यास करने से मेंडक का सा शब्द होता है, जिस प्रकार मेंडक उछल २ कर चलता है ॥५३॥ पद्मासन से बैठा हुआ योगी तब भूतल में जाता है। उससे अधिक अभ्यास से भूमि का त्याग होजाता है ॥५४॥ पद्मासन से बैठा हुआ वह भूमि छोड़कर वर्तता है और मनुष्य से न होने योग्य चेष्टा आदि करने का सामर्थ्य उत्पन्न होता है ॥५५॥ योगी अपना सामर्थ्य किसी को दिखावें नहीं, स्वयं अपने आप देखे

तो उससे अधिक उत्साह बढ़ता है। फिर वह योगी थोड़े या बहुत दुःख से पीड़ा को नहीं प्राप्त होता ॥५६॥ अल्प मल मूत्र वाला और अल्प निद्रावाला हो जाता है कीचड़, नजला, लार, पसीना और मुख में दुर्गंध ॥५७॥ ये सब इसके पीछे उसको किसी प्रकार से नहीं होते।

उससे अधिक अभ्यास करनेसे बहुत बल उत्पन्न होता है ॥५८॥ जिसको भूचर सिद्धि होजाती है, भूचरोंपर जय प्राप्त करनेको समर्थ होता है। व्याघ्र, शरभ हाथी अथवा गवय ॥५९॥ अथवा सिंह उस योगीके हाथसे ताड़न कियेहुए मरजाते हैं। कामदेवके समान योगी कारूपहोजाता है ॥६०॥ उसके रूप वश होकर स्त्रियां उसके संगम की इच्छा करती हैं। यदि यह संगम करे तो उसका विन्दु क्षय हो जाता है ॥६१॥ स्त्रियों का संग छोड़ कर आदर से अभ्यास करे। विन्दु को धारण करने से योगी के अंग में सुगन्ध उत्पन्न होता है ॥६२॥ तब एकांत में बैठ कर पूर्व किये हुए पापों के नाश करने के लिये प्लुत मात्रा से प्रणव को जपे ॥६३॥ प्रणव मंत्र सब विघ्नों और सब दोषों का हरने वाला है। इस प्रकार अभ्यास योग से आरम्भ ही में सिद्धियां प्राप्त होती हैं ॥६४॥ तब पवन के अभ्यास परायण होने से घटावस्था होती है। प्राण, अपान, मन, बुद्धि तथा जीवात्मा और परमात्मा ॥६५॥ इनके एक दूसरे के अविरोध से जब एकता घटती है। तब वह घटावस्था कहलाती है; मैं उसके चिह्न कहता हूँ ॥६६॥

जो पूर्व में अभ्यास कहा है, उसका चौथा अंश ग्रहण करे। दिन में या रात में एक पहर मात्र अभ्यास करे ॥६७॥ प्रति दिन एकवार केवल कुम्भक करे। योगी कुम्भकमें स्थित होकर इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयोंसे जो भली प्रकार खींच लेता है वह प्रत्याहार कहलाता है जो जो नेत्रों से देखे उस उसको 'वह आत्मा ही है' इसप्रकार भावना करे ॥६८-६९॥ जो कर्णोंसे सुने उस उस को 'वह आत्मा है' इस प्रकार भावना करे। जो जो नासिका से से प्राप्त करे उस उस को 'वह आत्मा है' ऐसी भावना करे ॥७०॥ जिह्वा से जो जो रस खावे उस उस को 'वह आत्मा है' ऐसी भावना करे। त्वचा से योगी जिस २ को छुये उस २ को 'वह आत्मा है' ऐसी भावना करे ॥७१॥ इस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों के उन २ सुखों को योगी प्रति दिन एक पहर तक आलस्य रहित प्रयत्न पूर्वक साधन करे ॥७२॥ ज्यों २ योगी के चित्त का सामर्थ्य दृढ़ होता जाता है, त्यों २ दूरका सुनना, क्षण में दूर से आना तथा ॥७३॥ वचन सिद्ध, काम रूपपना, अदृश्य हो जाना तथा मल मूत्र लेपन करने से लोहे आदिका सोना हो जाना ये सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं ॥७४॥ सदा अभ्यास के योग से उस को आकाश में गति हो जाती है। बुद्धिमान् योगी को योग की सिद्धि के लिये सदा भावना करनी चाहिये ॥७५॥ सिद्धि में ये विघ्न होते हैं, बुद्धिमान् उनमें प्रीति न करे। योगीराज अपने सामर्थ्य को हर किसी को न दिखलावे ॥७६॥ जैसे मूढ, मूर्ख अथवा बहिरा होता है इसी प्रकार लोगों से अपने सामर्थ्य के

गुप्त रखने को वर्ते ॥७७॥ शिष्य अपने अपने कार्य के लिये प्रार्थना करते हैं, इसमें संशय नहीं है परंतु उस २ कर्म के करने में व्यग्र होने से अपने अभ्यास को न भूल जावे ॥७८॥ गुरु के वाक्य को न भूल कर दिन रात अभ्यास करे। इस प्रकार सदा अभ्यास के योगसे घटावस्था होती है ॥७९॥ विना अभ्यास किये वृथा वार्तों से सिद्धि नहीं होती। इसलिये प्रयत्न पूर्वक सदा योग का अभ्यास करे ॥८०॥ फिर अभ्यास योग से परिचय अवस्था होती है। यत्न से अग्नि और कुंडली सहित वायु का परिचय करके ॥८१॥ भावना करके सुषुम्ना में हठ रहित प्रवेश करे। वायु के साथ चित्तको महापथ (सुषुम्ना) में प्रवेश करे ॥८२॥

जिसका चित्त और पवन सुषुम्ना में प्रवेश करता है उसके लिये भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश ॥८३॥ इन पांचों में देवताओं की पांच प्रकार की धारणा कही जाती है। पैर से जानु तक पृथिवी का स्थान कहलाता है ॥८४॥ पृथिवी चार कोण वाली, पीले रंग की और 'ल' वर्ण वाली है, पृथिवी में वायु को आरोप कर के लकार से युक्त हो कर ॥८५॥ सुवर्ण के रंग वाले चार भुजा वाले और चार मुख वाले ब्रह्मा का ध्यान करता हुआ पांच घड़ी तक धारणा करे तो पृथिवी पर जय प्राप्त होता है ॥८६॥ पृथिवी के योग से उस योगी का मृत्यु नहीं होता। जानु से गुदा पर्यन्त जल का स्थान कहा है ॥८७॥ जल अर्ध चन्द्र

वाला शुक्ल और 'वं' वीज वाला कहा गया है। जल में वायु का आरोप कर के वकार से युक्त हो कर ॥८८॥ चार भुजा वाले, शुद्ध स्फटिक के समान तथा पीले वस्त्र वाले, अच्युत नारायण देव का स्मरण करता हुआ ॥८९॥ पांच घड़ी तक धारणा करे तो सव पापों से अत्यन्त मुक्त हो जाता है। फिर जल से भय नहीं होता, न जल से मृत्यु होता है ॥९०॥ गुदा से ले कर हृदय पर्यन्त अग्नि का स्थान कहा है। अग्नि तीन कोण वाला, लाल, 'रफ' अक्षर से उत्पन्न हुआ है ॥९१॥ अग्नि में वायु का आरोप करके 'र' अक्षरसे युक्त दीप्तिमान् तीन नेत्रवाले, वर देनेवाले तरुण सूर्य के समान प्रकाश वाले, सव अंग में भस्म लगाये हुए अत्यन्त प्रसन्नता वाले रुद्र का स्मरण करते हुए पांच घड़ी तक धारणा करे वह अग्नि से जलाया नहीं जाता ॥९२-९३॥ उसका शरीर अग्नि मंडल में प्रवेश करने पर भी नहीं जलता। हृदय से लेकर भ्रकुटी मध्य तक वायु का स्थान कहा है ॥९४॥ वायु छः कोण वाला, कृष्ण, यकार अक्षर से प्रकाशित है। मरुतों के स्थान में यकार अक्षर से प्रकाशित मारुत है ॥९५॥ वहां विश्वतोमुख सर्वज्ञ ईश्वर की धारणा करे। पांच घड़ी तक धारणा करने से वायु के समान आकाश में जाने वाला होवे ॥९६॥ उस योगी को वायु से भय अथवा मरण नहीं होता। भ्रकुटी के मध्य से मूर्धा के अन्त तक आकाश का स्थान कहा गया है ॥९७॥ आकाश गोल, धुआं रूप और हकार अक्षर से प्रकाशित है, आकाश में वायु का आरोप

करके हकार के ऊपर शंकर ॥९८॥ जो विन्दु रूप महादेव है, व्योम के आकार वाले सदाशिव है, शुद्ध स्फटिक के समान है, द्विज का चन्द्रमा मस्तक पर धारण किये हुए हैं ॥९९॥ पांच मुख वाले, सौम्य, दश भुजा वाले, तीन नेत्र वाले, सब अस्त्र धारण किये हुए, सब भूषणों से भूषित ॥१००॥ पार्वती के अर्ध देह वाले, सब कारणों के कारण हैं, उनकी आकाश में धारणा करने से निश्चय आकाश में चलने की गति होती है ॥१०१॥ जहां कहीं भी टिका हुआ अत्यन्त सुखको भोगता है।

इस प्रकार बुद्धिमान् योगी पांच प्रकारकी धारणा करे ॥१०२॥ तब शरीर दृढ़ होजाता है, उसका मृत्यु नहीं होता और वह महामति ब्रह्मा के लय होने पर भी दुःखी नहीं होता ॥१०३॥ छः घड़ी तक वायुको आकाश में रोक कर इष्ट सिद्धि देने वाले देवताओं का इस प्रकार ध्यान करे ॥१०४॥ सगुण ध्यान करने से अणिमा आदिक सिद्धियां प्राप्त होती हैं। निर्गुण ध्यान युक्तको उससे समाधि होती है ॥१०५॥ बारह दिन में ही समाधि को प्राप्त करे यह बुद्धिमान् वायु को रोक कर जीवन्मुक्त होता है ॥१०६॥ जीवात्मा और परमात्मा की समान अवस्था समाधि है। यदि अपनी देह को छोड़ने की इच्छा होतो स्वयं छोड़ देवे ॥१०७॥ परब्रह्म में लय होने से फिर उसका उत्थान नहीं होता। यदि अपना शरीर प्रिय हो तो उसे न छोड़े ॥१०८॥ अणिमादि सिद्धियों से युक्त सब लोकों में विहार करता हुआ, कभी अपनी इच्छासे देव होकर स्वर्ग में महत्वता को प्राप्त होता है ॥१०९॥ अपनी इच्छा अथवा विचारसे

ही मनुष्य अथवा यक्ष हो जाता है, सिंह व्याघ्र हाथी अथवा घोड़ा होकर अपनी इच्छा से ही अनेकता को प्राप्त हो जाता है ॥११०॥ महेश्वर योगी अपनी इच्छानुसार वर्ताव करता है।

अभ्यास के भेद से भेद है, फल तो समान ही है ॥१११॥ बायें पैर की एड़ी को योनि स्थान में लगावे। दाहिने पैर को पसार कर हाथों से दृढ़ पकड़े रहे ॥११२॥ ठोड़ी को छाती पर रख फिर वायु से पूर्ण करे। कुम्भक से यथाशक्ति धारण करके रेचन करे ॥११३॥ बायें अंग से अभ्यास करके फिर दायें अंग से अभ्यास करे। जो पैर फैलाया हुआ था उसको जांघ पर झुकावे ॥११४॥ यह ही महाबंध है, उसको दोनों तरफ से अभ्यास करे। महाबंध में स्थित योगी एकाग्र बुद्धि से पूरक करके ॥११५॥ कण्ठ मुद्रा से धारण किये हुए वायु की गति को रोक कर दोनों नथनों का संकोच करने से वायु शीघ्र भर जाता है ॥११६॥ यह ही महावेध सिद्धों से नित्य अभ्यास किया जाता है। कपाल के भीतर के छिद्र में जिह्वा को उलट कर धारण करे ॥११७॥ और भ्रकुटी के मध्य में दृष्टि रक्खे; यह खेचरी मुद्रा होती है। कण्ठ को सकोड़ कर दृढ़ बुद्धि से छाती पर रक्खे ॥११८॥ यह जालंधर नाम का बंध मृत्यु रूपी हाथी के लिये सिंह है। जिससे बंधा हुआ प्राण सुषुम्ना में उड़ जाता है ॥११९॥ इसलिये इसको योगियों ने उड्डियान बंध कहा है। एड़ी के भाग से योनि को भली प्रकार दबाकर संकोच करे ॥१२०॥ अपान को ऊपर उठाना योनि-बंध कहलाता है। प्राण और

अपान तथा नाद और बिन्दू मूल बंध से एकता को ॥ १२१ ॥ प्राप्त होने से योग की सिद्धि प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है। विपरीता नाम की करणी सब व्याधियों को नाश करने वाली है ॥ १२२ ॥ नित्य अभ्यास करने वाले की जठराग्नि को बढ़ाने वाली है और उस साधक का आहार बढ़ाने वाली है ॥ १२३ ॥ यदि थोड़ा आहार हो तो उसी क्षण अग्नि देह को नाश करे। प्रथम दिन क्षण भर नीचे को शिर और ऊपर को पैर वाला होवे ॥ १२४ ॥ और क्षण से कुछ अधिक प्रतिदिन अभ्यास बढ़ावे। तो तीन मास में झुर्रियां और बालों की सफेदी नहीं दिखाई देगी ॥ १२५ ॥

जो एक पहर तक नित्य अभ्यास करे तो काल को जीतने वाला होवे। जो योगी वज्रोली का अभ्यास करता है वह सिद्धि का पात्र है ॥ १२६ ॥ यदि (वज्रोली) प्राप्त हो जाय तो योग सिद्धि उसके हाथ में ही स्थित है। वह भूत भविष्य को जान जावे और निश्चय आकाशचारी होवे ॥ १२७ ॥ जो अमरी का प्रतिदिन पान करें तथा नासिका द्वारा नास ले और वज्रोलीका नित्य अभ्यास करे, वह अमरोली कहलाती है ॥ १२८ ॥ तब राजयोग होता है, देर नहीं लगती। जब राज योग द्वारा योगी क्रियासे रहित होते हैं ॥ १२९ ॥ तब उनको निश्चय विवेक और वैराग्य प्राप्त होता है। विष्णु भगवान ही महा योगी, महा ऐश्वर्य वाला और महा तप वाला है ॥ १३० ॥ तत्त्व मार्ग में

दीपक के समान वह पुरुषोत्तम दिखाई देता है, जो स्तन प्रथम पिया था उसको ही दबाकर आनन्द भोगता है ॥ १३१ ॥ जिस योनि में से उत्पन्न हुआ था उसी योनि में रमता है । जो माता है वह फिर भार्या और जो भार्या है वह फिर माता होती है ॥१३२॥ जो पिता था वह ही फिर पुत्र होता है और पुत्र पिता होता है । इस प्रकार संचार चक्र द्वारा कूप चक्र में घड़ों के समान ॥ १३३ ॥ नाना योनियों में भ्रमता हुआ सुनकर लोकोंको प्राप्त होता है । तीन लोक, तीन वेद, तीन संध्या तीन स्वर ॥१३४॥ तीन अग्नि, तीन गुण, सब तीन अक्षरों में स्थित हैं, तीनों अक्षर और आधे अक्षर को भी जो योगी पढ़ता है ॥ १३५ ॥ उसमें यह सब प्रोया हुआ है, वह सत्य है, वह परम पद है । पुष्प में जिस प्रकार गन्ध है, दूध में जिस प्रकार घी है ॥ १३६ ॥ जैसे तिल में तेल है, जैसे पत्थर में सोना होता है । वैसा वह व्यापक होता है ।

हृदय स्थान में कमल स्थित है, उसका मुख नीचे की तरफ है ॥ १३७ ॥ ऊपर डन्डी है, नीचे बिंदु है, उसके मध्य में मन स्थित है । अकार में रेचन किया हुआ कमल उकार से भेदन किया जाता है ॥ १३८ ॥ मकारमें नादको प्राप्त करता है, अमात्रा निश्चल शुद्ध स्फटिक के समान कला रहित और पाप नाशक है ॥ १३९ ॥ योग युक्त पुरुष उस परमपद को प्राप्त करता है । जिस प्रकार कछुआ अपने हाथ, पैर, शिर आदि को अपने में

धारण करता है ॥ १४० ॥ इसी प्रकार सब द्वारों में भर कर दबाया हुआ वायु नौ द्वारों के बंद होने से ऊपर चला जाता है ॥ १४१ ॥ घटमें वायु रहित दीप के समान कुंभक जान । नौ द्वार रोके हुए होने से निर्जन, उपद्रव रहित देश में ॥ १४२ ॥ योग का सेवन करने से केवल आत्म रूप से शेष रहा हुआ है ऐसा निश्चय करके जान यह उपनिषत् है ॥ इति योग तत्त्वोपनिषत् समाप्त ॥

सुबालोपनिषत् ।

[२२]

"वह क्या था ?" वे विचारने लगे। उससे कहा "वह न सत् था, न असत् था, उसमें से तम उत्पन्न हुआ, तम में से भूतादि, भूतादि से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी हुई। वह (पृथिवी) अण्ड रूप हुई, उस (अण्ड) ने संवत्सर मात्र रह कर अपने दो विभाग किये, नीचे का भाग पृथिवी और ऊपर का आकाश हुआ मध्य में पुरुष हुआ, यह दिव्य पुरुष हजारों शिर वाला, हजारों आंखों वाला, हजारों पैर वाला और हजारों भुजाओं वाला था। उसने प्रथम भूतों का मृत्यु उत्पन्न किया, उस तीन अक्षर वाले, तीन शिर वाले, तीन पाद वाले और खण्ड परशु वाले को (देख कर) ब्रह्मा डरता है। उसने ब्रह्मा में प्रवेश किया, उसने मानसी सात पुत्र उत्पन्न किये। उन सात विराट ने मानसिक सत्य प्रजा उत्पन्न की, वे ही प्रजापति हुए ब्राह्मण उसके मुख से हुए, भुजाओं से क्षत्रियों को उत्पन्न किया, उसकी जंघाओं से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। चन्द्रमा मन से उत्पन्न हुआ, नेत्रों से सूर्य उत्पन्न हुआ. श्रोत्रों से वायु और प्राण हृदय से यह सब उत्पन्न हुआ ॥ इति प्रथम खण्ड समाप्त हुआ ॥ १ ॥

अपान से निषाद, यक्ष, राक्षस और गन्धर्व, हड्डी से पर्वत, रोमों से औषधि और वनस्पति, ललाट से क्रोध रूप रुद्र उत्पन्न

होता है। उस महान् भूत के निश्वास में से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, व्याख्यान, उपव्याख्यान और सब भूत होते हैं। उस हिरण्यज्योति आत्मा में भुवन और विश्व टिके हुए हैं। उसने अपने दो भाग किये, आधे से स्त्री और आधे से पुरुष। देव होकर देवों को उत्पन्न किया, ऋषि होकर ऋषियों को तथा यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, ग्राम और वन के पशुओं को (इसी रीति से) उत्पन्न किया। एक गौ हुई, दूसरा बैल, एक घोड़ी, दूसरा घोड़ा, एक गधी, दूसरा गधा, एक विश्वम्भरी और दूसरा विश्वम्भर हुआ। अन्त में उसने वैश्वानर होकर सब भूतों को जलाया। पृथिवी जल में लय हुई, जल तेज में लय हुआ, तेज वायु में लय हुआ, वायु आकाश में लय हुआ, आकाश इन्द्रियों में, इन्द्रियां तन्मात्राओं में, तन्मात्रा भूतादि में लय हुई। भूतादि महत् में लय हुए, महत् अव्यक्त में लय हुआ, अव्यक्त अक्षर में लय हुआ, अक्षर तम में लय हुआ और तम परदेव में मिल गया। उससे परे न सत् है, न असत् है, यह निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है यह वेद का उपदेश है॥ इति दूसरा खण्ड समाप्त हुआ॥२॥

पूर्व में यह असत् ही था। आत्मा उत्पत्ति रहित, भूत रहित, प्रतिष्ठा रहित, शब्द रहित, स्पर्श रहित, रूप रहित, रस रहित, गन्ध रहित, व्यय रहित, महान् भाव से रहित, वृद्धि से रहित, जन्म रहित मान कर धीर पुरुष शोच नहीं करता। प्राण रहित,

मुख रहित, श्रोत्र रहित, वाणी रहित, मन रहित, तेज रहित, चक्षु रहित, नाम और गोत्र से रहित, शिर रहित, हाथ पैर रहित, चिकनाई रहित, लोहू रहित, प्रमाण रहित, न ह्रस्व, न दीर्घ, न स्थूल, न अणु, न अल्प, पार रहित, अकथनीय, न प्राप्त करने योग्य, तर्क रहित, न प्रकाश करने योग्य, न छुपाने योग्य अन्तर रहित, वाह्य रहित, वह न कुछ खाता है और न कोई उसको खाता है। उसको सत्य, दान, उपवास युक्त तप, ब्रह्मचर्य, निर्वेदन (वैराग्य) और संन्यास इन छः अंगों से प्राप्त करे। दम, दान और दया इन तीनों को धारण करे। जो इस प्रकार जानता है, उसका प्राण उत्क्रमण नहीं करता, यहां ही लय हो जाता है। वह ब्रह्म होकर ब्रह्म को ही प्राप्त होता है॥ इति तीसरा खण्ड समाप्त हुआ॥ ३॥

हृदय के मध्य में लाल मांस का पिण्ड है, उसमें वह दहर रूप कमल, कुमुद के समान अनेक प्रकार से खिला हुआ है। हृदय में दश छिद्र होते हैं, जिनमें प्राण स्थित हैं। जब वह प्राण से युक्त होता है तब बहुत प्रकार के नदी और नगर देखता है, जब व्यान के साथ युक्त होता है तब देवता और ऋषियों को देखता है और जब अपान के साथ युक्त होता है तब यक्ष, राक्षस और गन्धर्वों को देखता है, जब उदान के साथ युक्त होता है तब देवलोक, देव, स्कन्द और जयन्त को देखता है और जब समान के साथ युक्त होता है तब देवलोक और वनों को देखता है। जब वैरम्भ के साथ संयुक्त होता है तब

देखे हुए, सुने हुए, खाये हुए, न खाये हुए, सत् और असत् सबको देखता है। ये दश दश नाड़ियां होती हैं, उन एक एक की बहत्तर बहत्तर शाखा हजार नाड़ियां होती हैं, जिसमें यह आत्मा सोता और शब्दों को करता है। जब वह दूसरे कोश में सोता है तब इस लोक और परलोक को देखता है, सब शब्दों को जानता है, वह संप्रसाद कहलाता है। प्राण शरीर की रक्षा करता है, हरी, नीली, पीली, लाल और सफेद नाड़ियां रुधिर पूर्ण हैं। यहां यह दहर कमल कुमुद के समान अनेक प्रकार से खिला हुआ है, जैसे केश के हजारों भाग किये हों वैसे ही सूक्ष्म हिता नाम की नाड़ियां हैं। हृदय आकाश के पर कोश में यह दिव्य आत्मा सोता है, जहां सोया हुआ न किसी कामना की इच्छा करता है, न किसी स्वप्न को देखता है, न वहां देव, न देवलोक, न अयज्ञ, न यज्ञ, न माता, न पिता, न बन्धु, न सम्बन्धी, न चोर, न ब्रह्म हत्यारा, तेजःपुञ्ज अमृत स्वरूप जल में जैसे जल मग्न हो वैसा है। फिर उस मार्ग से सम्राट (आत्मा) जाग्रत में दौड़ता है" इस प्रकार उसने कहा॥ इति चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

जो स्थानियों को स्थान देता है, स्थान, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, चक्षु अध्यात्म है, द्रष्टव्य अधिभूत है और आदित्य अधिदैवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो चक्षुओं में, जो द्रष्टव्य में, जो आदित्य में, जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो विज्ञान—बुद्धि में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में है, जो इन

सबके भीतर घूमता है सो यह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे। श्रोत्र अध्यात्म है, श्रोतव्य अधिभूत है, दिशा उनमें अधिदैवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो श्रोत्र में, जो श्रोतव्य में, जो दिशाओं में, जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो बुद्धि में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में है, जो इन सबके भीतर घूमता है, सो यह आत्मा है उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे। नासिका अध्यात्म है, घ्रातव्य अधिभूत है, पृथ्वी उनमें अधिदैवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो नासिका में, जो घ्रातव्य में, जो पृथ्वीमें, जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो बुद्धि में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सबमें घूमता है, सो यह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय शोक रहित अनन्त आत्मा की उपासना करे। जिह्वा अध्यात्म है, चखने योग्य अधिभूत है, वरुण उनमें अधिदैवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो जिह्वा में, जो चखने योग्य में, जो वरुण में, जो नाड़ियों में, जो प्राणमें, जो बुद्धिमें, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सबके भीतर घूमता है, वह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित, अनंत आत्माकी उपासना करे। त्वचा अध्यात्म है, स्पर्श के योग्य अधिभूत है, वायु उनमें अधिदैवत है, नाड़ी उनसे संबंध वाली है, जो त्वचामें, जो स्पर्श करने योग्यमें, जो वायुमें, जो नाड़ियों में, जो प्राणमें, जो बुद्धिमें जो आनंदमें, जो हृदयाकाशमें, जो इन सब में घूमता है, वह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय, शोक

रहित अनन्त आत्मा की उपासना करें। मन अध्यात्म है, मन्तव्य अधिभूत है, चन्द्र उनमें अधिदैवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो मन में, जो मन्तव्य में, जो चन्द्र में जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो बुद्धि में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सब में घूमता है, वह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित अनन्त आत्मा की उपासना करे॥ बुद्धि अध्यात्म है, बोद्धव्य अधिभूत है, ब्रह्मा उनमें अधिदैवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो बुद्धि में, जो बोद्धव्य में, जो ब्रह्मा में, जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो विज्ञान में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सब में घूमता है, वह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित अनन्त आत्मा की उपासना करे॥ अहंकार अध्यात्म है, अहंकार करने के योग्य अधिभूत है, रुद्र उनमें अधिदैवत है, नाड़ी उन से सम्बन्ध वाली है, जो अहंकार में, जो अहंकार करने योग्य में, रुद्र में, जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो विज्ञान में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सब में घूमता है वह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे॥ चित्त अध्यात्म है, चिन्तन योग्य अधिभूत है, क्षेत्रज्ञ उनमें अधिदैवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो चित्त में, जो चिन्तन योग्य में, जो क्षेत्रज्ञ में, जो प्राण में, जो विज्ञान में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सब में घूमता है, वह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे॥ वाणी अध्यात्म है, वक्तव्य

अधिभूत है, अग्नि उनमें अधिदैवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो वाणी में, जो वक्तव्य में, जो अग्नि में, जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो विज्ञान में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सब में घूमता है, वह आत्मा है उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे॥ हाथ अध्यात्म है, पकड़ने योग्य अधिभूत है, इन्द्र उनमें अधिदैवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो हाथ में, जो पकड़ने योग्य में, जो इन्द्रमें, जो नाड़ियोंमें, जो प्राणमें, जो आनन्दमें, जो हृदयाकाश में जो इन सब में घूमता है वह आत्मा है; उस अजर, अमर, निर्भय शोकरहित, अनन्त आत्माकी उपासना करे। पाद अध्यात्म है, चलना अधिभूत है, विष्णु उनमें अधिदैवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो पाद में जो चलने में जो विष्णु में, जो नाड़ियों में जो प्राण में जो विज्ञान में जो आनन्द में जो हृदयाकाश में, जो इन सब में घूमता है, वह आत्मा है, उस अजर, अमर निर्भय शोक रहित अनन्त आत्मा की उपासना करे॥ पायु अध्यात्म है, त्यागने योग्य अधिभूत है, मृत्यु उनमें अधिदैवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो पायु में जो त्यागने योग्य पदार्थ में जो मृत्यु में जो नाड़ियों में जो प्राण में जो विज्ञान में जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में जो इन सब में घूमता है, वह यह आत्मा है, इस अजर, अमर निर्भय शोक रहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे॥ उपस्थ अध्यात्म है, आनन्द अधिभूत है प्रजापति उनमें अधिदैवत है, नाड़ी

उनसे सम्बन्ध वाली है, जो उपस्थ में जो आनन्द में जो प्रजापति में जो नाड़ियों में जो प्राण में जो विज्ञान में जो आनन्द में ,जो हृदयाकाश में, जो इन सब में घूमता है, वह यह आत्मा है, उस अजर अमर, निर्भय शोक रहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे ॥ यह ही सर्वज्ञ है, यह ही सबका ईश्वर है, यह सबका अधिपति है, यह अंतर्यामी है, यह सबका कारण है जो सबको सुख पूर्वक उपासना करने योग्य है और जो सब सुखों की उपासना नहीं करता, जो वेद शास्त्रों से उपासना करने योग्य है और जो वेद शास्त्रों की उपासना नहीं करता, जिसके यह सब अन्न हैं, और जो किसी का अन्न नहीं है, इसलिये पर है, सब का नेत्र है, प्रशास्ता अन्नमय है भूतात्मा प्राणमय है, इन्द्रिय आत्मा मनोमय है, संकल्पात्मा विज्ञानमय है, कालात्मा आनंन्दमय है, लयात्मकपना नहीं है तो द्वैत कहां, मरण नहीं है तो अमृत कहां न अंतर्प्रज्ञ है, न वहिर्प्रज्ञ है, न दोनों (भीतर बाहर) प्रज्ञ है, न प्रज्ञानघन है न प्रज्ञ है। अप्रज्ञ भी नहीं है, न जाना हुआ है, न जानने योग्य है, यह निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है ॥ इति पांचवां खंड समाप्त हुआ ॥५॥

यह कुछ भी प्रथम नहीं था। यह प्रजा मूल रहित और आधार रहित उत्पन्न होती है। दिव्य देव एक नारायण चक्षु और द्रष्टव्य है, नारायण श्रोत्र और श्रोतव्य है, नारायण घ्राण और घ्रातव्य है, नारायण जिह्वा और रसयितव्य है, नारायण त्वचा

और स्पर्शयितव्य है, नारायण मन और मन्तव्य है, नारायण बुद्धि और बोद्धव्य हैं, नारायण अहंकार और अहं कर्तव्य हैं, नारायण चित्त और चेतव्य है, नारायण वाणी और वक्तव्य है, नारायण हाथ और पकड़ने योग्य है, नारायण पाद और गंतव्य है, नारायण पायु और त्यागने योग्य है, नारायण उपस्थ और आनन्द का विषय है और नारायण धाता, विधाता, कर्ता, विकर्ता हैं। दिव्यदेव एक नारायण आदित्य, रुद्र, मरुत, वसु, अश्वनी-कुमार, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, मंत्र, अग्नि, घृत और आहुति है। नारायण उत्पत्ति और स्थिति रूप है। दिव्य देव एक नारायण माता, पिता, भाई, स्थान, शरण, सन्मित्र और गति है, नारायण विराट है, सुदर्शना, अजिता, सोम्या, मोघा, कुमारा, अमृता, सत्या, मध्यमा, नासीरा, शिशुरा, सूरा, सूर्या और स्वरा में नाड़ियों के दिव्य नाम जानने चाहिये। नारायण गर्जता हैं, गाता है, वहन करता है, वर्षता है। वरुण, यम, चन्द्रमा, कला, कलि, धाता, ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, दिन, आधा दिन, कला, कल्प, ऊर्ध्व और दिशा सब नारायण है। जो कुछ है, जो कुछ था, जो कुछ होगा (जो अन्न से वृद्धि को प्राप्त होता है और जो अमृत रूप है, उन सबका यह परमात्मा) वह सब पुरुष ही है। उस विष्णु के परमपद को विद्वान् सदा देखते हैं, वह आकाश के समान फैला हुआ है। काम क्रोध रहित ब्राह्मण सदा ज्ञाननिष्ठामें रह कर उसको प्राप्त करते हैं। वह विष्णु का परमपद है। यह

निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है यह वेद का उपदेश है॥ इति छठा खंड समाप्त हुआ ॥६॥

शरीर के भीतर,गुहा में अज, एक, नित्य स्थित है, जिसका पृथिवी शरीर है, जो पृथिवी के भीतर संचार करता है, जिसको पृथिवी नहीं जानती। जिसका जल शरीर है, जो जल के भीतर संचार करता है, जिसको जल नहीं जानता। जिसका तेज शरीर है, जो तेज के भीतर संचार करता है, जिसको तेज नहीं जानता। जिसका वायु शरीर है, जो वायु के भीतर संचार करता है, जिसको वायु नहीं जानता। जिसका आकाश शरीर है, जो आकाशके भीतर संचार करता है, जिसको आकाश नहीं जानता जिसका मन शरीर है, जो मन के भीतर संचार करता है, जिसको मन नहीं जानता। जिसका बुद्धि शरीर है, जो बुद्धि के भीतर संचार करता है, जिसको बुद्धि नहीं जानती। जिसका अहंकार शरीर है, जो अहंकार के भीतर संचार करता है, जिसको अहंकार नहीं जानता। जिसका चित्त शरीर है, जो चित्त के भीतर संचार करता है, जिसको चित्त नहीं जानता। जिसका अव्यक्त शरीर है, जो अव्यक्त के भीतर संचार करता है, जिसको अव्यक्त नहीं जानता। जिसका अक्षर शरीर है, जो अक्षर के भीतर संचार करता है जिसको अक्षर नहीं जानता। जिसका मृत्यु शरीर है, जो मृत्यु के भीतर संचार करता है, जिसको मृत्यु नहीं जानता वह ही सब भूतोंका अन्तरात्मा, पाप रहित दिव्य देव एक नारायण है। यह विद्या अपान्तरतम (विष्णु) को दी,

अपान्तरतम ने ब्रह्मा को दी ब्रह्मा ने घोरांगिर को दी, घोरांगिर ने रैक को दी, रैक ने राम को दी, और राम ने सब प्राणियों को दी। यह निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है॥ इति सातवां खण्ड समाप्त हुआ॥ ७॥

शरीर के भीतर गुहा में रहा हुआ यह सर्वका शुद्ध आत्मा है, दीवारपर खिंचे हुए चित्रके समान गंधर्व नगरकी उपमा वाले, केलेके वृक्षके गर्भ के समान सार रहित, मेद, मांस और पसीने से युक्त, जल के बुदबुदे के समान चंचल और अत्यन्त नाशवान् शरीर के मध्य में अचिंत्य रूप, दिव्य देव रूप, असंग, शुद्ध, तेज रूप शरीर वाले, रूप रहित, सबके ईश्वर, अचिंत्य, शरीर रहित गुहा में रहे हुए अमृत रूप शोभायमान् और आनन्द रूप उस आत्मा को भिन्न कर के विद्वान् देखते हैं। उसके लय होने पर नहीं देखते॥ इति आठवां खण्ड समाप्त हुआ॥ ८॥

रैक ने अपने गुरु से पूछा "हे भगवन्! सब किस में अस्त होते हैं?" उसने उससे कहा "चक्षु को प्राप्त होता है, चक्षुको भी अस्तकरके जाता है, द्रष्टव्यको प्राप्त होता है, जो द्रष्टव्य को भी अस्त कर के जाता है, आदित्य को प्राप्त होता है, जो आदित्य को भी अस्त करके जाता है विराट को प्राप्त होता है, जो विराट को भी अस्त कर के जाता है, प्राण को प्राप्त होता है, जो प्राण को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्दको प्राप्त होता है,

जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त कर के जाता है, वह उस अमृत, अभय अशोक, अनन्त, निर्बीज को प्राप्त होता है" इस प्रकार कहा ॥ "श्रोत्र को प्राप्त होता है, जो श्रोत्र को भी अस्त कर के जाता है, श्रोतव्य को प्राप्त होता है, जो श्रोतव्य को भी अस्त करके जाता है, दिशा को प्राप्त होता है, जो दिशा को भी अस्त कर के जाता है. सुदर्शना को प्राप्त होता है, जो सुदर्शना को भी अस्त करके जाता है, अपान को प्राप्त होता है, जो अपान को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय, अशोक, अनन्त निर्बीज को प्राप्त होता है" "नासिका को प्राप्त होता है, जो नासिका को भी अस्त कर जाता है, घ्रातव्य को प्राप्त होता है घ्रातव्य को भी अस्त करके जाता है, पृथिवी को प्राप्त होता है, जो पृथिवी को भी अस्त कर के जाता है, जिता को प्राप्त होता है, जो जिता को भी अस्त करके जाता है व्यान को प्राप्त होता है, जो व्यान को भी अस्त कर के जाता है विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त कर के जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त कर के जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त कर के जाता है वह उस अमृत, अभय, अशोक, अनन्त, निर्बीज को प्राप्त होता है," ॥ इस प्रकार कहा ॥

"जिह्वा को प्राप्त होता है, जो जिह्वा को अस्त कर के जाता है, रसयितव्य को प्राप्त होता है जो रसयितव्य को भी अस्त करके जाता है, वरुण को प्राप्त होता है, जो वरुण को भी अस्त करके जाता है सौम्या को प्राप्त होता है जो सौम्या को भी अस्त करके जाता है उदान को प्राप्त होता है, जो उदान को भी अस्त करके जाता है, विज्ञानको प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त कर के जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय अशोक, अनन्त, निर्बीज को प्राप्त होता है" इस प्रकार कहा ॥ "त्वचा को प्राप्त होता है, जो त्वचा को भी अस्त करके जाता है, स्पर्शयितव्य को प्राप्त होता है, जो स्पर्शयितव्य को भी अस्त करके जाता है वायु को प्राप्त होता है, जो वायु को भी अस्त करके जाता है मोघा को प्राप्त होता है, जो मोघा को भी अस्त करके जाता है, समान को प्राप्त होता है, जो समान को भी अस्त करके जाता है विज्ञान को प्राप्त होता है। जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय, अशोक, अनन्त, निर्बीज को प्राप्त होता है" इस प्रकार कहा ॥ "वाणी को प्राप्त होता है, जो वाणी को भी अस्त करके जाता है वक्तव्य को प्राप्त होता है। जो वक्तव्य को भी अस्त करके जाता है,

अग्नि को प्राप्त होता है, जो अग्नि को भी अस्त करके जाता है कुमारा को प्राप्त होता है, जो कुमारा को भी अस्त करके जाता है वैरम्भ को प्राप्त होता है, जो वैरम्भ को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय अशोक, अनन्त, निर्वीज को प्राप्त होता है" इस प्रकार कहा। "हाथको प्राप्त होता है, जो हाथको भी अस्त करके जाता है, ग्रहण करने योग्यको प्राप्त करता है, जो ग्रहण करने योग्य को भी अस्त करके जाता है, इन्द्रको प्राप्त होता है जो इन्द्रको भी अस्तकरके जाता है, अमृताको प्राप्त होता है, जो अमृताको भी अस्त करके जाता है मुख्यको प्राप्त होता है, जो मुख्य को भी अस्त करके जाता है, विज्ञानको प्राप्त होता है, जो विज्ञानको भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत अभय, अशोक, अनन्त, निर्वीज को प्राप्त होता है" इस प्रकार कहा ॥ "पाद को प्राप्त होता है, जो पाद को भी अस्त करके जाता है, गन्तव्य को प्राप्त होता है, जो गन्तव्य को भी अस्त करके जाता है विष्णु को प्राप्त होता है, जो विष्णु को भी अस्त करके जाता है, सत्या को प्राप्त होता है, जो सत्या को भी अस्त करके जाता है, अंतर्यामी

को प्राप्त होता है, जो अंतर्यामी को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है वह इस अमृत, अभय अशोक, अनन्त, निर्बीज को प्राप्त होता है" इस प्रकार कहा ॥

"पायु को प्राप्त होता है, जो पायु को भी अस्त करके जाता है, विसर्जयितव्य को प्राप्त होता है, जो विसर्जयितव्य को भी अस्त करके जाता है, मृत्यु को प्राप्त होता है, जो मृत्यु को भी अस्त करके जाता है, मध्यमा को प्राप्त होता है, जो मध्यमा को भी अस्त करके जाता है, प्रभंजन को प्राप्त होता है, जो प्रभंजन को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह इस अमृत, अभय अशोक अनन्त निर्बीजको प्राप्त होता है" इसप्रकार कहा ॥ "उपस्थ को प्राप्त होता है, जो उपस्थ को भी अस्त करके जाता है, आनन्दयितव्य को प्राप्त होता है, जो आनन्दयितव्य को भी अस्त करके जाता है, प्रजापति को प्राप्त होता है, जो जापति को भी अस्त करके जाता है, नासीरा को प्राप्त होता है, जो नासीरा को भी अस्त करके जाता है, कुमार को प्राप्त होता है, जो कुमारको भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है,

जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है वह उस अमृत, अभय, अशोक अनन्त, निर्बीज को प्राप्त होता है" इस प्रकार कहा ॥ "मनको प्राप्त होताहै, जो मनको भी अस्त करके जाता है, मन्तव्य को प्राप्त होता है, जो मन्तव्य को भी अस्त करके जाता है, चन्द्र को प्राप्त होता है, जो चन्द्र को भी अस्त करके जाता है, शिशु को प्राप्त होता है, जो शिशु को भी अस्त करके जाता है, श्येन को प्राप्त होता है, जो श्येन को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनंद को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय, अशोक, अनन्त, निर्बीज को प्राप्त होता है" इस प्रकार कहा ॥ "बुद्धि को प्राप्त होता है, जो बुद्धि को भी अस्त करके जाता है, बोद्धव्य को प्राप्त होता है, जो बोद्धव्य को भी अस्त करके जाता है, ब्रह्मा को प्राप्त होता है, जो ब्रह्मा को भी अस्त करके जाता है, सूर्या को प्राप्त होता है, जो सूर्या को भी अस्त करके जाता है, कृष्ण को प्राप्त होता है, जो कृष्ण को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय

को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय, अशोक, अनन्त, निर्बीज को प्राप्त होता है" इस प्रकार कहा। "अहंकार को प्राप्त होता है, जो अहंकार को भी अस्त करके जाता है, अहं कर्तव्य को प्राप्त होता है, जो अहं कर्तव्य को भी अस्त करके जाता है, रुद्र को प्राप्त होता है, जो रुद्र को भी अस्त करके जाता है, असुरा को प्राप्त होता है, जो असुरा को भी अस्त करके जाता है, श्वेत को प्राप्त होता है, जो श्वेत को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय, अशोक, अनन्त, निर्बीज को प्राप्त होता है" इस प्रकार कहा ॥ "चित्त को प्राप्त होता है, जो चित्त को भी अस्त करके जाता है, चेतयितव्य को प्राप्त होता है, जो चेतयितव्य को भी अस्त करके जाता है, क्षेत्रज्ञ को प्राप्त होता है, जो क्षेत्रज्ञ को भी अस्त करके जाता है, भास्वती को प्राप्त होता है, जो भास्वती को भी अस्त करके जाता है, नाग को प्राप्त होता है, जो नाग को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय अशोक अनन्त निर्बीज को प्राप्त होता है" इस प्रकार कहा ॥ "जो इस निर्बीज को जानता है, वह

निर्वीज ही होजाता है। वह न जन्मता है, न मरता है, न मोहित होता है, न भेदन किया जाता है, न जलाया जाता है, न छेदन किया जाता है, न कांपता है न कोप करता है; सबका दहन करने वाला, यह आत्मा कहलाता है। यह आत्मा सैकड़ों प्रवचनों से प्राप्त नहीं होता, न बहुत सुनने से, न बुद्धि ज्ञानके आश्रय से, न मेधा से, न वेदों से न यज्ञों से न उग्र तपों से न सांख्य से न योग से न आश्रमों से और न अन्य किसी उपाय से आत्मा को प्राप्त कर सक्ते हैं। शुश्रुवान् (श्रवण करने की इच्छा वाले) और मौन व्रत धारण करने वाले, ब्राह्मण, प्रवचन व्युत्थान और प्रशंसा से उसको प्राप्त करते हैं। शांत दांत उपरति और तितिक्षा वाला होकर आत्मा में आत्मा को देखता है। जो इसको जानता है वह सबका आत्मा होता है" ॥ इति नवमां खंड समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

फिर रैक ने गुरु से पूछा "भगवन्! सब किसमें स्थित हैं?" कहा "रसातल लोक में" (पूछा) रसातल लोक किस में ओत प्रोत है?" कहा "भूर्लोक में" (पूछा भूर्लोक किस में ओत प्रोत है)?" कहा "भुवर्लोक में" (पूछा) "भुवर्लोक किस में ओत प्रोत है?" कहा "स्वर्लोक में" (पूछा) "स्वर्लोक किस में ओत प्रोत है?" कहा "महर्लोक में" (पूछा) "महर्लोक किस में ओत प्रोत है?" कहा "जन लोक में" (पूछा) "जनलोक किस में ओत प्रोत है?" कहा "तपलोक में" (पूछा) "तपलोक किस

में ओत प्रोत है ?" कहा "सत्यलोक में" (पूछा) "सत्यलोक किस में ओत प्रोत है ?" कहा "प्रजापति लोक में" (पूछा) "प्रजापति लोक किस में ओत प्रोत है ?" कहा "ब्रह्मलोक में" (पूछा) ब्रह्मलोक किस में ओत प्रोत है ?" कहा "सब लोक आत्मा रूप ब्रह्म में मणियों के समान ओत प्रोत हैं इस प्रकार आत्मा में स्थित इन लोकों को जो जानता है, वह आत्मा ही हो जाता है यह निर्वाण का उपदेश है यह वेद का उपदेश है यह वेद का उपदेश है" ॥ इति दसवां खंड समाप्त हुआ ॥ १० ॥

फिर रैक ने पूछा "हे भगवन् ! यह विज्ञान घन आत्मा उत्क्रमण करता हुआ किस करके कौन २ सी अवस्थाओं को त्याग करके जाता है ?" उसने कहा "हृदय के मध्य में लाल मांस का पिंड है, जिसमें वह हृदय कमल कुमुद के समान अनेक प्रकार से खिला हुआ है उसके मध्य में समुद्र है समुद्र के मध्य में कोश है और उसमें चार नाड़ियां हैं रमा, अरमा इच्छा और अपुनर्भवा उनमें रमा पुण्य से पुण्य लोक को ले जाती हैं। अरमा पाप से पाप को ले जाती है। इच्छा नाड़ी से जिस पाप का स्मरण करता है, उसको प्राप्त होता है। अपुनर्भवा से कोश को तोड़ता है कोश को तोड़ कर शीर्षकपाल को तोड़ता है शीर्षकपाल को तोड़कर पृथिवी को तोड़ता है पृथिवी को तोड़ कर जल को तोड़ता है जलको तोड़ कर तेजको तोड़ता है तेज को तोड़कर वायुको तोड़ता है वायु को तोड़ कर आकाश को

तोड़ता है आकाश को तोड़ कर मन को तोड़ता है मनको तो कर भूतादि को तोड़ता है भूतादि को तोड़ कर महत् को तोड़ता है महत् को तोड़ कर अव्यक्त को तोड़ता है अव्यक्त को तोड़ कर अक्षर को तोड़ता है अक्षर को तोड़ कर मृत्यु को तोड़ता है और मृत्यु को तोड़ कर परमदेव के साथ एक रूप होता है। इससे परे न सत् है न असत् है। यह निर्वाण का उपदेश है यह वेद का उपदेश है यह वेद का उपदेश है ॥" इति ग्यारहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥११॥

ॐ नारायण से अन्न हुआ। वह ब्रह्मलोक में पका फिर महा संवर्तक में पका फिर आदित्य में पका और फिर क्रव्यादि में पका। फफूंदायुक्त और बासी अन्न त्याज्य है अयाचित अन्न पवित्र है। अयाचित और बिना संकल्प के प्राप्त हुआ अन्न भक्षण करे याचना कभी न करे ॥ इति बारहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

प्रजापति ने कहा "बालक के समान रहे, बालक का स्वभाव असंग और निर्दोष होता है। मौन से और पंडिताई से, अवधि रहित होकर यानी संन्यास से वेद में कहे हुए कैवल्य को प्राप्त होता है। महान् पद को जान कर, वृक्ष के मूल में,मैले कुचेले वस्त्र धारण किये हुए, असहाय, अकेला, समाधि में स्थित, आत्मकाम, आप्तकाम, निष्काम, जीर्णकाम होकर वास करे। हाथी, सिंह, डांस, मच्छर, नौले, सर्प, राक्षस, गंधर्वको मृत्यु रूप

(मारनेवाला) जानकर किसीसे न डरे। वृक्षके समान रहे, छेदन किया हुआभी कोप न करे, न कांपे, पत्थरके समान रहे। छेदन किया हुआ भी कोप न करे, न कांपे आकाश के समान रहे, छेदन किया हुआ भी कोप न करे, न कांपे, सत्य से रहे (क्योंकि यह आत्मा सत्य है। सब गंधों का पृथ्वी हृदय है, सब रसों का जल हृदय है, सब रूपों का तेज हृदय है, सब स्पर्शों का वायु हृदय है, सब शब्दोंका आकाश हृदय है, सब गतियोंका अव्यक्त हृदय है, सब सत्त्वोंका मृत्यु हृदय हैं, और मृत्यु परदेव (ब्रह्म) के साथ एक रूप होता है। उस से पर न सत् है, न असत् हैं, न सत् असत् है। यह निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है, यह वेदका उपदेश है, ॥ इति तेरहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

ॐ पृथ्वी अन्न है, जल अन्नाद (अन्न को भक्षण करने वाला) है, जल अन्न है, ज्योति अन्नाद है, ज्योति अन्न है, वायु अन्नाद है, वायु अन्न है, आकाश अन्नाद है, आकाश अन्न है, इन्द्रियां अन्नाद है, इन्द्रियां अन्न है, मन अन्नाद है, मन अन्न है, बुद्धि अन्नाद है, बुद्धि अन्न है, अव्यक्त अन्नाद है, अव्यक्त अन्न है, अक्षर अन्नाद है, अक्षर अन्न है, मृत्यु अन्नाद है, और मृत्यु परदेव के साथ एक रूप होता है। उस से पर न सत् है, न असत् है, न सत् असत् है, यह निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है॥" इति चौदहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

फिर रैक ने उससे पूछा "हे भगवन्! जो यह विज्ञानघन उत्क्रमण करता है, वह किस करके कौन कौन सी अवस्थाओं को जलाता है?" उसने कहा "जो यह विज्ञान घन उत्क्रमण करता है, वह प्राण को जलाता है अपान, व्यान, उदान, समान, वैरम्भ, मुख्य, अन्तर्यामी, प्रभंजन, कुमार, श्येन, श्वेत, कृष्ण, नाग को जलाता है, पृथिवी जल तेज वायु और आकाश को जलाता है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय महत् लोक और पर-लोक को जलाता है। लोकालोक को जलाता है, धर्माधर्म को जलाता है, पीछे अभास्कर, अमर्याद, निरालोक को जलाता है, महत् को जलाता है, अव्यक्त को जलाता है, अक्षर को जलाता है और मृत्यु को जलाता है। मृत्यु परदेव के साथ एक रूप होता है। इससे पर न सत् है, न असत् है, न सत् असत् है, यह निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है" ॥ इति पन्द्रहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

सौवाल बीज ब्रह्म उपनिषत् अप्रशान्त को न देना चाहिये, अपुत्र को न देना चाहिये, अशिष्य को न देना चाहियें, एक वर्ष तक साथ रक्खे विना न देना चाहिये, कुल शील की परीक्षा किये विना न देना चाहिये, न कहना चाहिये। जिसकी देव में परा-भक्ति हो और जैसी देव में हो, वैसी ही गुरु में हो, उस ही महात्मा को इसमें कहे हुए अर्थ प्रकाश होते हैं। यह निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है ॥ इति सोलहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥१६॥ इति सुबालो-पनिषत् समाप्त ॥

कुण्डिकोपनिषत् ।

[२३]

गुरु की सेवा में प्रीति रखकर जिसने वेदों को पढ़ लिया है और जिसको ब्रह्मचर्य्य आश्रम को समाप्त करने की गुरु से आज्ञा मिली है वह आश्रमी कहलाता है ॥ १ ॥ समान स्त्री से विवाह कर यथाशक्ति अग्निको धारण करके ब्रह्मयज्ञ करे और उसका दिन रात पूजन करे ॥ २ ॥ पुत्रों को धन बांट कर, ग्राम सम्बन्धी कामों को सौंप कर वन मार्ग से विचरता हुआ पवित्र देश में भ्रमण करता हुआ ॥ ३ ॥ वायु को भक्षण करता हुआ, या जल का पान करता हुआ अथवा विहित कन्द मूल से अपने शरीर का पोषण करे और ऐसे कष्ट से पृथिवी पर आंसू न गिरावे ॥ ४ ॥ इतने से ही पुरुष को संन्यास कैसे कहा जाय ? वह तो नाम मात्र ही है, उसे संन्यास कैसे कहा जाय ॥ ५ ॥ इसलिये फल की इच्छा से रहित संन्यास में युक्त होकर, अग्नि और वर्णों को छोड़कर वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण करता है ॥ ६ ॥ लोगों के समान स्त्री में आसक्त, संयम से वन में जाकर संसार सुख को छोड़कर वृथा ही क्यों अनुष्ठान करता है ॥ ७ ॥ अथवा गर्भवास के भय से और शीत उष्ण से डरा हुआ दुःखों का स्मरण करके भोगों को क्यों छोड़ता है ॥ ८ ॥ मैं गुह्य, उपद्रव रहित परम पद में प्रवेश करने की इच्छा करता हूँ

इसलिये अग्नि को छोड़कर मृत्युंजय परब्रह्म को भजता हूँ। पश्चात् अध्यात्म मंत्रों को जपे। भगवां वस्त्र धारण करके दीक्षा लेवे, कांख और उपस्थ के बालों को छोड़कर सब क्षौर करावे। ऊंची भुजा करके स्वच्छन्द से घूमे। घर रहित, भिक्षा का भोजन करने वाला होकर विचरे। निदिध्यास करता रहे। जंतुओं की रक्षा के निमित्त पवित्र धारण करे। इसके विषय में यह कहा है। कमण्डलु, चमस, छींका, त्रिविष्टप, जूता, शीत निवारण करने वाली गुदड़ी तथा पहननेका कौपीन ॥ ९ ॥ पवित्र (पानी छाननेका वस्त्र), स्नान करनेको धोती और अंगोछा। इनके सिवाय जो कुछ भी है, उसको यती त्याग देवे ॥ १० ॥ नदी किनारे शयन करने वाला होवे अथवा देवालय के बाहर रहे। सुख दुःख से शरीर को विना प्रयोजन न तपावे ॥ ११ ॥ स्नान, पान तथा शौच, पवित्र जल से करे। स्तुति किया हुआ संतुष्ट न होवे और निन्दा किया हुआ दूसरों को शाप न देवे ॥ १२ ॥ भिक्षादि का खप्पर, स्नान का जल यथा प्राप्त ग्रहण करे। इस प्रकार की वृत्ति धारण करके यती जप करे ॥ १३ ॥ विद्वान् समग्र के लिये मंत्र के संयोग की मन से भावना करे। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी। इन भूतों में व्यापक को मैं प्राप्त हुआ हूँ। अजर, अमर, अक्षर, अव्यय, को प्राप्त हुआ हूं। मुझ अखण्ड सुख के समुद्र में बहुत प्रकार की विश्व रूपी लहरें माया रूप वायु से हिलाई हुई उत्पन्न होती हैं और लय होती हैं ॥ १४ ॥ जैसे आकाशका मेघ से

सम्वन्ध नहीं है इसी प्रकार मेरा देह से संबंध नहीं है। इसलिये इस (देह) के धर्म जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति मुझमें कहां॥ १५॥ आकाश के समान मैं कल्पना से दूर हूँ आदित्य के सामान भास्य पदार्थों से विलक्षण हूँ पर्वत के समान मैं नित्य निश्चल हूँ। मैं समुद्र के समान पार से रहित हूँ॥१६॥ मैं नारायण हूँ, मैं नरकान्तक हूँ, मैं पुरान्तक हूँ, मैं पुरुष हूँ, ईश हूं, मैं अखंड वोध हूँ, सवका साक्षी हूँ, मैं ईश्वर रहित हूं, अहंकार और ममता से रहित हूँ, ॥ १७॥

प्राण अपान के संयम करने के विषय में यह कहा है। वृषण और गुदा के वीच में दोनों हाथों को रख कर वैठे। दांतों से धीरे से जिह्वा को दवाकर जव मात्र वाहर निकाले॥ १८॥ दृष्टि को श्रोत्र और भूमि पर स्थापित करे। जिससे श्रवण और नासिका में गंध न पहुंचे॥ १९॥

जो ब्रह्म में तत्पर हैं वह ब्रह्म ही है, वह ही शिव पद है, पूर्व जन्मों में प्राप्त किये पुण्य वाला उसको अभ्यास से प्राप्त करता है॥ २०॥ वायु के नाद का उत्पन्न होना हृदय का तप कहलाता है वह देह का भेदन करके ऊपर, अव्यय मूर्धा को प्राप्त होता हैं॥ २१॥ अपने देह में मूर्धा की प्राप्ति परम गति हैं। जो उसको प्राप्त होते हैं वे पर अपर के जानने वाले फिर नहीं लौटते॥ २२॥ जैसे घर के धर्म दीपक को स्पर्श नहीं करते इसी प्रकार साक्ष्य के धर्म विलक्षण अविकारी और उदासीन साक्षी

को स्पर्श नहीं करते ॥ २३ ॥ यह जड शरीर चाहे जल में, चाहे स्थल में लुड़के मैं उसके धर्मों से लिपायमान नहीं होता जैसे घटके धर्मोंसे आकाश लिपायमान नहीं होता ॥ २४ ॥ मैं क्रियारहित हूँ विकाररहित हूँ कलारहित हूं आकाररहित हूँ विकल्परहित हूँ नित्य हूँ आधार रहित अद्वय हूँ ॥ २५ ॥ सबका आत्मा हूँ सर्व हूँ सब से अतीत अद्वय हूँ केवल अखंड बोध रूप हूँ निरंतर स्वयं आनन्द रूप हूं ॥ २६ ॥ अपने को ही सर्वत्र देखता हुआ अपने को अद्वय मानता हुआ और अपने आनन्द को भोगता हुआ मैं निर्विकल्प हूँ ॥ २७ ॥ जाता हुआ ठहरा हुआ बैठा हुआ सोता हुआ अन्य प्रकार से भी विद्वान् आत्माराम मुनि इच्छा पूर्वक सदा वास करे ॥ २८ ॥ इति उपनिषत् ॥

इति कुण्डिकोपनिषत् समाप्त ।

संन्यासोपनिषत् ।

[२१]

अब संन्यास उपनिषत् कहते हैं। जो क्रम क्रम से त्याग करता है, वह संन्यासी होता है। यह संन्यास क्या कहलाता है? संन्यस्त कैसा होता है? जो क्रियाओं से आत्मा की रक्षा करता है, माता, पिता, स्त्री, पुत्र बंधुओं की सम्मति लेकर, अपने सब ऋत्वजों को पूर्व के समान प्रणाम करके वैश्वानर यज्ञ को करे, यजमान सर्वस्व दे देवे, ऋत्विज सब घृत आदि को पात्रों के सहित हवन कर दे। आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्नि सभ्य और आवसथ्य इन सबको प्राण अपान व्यान उदान और समान इन सबको आरोपित करे। शिखा सहित केशों को त्याग कर, यज्ञोपवीत को तोड़ कर पुत्र को देखकर इस प्रकार उपदेश देवे कि तू यज्ञ है तू सर्व है। यदि अपुत्र होवे तो आत्मा का इसी प्रकार ध्यान करके किसी को न देखता हुआ पूर्व अथवा उत्तर दिशा को चला जावे। तीनों वर्णों में भिक्षा करे हाथ रूपी पात्र में भोजन करे औषधि के समान भोजन का आचरण करे यानी औषधि के समान भोजन करे प्राण की रक्षा के लिये यथा प्राप्त भोजन करे जिससे चरबी की वृद्धि न हो। दुबला होकर ग्राम में एक रात नगर में पांच रात वसे। वर्षा के चार महीने ग्राम अथवा नगर में वास करे अथवा दो महीने वास

करे पक्ष को ही महीना समझना। फटे वस्त्र अथवा छाल के वस्त्र ग्रहण करे अन्य ग्रहण न करे। जो अशक्त होता है और क्लेश से तपता है वह तप है। इस प्रकार क्रम से संन्यास करता है अथवा जो इस प्रकार देखता है उसका यज्ञोपवीत क्या है? उसकी शिखा क्या है? अथवा उसका आचमन कैसा है? उससे कहा जो उसका आत्म-ध्यान है वह ही उसका यज्ञोपवीत है विद्या शिखा है सर्वत्र स्थित जल से उदर पात्र द्वारा कार्य करे जल के किनारे घर है। ऐसा ब्रह्म वादी कहते हैं। सूर्य के अस्त होने पर उसका आचमन कैसा है? उनसे कहा जैसा दिन में है वैसा ही रात्रि में है उसके लिये न रात है न दिन है; तो भी यह ऋषियों ने कहा है जो इस प्रकार आत्मा को धारण करता है उसके लिये एक ही वार दिन हो जाता है॥ इति प्रथम अध्याय॥

चालीस संस्कारोंसे युक्त सबसे विरक्त होकर चित्त को शुद्ध कर के आशा असूया इर्षा और अहंकार को जला कर चारों साधनों से युक्त ही संन्यस्त के योग होता है। जो संन्यस्त का निश्चय करके फिर नहीं करता वह कृच्छ्र व्रत ही करे तो फिर संन्यस्त करने के योग्य होता है॥ १॥ जो संन्यास से पतित हो जो पतित को संन्यास देवे और जो संन्यास में विघ्न करने वाला हो इन तीनों को पतित जानो॥ २॥ नपुंसक पतित अंगहीन स्त्रैण (खोजा) वहिरा वालक गूंगा पांषड करने वाला लिंगी चक्री कोढी वैखानस (बौद्ध साधु) द्विज संस्कार

से रहित बच्चों को पढ़ाने वाला गंजा अग्निसे रहित और नास्तिक वैराग्य युक्त हो तो भी संन्यास के योग्य नहीं है, और यदि संन्यस्त ले लें तो भी महावाक्यों के उपदेश के अधिकारी नहीं हैं पतित संन्यासी की संतान खराब नख वाला लाल (मैले) दांत वाला पागल अंग से विकल ये भी संन्यास के योग्य नहीं है ॥ ३ ॥ तत्काल वैराग्य हुआ हो उसको, महा पातकियों को संस्कारहीनों को और लोक निंदा से दूषित हुओं को संन्यास न देवे ॥ ४ ॥ व्रत यज्ञ तप दान होम स्वाध्याय से रहित और सत्य तथा शौच से भ्रष्ट हुए को संन्यास न देवे ॥ ५ ॥ ये लोग आतुर संन्यास के सिवाय क्रम संन्यास के योग्य नहीं हैं।

'ॐ भूः स्वाहा' ऐसा कह कर शिखा उखाड़ डाले यज्ञोपवीत को न उतारे 'यश बल ज्ञान वैराग्य और मेधा (बुद्धि) को दे' ऐसा कह कर यज्ञोपवीत को काट डाले "ॐ भूः स्वाहा" यह कह कर जल में वस्त्र और कटि सूत्र को त्याग कर "संन्यस्तंमया" इस मंत्र को तीन वार बोले। संन्यासी ब्राह्मण को देख कर सूर्य अपने स्थान से चलायमान होता है (और कहता है) यह मेरे मण्डल को भेद कर परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ साठ पीछे के कुलों का और साठ आगामी कुलों का उद्धार करता है जो प्राज्ञ संन्यासी "संन्यस्त" इस मंत्र को कहता है यानी संन्यास लेता है ॥ ७ ॥ जो संतान से उत्पन्न हुए दोष हैं जो देह से उत्पन्न हुए दोष हैं उनको प्रेषाग्नि इस प्रकार जला देता है जिस प्रकार भूसों का अग्नि सुवर्ण (के मल) को जला देता है ॥ ८ ॥

'सखा ! मेरी रक्षा कर' इस प्रकार कह कर दंड को ग्रहण करे दंड वांस का सौम्य विना छिला समान गांठों वाला पवित्र भूमि में उत्पन्न हुआ दाग आदि निकाला हुआ विना जला हुआ कीडों का न खाया हुआ पर्व-गांठों से शोभित नासिका तक ऊंचा वा शिर अथवा भोओं के वरावर दंड यती धारण करे ॥ ९-१० ॥ दंड और आत्मा का संयोग सब प्रकार से किया जाता है इसलिये बुद्धिमान् दंड के विना तीन वार वाण फेंका जाय इससे दूर न जावे ॥ ११ ॥ "हे माता ! सब से सौम्य जगत् का जीवन जीवन का आधारस्वरूप मेरी रक्षा कर" इस प्रकार कह कर कमंडलु को ग्रहण करके योग पट्ट से अभिषिक्त हो कर सुख से विहार करे ॥ धर्म अधर्म को त्याग दे सच और झूंठ दोनों को त्याग दे सच्चे और झूंठे दोनों को त्याग कर जिससे दोनों का त्याग किया है उसको भी त्याग दे ॥ १२ ॥

वैराग्य संन्यासी, ज्ञान संन्यासी, ज्ञान वैराग्य संन्यासी और कर्म संन्यासी चार प्रकार के संन्यासी हुए हैं वे इस प्रकार हैं:— जिसने देखे हुए और सुने हुए विषयों में तृष्णा रहित हो कर पूर्व पुण्य कर्म विशेष से संन्यास किया है वह वैराग्य संन्यासी है। शास्त्र के ज्ञान से शुभ अशुभ लोकों के अनुभव और श्रवण से प्रपंच से उपराम को प्राप्त होकर देह वासना शास्त्र वासना लोक वासना को त्याग कर वमन किये हुए अन्न के समान सब प्रकार की प्रवृत्ति को त्यागने योग्य मान कर चारों साधनों से

युक्त होकर जो संन्यस्त करता है वह ही ज्ञान संन्यासी है। क्रम २ से सब का अभ्यास कर के सबका अनुभव कर के ज्ञान और वैराग्य से स्वरूप के अनुसंधान से देह मात्र शेष रह कर संन्यास लेकर नग्न रहता है वह ज्ञान वैराग्य संन्यासी है ब्रह्मचर्य को समाप्त कर के गृहस्थ होकर वानप्रस्थ आश्रम को प्राप्त हो कर वैराग्य न होने पर भी जो क्रमानुसार आश्रमों को त्यागता है वह कर्म संन्यासी है।

वह संन्यास छः प्रकार का होता है:—कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस, तुरीयातीत और अवधूत। कुटीचक शिखा यज्ञोपवीत वाला, दण्ड कमण्डलु धारण करने वाला, कौपीन, चादर और कंथा धारण करने वाला, पिता माता और गुरु की आराधना करने वाला, बटलोई, खनित्र (कुदाली), छींका आदि मात्र साधन वाला, एक स्थान पर अन्न का भोजन करने वाला, श्वेत और खड़ा तिलक धारण करने वाला और तीन दण्ड वाला होता है। बहूदक शिखादि कंथा धारण करने वाला, त्रिपुंड धारी, सब प्रकार कुटीचक के समान मधुकर वृत्तिवाला और आठ ग्रास खाने वाला होता है। हंस जटाधारी, त्रिपुंड ऊर्ध्व पुंड्धारी, अनियत स्थान से माधूकर अन्न का भोजन करने वाला और कौपीन का टुकड़ा धारण करने वाला होता है, परमहंस शिखा यज्ञोपवीत रहित, पांच घरों से हाथ में भिक्षा मांगने वाला, एक कौपीन धारण करनेवाला, एक चादर और एक बांसका

दण्ड वाला हो अथवा एक चादर धारण कर भस्म लगाने वाला और सब का त्याग करने वाला होता है। तुरीयातीत गो मुख वृत्ति वाला, तीन घरों में फल अथवा अन्न का आहार करने वाला, देह मात्र रखने वाला, नग्न, मृतक के समान शरीर वृत्ति वाला होता है। अवधूत नियम रहित होता है, पतित अथवा निन्दित को छोड़कर सब वर्णों में अजगर वृत्ति से आहार करने वाला और स्वरूप के अनुसंधान वाला होता है। वृक्ष, तृण और पर्वतों सहित जितना यह जगत है, वह मैं नहीं हूँ। जो बाहर है, वह अत्यन्त जड़ है, मैं विभु वह (जड़) किस प्रकार होऊँ ॥ १३ ॥ थोड़े समय में लय होने वाला जड़ देह मैं नहीं हूँ। कानों में आने वाला जड़ और क्षण भर टिकने वाला, कल्पा हुआ ॥ १४ ॥ शून्य आकृति वाला, शून्य स्वरूप वाला अचेतन शब्द मैं नहीं हूँ। क्षण में नाश होने वाली, प्राप्त और अप्राप्त होने वाली यह त्वचा मुझसे भिन्न है ॥ १५ ॥ चैतन्य की प्रसन्नता से आत्मा को प्राप्त हुआ मैं जड़ स्पर्श नहीं हूँ। आत्मा को प्राप्त हुए मुझको चञ्चल और चञ्चल मन से युक्त जिह्वा से ॥ १६ ॥ द्रव्यके सहारे उत्पन्न होने वाला तुच्छ स्पंद रूप जड़ मैं नहीं हूँ।

दृश्य और दर्शन के लीन होने पर क्षय होने वाला और क्षणमें नाश होने वाला ॥१७॥ मैं केवल दृष्टा हूँ क्षीण होने वाला जड़ रूप नहीं हूँ। गंध जड़ होने से क्षय होने वाली होने से

नासिका से कल्पी हुई है ॥१८॥ ऐसी तुच्छ नियत आकार वाली जड़ गंध मैं नहीं हूँ। ममता रहित चिंतवन रहित शांत पांचों इन्द्रियों के भ्रम से रहित ॥ १९ ॥ कला और मैल से रहित मैं शुद्ध चेतन ही हूं चैत्य से रहित चिन्मात्र प्रकाश करने वाला मैं हूँ ॥२०॥ मैं कलारहित बाहर भीतर व्यापक और माया रहित हूँ, निर्विकल्प चिदाभास सर्वत्र व्यापक एक हूं ॥२१॥ मुझ एक चेतन से ही ये सब घट पट आदिसे सूर्य पर्यन्त दीपक के समान आत्म तेज से प्रकाशित किये जाते हैं ॥ २२ ॥ जैसे अग्नि से चिंगारियां उठती हैं इसी प्रकार ये विचित्र इन्द्रियों की वृत्तियां मुझ तेजस के अंतरप्रकाश से स्फुरित होती हैं ॥ २३ ॥ अनन्त आनन्द को भोगने वाली, परम शांत स्वभाव वाली, शुद्ध, चेतनमय यह दृष्टि सब दृष्टियों में जय को प्राप्त होती है ॥ २४ ॥ सब भावों के भीतर टिकने वाला, चैत्य से रहित, चेतन आत्मा, प्रत्यक् चेतन्य रूप मुझको नमस्कार है ॥ २५ ॥ स्वच्छ, सम और विचित्र शक्तियां निर्विकार, कला और कल्पना से रहित चित् से की जाती हैं ॥ २६ ॥ तीनों काल की उपेक्षा करने वाली, दृश्य के बंधन से रहित और चैत्य की उपेक्षा वाली चित् की समता ही शेष रहती है ॥ २७ ॥ वही ही वाणी से अगम्य होने के कारण शाश्वत असत्ता के समान विविक्त आत्मा के अभाव समान शेष रहती है ॥ २८ ॥ इच्छा और अनिच्छा वालों के भीतर रहने वाली चित् मलों से घिरी हुई है, पाश में बंधी हुई चिड़िया के समान वह चित् उत्पन्न करने को समर्थ

नहीं है ॥ २९ ॥ इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए द्वन्द्व रूपी मोह से जतु पृथिवी के गड्ढे में गिरे हुए कीड़ों की समता को प्राप्त हुए हैं ॥ ३० ॥

मुझ अविच्छिन्न चेतन आत्मा को नमस्कार हैं, मैं चिरकाल से ही परम प्रत्यक्ष हूँ, प्राप्त हूं और हमेशा उदित हूँ। मैं विकल्पों से दूर हूँ, जो हूँ, सो हूं, उसको नमस्कार है ॥३१॥ तुझ मुझ अनंत को तुझ मुझ चिदात्मा को (नमस्कार हैं) तुझ परमेश्वर को नमस्कार है, मुझ शिव को नमस्कार है ॥ ३२ ॥ बैठता हुआ भी नहीं बैठता, जाता हुआ भी नहीं जाता, शांत होकर भी व्यवहार करता है, करता हुआ भी लिपायमान नहीं होता ॥ ३३ ॥ यह अत्यन्त सुलभ है, विश्वासू बंधु के समान चतुर है। कमल के छिद्र रूप सबके शरीरों में भ्रमर है ॥ ३४ ॥ न मुझे भोग प्राप्त करने की इच्छा है, न मुझे भोग त्यागने की इच्छा है, जो आता हो, आओ, जो जाता हो वह जाओ ॥ ३५ ॥ मन से मनके छिन्न होने पर, अहंकारपने से रहित होने पर और भाव से भाव नाश होने पर मैं केवल स्वस्थ स्थित हूँ ॥ ३६ ॥ भाव रहित, अहंकार रहित, मन रहित, चेष्टा रहित, केवल, स्पन्द रहित, शुद्ध आत्मा में मेरा शत्रु टिकता है ॥ ३७ ॥ मैं नहीं जानता हूँ कि तृष्णारूप रस्सी समूह को काट कर मेरे शरीर रूप पिंजरे में से अहंकार रहित चिड़िया उड़ कर कहां गई ॥ ३८ ॥ 'मैं नहीं करता' यह जिसका भाव है, जिसकी बुद्धि लिपायमान नहीं होती, और जो सब भूतों में समान है, उसीका जीवन शोभता है ॥ ३९ ॥ जो

भीतर शीतल है, जिसकी बुद्धि राग द्वेष से रहित है, जो इस (दृश्य) को साक्षी के समान देखता है, उसीका जीवन शोभता है ॥ ४० ॥ जिसने यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर त्याग और ग्रहण को छोड़ दिया है और चित्त में चित्तको अर्पण कर दिया है, उसीका जीवन शोभता है ॥ ४१ ॥ ग्रहण करने योग्य और ग्रहण करने वाले का सम्बन्ध टूट जाने पर पूर्ण शांति उदय होती है। इस स्थिति को प्राप्त हुई शांति मोक्ष कहलाती है ॥ ४२ ॥ जैसे भुना हुआ बीज फिर जन्मने वाले अंकुर से रहित होता है, इसी प्रकार जीवन्मुक्तों के हृदय में वासना शुद्ध होजाती है ॥ ४३ ॥ पवित्र, परम उदार, शुद्ध सतोगुण बखेरने वाली, आत्मध्यान वाली, नित्य (वासना) सुषुप्ति के समान टिकती है ॥ ४४ ॥ चित्त रहित चेतन ही प्रत्यक् चेतन कहलाता है, मन रहित स्वभाव होने से वहां कलना रूप मैल नहीं होता ॥ ४५ ॥ वह सत्यता है, वह शिवता है, वह पारमार्थिक अवस्था है, वह सर्वज्ञता है, वह संपूर्ण तृप्ति है, जहां मन का छिद्र नहीं है ॥ ४६ ॥ बोलता हुआ, त्याग करता हुआ, ग्रहण करता हुआ, पलक खोलता और मूंदता हुआ भी, मनन से मुक्त, आनंद रूप, केवल संवित् मैं हूँ ॥ ४७ ॥ संवेद्य रूप मल को त्याग कर, मन को परम निर्मूल करके, आशा का पाश रूप अग्नि को काट कर मैं केवल संवित् रूप हूँ ॥ ४८ ॥ अशुभ और अशुभ संकल्पों से परम शांत हुआ मैं उपद्रव रहित हूँ, इष्ट अनिष्ट प्रवृत्ति से रहित मैं केवल संवित् रूप हूं ॥ ४९ ॥ अध्यात्म ताप और प्रीति को त्याग कर, विभाग रहित, जगत् में

स्थित। वज्र के खम्भ समान आत्मा का अवलम्बन करके मैं स्थिर हूं ॥ ५० ॥ निर्मल और आशा रहित अपनी संवित् में मैं स्थित हूँ, चेष्टा अचेष्टा से मुक्त हूँ, ग्रहण और त्याग से रहित हूं ॥ ५१ ॥ स्वप्रकाश पद में स्थित होकर मैं आंतर संतोष को कब प्राप्त हूँगा और कब शांत मनन वाला होकर पर्वत की गुफा में ॥ ५२ ॥ निर्विकल्प समाधि में शिला की समानता को प्राप्त होऊँगा ? अंश रहित ध्यान की विश्रांति से मूक हुए मेरे मस्तक पर ॥ ५३ ॥ कोयलें कब घोंसला बनावेंगीं। संकल्प रूप वृक्षों और तृष्णा रूप लताओं को काट कर मन रूप बन ॥ ५४ ॥ विस्तीर्ण भूमिको प्राप्त होकर मैं यथा सुख विहार करता हूँ। अब मैं उस परमपद को प्राप्त हुआ हूँ, मैं केवल हूँ, मेरी अब विजय हुई है ॥ ५५ ॥ मैं दुःख रहित हूँ, चेष्टा रहित हूँ, अंश रहित हूँ, इच्छा रहित हूँ, स्वच्छता, वीर्यता, सत्ता, हृद्यता, सत्यता, ज्ञता ॥ ५६ ॥ आनन्दता, उपशमता, सदा उदित प्रमुदिता, पूर्णता, उदारता, सत्प्रकाश स्वरूप और सदा अद्वैत हूँ ॥ ५७ ॥ इस प्रकार भिक्षु स्वरूप स्थिति रूप तत्त्वार्थ का चिन्तवन करता हुआ, निर्विकल्प स्वरूप का जानने वाला होकर निर्विकल्प हुआ ॥ ५८ ॥

आतुर जीता रहे तो उसको क्रम संन्यास करना चाहिये, वह शूद्र, स्त्री, पतित और रजस्वला के साथ बात चीत न करे। यती देव पूजन के उत्सव का दर्शन न करे क्योंकि संन्यासियों का यह लोक नहीं है, आतुर और कुटीचक का भूलोक और भुवर्लोक

है। बहूदक का स्वर्गलोक है, हंस का तप लोक है, परम-हंस का सत्य लोक है, तुरीयातीत और अवधूत को स्वरूप के अनुसंधान से भ्रमर और कीट के न्यायानुसार अपने आत्मा में ही कैवल्य है। स्वरूपानुसंधान के सिवाय अन्य शास्त्रों का अभ्यास व्यर्थ है जैसे ऊंट को केसर का भार व्यर्थ है। यति के लिये न योग शास्त्र की प्रवृत्ति, न सांख्य शास्त्र का अभ्यास, न मन्त्र तन्त्र का व्यापार और न उसके लिये अन्य शास्त्र की प्रवृत्ति है। यदि है तो वह मृतक के आभूषणों के समान है, वह यति कर्म आचार और विद्या से दूर है। संन्यासी नाम कीर्तन के परायण न हो क्योंकि जो २ कर्म करता है, उस २ के फल का अनुभव करता है। अरंडी के तेल के फेन के समान सबको त्याग देवे, न देवता का प्रसाद ग्रहण करे, न बाहर के देव का पूजन करे, अपने सिवाय सबको त्याग कर मधुकर वृत्ति से आहार करता हुआ दुबला होकर चरबी को न बढ़ाता हुआ विहार करे। माधुकर से कर पात्र से अथवा मुख रूप पात्र से काल व्यतीत करे। आत्म को जानने वाला यति माप से आहार करे आहार के दो भाग हैं और तीसरा भाग जल का है, वायु के घूमने के लिये चौथा भाग खाली रक्खे ॥ ५९ ॥ नित्य भिक्षा वृत्ति से वर्ते, एक घरके अन्न का भोजन करने वाला कभी न हो, उद्वेग रहित राह देखते रहते हों उनके घर यत्न से जावे ॥ ६० ॥ क्रियावानों के पांच या सात घरों में से भिक्षा लेने की इच्छा करे गौ दोही जाय उतना काल मात्र प्रतीक्षा करे, एक बार गया हुआ

फिर न जावे ॥ ६१ ॥ रात में खाने से उपवास श्रेष्ठ है, उपवास से बिना मांगा हुआ श्रेष्ठ है, बिना मांगे हुए से भिक्षा श्रेष्ठ है इसलिये भिक्षा से निर्वाह करे ॥ ६२ ॥ भिक्षा के समय बायें दायें होकर घरों में प्रवेश न करे, जहां दोष न हों, उस घर को मोह से छोड़ न जावे ॥ ६३ ॥ श्रद्धा भक्ति से रहित श्रोत्रिय के घरमें भी भिक्षा न करे, श्रद्धा भक्ति से युक्त संस्कार हीन के घर भी करले ॥ ६४ ॥ असंक्लिप्त माधूकार प्राक्प्रणीत, अयाचित, तात्कालिक और उपपन्न पांच प्रकार की भिक्षा कही गई है ॥६५॥ मन में संकल्प न किये हुए तीन, पांच अथवा सात घरों से शहद की मक्खी के समान भिक्षा करना असंक्लिप्त माधूकर कहलाती है ॥ ६६ ॥ प्रातःकाल में अथवा पूर्व दिन में भक्ति से वारंवार प्रार्थना की गई हो, तो वह भिक्षा प्राक्प्रणीत कहलाती है, इस प्रकार भी संन्यासी निर्वाह कर सकते हैं ॥ ६७ ॥

भिक्षा के लिये घूमते समय किसी ने निमंत्रण कर दिया तो मुमुक्षुओंको उस अयाचित भिक्षाका भोजन करना चाहिये ॥६८॥ भिक्षा जाने के समय कोई ब्राह्मण आकर भिक्षा के लिये कहे तो उस तात्कालिक नाम की भिक्षा का यति भोजन करे ॥६९॥ बना हुआ अन्न जो ब्राह्मण मठ पर लाया हो उसको मोक्ष की इच्छा करने वाले मुनि उपपन्न कहते हैं ॥ ७० ॥ यति माधूकर भिक्षा म्लेच्छ के घर में भी कर लेवे किंतु बृहस्पति के समान पंडित के यहां भी एक ही घर का भोजन न करे।

याचित अथवा अयाचित भिक्षाओं से निर्वाह करे ॥ ७१ ॥ स्पर्श के दोष से वायु जलाने के कर्मों से अग्नि और मूत्र पुरीष से जल दूषित नहीं होता वैसे ही अन्न के दोष से संन्यासी दूषित नहीं होता ॥ ७२ ॥ धुयें रहित और मूसल के शब्द रहित घर में अग्नि बुझ जाने पर जहां मनुष्य भोजन कर रहे हों, वहां तीसरे पहर के पश्चात् भिक्षा करे ॥ ७३ ॥ निंदित पतित पाखंडी और देवपूजक को छोड़कर यति आपत्ति में सब वर्णों के यहां भिक्षा कर ले ॥ ७४ ॥ (यति के लिये) घी कुत्ते के मूत्र के समान शहद मदिरा के समान है, तेल सूकर के मूत्र के समान है। लहसन संयुक्त रसोई ॥ ७५ ॥ उड़द, पूपादि गौ के मांस के समान हैं दूध मूत्र के समान है। इसलिये घृत आदिक को प्रयत्न पूर्वक त्याग देवे। घृत रस आदि संयुक्त अन्न कभी न खावे ॥ ७६ ॥ हाथ ही उसका पात्र है इसलिये उसीसे सदा निर्वाह करे। हाथ रूपी पात्र वाला योगी दूसरी वार भोजन न करे ॥ ७७ ॥ जो मुनि गौ के समान मुख से आहार करता है वह सब में समान होजाता है और अमृत होने के योग्य समझा जाता है ॥ ७८ ॥ घी को रुधिर के समान त्याग दे, एकत्र अन्न को मांस के समान, गंध लेपन करने को अशुद्ध लेपन के समान क्षारको भंगीके समान वस्त्र को झूठे पात्रके समान अभ्यंग स्नान को स्त्री संगके समान मित्रोंके आह्लादको मूत्र के समान स्पृहा को गौ के मांस के समान, पहिचानने वालों के देश को चण्डाल की वाटिका के समान, स्त्री को सर्पिणी के समान, सुवर्ण को

विष के समान, सभा स्थान को श्मशान के स्थान के समान, राजधानी को कुम्भीपाक के समान, एक ही घर के भोजन को मृतक पिण्ड के समान त्याग दे। देव पूजन न करे। प्रपंच वृत्ति को त्याग कर जीवन्मुक्त होवे। आसन, पात्र लोप, संचय, शिष्य संचय, दिन का सोना, वृथा बोलना, ये छः यति को बंधन करने वाले हैं॥ ७९॥ वर्षा सिवाय जो स्थान है, वह आसन कहलाता है। कहे हुए तूंबी आदि पात्रों के अभाव में अन्य का ग्रहण करना॥ ८०॥ यति के व्यवहार के लिये, वह पात्र लोप कहलाता है। ग्रहण किये दण्डादि के सिवाय दूसरे का ग्रहण करना॥ ८१॥ दूसरे काल में उपभोग के लिये, संचय कहलाता है। शुश्रुषा, लाभ, पूजा अथवा यश के लिये परिग्रह करना॥ ८२॥ शिष्यों का, जो करुणा से न हो, वह शिष्य संग्रह कहलाता है। प्रकाश रूप होने से विद्या दिन और अविद्या रात्रि कहलाती है॥ ८३॥ विद्या के अभ्यास में जो प्रमाद है, वह दिन का सोना कहलाता है। अध्यात्म कथा को छोड़कर, भिक्षा की बात के सिवाय तथा॥ ८४॥ अनुग्रह और उत्तर देने के सिवाय अन्य वृथा जल्प कहलाता है। मद और मात्सर्य एकान्न है, गंध पुष्प भूषण है॥ ८५॥ ताम्बूल और तेल लगाना क्रीड़ा है, भोगों में इच्छा न होना रसायन है। खुशामद, निन्दा, स्वस्ति और ज्योति क्रय विक्रय॥ ८६॥ क्रिया, कर्म और विवाद गुरु के वाक्य का उल्लंघन हैं। संधि और विग्रह वाहन है। पलंग शुक्ल वस्त्र है॥ ८७॥ वीर्य का छोड़ना दिन

का सोना है, भिक्षा का आधार सुवर्ण है। विष आयुध है बीज हिंसा है और तीक्ष्णपना मैथुन है॥ ८८॥ संन्यास योग से गृहस्थ के धर्मादिक का छोड़ना व्रत है। गोत्रादि के सब आचार और पिता माता का कुल धन इन सब निषेध किये हुओं के सेवन करने से नीच गति को प्राप्त होता है॥ ८९॥ वृद्ध हुआ विद्वान् भी वृद्ध स्त्री का विश्वास न करे। (क्योंकि) पुरानी कंथा में भी पुराना वस्त्र लगता है॥ ९०॥ स्थावर, जंगम बीज, सुवर्ण, विष, आयुध इन छः को मूत्र पुरीष के समान यति ग्रहण न करे॥ ९१॥ आपत्ति के सिवाय मार्ग के लिये कोई भी वस्तु यति ग्रहण न करे। आपत्ति में जब तक अन्न न मिले पक्वान्न को ग्रहण करे॥ ९२॥ निरोगी और युवा भिक्षु किसी के घर में वास न करे। दूसरे के लिये न लेना चाहिये न कुछ देना चाहिये॥ ९३॥ जीवों के सौभाग्य के लिये यति दीन भाव का आचरण करे, पका हुआ अथवा न पका हुआ मांगने से अधोगति को प्राप्त होता है॥ ९४॥ अन्न पान परायण भिक्षु वस्त्रादि का ग्रहण करने वाला, ऊनी कपड़ा, बिना ऊन का कपड़ा तथा रेशम का वस्त्र॥ ९५॥ इनको ग्रहण करने से यति पतित होता है, इसमें संशय नहीं है, अद्वैत नाव का आश्रय करके जीवन्मुक्ति को प्राप्त करे॥ ९६॥ वाणी के दण्ड के लिये मौन रहे, काया के दण्ड के लिये भोजन रहित रहे। मन को दण्ड देने के लिये प्राणायाम किया जाता है॥ ९७॥ जीव कर्म से बंधन को प्राप्त होता है और विद्या से मुक्त होता

है इसलिये पारदर्शी यति कर्म नहीं करते ॥ ९८ ॥ मार्गों में वहुत से वस्त्र (फटे पुराने) पड़े मिलते हैं और भिक्षा सर्वत्र मिल जाती है । पृथिवी विस्तार वाली शय्या है फिर यति किस लिये दुखी हों ? ॥९९॥ यति ज्ञान के अग्नि से सम्पूर्ण प्रपंच को जला देवे । जो भली प्रकार से आत्मा में अग्नियोंका आरोप कर दे वह महा यति अग्नि होत्र करने वाला है ॥१००॥ प्रवृत्ति दो प्रकार की है मार्जारी और वानरी । ज्ञान के अभ्यास वालों की तो प्रधानता से मार्जारी है और गौणता से वानरी नाम की है ॥१०१॥ विना पूछा हुआ किसी से न वोले अन्याय से पूछा भी न वोले वुद्धिमान् जानता हुआ भी जड के समान लोक में आचरण करे ॥ १०२ ॥ वह पापों के समूह के उपस्थित होने पर वारह हजार तारक मन्त्र का अभ्यास करे । वह पापों का काटने वाला है ॥ १०३ ॥ जो प्रतिदिन वारह हजार प्रणव का जाप करे उसको वारह महीने में ही परब्रह्म का प्रकाश होता है ॥ १०४ ॥ यह उपनिषत् है ॥ ॐ तत्सत् ॥ इति द्वितीय अध्याय ॥

॥ इति संन्यास उपनिषत् समाप्त ॥

परमहंस परिव्राजक उपनिषत्

[२५]

पितामह (ब्रह्मा) ने अपने पिता आदि नारायण के पास जाकर प्रणाम करके पूछा "हे भगवन् ! वर्ण आश्रम के धर्म कर्म सब आपके मुखसे सुनकर मैंने जानलिये हैं। अब मैं परमहंस परिव्राजकके लक्षण जानना चाहता हूँ। परिव्राजक का अधिकारी कौन है? परिव्राजकके लक्षण कैसे हैं? परमहंस कौन है? परिव्राजक पना कैसा है ? यह सब मुझसे कहिये !" उन भगवान् आदि नारायण ने कहा 'सद्गुरु के समीप सब विद्याओं को परिश्रम से जानकर, विद्वान् इस लोक और परलोक के सुखको श्रम रूप जानकर, तीनों एषणा, तीनों वासना, ममता, अहंकारादिक को वमन किये हुए अन्न के समान त्यागने योग्य समझ कर मोक्ष मार्ग के मुख्य साधन रूप ब्रह्मचर्य को समाप्त करके गृहस्थ होवे, घर से वानप्रस्थ होकर जावे। अथवा दूसरी रीति से ब्रह्मचर्य से ही जावे अथवा घर से जावे अथवा वन से जावे। व्रत वाला या व्रत रहित, स्नातक या अस्नातक, अग्नि का त्याग किया है या अग्नि रहित, जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन संन्यास ग्रहण करे इस प्रकार जानकर, सब संसार से विरक्त होकर, ब्रह्मचारी गृहस्थ अथवा वानप्रस्थ पिता माता, स्त्री पुत्र और आप्त बांधवों से और उनके अभाव में शिष्य और साथियों से सलाह लेकर

उस दिन कोई प्रजापति संबंधी यज्ञ करते हैं परन्तु वह न करे। आग्नेयी ही करे। 'इष्टि अग्नि ही प्राण है' अग्नि प्राण को करता है इस मंत्र से त्रैधातवी इष्टि करे। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ये ही तीन धातु हैं। 'हे अग्नि! यह प्राण तुम्हारा कारण रूप है, प्राण से उत्पन्न हुए तुम प्रकाश को प्राप्त हो, प्राण के जानने वाले हे अग्नि देव! तुम वृद्धि को प्राप्त हो और हमारी सम्पत्ति विशेष करो, इस मंत्र से अग्नि को सूंघे। 'जो प्राण अग्नि का कारण रूप है, उस प्राण में अग्नि देव तुम प्रवेश करो' ऐसे कह कर आहुति दे। ग्राम से श्रोत्रिय के स्थान से अग्नि लाकर अपनी कही हुई विधि के अनुसार पूर्व के समान अग्नि को सूंघे। जो आतुर हो और अग्नि न मिले तो जल में हवन करे। 'जल ही सब देवता हैं, सब देवताओं के लिये हवन करता हूँ स्वाहा' इस प्रकार हवन करके उठकर घृत सहित पवित्र हवि का भोजन करे। यह विधि वीर मार्ग में या अनाशक में या संप्रवेश में या अग्नि प्रवेश में या महा प्रस्थान में है। जो आतुर (रोगी) हो तो मन से या वाणीसे संन्यासकी विधि करे। स्वस्थ क्रमसे ही आत्म श्राद्ध और विरजा होम करे। अग्नि को आत्मा में आरोप करके लौकिक, वैदिक सामर्थ्य को और अपनी चौदह करण प्रवृत्ति को पुत्र में आरोप करके पुत्र के अभाव में शिष्य में और शिष्य के अभाव में अपने आत्मा में आरोप करके 'तू ब्रह्म है, तू यज्ञ है...' यह मन्त्र बोल कर ब्रह्म भावना से ध्यान करके सावित्री के प्रवेश पूर्वक जल में सब विद्याओं के अर्थ स्वरूप

वाली, ब्राह्मण्यके आधाररूप वेद माताको, क्रमसे तीनों व्याहृतियों में लय करके तीनों व्याहृतियों को अकार, उकार और मकार में लय करके सावधान होकर जलका पान करे। प्रणव उच्चारणपूर्वक शिखाको उखाड़कर, यज्ञोपवीतको काटकर, वस्त्रको भूमि या जलमें छोड़कर 'ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ स्वः स्वाहा' इस मन्त्र से नग्न होकर स्वरूप का ध्यान करता हुआ, फिर पृथक् प्रणव और व्याहृति पूर्वक मन से और वाणी से 'मैंने संन्यास किया, मैंने संन्यास किया, मैंने संन्यास किया' इस प्रकार मंद, मध्यम और उच्चध्वनि से तीन वार तीन गुणा प्रेष मंत्रका उच्चारण करके, एक प्रणव के ही ध्यान परायण होकर, सब भूतों को अभय मानकर 'स्वाहा' इस प्रकार कहकर ऊंची भुजाएं करके 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार 'तत्त्वमसि' आदि वाक्य के अर्थ से स्वरूप का अनुसंधान करता हुआ उत्तर दिशा को चला जावे। शुद्ध होकर विचरे। यह संन्यास है। यदि उसका अधिकारी न हो तो गृहस्थ की प्रार्थना पूर्वक सब भूतों को अभयदान कर, 'हे सखा ! मेरे बल की रक्षा कर, तू सखा है, तू वृत्रासुर को मारने वाला इन्द्र का वज्र है, मुझको शांति देने वाला हो, जो पाप हो, उसको निवारण कर !' प्रणव सहित इस मंत्र से लक्षण सहित वांस के दंड को, कटिसूत्र को, कौपीन को, कमंडलु को, नीचे के एक वस्त्र को ग्रहण करके सद्गुरुके पास जाकर नमस्कार करके गुरुमुखसे 'तत्त्वमसि' महा वाक्यको प्रणव सहित प्राप्त करके पुराने छालके वस्त्र अथवा मृग चर्म को धारण करके जल में उतरना, ऊँचे चढ़ना और एक

घर की भिक्षा को त्याग कर तीनों काल स्नान का आचरण करता हुआ, वेदान्त के श्रवण पूर्वक प्रणव का अनुष्ठान करता हुआ, ब्रह्म मार्ग में भली प्रकार संपन्न होकर अपने भाव को आत्मा में छुपा कर, ममता रहित आत्म निष्ठा वाला, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, दंभ, दर्प, अहंकार, असूया, गर्व, इच्छा, द्वेष, हर्ष, आमर्ष, ममता आदि को त्याग कर, ज्ञान वैराग्य से युक्त होकर, धन और स्त्री से विमुख होकर, शुद्ध मन वाला होकर सब उपनिषदों के अर्थ को विचारे। ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अहिंसा, सत्य की यत्न पूर्वक रक्षा करे। इन्द्रियों को जीत कर, बाहर और भीतर स्नेह रहित होकर शरीर धारण करने के निमित्त निन्दित और पतित को छोड़कर तीनों वर्णों में पशुओं के समान द्रोह से रहित होकर भिक्षा करता हुआ ब्रह्म होने के योग्य होता है। सब समय में लाभ और हानि को समान करके हाथ रूपी पात्र में माधूकर अन्न का भोजन करता हुआ, चरबीको न बढ़ाता हुआ, कृश होकर 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार भावना करता हुआ भिक्षाके लिये ग्राममें जाकर दृढ़शील हो कर ८ मास अकेला विचरे। इस प्रकार भाव और वर्ताव दोनों का आचरण करे। जब अलं बुद्धि होवे तब उस २ के मंत्र सहित कटिसूत्र कौपीन दंड कमंडलु सबको जल में छोड़कर कुटीचक या बहूदक या हंस या परमहंस होकर नंगा विचरे। ग्राम में एक रात, तीर्थ में तीन रात, शहर में पांच रात, क्षेत्र में सात रात, घर रहित,

स्थिर बुद्धि, अग्नि की सेवा रहित, निर्विकार, नियम अनियम को छोड़कर, प्राण धारण करने के ही निमित्त लाभ हानि को समान करके गोवृत्ति से भिक्षा करे। जल के स्थान को कमंडलु जानकर, अवाधक एकांत स्थान में वास करने वाला, लाभ हानि में फिर प्रीति न करता हुआ, शुभ अशुभ कर्मों को काटने के परायण हो। सर्वत्र भूतल में शयन करने वाला होकर, क्षौर कर्म को त्याग कर, चातुर्मास के नियम व्रतों को भी छोड़ दे और शुक्ल ध्यान के परायण रहे। धन स्त्री और शहर से विमुख, अनुन्मत्त भी उन्मत्त के समान आचरण करता हुआ, अप्रकट लिंग वाला, अप्रकट आचार वाला, उसका दिन रात एक होने से वह सदा जागने वाला होता है। स्वरूप का अनुसंधान और ब्रह्म प्रणव के ध्यान मार्ग से युक्त संन्यास से देह का त्याग करता है वह परमहंस परिव्राजक होता है।"

ब्रह्मा पूछता है—"हे भगवन्! ब्रह्म प्रणव किस प्रकार का है?" उन नारायण ने कहा, "ब्रह्म प्रणव सोलह मात्रा वाला है। वह चारों अवस्था में चारों अवस्था के मिलने से पाई जाती है। जाग्रत अवस्था में जाग्रत आदि चार अवस्था, स्वप्न में स्वप्न आदि चार अवस्था, सुषुप्ति में सुषुप्ति आदि चार अवस्था और तुरीय में तुरीय आदि चार अवस्थायें होती हैं। जाग्रत अवस्था में विश्व चार प्रकार का है, विश्व विश्व, विश्व तैजस, विश्व प्राज्ञ और विश्व तुरीय। स्वप्न अवस्था में तैजस चार प्रकार का है, तैजस विश्व, तैजस तैजस, तैजस प्राज्ञ और तैजस तुरीय। सुषुप्ति

अवस्था में प्राज्ञ चार प्रकार का है; प्राज्ञ विश्व, प्राज्ञ तैजस, प्राज्ञ प्राज्ञ और प्राज्ञ तुरीय। तुरीय अवस्था में तुरीय चार प्रकार का है, तुरीय विश्व, तुरीय तैजस, तुरीय प्राज्ञ और तुरीय तुरीय। वह क्रम से सोलह मात्रा पर आरूढ़ रहते हैं। अकार में जाग्रत विश्व, उकार में जाग्रत तैजस, मकार में जाग्रत प्राज्ञ और अर्ध मात्रा में जाग्रत तुरीय, बिन्दु में स्वप्न विश्व, नाद में स्वप्न तैजस, कला में स्वप्न प्राज्ञ, कलातीत में स्वप्न तुरीय, शान्ति में सुपुप्त विश्व, शान्त्यतीत में सुपुप्त तैजस, उन्मनी में सुपुप्त प्राज्ञ, मनोन्मनी में सुपुप्त तुरीय, वैखरी में तुरीय विश्व, मध्यमा में तुरीय तैजस, पश्यन्ति में तुरीय प्राज्ञ और परा में तुरीय तुरीय। जाग्रत की चार मात्रायें अकार अंश वाली हैं, स्वप्न की चार मात्रायें उकार अंश वाली हैं, सुपुप्ति की चार मात्रायें मकार अंश वाली हैं, तुरीय की चार मात्रायें अर्ध मात्रा के अंश वाली हैं, यह ही ब्रह्म प्रणव है, वह तुरीयातीत परमहंस और अवधूत इनका उपास्य है। उससे ही ब्रह्म प्रकाशता है, उससे विदेह मुक्ति है।"

ब्रह्मा पूछता है "भगवन् यज्ञोपवीत रहित, शिखा रहित, सब कर्मों को त्याग करने वाला कैसे ब्रह्म निष्ठा परायण और कैसे ब्राह्मण होता है?"

उन विष्णु ने कहा "हे बालक! जो अद्वैत आत्म ज्ञान है, वह ही उसका यज्ञोपवीत है। ध्यान निष्ठा ही उसकी शिखा है।

उसका कर्म पवित्र हैं, क्योंकि वह सब कर्म कर चुका है वह ब्राह्मण है, वह ब्रह्मनिष्ठा परायण है, वह देह है, वह ऋषि है, वह तपस्वी है, वह श्रेष्ठ है, वही सबसे बड़ा हैं, वही जगद्गुरु है, और वह ही मैं हूं, ऐसा जान। लोक में परमहंस परिव्राजक एकादिक होता है, वह अत्यन्त दुर्लभ है, वह ही नित्य पवित्र है, और वह ही वेदपुरुष महापुरुष हैं, जिसका चित्त मुझ ही में स्थित है, और मैं उसमें स्थित हूं, वह ही नित्य तृप्त है वह शीत उष्ण, सुख दुःख, मान अपमान रहित है वह निन्दा और आमर्ष का सहन करने वाला है, वह छः उर्मियों से रहित है, और छः भाव विकारों से रहित हैं वह छोटे बड़े के विचार से रहित है, और वह अपने सिवाय अन्य को देखने वाला नहीं है दिशायें उसके वस्त्र हैं, न वह नमस्कार करता है, न स्वाहाकार, न स्वधाकार और विसर्जन परायण होता है। वह न निन्दा स्तुति करता हैं, न मन्त्र तन्त्र का उपासक है। अन्य देव के ध्यान से रहित लक्ष अलक्ष को छोड़ने वाला, सब से उपराम वाला वह सच्चिदानन्द, अद्वय, चेतनघन सम्पूर्ण आनन्द का एक बोध वाला, और ब्रह्म प्रणव के अनुसन्धान से मैं ब्रह्म हूं इस प्रकार के अखंड भाव से कृत कृत्य होजाता है, वह ही परमहंस परिव्राजक है. यह उपनिषत् है।"

॥ इति परमहंस परिव्राजक उपनिषत् समाप्त ॥

त्रिशिखि ब्राह्मण उपनिषत् ।

[२६]

त्रिशिखी ब्राह्मण आदित्य लोक में गया और उन (आदित्य) के पास जाकर कहा "हे भगवान्! देह क्या है? प्राण क्या है? कारण क्या है? आत्मा क्या है?" उसने कहा "इस सबको शिव ही जान!" किन्तु नित्य, शुद्ध, निरंजन, विभु, अद्वितीय, शिव एक अपने प्रकाश से इस सबको देखकर तपे हुए लोहे के पिण्ड के समान एक ही को भिन्न के समान प्रकाशता हैं। यदि पूछो कि वह प्रकाश करने वाला कौन है तो कहा जाता है। अविद्या सहित ब्रह्म सत् शब्द का वाच्य है। ब्रह्म से अव्यक्त, अव्यक्त से महत, महत् से अहंकार, अहंकार से पांच तन्मात्रा, पांच तन्मात्राओं से पांच महाभूत, पांच महाभूतों से सम्पूर्ण जगत् है। वह सम्पूर्ण क्या है? भूतों के विकारों के विभाग हैं। एक ही पिन्ड में भूतों के विकारों के विभाग कैसे होते हैं? उन उनके कार्य कारण के भेद से अंश तत्त्व, वाचक वाच्य, स्थान भेद, विषय, देवता, कोश भेद, ये विभाग होते हैं। जैसे अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार ये आकाश है। समान, उदान, व्यान, अपान और प्राण ये वायु हैं। श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ये अग्नि है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये जल हैं। वाणी, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ ये पृथ्वी हैं। ज्ञान,

संकल्प, निश्चय, अनुसंधान और अभिमान ये आकाश के कार्य और अन्तःकरण के विषय ये हैं:—एकत्र करना, आंख खोलना, पकड़ना, फैलना और उच्छ्वास वायु के कार्य और प्राणादि के विषय हैं। शब्द, स्पर्श रूप, रस और गन्ध अग्नि के कार्य और ज्ञानेन्द्रिय के विषय और जल के आश्रित हैं। बोलना, पकड़ना, चलना, त्यागना और आनन्द पृथिवी के कार्य और कर्मेन्द्रिय के विषय हैं। ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के विषयों में प्राण और तन्मात्राओं के विषय अन्तर्भूत हैं। मन और बुद्धि में चित्त और अहंकार अंतर्भूत हैं, अवकाश, ठेलना, दर्शन, पिंडीकरण, धारण ये पांच सूक्ष्मतम तन्मात्रा के विषय हैं। इस प्रकार आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक बारह अंग हैं। उनमें चन्द्रमा, ब्रह्मा, दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, प्रजापति और यम ये इन्द्रियों के अधिदेवता रूप से बारह नाड़ियों के भीतर स्थित प्राण ही हैं, ये अंग हैं। अंगों का ज्ञान रूप ही ज्ञाता है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और अन्न का पञ्चीकरण इस प्रकार है। जाननापना समान वायु के योग से है श्रोत्र द्वारा शब्द गुण वाणी के सहारे आकाश में स्थित है और आकाश स्थित है। मन व्यान के योग से है त्वचा द्वारा स्पर्श गुण हाथ के सहारे वायु में स्थित है और वायु स्थित है। बुद्धि उदान के योग से है, चक्षु द्वारा रूप गुण पाद के सहारे अग्नि में स्थित है और अग्नि स्थित है। चित्त अपान के योग से है जिह्वा द्वारा रस गुण उपस्थ

के सहारे जल में स्थित है और जल स्थित है। अहंकार प्राण के योग से हैं, नासिका द्वारा गंध गुण गुदा के सहारे पृथिवी में स्थित है और पृथिवी स्थित है ऐसा वह जानता है। इसमें ये श्लोक हैं। प्रत्येक भूत के अपने आधे भाग और दूसरों की क्रम से सोलह कलाओं से अन्तःकरण (आकाश), व्यान (वायु), अक्षि (तेज), जिह्वा (जल) और गुदा (पृथ्वी) ये आकाश के क्रम से ॥ १ ॥ प्रत्येक भूत का मुख्य पहिला भाग और पिछले चार २ भाग आकाश से लेकर पृथिवी आदि में स्थित हैं ॥ २ ॥ मुख्य भाग से ऊपर के सूक्ष्म भूत को जाने, पीछे बने हों उनको स्थूल जाने। इसी प्रकार उससे अंश हुआ और वैसे ही उनसे अंश हुए ॥ ३ ॥ इस प्रकार एक दूसरे का आश्रय करके क्रम से सब ओत प्रोत हैं।

वह पांच भूतों वाली पृथिवी चेतन से युक्त हैं ॥ ४ ॥ उसी (पृथिवी) से औषधी और अन्न हैं, उसीसे चार प्रकार के पिन्ड हैं, रस, लोहू, मांस, चरबी, हड्डी, मज्जा और वीर्य धातु हैं ॥ ५ ॥ कहीं २ उन धातुओं के संयोग से प्राणियों के कुछ पिण्ड हुए, अन्नमय पिण्ड नाभि मण्डल में स्थित है ॥ ६ ॥ उसके मध्य में नाल सहित कमल कोश के समान हृदय है। हृदय के भीतर कर्ता के अहंकार से चेतन ऐसे सत्त्वगुणी देवता बैठे हुए हैं ॥ ७ ॥ इसका बीज मोह रूप जड़ और घन ऐसा तमोगुण का पिंड रूप अज्ञान कंठ का आश्रय करके वर्त्तता है यह जगत् उससे व्याप्त है ॥ ८ ॥ प्रत्येक आनंद रूप आत्मा मूर्धा के स्थान परम-

पद में अनंत शक्तियों से युक्त होकर जगत् रूप हो भासता है ॥ ९ ॥ जाग्रत सर्वत्र वर्तता है स्वप्न जाग्रत में वर्तता है, सुषुप्ति और तुरीय ये अन्य अवस्थाओं में कहीं नहीं वर्तती ॥ १० ॥ चारों रूप से शिव स्वरूप सब देशों में ओत प्रोत है, जैसे कि सब महा-फलों में रस सबका प्रवर्तक है ॥ ११ ॥ इस प्रकार अन्नमय कोश के भीतर इतर कोश स्थित हैं, जैसे कोश हैं वैसा जीव है और जैसा जीव वैसा शिव है ॥ १२ ॥ जीव विकारी है और शिव निर्विकार है। कोश उसके विकार हैं और वे सब अवस्थाओं में प्रवर्तक हैं ॥ १३ ॥ जैसे दूध के पात्र में मथने से फेन उत्पन्न होता है, ऐसे ही मन के मथने से बहुत से विकल्प होते हैं ॥ १४ ॥ कर्मी कर्मों से वर्तता है और उनके त्याग से शांति को प्राप्त होता है। दक्षिण अयन में प्राप्त होने से प्रपंच में फंसा हुआ है ॥ १५ ॥ सदाशिव अहंकार के अभिमान से जीव हुआ है, वह अविवेक और प्रकृति के संग से वहां मोह को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ वासना के वश होकर वह सैकड़ों योनियों में जाकर सोता है और मोक्ष से विमुख होकर भटका करता है जैसे कि मत्स्य दोनों किनारों पर आता जाता है ॥१७॥ पीछे काल के वश से ही आत्म ज्ञान और विवेक से उत्तर मार्ग परायण होकर एक स्थान से दूसरे स्थान को क्रम से प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ अपने प्राण को मूर्धा में धारण करके योगाभ्यास में लगता है, योग से ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञान से योग प्रवृत्त होता है ॥ १९ ॥ वह नित्य ज्ञानयोग परायण योगी नष्ट नहीं

होता, विकार में स्थित शिव को देखता है। किन्तु शिव में तो विकार हैं ही नहीं ॥ २० ॥ योग के प्रकाशक (शिव) का अनन्य भाव से योग द्वारा ध्यान करे जिसको योग और ज्ञान नहीं होता उसका भाव सिद्ध नहीं होता ॥ २१ ॥ इसलिये अभ्यास योग से मन का प्राण द्वारा निरोध करे, मानो छुरे की पैनी धार से उसको काट डाले। यमादि आठ योग के आगे के अभ्यास से आत्मज्ञान रूप योग शिखा उत्पन्न होती है।

ज्ञानयोग और कर्मयोग दो प्रकार का योग माना गया है ॥ २२-२३ ॥ हे उत्तम ब्राह्मण! अब कर्मयोग सुन! अव्याकुल चित्त वाले का विषयों से बंधन कहां? ॥ २४ ॥ हे द्विज श्रेष्ठ! जो संयोग है, वह दो प्रकार का कहा जाता है। शास्त्र विहित कर्मों में कर्म कर्तव्य है ॥ २५ ॥ मन का नित्य निग्रह करना कर्मयोग कहलाता है, और जो चित्त को सदा अपने कल्याण में लगाना ॥ २६ ॥ वह शिव रूप सब सिद्धियों को देने वाला ज्ञानयोग जानना चाहिये। कहे हुए लक्षण वाले दोनों प्रकार के योग में जिसका मन निर्विकार है ॥ २७ ॥ वह मोक्ष लक्षण वाले परम श्रेय को शीघ्र प्राप्त होता है।

देह इन्द्रियों में वैराग्य को पंडित यम कहते हैं ॥ २८ ॥ परम तत्त्व में सदा अनुराग नियम कहलाता है। सब वस्तुओं में उदासीन भाव उत्तम आसन कहलाता है ॥ २९ ॥ इस सब जगत् की मिथ्या प्रतीति प्राणका संयम है। हे श्रेष्ट! चित्त का अंतर्मुखी

भाव प्रत्याहार है ॥ ३० ॥ चित्त के निश्चल भाव धारण करने को धारणा जान। 'मैं वह चिन्मात्र हूं' इस प्रकार चिंतवन करना ध्यान कहलाता है ॥ ३१ ॥ ध्यान का भली प्रकार विस्मरण होना समाधि कहलाती है।

अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, दया, सीधापन ॥ ३२ ॥ क्षमा धैर्य सूक्ष्माहार और शौच ये दश यम हैं। तप, संतोष, आस्तिकपना, दान, ईश्वर का आराधन ॥ ३३ ॥ वेदान्त का श्रवण, लज्जा की बुद्धि और जप व्रत है। हे ब्राह्मण! स्वस्तिक आदि आसन और उनके अंग यानी विधि कहते हैं:—॥ ३४ ॥ दोनों पैरों के तलुओं को परस्पर दोनों घोंटुओं के बीच में करके बैठने को स्वस्तिक आसन कहते हैं ॥ ३५ ॥ पीठ के वाम भाग में दांयां टकना और दांयें भाग में बायें टकने को लगा कर जो गौ के मुख के समान हो जाता है, वह गोमुख आसन होता है ॥ ३६ ॥ एक चरण को वाम जंघा पर और दूसरे को दक्षिण जंघा पर रख कर वीरासन कहलाता है ॥ ३७ ॥ दोनों एड़ियों से गुदा को विपरीत क्रम से दबा कर यानी दांई से वाम भाग को और बांई से दक्षिण भाग को दबा कर जो सावधानी से बैठा जाय वह योगासन होता है, इस प्रकार योग के जानने वाले जानते हैं ॥ ३८ ॥ जब दोनों जंघाओं पर दोनों पैर के तलुये रक्खे जाते हैं तब यह पद्मासन सब व्याधि और विष नाश करने वाला होता है ॥ ३९ ॥ पद्मासन को लगा कर फिर विपरीत क्रम से दोनों अंगूठों को दोनों हाथों से पकड़े तो बद्ध पद्मासन होता

है ॥ ४० ॥ पद्मासन को लगा कर जानू और जंघाओं के बीच में दोनों हाथों को भूमि में लगा कर आकाश में स्थित रहे, यह कुक्कुट आसन है ॥ ४१ ॥ कुक्कुट आसन को लगाकर दोनों भुजाओं से कंधों को भली प्रकार बांध कर कूर्म के समान सीधा हो तो वह उत्तान कूर्मासन कहलाता है ॥ ४२ ॥ दोनों पैरों के अंगूठों को हाथों से पकड़ कर धनुष्य के समान कान तक खींचे, उसको धनुरासन कहते हैं ॥ ४३ ॥ सीवनी को दोनों एड़ियों से विपरीत रीति से दबा कर दोनों घोंटुओं और हाथों को फैलानें से सिंहासन होता है ॥ ४४ ॥ वृषणों के नीचे सीवनी के दोनों पार्श्व भागों में एड़ियों को रख कर पैर और हाथों को बांध कर बैठने से भद्रासन होता है ॥ ४५ ॥ सीवनी के दोनों पार्श्व भागों को एड़ियों से विपरीत रीति से दबावे उसको मुक्तासन कहा है ॥ ४६ ॥ दोनों हाथों से भूमि को स्पर्श करके उन हाथों की कुहनी के ऊपर नाभि के दोनों पार्श्व भागों को मोर के समान स्थापित करके ॥ ४७ ॥ शिर और पैरों को उठे हुए रखने से मयूरासन कहलाता है। बांईं जंघा के मूल में दहिना चरण रख कर और जानु से बाहर वाम पाद को हाथ से लपेट कर ॥ ४८ ॥ और वाम भाग से बांयें अंगूठे को पकड़े वह मत्स्येन्द्र आसन होता है। बांयें पैर से एड़ी को दबा कर मेढ़ू के ऊपर दक्षिण पैर को रख कर ॥ ४९ ॥ सीधा शरीर करके बैठे इसको सिद्धासन कहा है। दोनों चरणों को भूमि पर फैला कर, दोनों पैर के अंगूठों को भली प्रकार पकड़ कर ॥

घोंटुओं के ऊपर मस्तक को रक्खे तो वह आसन पश्चिमतान कहलाता है। जिस किसी प्रकार से सुख और स्थिरता उत्पन्न होती है ॥ ५१ ॥ वह सुखासन कहलाता है, असमर्थ पुरुष उसको लगावे, जिसने आसन को जीत लिया उसने तीनों जगत को जीत लिया ॥ ५२ ॥

आदि में यम नियम और आसन से युक्त होकर नाड़ियों की शुद्धि करके प्राणायाम करे ॥ ५३ ॥ देह का प्रमाण अपनी अंगुलियों से छयानवे अंगुली विस्तार वाला है, शरीर से बारह अंगुल अधिक प्राण का प्रमाण है ॥ ५४ ॥ देह में स्थित वायु को देह से उत्पन्न हुए अग्नि से योग द्वारा न्यून अथवा समान करता हुआ ब्रह्म जाना जाता है ॥ ५५ ॥ देह के मध्य में तपे हुए मनुष्यों में सोने की प्रभावाला तीन कोण वाला अग्नि का स्थान होता है, और चार कोण वाला चार पद वाले पशुओं में होता है ॥ ५६ ॥ पक्षियों का गोल होता है, सर्प की योनि वालों का छः कोण का होता है। पसीने से उत्पन्न होने वालों का आठ कोण का होता है। मनुष्यों के देह में उस स्थान पर दीपक के समान उज्ज्वल नौ अंगुल वाला कन्द स्थान होता है। वह चार अंगुल ऊँचा और चार अंगुल चौड़ा होता है ॥ ५७ ॥ तिर्यक्, पक्षियों और चौपायों में अण्डे की आकृति वाला पेट के मध्य में वह स्थित है, उसके मध्य को नाभि कहते हैं ॥ ५८ ॥ वहां बारह आरे वाले चक्र हैं, उनमें विष्णु आदि मूर्तियां हैं, वहां स्थित चक्र को मैं अपनी माया से घुमाता हूँ ॥ ५९ ॥ हे

उत्तम ब्राह्मण ! उन आरों में जीव क्रम से इस प्रकार घूमता है जिस प्रकार तन्तु के जाल में मकड़ी घूमती है ॥ ६० ॥ प्राण पर चढ़ा हुआ जीव चलता है, उसके विना नहीं चलता, उस नाभि के ऊपर कुण्डली का स्थान तिरछा और ऊँचा है ॥ ६१ ॥ वह आठ प्रकृति वाली आठ प्रकार की कुण्डली किये हुए है; वह वायु तथा अन्न जल के संचार को ठीक ठीक कन्द के पास चारों तरफ से रोक कर सदा स्थित है इसी प्रकार ब्रह्म-रंध्रके मुखको मुखसे घेर कर स्थित है ॥ ६२-६३ ॥ योग काल में अग्नि सहित पवन से जाग्रत की हुई हृदय आकाश में नाग रूप से अत्यन्त प्रकाश वाली स्फुरित होती है ॥ ६४ ॥ अपान से दो अंगुल ऊँची मेढ्र के नीचे तक मनुष्यों के देह का मध्य होता है और चौपायों का हृदय में होता है ॥ ६५ ॥ तथा औरों का टूंडी के मध्य में होता है। (प्राण अपान से संयुक्त सुषुम्ना से देह के मध्य में चार प्रकार से प्रकाशती है) ॥ ६६ ॥ कन्द के मध्य में प्रसिद्ध सुषुम्ना नाड़ी स्थित है। वह कमल सूत्र के समान सूक्ष्म सीधी ऊपर गई हुई है ॥ ६७ ॥ ब्रह्मरंध्र तक बिजुली के समान प्रकाशित नाल वाली वैष्णवी ब्रह्म नाड़ी निर्वाण प्राप्ति का मार्ग रूप है ॥ ६८ ॥ इडा और पिंगला उसके इधर उधर स्थित हैं, इडा कन्द से बांईं नासिका के पुट तक चली गई है ॥ ६९ ॥ पिंगला उससे दांईं नासिका के पुट तक चली गई है। गांधारी हस्तिजिह्वा दो नाड़ी और अन्य नाड़ियां स्थित हैं ॥ ७० ॥ वे उसके आगे पीछे

बांई और दांई आंख तक गई हैं। पूषा और यशस्विनी दो नाड़ियां उसी से निकली हैं ॥ ७१ ॥ वे गुदा के मूल से दांयें और बांयें कान तक गई हैं। अलम्बुसा शुभा नाड़ी मेढ़ू के अन्त तक नीचे गई हुई है ॥ ७२ ॥ कन्द के नीचे पैर के अंगूठे तक कौशिकी है। ये दश प्रकार की नाड़ियां कंद से उत्पन्न हुई कही गई है ॥ ७३ ॥ उसके मूल में बहुत सी सूक्ष्म और स्थूल नाड़ियां हैं स्थूल और सूक्ष्म बहत्तर हजार नाड़ियां हैं ॥ ७४ ॥ स्थूल मूल वाली नाड़ियों की भिन्न २ प्रकार से गिनती नहीं हो सक्ती जैसे पीपल के पत्ते में सूक्ष्म और स्थूल नसें फैली हुई हैं ॥ ७५ ॥ प्राण, अपान, समान उदान, और व्यान। नाग, कूर्म, कृकर देवदत्त और धनंजय ॥ ७६ ॥ प्राणादिक दश वायु दश नाड़ियों में चलते हैं, उन में प्राणादि पांच मुख्य हैं और उनमें दो (प्राण अपान मुख्य हैं ॥ ७७ ॥ अथवा प्राण ही मुख्य हैं, और जीव को धारण करता है। मुख और नासिका का मध्य, हृदय नाभि मंडल ॥ ७८ ॥ और पैरका अंगूठा, हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! ये प्राण के स्थान हैं। हे ब्राह्मण अपान गुदा, मेढ़ू जंघा और घोंटू में चलता हैं ॥ ७९ ॥ समान सब अंगों में सर्वव्यापी हो कर स्थित है। उदान दोनों पैर दोनों हाथ और सब संधियों में स्थित है ॥ ८० ॥ व्यान श्रोत्र जंघा कमर, एड़ी, कन्धे और गले में स्थित है। नागादि पांच वायु त्वचा और हड्डी आदिकों में स्थित है ॥ ८१ ॥ तुन्द में स्थित जल, अन्न और रसादिकों को एकत्र कर के तुन्द के मध्य में रहा हुआ प्राण पृथक् २ करता है ॥ ८२ ॥ इत्यादि चेष्टा प्राणपृथक

स्थित हो कर करता है। अपान मूत्रादि और विसर्जन करता है ॥ ८३ ॥ व्यान वायु से प्राण अपान आदि की चेष्टा की जाती हैं शरीर में स्थित उदान से आकाश की तरफ उड़ाया जाता है ॥ ८४ ॥ समान शरीरादि का पोषण आदि करता है। डकार आदि क्रिया नाग की है । कूर्म की क्रिया आंखों का खोलना मुदना है ॥ ८५ ॥ कृकर भूख लगाता है। देवदत्त निद्रा आदि कर्म करता है मृतक शरीर की शोभा आदि धनंजय करता है ॥ ८६ ॥ नाड़ी भेद, वायु भेद और प्राणों का स्थान और चेष्टा अनेक हैं। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! उनको जान कर ही ॥ ८७ ॥

पूर्वोक्त ज्ञान से युक्त होकर नाड़ियों को शुद्ध करने का यत्न करे। सर्व संबंध से रहित योग के अंगों की सामग्री से संपूर्ण और एकान्त देश में जाकर वहां लकड़ी के बने हुए शुभ स्थान में दर्भ, कुश और काले मृग चर्म का आसन बनावे ॥८८-८९॥ जब तक दोनों अंग समान न होजांय तब तक आसनकी साधना करे। आसन पर बैठ कर यथा रुचि स्वस्तिक आदि आसन भली प्रकार लगावे ॥ ९० ॥ ब्राह्मण सीधा शरीर रख कर समाहित चित्त होकर प्रथम आसन लगा कर नासा के अग्र भाग में दृष्टि करके दांतों से दांतोंको न स्पर्श करते हुए ॥९१॥ जिह्वाको तालू में रख कर उपद्रव रहित स्वस्थ चित्त होकर सकोड़े हुए शिरको योग मुद्रा से कुछ २ हाथों को बांध कर कही हुई विधि से प्राणायाम करे। रेचन, पूरण, वायु का शोधन तथा रेचन ॥ ९२-९३ ॥ चार प्रकार से वायु के नियमन को प्राण-

मन के वश हो जाने से प्राण वायु सदा स्वाधीन रहता है। नासिका के छिद्रों में क्रम से वर्तता है॥ ११६॥

नाड़ियां तीन होती हैं। उनमें प्राणायाम करने वाले महात्माओं के प्राण जितने काल तक दाहिने नासा पुट से चलता है उतने ही काल बांये से चलता है। इस प्रकार क्रम से चलते हुए प्राण वाला प्राणको जीतने वाला मनुष्य ॥११७-११८॥ दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, अयनादिक काल भेद को समाहित और अन्तर्मुख होकर जानता है॥ ११९॥ अंगुष्ठादि अपने अवयवों का स्फुरण वा दर्शन होना बद होजाना इन अरिष्टों से जीते हुए ही अपना क्षय मृत्यु जाने॥ १२०॥ ऐसा जानकर श्रेष्ठ योगी कैवल्य का प्रयत्न करे। जिसके पैर के अंगूठे और हाथ के अंगूठे में स्फुरण सुनाई न दे॥ १२१॥ तो उसके जीवन का साल भरके बाद क्षय होता है। जिसके कलाई और एड़ी का स्फुरण बंद हो जावे॥ १२२॥ तो उसके जीवित की छः मास तक स्थिति रहे। जिसकी कुहनी में स्फुरण न हो, उसकी तीन मास की स्थिति है॥ १२३॥ कोख, शिश्न और पांसू में स्फुरण न रहने से एक मास तक जीवे और दृष्टि में स्फुरण न होने से आधे मास जीवे॥ १२४॥ जठर द्वार पर स्फुरण न होने से दश दिन जीवन होता है। जिसकी ज्योति जुगनू के समान होजाती है उसका जीवन पांच दिन होता है॥ १२५॥ जिह्वा का अग्र न दीखने पर तीन दिन उसकी स्थिति रहती है। ज्वाला के न दीखने पर दो दिन में निश्चय मृत्यु होजाता है॥ १२६॥ इत्यादि अरिष्ट दृश्य

आयु के क्षय के कारण है इसलिये जप ध्यान परायण होकर अपने कल्याण का यत्न करे ॥ १२७ ॥ मन से परमात्मा का ध्यान करके उसकी एक रूपता को प्राप्त करे ।

मर्म स्थानों में धारणा अठारह भेद वाली है ॥ १२८ ॥ स्थान से स्थान का जो खींचना है, वह प्रत्याहार कहलाता है । पैर का अंगूठा, एड़ी, जंघा का मध्य ॥ १२९ ॥ उरुका मध्य, गुदा का मूल, हृदय, शिश्न, देह का मध्य, नाभि, कंठ, कुहनी ॥ १३० ॥ तालु का मूल, घ्राण का मूल और आंखों का मंडल, भौंओं का मध्य, मस्तक का ऊर्ध्व मूल घोंटू ॥ १३१ ॥ का मूल और हाथों का मूल, हे ब्राह्मण ! पांचों भूतों के इस पंचभौतिक देह में, ये महान् (मर्म स्थान) हैं ॥ १३२ ॥ युक्त मन का जो यमादिं से धारण करना हैं वही संसार से तारने का कारण रूप धारणा है ॥ १३३ ॥

घोंटू से पैर तक पृथ्वी का स्थान कहलाता है । पीली, चार कोण वाली पृथ्वी वज्र से लांछित है ॥ १३४ ॥ पांच घड़ी तक वायु को रोक कर पृथ्वी का ध्यान करना चाहिये । घोंटू से कमर तक जल का स्थान कहा है ॥ १३५ ॥ आधे चन्द्र के समान आकार वाला, श्वेत और चांदी से लांछित हैं । दश घड़ी तक श्वास को रोक कर जल का ध्यान करना चाहिये ॥ १३६ ॥ देह के मध्य से कटि पर्यन्त अग्नि का स्थान कहा है । वहां सिन्दूर के रंग वाले प्रज्वलित अग्नि का पन्द्रह घड़ी ॥ १३७ ॥ प्राण को

नाड़ियों में रोक कर ध्यान करना चाहिये, इस प्रकार कहा है। नाभि के ऊपर नासिका पर्यन्त वायु का स्थान है, वहां ॥ १३८ ॥ वेदी के आकार वाला, धुएं के रंग वाला, बलवान् पवन है। कुंभक करके पवन को प्राण में बीस घड़ी तक रोक कर ध्यान करना चाहिये, प्राण से ब्रह्मरंध्र तक आकाश का स्थान है, वहां नीले रंग के समान प्रभा है ॥ १३९-१४० ॥ यत्न करने वाला कुम्भक से आकाश में वायु को रोके। फिर देह के पृथ्वी अंश में चार भुजा वाले, किरीट वाले ॥ १४१ ॥ अनिरुद्ध हरि का योगी संसार से मुक्त होने के लिये ध्यान करने का यत्न करे। सूक्ष्म बुद्धिवाला योगी जलके अंशमें नारायण को पूर्ण करे ॥१४२॥ अग्नि में प्रद्युम्न को, वायु के अंश में संकर्षण को और पीछे आकाश अंश में परमात्मा वासुदेवका सदा स्मरण करे ॥ १४३ ॥ सदा अभ्यास करने वाले को इस परमात्मा की प्राप्ति शीघ्र ही होजाती है, इसमें संशय नहीं है।

प्रथम योगासन को बांधकर हृदय देश में हृदय को रोक कर ॥ १४४ ॥ नासा के अग्र भाग में दृष्टि लगा कर जिह्वा को तालू में करके दांतों से दांतों को न स्पर्श करते हुए ऊँचा शरीर करके समाहित होकर ॥ १४५ ॥ शुद्ध आत्मबुद्धि से इन्द्रियों के समूह को रोक कर वासुदेव परमात्मा का चिंतवन करे ॥ १४६ ॥ अपने में व्याप्त रूप का ध्यान कैवल्य सिद्धि को देने वाला है। जो एक पहर कुम्भक द्वारा वासुदेव का चिंतवन करे ॥ १४७ ॥ उस योगी का सात जन्म का किया हुआ पाप नष्ट होजाता है।

नाभि कन्द से लेकर हृदय स्थान तक ॥ १४८ ॥ जाग्रत वृत्ति को जाने। स्वप्न वाला कंठ में स्थित होता है। सुषुप्त तालू के मध्य स्थित होता है, तुर्य भौओं के मध्य में स्थित होता है ॥ १४९ ॥ और तुर्यातीत ब्रह्मरंध्र में परब्रह्म का लक्ष करता है। जब तक जाग्रत वृत्ति से आरंभ कर के ब्रह्मरंध्र के भीतर है ॥ १५० ॥ तब तक यह तुरीय का आत्मा है, तुर्या के अन्त में विष्णु कहलाता है। ध्यान से युक्त होकर अत्यंत निर्मल आकाश में ॥ १५१ ॥ करोड़ सूर्य की द्युति वाले हृदय कमल में बैठे हुए नित्य उदय रूप अथवा विश्व रूप विष्णु का ध्यान करे ॥१५२॥ अनेक आकारों से युक्त, अनेक मुखों से युक्त, अनेक भुजाओं से युक्त, अनेक आयुधों से मंडित ॥ १५३ ॥ नाना वर्ण वाले, देव रूप, शांत, उग्र, आयुध उठाये हुए अनेक नेत्र वाले, कोटि सूर्य के समान प्रभा वाले (विश्वरूप विष्णु) का ॥ १५४ ॥ ध्यान करने वाले योगी की सब मन की वृत्तियां नष्ट हो जाती हैं। हृदय कमल के मध्य स्थित, चैतन्य, ज्योति, अव्यय ॥ १५५ ॥ कदंब के समान गोल आकार वाले, तुर्यातीत, पर से पर, अनन्त, आनन्दमय, चिन्मय, प्रकाशमान, विभु ॥ १५६ ॥ वायु रहित स्थान के दीपक समान अकृत्तिम मणि की प्रभा वाले (निर्मल ब्रह्म) का ध्यान करने वाले योगी के हाथ में ही मुक्ति स्थित है ॥ १५७ ॥ विश्व रूप देव का स्थूल सूक्ष्म अथवा अन्य जो कुछ रूप है उसको हृदय कमल में देख कर ॥ १५८ ॥ जो योगी ध्यान करता है, उसको वह साक्षात् प्रकाशता है और अणिमा

आदि का फल सुख से ही उत्पन्न होता है ॥ १५९ ॥ जीवात्मा और परमात्मा दोनों का ही ज्ञान होकर मैं ही परब्रह्म हूँ इस प्रकार स्थिति ॥ १६० ॥ समाधि है उसको सब वृत्तियों से रहित होकर जानना चाहिये। जो योगी ब्रह्म को संपादन करता है, वह फिर संसार में नहीं आता ॥ १६१ ॥ इस प्रकार तत्त्वों का शोधन करके स्पृहा रहित चित्त वाला योगी, जिस प्रकार इन्धन रहित अग्नि शान्त हो जाती हैं इसी प्रकार स्वयं शांत होता है ॥ १६२ ॥ ग्रहण करने योग्य के अभाव होने पर मन और प्राण निश्चय आत्म ज्ञान युक्त होने से जीव शुद्ध तत्त्व परमात्मा में नमक के डेले के समान लीन हो जाते हैं ॥ १६३ ॥ फिर वह मोह जाल के समूह रूप विश्व को स्वप्न के समान देखता है जो स्वभाव से ही पूर्ण निश्चल होकर सुषुप्ति के समान आचार करता है ॥ १६४ ॥ वह योगी निर्वाण पद का आश्रय करके कैवल्य को भोगता है, यह उपनिषत् है।

॥ इति त्रिशिखि ब्राह्मण उपनिषत् समाप्त ॥

कलि संतरणोपनिषत् ।

[२७]

द्वापर के अन्त में नारद ने ब्रह्मा के पास जाकर कहा "भगवन् पृथ्वी में विचरता हुआ मैं कलियुग को किस तरह तरूं ?" ब्रह्मा ने कहा "तू ने मुझ से अच्छा प्रश्न किया। सब श्रुतियों का जो गुप्त रहस्य है, उसको सुन जिससे तू कलियुग में संसार को तैर जायगा। भगवान् आदि पुरुष नारायण के नाम उच्चारण मात्र से पाप रहित होता है।" नारद ने फिर पूछा "वे नाम क्या हैं ?" उन हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) ने कहा "हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥ १ ॥ ये सोलह नाम कलियुग में पाप को नाश करने वाले हैं, सब वेदों में इससे बढ़ कर अन्य कोई उपाय दिखाई नहीं देता ॥ २ ॥ ये नाम सोलह कला से ढके हुए जीव के आवरण को नाश करने वाले हैं। पीछे बादल के हट जाने से जैसे सूर्य किरण मण्डल प्रकाशता है ऐसे ही परब्रह्म प्रकाशता है।" फिर नारद ने पूछा "भगवन् इसकी विधि क्या है ?" ब्रह्मा ने कहा इसकी विधि नहीं है! ब्राह्मण सर्व काल में पवित्र अथवा अपवित्र पढ़ता हुआ सालोकता सामीपता सारूपता और सायुज्यता को प्राप्त होता है। जो इन सोलह को साढ़े

तीन करोड़ वार जपता है, वह ब्रह्म हत्या से छूट जाता है, वीर हत्या से छूट जाता है। सुवर्ण की चोरी करने के पाप से पवित्र होता है, पित, देव और मनुष्यों के अपकार से पवित्र होता है, सव धर्मों के परित्याग के पाप से शीघ्र पवित्र हो जाता है, शीघ्र मुक्त होता है॥ इति उपनिषत्॥

॥ इति श्री कलि संतरणोपनिषत् समाप्त॥

जाबालि उपनिषत् ।

[२८]

भगवान् जाबालिसे पैप्पलादिने पूछा "हे भगवन् ! परम तत्त्वके रहस्य को कहिये ! तत्त्व क्या है ? जीव कौन है ? पशु कौन है ? ईश कौन है ? मोक्षका उपाय क्या है ?" उन्होंने उससे कहा "अच्छा प्रश्नकिया, जो कुछ मैंने जाना है, सब कहता हूँ" फिर उसने उनसे कहा "आपने कहां से जाना है ?" फिर उन्होंने उससे कहा "षडानन से !" फिर उसने उनसे पूछा "उन्होंने कहां से जाना था ?" फिर उन्होंने उससे कहा "ईशान से जाना था ।" फिर उसने उससे पूछा "उन्होंने उनसे किस प्रकार जाना था ।" उन्होंने उससे कहा "उन्होंने उनकी उपासना करके जाना था ।" फिर उसने उनसे कहा "हे भगवन् ! कृपा करके वह सब रहस्य मुझसे कहिये !" उसके प्रश्न करने पर वे सम्पूर्ण तत्त्व का निवेदन करने लगे:—"अहंकार से युक्त पशुपति संसारी जीव है, वह ही पशु है, सर्वज्ञ पांच कृत्यों से युक्त सबका ईश्वर शिव पशुपति हैं ।" "पशु कौन है ?" फिर उन्होंने उनसे कहा "जीव पशु कहलाते हैं, उनका पति होने से वह पशुपति हैं ।" फिर उसने उनसे पूछा "जीव पशु किस प्रकार हैं ?" उनका वह पति किस प्रकार है ?" उन्होंने उससे कहा "जैसे घास खाने वाले, विवेक हीन, दूसरे के दास, खेती आदि कर्म में नियुक्त, सब दुःखों के

सहने वाले अपने मालिक के बंधुआ गौ आदि पशु हैं, ऐसे उनके मालिक के समान सर्वज्ञ ईश पशुपति है।" "उसका ज्ञान किस उपाय से होता है?" फिर उन्होंने उससे कहा "विभूति धारण करने से" "उसकी विधि किस प्रकार है? कहां कहां धारण की जाती है?" फिर उन्होंने उससे कहा 'सद्यो जातादि' पांच ब्रह्म मंत्रों से भस्म ग्रहण करके 'अग्निरितिभस्म' इस मंत्र से अभिमंत्रित करके 'मानस्तोक' इस मन्त्र से धारण करके, जल से गीला करके 'त्र्यायुषं' इस मन्त्र से शिर, ललाट, छाती कन्धों में 'त्र्यायुष और त्रियम्बक' इन मन्त्रों से तीन रेखा करे। यह शुभ व्रत सब वेदों में वेदवादियों से कहा गया है, फिर उत्पन्न न होने के निमित्त मुमुक्षु उसको करे। फिर सनत्कुमार प्रमाण पूछता है। त्रिपुण्ड धारण की तीन प्रकार की रेखा मध्य से ललाट तक, नेत्रों तक और भोओं तक हैं। जो उसकी प्रथम रेखा है, वह गार्हपत्य अग्नि है, अकार मात्रा है, रजोगुण है, भूलोक है, अपना आत्मा (शरीर) है, क्रिया शक्ति है, ऋग्वेद है, प्रात सवन है और प्रजापति देव उसका देवता है। जो उसकी दूसरी रेखा है वह दक्षिण अग्नि है, उकार मात्रा है, सतोगुण हैं, अन्तरिक्ष लोक है, अन्तरात्मा है, इच्छा शक्ति है, यजुर्वेद है, मध्य दिन सवन है, विष्णुदेव देवता है। जो उसकी तीसरी रेखा है, वह आहवनीय अग्नि है, मकार मात्रा है, तमोगुण है, स्वर्ग लोक है, परमात्मा है, ज्ञान शक्ति है, सामवेद है, तीसरा पहर सवन है, महादेव देवता है। जो विद्वान् ब्रह्मचारी,

गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा यती भस्म से त्रिपुण्ड लगाता है, वह महापातकों और उपपातकों से पवित्र होता है। वह सब देवताओं का ध्यान करने वाला होता है, वह सब तीर्थों में स्नान किया हुआ होता है, वह सब रुद्र मंत्रों का जप करने वाला होता है, वह फिर नहीं लौटता, वह फिर नहीं लौटता।

॥ इति श्री जाबालि उपनिषत् समाप्त ॥

अमृतनाद उपनिषत् ।

[२६]

बुद्धिमान् पुरुष को शास्त्र का अध्ययन करके तथा बारम्बार अभ्यास करके उसमें से सार रूप परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् शास्त्र को (पलीता) जलती हुई लकड़ी के समान त्याग देना चाहिये ॥ १ ॥ ॐकार रूपी रथ पर आरूढ होकर और विष्णु रूप बुद्धि को सारथी बना कर ब्रह्मलोक प्राप्ति की इच्छा रखने वाले अधिकारियों को रुद्र भगवान् के आराधन में तत्पर होना चाहिये ॥ २ ॥ जब तक वह रथ के मार्ग में रहे तब तक रथ के भीतर बैठा रहे परन्तु जब आत्मा का स्थान आपहुँचे तब उसको त्यागकर ब्रह्म में लीन होजाय ॥ ३ ॥ अकार आदि मात्रा का, स्थूलादि शरीर का, विश्वादि पाद का त्याग करके तथा व्यंजन से रहित, स्वर रहित, मकार से सूक्ष्म पदको विद्वान् प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ पांच शब्दादि विषयों में भटकने वाले अति चंचल मन को आत्मा की रश्मि रूप से चिन्तन करना इसको प्रत्याहार कहते हैं ॥ ५ ॥ प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क और समाधि इस रीति से योग के छः अंग हैं ॥ ६ ॥ जिस प्रकार पर्वत की धातु में रहने वाला मल अग्नि में तपाने से जल जाता है उसी प्रकार प्राण को रोकने से इन्द्रियों में रहने वाला मल जल जाता है ॥ ७ ॥ प्राणायाम से दोषों को, धारणा से

पाप को, प्रत्याहार से संसर्गको और ध्यान से अनात्म गुणों को जला देवे ॥ ८ ॥ इस प्रकार पाप के नाश होने पश्चात् आत्मा का चिंतन करे ॥ ९ ॥ वायु का रेचक और पूरक करे इस प्रकार प्राणायाम तीन प्रकार का है, उनको रेचक, पूरक और कुम्भक कहते हैं ॥ १० ॥ व्याहृति और प्रणव सहित तथा शिरोमंत्र सहित गायत्री का तीनवार पाठ करते हुए प्राण का नियमन करना, इसको प्राणायाम कहते हैं ॥ ११ ॥ आधार चक्र से उठाये हुए वायु को एक नासापुट द्वारा वाहर निकाल देना और उदर को संकल्प से रहित, स्थूल प्राणवायु से रहित करना यह रेचक का लक्षण है ॥ १२ ॥ कमल की नाल से जिस प्रकार जल ऊपर खेंचने में आता है, उसी प्रकार वाहर के वायु को भीतर खेंचना यह पूरक का लक्षण है ॥ १३ ॥ ऊपर और नीचे श्वास का न लेना और गात्र को हिलने न देना इस प्रकार का योग करना कुम्भक का लक्षण है ॥ १४ ॥ अंधे के समान न देखना, वहरे के समान शब्द न सुनना और देह को काष्ट के समान देखना यह प्रशान्त का लक्षण है ॥ १५ ॥ मन संकल्पात्मक है ऐसे समझ कर बुद्धिमान् पुरुष उसको आत्मा में लय करे इस प्रकार मनको आत्मा में तल्लीन करना, उसको धारणा कहते हैं ॥ १६ ॥ शास्त्रानुकूल ऊहापोह को तर्क कहते हैं। साक्षात्कार होने से समभाव की प्राप्ति होती है, उसको समाधि कहते हैं ॥ १७ ॥ सर्व दोष से रहित सुन्दर भूमि पर दर्भासन बिछावे, मन से रक्षा का संकल्प करके रथ मंडल का जप

करे ॥ १८ ॥ पश्चात् पद्म, स्वस्ति और भद्रासन आदि किसी भी योगासन से उत्तर की तरफ मुख करके बैठे ॥ १९ ॥ नाक के एक छिद्र को अंगुली से ढांप कर दूसरे छिद्र से वायु को खेंचे, अग्नि को नियम में रख कर यानी मूत्र बंध करके शब्द ब्रह्म का चिन्तन करे ॥ २० ॥ ॐ यह एकाक्षर मंत्र ब्रह्म है ॐ इस अक्षर से रेचन करे, इस प्रकारसे दिव्य मंत्रसे पाप नाश होने के निमित्त अनेक वार किया करे ॥२१॥ पश्चात् मंत्रको जाननेवाला बुद्धिमान् मनुष्य उपरोक्त क्रमसे ध्यान धरे। नाभिके ऊपर के भाग के विषे प्रथम स्थूल आदिकका और तिस पीछे स्थूल सूक्ष्मका ध्यान धरे॥२२॥ टेढी, ऊंची नीची दृष्टि का त्याग करके, स्थिर बैठ कर किंचित् भी हिले चले नहीं, इस प्रकार योगाभ्यास करे ॥ २३ ॥ एक मात्रा से ध्यान होता है चार मात्रा से धारणा तथा बारह मात्रा से योग होता है ऐसा कालानुसारी नियम है ॥ २४ ॥ जो घोष से रहित, व्यंजन से रहित, स्वर से रहित जिनका तालु कंठ और ओष्ठ स्थान नहीं है, जो नासिका के स्थान से रहित है जिसमें रेफ नहीं है, जो दो उष्म प्राण से रहित हैं ऐसा जो अक्षर ब्रह्म है सो कभी विकार को प्राप्त नहीं होता ॥ २५ ॥ जिस मार्ग से मन गमन करता है उसी मार्ग से प्राण गमन करता है, इसलिये उस मार्ग से जाने के लिये उसका चिन्तन करे ॥ २६ ॥ हृदय का द्वार, वायु द्वार और मस्तक द्वार अनुक्रम से मोक्ष द्वार सुषिर और ब्रह्म द्वार कहलाते हैं (यही वह मार्ग है) ॥ २७ ॥

भय, क्रोध, आलस्य, अति स्वप्न, अति जाग्रत, अति आहार अथवा निराहार रहना ये सब योगियों को त्याग करना चाहिये ॥ २८ ॥ इस विधि से सम्यक् प्रकार से क्रम करके चिंतवन करे, इससे तीन मास के भीतर अपने आप ज्ञान का आविर्भाव होता है ॥ २९ ॥ चार मास के पीछे उसे देवताओं का दर्शन होता है, पांच मास में संसार के क्रम का त्याग और छटे मास में इच्छानुसार कैवल्य को प्राप्त होता है इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥ ३० ॥ पृथ्वी तत्त्व की धारणा में प्रणव का पांच मात्रा पर्यन्त उच्चारण करे, जल तत्त्व की धारणा में चार मात्रा पर्यंत प्रणवका उच्चारण करे, अग्नि तत्त्वकी धारणा में तीन मात्रा पर्यन्त प्रणव का उच्चारण करे, वायु तत्त्व की धारणा में दो मात्रा पर्यन्त प्रणव का उच्चारण करे ॥ ३१ ॥ आकाश तत्त्व की धारणा में एक मात्रा पर्यन्त प्रणव का उच्चारण करे और ॐकार का चिन्तवन मात्रा से रहित करे, मन से संधि करके आत्मा में आत्मा का चिन्तवन करे ॥ ३२ ॥

वीस अंगुल माप का प्राण वायु है जो हृदय में इन्द्रियों से प्रतिष्ठित है इसको प्राणवायु कहते हैं और बाहर का प्राण वायु विषय रूप है ॥ ३३ ॥ दिन और रात मिलके मनुष्य के निश्वास एक लाख तेरह हजार एक सौ अस्सी होते हैं ॥ ३४ ॥ आदि प्राण का स्थान हृदय है, अपान का स्थान गुदा है, समान का स्थान नाभि प्रदेश है, उदान का स्थान कण्ठ है ॥ ३५ ॥ व्यान वायु सर्व अंग में व्यापक होकर रहता है। अनुक्रम से पांच

प्राण पांच वर्ण वाले हैं ॥ ३६ ॥ प्राण वायु मणि समान रक्त वर्ण है, प्राण के मध्य में रहने वाले अपान वायु का वीरवहुट्टी के समान अत्यन्त लाल है ॥ ३७ ॥ प्राण और अपान दोनों के बीच में रहने वाले समान वायु का वर्ण गऊ के दुग्ध समान श्वेत है, उदान वायु का वर्ण सहज फीका है और व्यान वायु का वर्ण ज्वाला के समान कान्ति वाला है ॥ ३८ ॥ जब वायु मण्डल का छेदन करके मस्तक में जाता है उसके पीछे वह मनुष्य चाहे जहां मरे, उसका पुनर्जन्म नहीं होता, उसका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ३९ ॥

॥ इति श्री अमृतनाद उपनिषत् समाप्त ॥

मैत्रेयी उपनिषत्।

[३०]

प्रथम अध्याय।

बृहद्रथ नाम के राजा ने अपने बड़े पुत्र को राज्य दिया। यह शरीर नाशवान् है ऐसा समझ वैराग्य वृत्ति से अरण्य में गया। वहां जाकर उसने परम तप का आरम्भ किया। वह ऊँचे हाथ करके सूर्यके सामने देखा करता था। एक सहस्र वर्षके अन्त में राजा के पास एक मुनि आया। यह मुनि विना धुवें के अग्नि के समान तेज वाला था और तेज से सबको जलाता हो ऐसा दीखता था। वह आत्म ज्ञानी था और उसका नाम शाकायन्य था। उसने राजा से कहा "हे राजन्! तू खड़ा हो, खड़ा हो, और जो वरदान चाहता हो सो मांग।" राजा प्रणाम करके कहने लगा "हे भगवन्! मैं आत्म ज्ञानी नहीं हूँ, और आप तो तत्त्व ज्ञानी हैं, मैं आपसे श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ, आप मुझे उपदेश दीजिये।" तब मुनि ने कहा "समझने में न आवे, ऐसा यह परम प्रश्न तू मत पूछ जो कुछ दूसरा वरदान मांगना हो सो मांगले।" राजा शाकायन्य मुनि के चरण स्पर्श करके यह गाथा कहने लगा॥ १॥

"कितनेक बड़े समुद्र सूख जाते हैं, पर्वतों के शिखिर टूट जाते हैं, ध्रुव पदार्थ चलायमान होते हैं, वृत्तों के स्थान पर स्थल हो जाता है, पृथ्वी डूब जाती है, देवता अपने स्थान से भ्रष्ट होते हैं, संसारमें इस प्रकारके काम और भोग किस कामके हैं कि जिसके आश्रय से वार वार आवागमन हुआ करता है? इससे आप मेरा उद्धार करने योग्य हैं, जैसे कूप में जल से ढका हुआ मेंढ़क हो तैसे मैं इस संसार में पड़ा हूँ, हे भगवन्! आप हमारा उद्धार करने वाले हैं ॥ २ ॥ हे भगवन्! यह शरीर मैथुन से उत्पन्न हुआ है, ज्ञान से रहित है और केवल नरक ही है। मूत्र द्वार से निकला हुआ है, हड्डियों से चिना है, मांस से मढा हुआ है, चर्म से सिया गया है, विष्टा, मूत्र, वात, पित्त, कफ, मज्जा, मेद, वसा और अनेक मल से व्याप्त है। इस प्रकार शरीर की स्थिति होने से आप ही हमारी गति रूप हैं" ॥ ३ ॥

तब भगवान शाकायन्य प्रसन्न होकर राजा से कहने लगे "हे महाराज—इक्ष्वाकु वंश में श्रेष्ठ वृहद्रथ! तू आत्मज्ञानी है, कृत कृत्य है, तू मरुत्त इस नाम से प्रसिद्ध है, तेरे आत्मा का वर्णन इस प्रकार है:—तू देख कि जो शब्द स्पर्श वाले अर्थ हैं, वे अनर्थ हों इस प्रकार शरीर में स्थिति करके रहते हैं; इन शब्दादि अर्थों में जो आसक्त है, वह भूतात्मा परम पद का स्मरण नहीं कर सकता (१) तप के सामर्थ्य से सत्व की प्राप्ति होती है, सत्व से मन की प्राप्ति है, मन से आत्म प्राप्ति होती है और आत्म साक्षात्कार से पुनरावृत्ति नहीं होती। (२) जैसे

लकड़ी रहित अग्नि अपनी उत्पत्ति विषे लय हो जाता है, तैसे ही वासना का क्षय होने से चित्त अपने कारण में लय हो जाता है. (३) जिनका चित्त अपने कारण में लय हो जाता है उनका मन फिर इन्द्रियों के विषयों में मोह को प्राप्त नहीं होता। उन सत्यनिष्ठ पुरुषों के मन की वृत्तियां केवल प्रारब्ध के अनुसार उठती हैं इसलिये वे मिथ्या हैं। (४) यह चित्त ही संसार है, इस का प्रयत्न से शोधन करना चाहिये, जिस प्रकार का चित्त हो पुरुष उसी मय हो जाता है यह सनातन रहस्य है। (५) चित्त के प्रसाद से शुभाशुभ कर्म का नाश होता है और प्रसन्न आत्मा में स्थिति पाकर अव्यय सुख को भोगता है। (६) जिस प्रकार प्राणी का चित्त आसक्ति वाला होकर विषयों में लुब्ध होता है, इसी प्रकार ब्रह्ममें आसक्त हो तो कौन बंधनसे मुक्त न हो (७) हृदय कमल में परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। यह परमात्मा साक्षी रूप है और शुद्ध चित्त वाले को परम प्रेम का विषय है (८) वह मन और वाणी का अविषय है। वह निर्विशेष परमात्मा केवल सत्ता मात्र प्रकाश हो ऐसा एक प्रकाश रूप है और भावना के परे (९) वह हेय और उपादेय से रहित है और सामान्य विशेष भावों से रहित है वह ध्रुव अत्यंत गम्भीर तेज और तम से रहित संकल्प का अभाव रूप आभास से रहित और मोक्ष स्थान रूप है (१०) वह नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाववाला सत्यरूप, सूक्ष्म, विभुरूप, अद्वितीय, आनन्द का सागर रूप, परम रूप, सोहमस्मि इस नाम वाला प्रत्यक् और संशय से रहित है। (११) आनन्द

रूप स्वाश्रय में रहने वाला, आशारूपी पिशाचिनी का नाश करने वाला, सब प्रकार के संग से रहित और जगत् को माया रूप देखने वाले ऐसे मुझमें (अज्ञान रूप) आपत्ति किस प्रकार प्रवेश कर सकें ? (१२) वर्णाश्रम और आचार से युक्त अज्ञानी अपने २ कर्म के अनुसार फल प्राप्त करते हैं, जो वर्णादि धर्मों का त्याग करता है वह पुरुष स्वानन्द से तृप्त होता है। (१३) वर्णाश्रम धर्म और अवयव युक्त अपना शरीर आदि और अंत वाला और केवल कष्ट ही को देने वाला है। अपनी तथा पुत्रादि की देहमें जो अभिमान से रहित होता है, वह सुख करने वाले अनंत में स्थिति करता है।" (१४) ॥४॥

दूसरा अध्याय।

एक समय मैत्रेय नाम के मुनि कैलाश में गये, वहां जाकर महादेव से कहने लगे "हे भगवन् ! मुझे परम तत्त्व के रहस्य का उपदेश कीजिये।" महादेव बोले "देह देवालय है और जीव ही शिव रूप है। अज्ञान रूपी निर्माल्य का त्याग कर 'सोहं' (वह और मैं एक हूँ) इस प्रकार की भावना से उसका पूजन करना चाहिये ॥ १ ॥ अभेद का साक्षात्कार ज्ञान रूप है, सब प्रकार के विषयों से रहित होना ध्यान है, मन से दोषों का त्याग करना स्नान रूप है और इन्द्रिय निग्रह करना शौच रूप है ॥ २ ॥ ब्रह्म रूप अमृत पीना चाहिये, देह के रक्षण अर्थ ही भिक्षा करना चाहिये और द्वैत से रहित ऐसे एकान्त स्थान में अकेले रहना

चाहिये। इस प्रकार बुद्धिमान् को चलना चाहिये, इस प्रकार करने से मुक्ति होती है ॥ ३ ॥ माता पिता के मल से उत्पन्न मरण धर्म वाला शरीर है ॥ ४ ॥ वह सुख दुख का स्थान रूप है, अपवित्र होने से स्पर्श करके स्नान करना चाहिये। यह देह धातुओं से बना है, रोग वाला है, पाप का आश्रय और अशाश्वत है ॥ ५ ॥ वह विकार और आकार से पूर्ण है, उसका स्पर्श करके स्नान करना चाहिये, इसमें से स्वाभाविक रीति से ही उत्पन्न हुए मलों का नव द्वारों से स्राव हुआ करता है ॥ ६ ॥ वह दुर्गंधि युक्त मल वाला है, उसको स्पर्श करके स्नान करना चाहिये। माता पिता सूतक में हैं, ऐसे सम्बन्ध सहित ही जन्म है ॥ ७ ॥ मरण अशौच वाला भी देह है, उसका स्पर्श करके स्नान करना चाहिये। यह मैं हूँ और यह मेरा देह है इस रीति के अभिमान वाला शरीर है और विष्टा, मूत्र, राल आदि दुर्गंधि का त्याग करने वाला है ॥ ८ ॥ लौकिक रीति से वह मृत्तिका और जल से शुद्ध और पवित्र होता है परन्तु वास्तविक रीति से तो शरीर चित्त की शुद्धि से शुद्ध होता है, तीनों प्रकार की वासनाओं के क्षय से वह शौच होता है, ज्ञानरूपी मृत्तिका और वैराग्यरूपी जल से धोने से देह पवित्र होता है ॥ ९ ॥ अद्वैत भावना भिक्षारूप है और द्वैत भावना भक्षण करने योग्य नहीं हैं, गुरु और शास्त्र का कथन किया हुआ भाव ही भिक्षुक की भिक्षा कहलाती है ॥ १० ॥ संन्यास ग्रहण करके संन्यासी अपने ईश को स्वतः छोड़ता है, जैसे चोर जेलखाने से छूटकर दूर

बसता है ॥ ११ ॥ अहंकाररूपी पुत्र का, संपत्‌रूपी भाई का, मोहरूपी मन्दिर का और आशारूपी पत्नी का जब त्याग करने में आता है, तब अवश्य मुक्त होता है ॥ १२ ॥ जिसकी मोह रूपी माता मर गई है, ज्ञानरूप जिसका पुत्र उत्पन्न हुआ है, जिसको ये दो प्रकार के सूतक प्राप्त हुए हैं, ऐसे मुझको संध्या क्यों करनी चाहिये ॥ १३ ॥ हृदयाकाश में चित्तरूपी सूर्य सर्वदा प्रकाशता है, जो अस्त, उदय से रहित है, तो संध्या को क्यों करना चाहिये ॥ १४ ॥ सब एक और अद्वयरूप है, गुरु के उपदेश से जिसको इस प्रकार निश्चय हुआ है, वह ही एकांत स्थान कहा है, मठ अथवा अन्य वन एकांत नहीं है ॥ १५ ॥ जो संशय भाव रहित है, उसको मुक्ति है परन्तु जो संशय वाला है, उसको एक जन्म में अथवा अनेकों जन्मों में भी मुक्ति नहीं है, इस कारण विश्वास को प्राप्त करना चाहिये ॥ १६ ॥ कर्म का त्याग यह संन्यास नहीं है, संन्यास की दीक्षा लेने से संन्यास नहीं होता है, जीवात्मा और परमात्मा की एकता होना, यही संन्यास है ॥ १७ ॥ सब प्रकार की एषणायें जिसको वमन किये हुए भोजन के समान हैं और जो देहाभिमान रहित है उसका संन्यास में अधिकार है ॥ १८ ॥ जब मन से सब वस्तुओं में वैराग्य हो तब अधिकारी संन्यास धारण करे नहीं तो वह पतित होता है ॥ १९ ॥ धन की इच्छा से, अन्न और वस्त्र की इच्छा से और प्रतिष्ठा प्राप्त होने के निमित्त जो संन्यास लेता है, वह दोनों लोकों से भ्रष्ट होता है और उसे

मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती ॥ २० ॥ तत्त्व का चिंतन उत्तम है, शास्त्र का चिंतन मध्यम है, मंत्र का चिंतन अधम है और तीर्थों का भ्रमण अधम से भी अधम है ॥ २१ ॥ जैसे वृक्ष की शाखा के प्रतिबिम्ब में लगे हुए फल का स्वाद वृथा है, तैसे ही मूढ़ को अनुभव विना ब्रह्मानन्द वृथा है ॥ २२ ॥ जिस यति की मधुकरीरूप माता है, वैराग्यरूप पिता है, श्रद्धारूप स्त्री है, ज्ञानरूप पुत्र है, वह मुक्त है, उसको कुछ भी त्यागना न चाहिये ॥ २३ ॥ धन में जो बड़े हैं, वय में जो बड़े हैं, तैसे ही जो विद्या में बड़े हैं, वे सब ही जो ज्ञान में बड़ा है, उसके शिष्य और शिष्य के शिष्यरूप हैं ॥ २४ ॥ जिसका चित्त माया से मूढ़ है और आत्मरूप मुझको पूर्णरूप से जिसने प्राप्त किया, वे विद्वान् होते भी कौवे के समान क्षुद्र उदर को पूर्ण करने के लिये ही घूमते हैं ॥ २५ ॥ पाषाण, सुवर्ण, मणि और मृत्तिका से बनी हुई मूर्ति की बाह्य पूजा मुमुक्षुओं को पुनर्जन्म और भोग को देने वाली है । पुनर्जन्म न हो इसलिये यति को अपने हृदय में ही अर्चन करना चाहिये और बाह्यार्चन का त्याग करना चाहिये ॥ २६ ॥ समुद्र में पानी से भरा हुआ घट भीतर और बाहर से पूर्ण है, तैसे ही आकाश में रहने वाला घट भीतर के भाग में शून्य है और बाहर के भाग में शून्य है (वैसा यह है) ॥ २७ ॥ भाव ग्राह्यरूप से तू मत हो, तैसे ही ग्राहक आत्मा-रूप से मत हो, सब भावनाओं का त्याग करके शेषरूप से रहने वाला तू हो ॥ २८ ॥ वासना त्याग के साथ द्रष्टा, दर्शन, दृश्य

का त्याग कर, दर्शन के पूर्व द्रष्टा रूप से रहे हुए आत्मा का ही अवलम्बन कर ॥ २९ ॥ सब संकल्प शान्त होने से शिला के समान जो स्थिति है, जो जाग्रत और निद्रावस्था से रहित है, वह ही श्रेष्ठ स्वरूप स्थिति है" ॥ ३० ॥

तीसरा अध्याय ।

मैं हूं, पर रूप मैं हूँ, ब्रह्म रूप मैं हूँ, सबका उत्पत्ति स्थान मैं हूँ, सब लोगों का गुरु मैं हूँ, सब लोकों में जो हूँ, वह मैं हूँ, ॥१॥ मैं ही सिद्ध रूप हूं, परम रूप मैं हूँ, शुद्ध रूप मैं हूँ, मैं हमेशा हूँ वह मैं हूं, नित्य हूँ, निर्मल रूप मैं हूँ ॥ २ ॥ विज्ञान रूप मैं हूँ, विशेष रूप मैं हूं, सोम रूप मैं हूँ, सकल रूप मैं हूँ शुभ रूप से मैं हूँ, शोक से रहित रूप से मैं हूँ, चैतन्य रूप मैं हूँ; और उत्तम रूप मैं हूँ, ॥ ३ ॥ मैं मान और अपमान से रहित हूँ, मैं निर्गुण हूँ, मैं शिव हूँ, मैं द्वैत और अद्वैत से रहित हूँ, मैं द्वन्द्वों से रहित हूं, और वह मैं आप हूं ॥ ४ ॥ भाव और अभाव से रहित मैं हूँ, वाणी से रहित मैं हूँ, कान्ति रूप से मैं हूँ शून्य और अशून्य के प्रभाव रूप से मैं हूँ और शोभन और अशोभन रूप से मैं हूँ ॥ ५ ॥ तुल्य और अतुल्य से रहित हूँ, नित्य शुद्ध और सदा शिव रूप हूं, सब और सब नहीं, इन दोनों के रहित रूप से, सात्विक रूप से और सदा रूप से मैं हूँ ॥ ६ ॥ एक की संख्या से रहित, दो की संख्या से रहित सद् और असद् रहित रूप

और संकल्प रहित रूप से मैं हूँ ॥ ७ ॥ अनेक आत्मा के भेद रहित रूप से अखंड आनन्द की मूर्ति मैं हूँ, मैं नहीं हूँ, अन्य रूप से मैं नहीं हूँ, देहादिक रहित रूप से मैं हूँ ॥ ८ ॥ आश्रय और अनाश्रय रहित रूप से आधार रहित रूप से बंध मोक्ष रहित रूप से शुद्ध ब्रह्म रूप मैं हूँ ॥ ९ ॥ चिन्तादि सब से रहित, परम रूप, परात्पर रूप, सदा विचार रूप, विचार रहित रूप हूं, सो मैं हूँ ॥ १० ॥ मैं ही सनातन, अकार, उकार और मकार रूप हूं, ध्याता, ध्यान और ध्येय रहित रूप मैं हूं, ॥११॥ संपूर्ण रूप सच्चिदानन्द लक्षण रूप सब तीर्थों के स्वरूप परमात्मा रूप और शिव रूप मैं हूँ ॥ १२ ॥ लक्ष्य और अलक्ष्य रहित रूप से अखंड रस रूप माता, मान और मेय रहित रूपसे शिव रूप मैं हूँ ॥१३॥ मैं जगत् रूप नहीं हूँ, सबका द्रष्टा रूप, नेत्रादि रहित रूप से वृद्ध रूप, ज्ञान रूप, प्रसन्न रूप और पर रूप हूँ ॥ १४ ॥ सब इन्द्रिय से रहित हूँ, सब कर्मों का कर्ता भी मैं हूँ, सब वेदान्त से तृप्त और सुलभ रूप से मैं हूँ ॥ १५ ॥ मुदित और प्रमुदित रूप, सब मौन के फल रूप और सदा नित्य चिन्मय रूप मैं हूँ ॥ १६ ॥ जो कुछ है उससे हीन रूप से, स्वल्प रूप से, चिन्मात्र रूप और चिन्मय रूप, हृदय ग्रन्थि रहित रूप से और हृदय कमल के मध्य में रहने वाला मैं हूँ ॥ १७ ॥ छः विकारों से रहित, छः कोशों से रहित, छः शत्रुओं से रहित, भीतर से भी विशेष भीतर मैं हूँ ॥ १८ ॥ देश काल से रहित, दिशा रूपी वस्त्रों से सुखी ऐसा मैं हूँ, मेरे सिवाय अन्य कुछ नहीं है, मैं विमुक्त हूँ और नकार से रहित

हूँ ॥ १९ ॥ अखंडाकाश रूप, अखंडाकार रूप, प्रपंच से मुक्त चित्त वाला और प्रपंच से रहित मैं हूँ ॥ २० ॥ सर्व प्रकाश रूप, चिन्मात्र ज्योति रूप, तीनों काल से रहित और कामादि से रहित मैं हूं ॥ २१ ॥ शरीरादिक के दोषों से रहित, निर्गुण, मात्र एक रूप, मुक्ति से रहित मुक्त रूप और मोक्ष रहित मैं सर्वदा हूँ ॥२२॥ सत्य और असत्यादि से रहित, हमेशा केवल सद्भाव से नहीं हूँ, जाने योग्य स्थानसे रहित, गमनादि से रहित हूँ ॥ २३ ॥ मैं हमेशा सम रूप, शांत रूप, पुरुषोत्तम हूं, ऐसा जिसका स्वानुभव है वह मैं हूँ, इसमें संशय नहीं है ॥ २४ ॥ जो कोई एक बार भी यह सुनता है, वह आप ब्रह्म रूप होजाता है, ऐसा उपनिषत् विद्या कहती है ॥ २५ ॥

॥ इति मैत्रेयी उपनिषत् समाप्त ॥

नाद विन्दु उपनिषत् ।

[३१]

ॐकार की अकार दांई पंख है, उकार वांई पंख है, मकार पुच्छ है और अर्ध मात्रा शिर है ॥ १ ॥ गुण उसके पाद आदिक हैं तत्त्व उसका शरीर है और धर्म अधर्म उसकी दांई वांई आंखें हैं ॥ २ ॥ पैर में भूः लोक है, घोंटू में अंतरिक्ष है, कटि में स्वर्ग-लोक है, और नाभि में महर्लोक है ॥ ३ ॥ हृदय में जनलोक है, कंठ में तपलोक है और भ्रू और ललाट के मध्य में सत्यलोक है ॥ ४ ॥ वह हजारों मंत्रों से प्रकट 'सहस्राहन्यं········।' इस श्रुति में इस प्रणव मंत्र का वर्णन किया गया है। हंसयोग में पारंगत पुरुष प्रणव की इस प्रकार उपासना करता है ॥ ५ ॥ तव सैकड़ों और करोड़ों पाप कर्म भी उसमें प्रवेश नहीं कर सकते अर्थात् उसके सव पाप नष्ट होजाते हैं।

अग्नि प्रथम की अकार मात्रा है, वायु दूसरी उकार मात्रा है ॥ ६ ॥ सूर्यदेव तीसरी मकार मात्रा है और वरुण चौथी और सवसे श्रेष्ठ अर्ध मात्रा है उसे बुद्धिमान् मनुष्य जाने ॥ ७ ॥ ये चारों मात्रा काल भेद से एक २ की तीन २ होकर वारह होती हैं, इस ॐ का व्याख्यान धारणा के निमित्त करते हैं ॥ ८ ॥ प्रथम घोषिणी मात्रा, दूसरी विद्या मात्रा (विद्युन्माली), तीसरी

पतंगिनी और चौथी मात्रा वायु वेगिनी ॥ ९ ॥ पांचवीं मात्रा नामधेया, छठी ऐन्द्रि, सातवीं वैष्णवी और आठवीं शांकरी ॥१०॥ नवमो महति, दशवीं धृति, ग्यारहवीं नारी और बारहवीं ब्राह्मी ॥ ११ ॥ प्रथम मात्रा में जिसका प्राण छूटता है, वह भारतवर्ष का सार्वभौम राजा होता है ॥ १२ ॥ दूसरी मात्रा में जिसका प्राण छूटता है, वह महात्म्य वाला यक्ष होता है, तीसरी मात्रा में जिसका प्राण छूटता है, वह विद्याधर होता है और चौथी मात्रा में जिसका प्राण छूटता है वह गंधर्व होता है ॥१३॥ पांचवीं मात्रा में जिसका प्राण छूटता है वह सोमलोक में देवत्व को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ छठी मात्रा में जिसका प्राण छूटता है वह इन्द्रके साथ सायुज्यपनेको प्राप्त होता है, जिसका प्राण सातवीं मात्रा में छूटता है, उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है और जब आठवीं मात्रा में मृत्यु होता है तब रुद्र के साथ रुद्र लोक को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ नवमी मात्रा में मरण होता है तब महर्लोक को प्राप्त होता है, दशवीं मात्रा में मृत्यु होने से जनलोक को प्राप्त होता है, एकादश मात्रा में मृत्यु होने से तपलोक को प्राप्त होता है और बारहवीं मात्रा में प्राण का वियोग होने से साक्षात् ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

ब्रह्म शुद्ध, व्यापक, निर्मल और शिवरूप और प्रकाशरूप है, इस ब्रह्म में से ज्योतियों की उत्पत्ति होती है ॥ १७ ॥ जब मन अतीन्द्रिय और गुणातीत होकर उसका लय होता है तब वह उपमा रहित, शांत, योगयुक्त शिवमें टिकता है ॥ १८ ॥ वह जीव

शिव में तन्मय होकर, त्वरित शरीर को छोड़ता है तब सर्व संग से रहित होकर योग मार्ग से चलता है ॥ १९ ॥ तब उसके सब बंधन टूट जाते हैं, विमल होकर कमलापति होता है और ब्रह्म भाव से परमानन्द की प्राप्ति होती है ॥ २० ॥

आत्मा को सतत जानते हुए बुद्धिमान् काल व्यतीत करे और सर्व उद्वेग रहित प्रारब्ध को भोग लेता है ॥ २१ ॥ तत्त्व विज्ञान होने पर भी प्रारब्ध छूटता नहीं है परन्तु तत्त्व ज्ञान के पीछे प्रारब्ध दीखता नहीं है ॥ २२ ॥ जैसे स्वप्न के पदार्थ जानने पर मिथ्या होते हैं वैसे देहादि मिथ्या हैं, ऐसे ही जन्मान्तर में किये हुए कर्मों का जो बोध होता है उसे प्रारब्ध कहते हैं ॥ २३ ॥ जैसे स्वप्न के अध्यास में किये हुए कर्मों का स्थूल देह से संबंध नहीं है इसी प्रकार जन्मांतर के किये हुए कर्मों से पुरुष का भाव नहीं होता ॥ २४ ॥ अध्यस्त का जन्म कहां और जन्म के अभाव से स्थिति कहां? बरतनों के उपादान कारण मृत्तिका के समान सब प्रपंचके उपादान को देखता है ॥ २५ ॥ सब कुछ अज्ञान ही है, जब ऐसा वेदान्त से जाना और जान कर अज्ञान चला गया, तब विश्व कहां है! जैसे रस्सी के अबोध से सर्प को भ्रम से ग्रहण करता है ॥ २६ ॥ इसी प्रकार सत्य को न जानने से मूढ़ मनुष्य जगत को देखते हैं, रस्सी के जानने से सर्प का रूप कहीं नहीं दीखता ॥ २७ ॥ अधिष्ठान के जानने से जब प्रपंच शून्य होजाता है तब प्रपंच की, देह और प्रारब्ध की स्थिति कहां? ॥ २८ ॥ अज्ञानी मनुष्यों के बोध के निमित्त

प्रारब्ध का कथन किया है। काल पाकर प्रारब्ध का क्षय होता है तब ॥ २९ ॥ ब्रह्म-प्रणव संधान से जैसे बादल छूट जाने से सूर्य का आविर्भाव होता है, ऐसे ही अज्ञान के निवृत्त होने से नाद ज्योति रूप मंगलकारी आत्मा का स्वयं आविर्भाव होजाता है ॥ ३० ॥ योगी को सिद्धासन से बैठ कर वैष्णवी मुद्रा का अनुसन्धान करना चाहिये और दहिने कर्ण में सदा होने वाले भीतर के नाद को सुनना चाहिये ॥ ३१ ॥ नाद का अभ्यास करने से बाहर की ध्वनि का रोध होता है। अनुकूल नाद से प्रतिकूल नादों को जीत कर तुर्य पदको प्राप्त होता है ॥३२॥ प्रथम सुनने वाले को अनेक प्रकार के महान् नाद सुनने में आते हैं, जैसे २ अभ्यास बढ़ता जाता है तैसे २ सूक्ष्म से सूक्ष्म सुना जाता है ॥ ३३ ॥

प्रथम समुद्र, बादल भेरी और झरने के समान शब्द, मध्य में मृदंग का शब्द, घंटे का शब्द ॥ ३४ ॥ अन्त में किंकिणी, बांसरी बीणा और भ्रमर का शब्द होता है। ऐसे अनेक प्रकार के सूक्ष्म से सूक्ष्म नाद सुनाई देते हैं ॥ ३५ ॥ स्थूल नाद सुनने से बड़े भेरी आदिक के समान नाद होता है, वही सूक्ष्म से सूक्ष्म नाद का ध्यान करे ॥ ३६ ॥ बड़े को छोड़ कर सूक्ष्म में और सूक्ष्म को छोड़ कर बड़े में रमण करने से चंचल मन और कहीं नहीं जाता ॥ ३७ ॥ प्रथम जिस किसी नाद में मन लग जाय, उसी में स्थिर करने से मन उसमें लय को प्राप्त हो जाता है ॥ ३८ ॥ बाहर के सब पदार्थों को भूल कर दूध में जल के

समान मन नाद में मिल कर-एक रूप होकर सहज ही चिदाकाश में लीन हो जाता है ॥ ३९ ॥ इसलिये संयम करने वाले अभ्यासी को वाह्य पदार्थों में उदासीन होकर उन्मनी भाव को उत्पन्न करने वाले नाद का शीघ्र ही अभ्यास करना चाहिये ॥४०॥ सब चिंताओं को छोड़ कर, सब क्रियाओं से रहित होकर एक नाद का ही अनुसंधान करने से चित्त उसी में लय हो जाता है ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार भ्रमर रस को पीता है, गन्ध को अपेक्षा नहीं करता इसी प्रकार नाद में आसक्त हुआ चित्त विषयों की इच्छा नहीं करता ॥ ४२ ॥ जिस प्रकार नाद के ग्रहण से सर्प चंचलता को छोड़ देता है इसी प्रकार नाद में बद्ध हुआ चित्त रूप अन्तःकरण में रहने वाला सर्प ॥ ४३ ॥ एकाग्र होकर जगत को भूल जाता है, फिर कहीं भी नहीं जाता। मनरूप मदोन्मत्त हाथी जो विषय रूप वन में घूमा करता था, ॥ ४४ ॥ उसके नियमन करने में समर्थ यह नाद ही पैने अंकुशके समान है, मन रूप हरिन के बांधने को नाद रूप जाल है ॥ ४५ ॥ आन्तर समुद्र के रोकने के लिये ज्योति स्वरूप ब्रह्म-प्रणव में संलग्न नाद ही किनारा है ॥ ४६ ॥ जहां मन लय को प्राप्त होता है वह विष्णु का परम पद है। जब तक शब्द की प्रवृत्ति होती है तब तक आकाश की कल्पना है ॥ ४७ ॥ जब रहित होता है तब परब्रह्म में समन होता है, जब तक मन है तब तक नाद है नाद के अंत में मनोन्मनी होती है ॥ ४८ ॥ जब शब्द अक्षर में क्षीण हो जाता है तब निशब्द रूप परम पद ही रहता है, हमेशा नाद

का अनुसंधान करने से वासना का क्षय होता है ॥ ४९ ॥ जहां मन रूप वायु का निसंशय निरंजन में लय होता है, वहां हजारों करोड़ नाद और सैकड़ों करोड़ बिन्दु ॥ ५० ॥ सबका ब्रह्म प्रणव रूप नाद में लय हो जाता है, तब सब अवस्थाओं से और सब चिंताओं से रहित होता है ॥ ५१ ॥ जो योगी मरे हुए के समान टिकता है, उसकी मुक्ति में संशय नहीं है, वह शंख अथवा दुन्दुभी का नाद कभी नहीं सुनता ॥ ५२ ॥ स्थिरता वाली उन्मनी अवस्था में शरीर काठ के समान जड़ होजाता है, वह (योगी) शीतोष्ण, सुख दुःख को नहीं जानता ॥ ५३ ॥ समाधी में मान अपमान नहीं होता चित्तहीन होने से योगी तीनों अवस्थाओं को नहीं प्राप्त होता ॥ ५४ ॥ जाग्रत और निद्रा से रहित स्वस्वरूप में टिक जाता है ॥ ५५ ॥ दृश्य बिना उसकी दृष्टि स्थिर होती है, प्रयत्न बिना वायु स्थिर होता है अवलम्बन बिना चित्त स्थिर होता है, यह ही आंतर नाद रूप ब्रह्मपना है ॥ ५६ ॥

॥ इति नाद बिन्दु उपनिषत् समाप्त ॥

अद्वय तारकोपनिषत्

[३२]

अब हम यति, जितेन्द्रिय और शम दम आदि षट् गुणों से पूर्ण पुरुषों के लिये अद्वय तारक उपनिषत् का व्याख्यान करते हैं। 'मैं चित् स्वरूप हूँ' इस प्रकार हमेशा भाव करता हुआ, आंखों को ठीक २ बन्द रख कर अथवा कुछ खुली रख कर अंतर दृष्टि से भृकुटी के ऊपर के आकाश में सच्चिदानन्द तेज समूहरूप परब्रह्मका अवलोकन करते हुए परब्रह्म रूप होजाता है। परब्रह्म को तारक कहने का कारण यह है कि वह गर्भ, जन्म, बुढ़ापा, मरण और संसार इन महाभयों से तारण करता है। जीव और ईश्वर को मायिक जान कर सब विशेष भावों का 'वह नहीं, वह नहीं' इस प्रकार त्याग करने से जो अवशेष रहता है, वह अद्वय ब्रह्म है। इस ब्रह्म की सिद्धि के लिये तीन लक्ष्य का अनुसंधान करना चाहिये। देहके मध्य भाग में सुषुम्ना नाम की ब्रह्म नाड़ी सूर्य के समान रूप वाली और पूर्ण चन्द्र के समान प्रकाश वाली वर्तती है वह मूलाधार से आरंभ होकर ब्रह्मरन्ध्र तक गई हुई है। इस ब्रह्म नाड़ी के मध्य में करोड़ों बिजली के समान प्रकाश वाली कमल के तंतु के समान सूक्ष्म अंग वाली कुंडलनी प्रसिद्ध है। मन से इसका दर्शन

करने से मनुष्य सब पापों से रहित होकर मुक्त होजाता है। तारक ब्रह्म के योग से कपाल के ऊर्ध्व में रहे हुए ललाट के विशेष भाग में तेज के विस्फुलिंगों को जो हमेशा देखता है, वह सिद्ध होता है। तर्जनी अंगुली के अग्रभाग से दोनों कानों के छिद्रों को बंद करने से फुत्कार शब्द उत्पन्न होता है। जब मन उसमें स्थिति करता है तब चक्षुओं के मध्य भाग में नील ज्योति स्थान को अंतर्दृष्टि से देखने से योगी निरतिशय सुख को प्राप्त होता है। इसी प्रकार हृदयमें भी देखता है। इस प्रकार अंतर्लक्ष्य के लक्षण की मुमुक्षुओं को उपासना करनी चाहिये।

अब बहिर्लक्ष्य को कहते हैं:—नासिका के अग्रभाग में क्रम से चार छः दश अथवा बारह अंगुल की दूरी से कुछ नील श्यामता लिये हुए रक्त भृंग के समान प्रकाश जो पीत शुक्र वर्ण से युक्त है जब उसको आकाश में देखता है तब वह योगी होता है। चल दृष्टि से आकाश में देखने वाले पुरुष की दृष्टि के आगे ज्योति के किरण वर्तते हैं उनके देखने से योगी होता है। अथवा नेत्र के कोण प्रदेश में तप्त सुवर्ण के समान ज्योति के किरणों को जब दृष्टि देखती है तब वह स्थिर हो जाती है। मस्तक के ऊपर बारह अंगुल पर ज्योति को देखने वाला अमृत भाव को प्राप्त होता हैं। चाहे जहां स्थित हो जो मस्तक में आकाश ज्योति को देखता है वह योगी होता है।

अब मध्य लक्ष्य का लक्षण कहते हैं:—प्रातःकाल चित्रादि वर्ण वाले अखण्ड सूर्य के चक्र के समान, अग्नि के ज्वाला के समान और उनसे रहित अन्तरिक्ष के समान देखता है, उनके आकार के समान होकर टिकता है, उसके फिर दर्शन से गुण रहित आकाश हो जाता है। चमकने वाले तार के प्रकाश से प्रकाशमान, प्रातःकाल के अन्धकार के समान परम आकाश होता है। कालानल के समान प्रकाश वाला महाकाश होता है। सर्व से उत्कृष्ट प्रकाश वाला, प्रबल ज्योति तत्त्वाकाश होता है। कोटि सूर्य के प्रकाश के वैभव के समान सूर्याकाश है। इस प्रकार बाहर और भीतर टिका हुआ आकाशपञ्चक तारक का लक्ष्य है। उसको देखने वाला, कर्म बंधन से मुक्त होकर उसी आकाश के समान हो जाता है। इस कारण तारक का लक्ष्य ही अमनस्क फल का देने वाला होता है। यह योग दो प्रकार का है:—पूर्वार्ध तारक और अमनस्क-उत्तरार्ध तारक। इसमें यह श्लोक है:—पूर्व और उत्तर विधान करके इस योग को दो प्रकार का जानो। पूर्व को तारक और दूसरे को अमनस्क जानो। नेत्रों में रहे हुए तारकों से सूर्य और चन्द्र के प्रतिबिम्ब दीखते हैं। तारकों से जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य और चन्द्र मण्डल का दर्शन होता है वैसे ही ब्रह्माण्ड के समान पिण्ड में शिर के मध्य भाग के स्थान में सूर्य और चन्द्र मण्डल दोनों हैं, ऐसा निश्चय करके उनका दर्शन करना चाहिये। दोनों एक ही है ऐसी दृष्टि रखकर मन को युक्त करके ध्यान करे; क्योंकि मनोयोग न

होने से इन्द्रियों की प्रवृत्ति को अवकाश मिलता है। इसलिये अन्तर दृष्टि से तारक ही का अनुसन्धान करना चाहिये।

यह तारक दो प्रकार का है:—मूर्ति तारक और अमूर्ति तारक जो इन्द्रियों के अन्त में है, वह मूर्ति तारक है। जो दोनों भृकुटियों से अतीत है, वह अमूर्ति तारक है। अन्तर के पदार्थों के विवेचन में सर्वत्र मन सहित अभ्यास करना चाहिये। सत्व के दर्शन से युक्त मन से अन्तर में देखने से दोनों तारकों से ऊर्ध्व में टिका हुआ सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्म शुक्ल तेजोमय है। वह ब्रह्म मन सहित नेत्रों की आंतर दृष्टि से जाना जाता है। इसी प्रकार अमूर्ति तारक दहरादिक भी मन युक्त नेत्रों से जाना जाता है रूप के देखने में मन चक्षुओं के आधीन होने से बाहर के समान अन्तर में भी मन और चक्षु के संयोग से रूप ग्रहण का कार्य होता है इसी कारण मन सहित आंतर दृष्टि से तारक का प्रकाश होता है। दोनों भ्रकुटियों के मध्य विल में दृष्टि देने से उनके द्वार के ऊर्ध्व में टिके हुए तेज का आविर्भाव तारक योग है। उसके सहित युक्त मन से तारक की भली प्रकार प्रयत्न पूर्वक योजना करके सावधानी से दोनों भृकुटियों को कुछ ऊर्ध्व में रक्खे। यह पूर्व भागी तारक योग है। दूसरा अमूर्तिमान अमनस्क कहलाता है। तालू के मूल के ऊपर के भाग में महा ज्योति मंडल होता है। यह योगियों का ध्येय है। इससे अणिमादिक सिद्धियां प्राप्त होती हैं। अन्तर और बाह्य लक्ष्य वाली दृष्टि जब खुलने और

चंद होने से रहित होती है तब शांभवी मुद्रा होती है। इस मुद्रा में आरूढ़ ज्ञानी जहां निवास करता है, वह भूमि पवित्र होती है। उसके दर्शन से सब लोग पवित्र होते हैं। इस प्रकार के परम योगीकी पूजा करनेवाला मुक्त होता है और आंतर लक्ष्य जल (द्रव रूप) ज्योति स्वरूप होता है। परमगुरुके उपदेशसे सहस्रारमें जल ज्योति अथवा बुद्धि की गुहा में रही हुई ज्योति अथवा सोलह (कला) के अन्त में स्थित तुरीय चैतन्य अन्तर्लक्ष्य होता है। यह दर्शन सदाचार का मूल है। आचार्य वेद सम्पन्न, विष्णुभक्त, मत्सर रहित योग का ज्ञाता, योग की निष्ठा वाला, योग स्वरूप, पवित्र गुरु भक्ति से युक्त, विशेष रूप से पुरुष को जानने वाला। इन लक्षणों से सम्पन्न गुरु कहलाता है। गु शब्द अन्धकार है और रु शब्द उसका रोकने वाला है। अन्धकार को रोकने से गुरु कहलाता है। गुरु ही परब्रह्म है, गुरु ही परमगति है। गुरु ही पराविद्या है, गुरु ही श्रेष्ठ गति है। गुरु ही पराकाष्ठा है, गुरु ही परम धन है क्योंकि वह उपदेश करने वाला है इसलिये श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ गुरु है। एक बार जो इसका उच्चारण करता है, उसका संसार छूट जाता है। सब जन्मों के किये हुए पाप उसी क्षण नष्ट होजाते हैं। उसकी सब कामनायें पूर्ण होती हैं सब पुरुषार्थ सिद्ध होजाता है, जो इस प्रकार जानता है। यह उपनिषत् है।

॥ इति अद्वय तारकोपनिषत् समाप्त ॥

निर्वाणोपनिषत् ।

[३३]

अब हम निर्वाणोपनिषत् की व्याख्या करते हैं। वह मैं परमहंस हूँ। परिव्राजक, पश्चिम लिंग वाले यानी संन्यास चिह्न-धारी होते हैं। वे निरहंकार शिवरूप हैं। आकाश सिद्धान्त है अमृत की बड़ी लहरों वाली नदी है। अक्षय निरञ्जन है। निःसंशय ऋषि है। निर्वाण देवता है। कुल रहित प्रवृत्ति है। निष्केवल ज्ञान है। ऊर्ध्व वेद है। निरालम्ब पीठ है। ब्रह्म संयोग दीक्षा है। प्रपञ्च का वियोग उपदेश है और संतोष का पान दीक्षा है। बारह आदित्य का अवलोकन-देखना है। विवेक रक्षा है। करुणा की क्रीड़ा है। आनन्द माला है। एकान्त गुहा में मुक्तासन से बैठना सुख गोष्ठी—सभा है। अकल्पित भिक्षा भोजन है। हंस आचार है। सब भूतों के अन्तर वर्तने वाला हंस है, यह प्रतिपादन है। धैर्य कंथा है। उदासीनता कौपीन है। विचार दण्ड है। ब्रह्म का अवलोकन करना योगपट्ट है। श्री खड़ाऊँ है। दूसरे की इच्छा चरण है। कुण्डलिनी बंध रूप है। परभाव से मुक्त जीवन्मुक्त है। कल्याण योग निद्रा है और खेचरी आकाश में गमन करने वाली मुद्रा है। जो परमानन्दी है। तीनों गुणों से रहित है। विवेक से प्राप्त होने योग्य है। मन वाणी का विषय नहीं है। अनित्य

जगत जो उत्पन्न हुआ है, स्वप्न के जगत, बादल के हाथी आदि के समान हैं। इसी प्रकार देहादि संघात मोह और गुण का बना हुआ जाल रस्सी में सर्प के समान कल्पित है। विष्णु ब्रह्मा आदि सैकड़ों नाम से लक्ष्य है। अंकुश मार्ग है। शून्य संकेत नहीं है। परमेश्वर सत्ता है। सत्य सिद्ध योग मठ है। अमर पद तत्त्व स्वरूप है। आदि ब्रह्म स्वसंवित् है। अजपा गायत्री है। विकार को दण्ड देना ध्येय है। मन को रोकना कंथा है। योग करके सदानन्द स्वरूप का दर्शन है। आनन्द भिक्षा भोजन है। महा श्मशान में भी आनन्द वन में निवास है। एकान्त स्थान है। आनन्द मठ है। उन्मनी अवस्था है शारदा चेष्टा है। उन्मनी गति है। निर्मल गात्र है। निरालम्ब पीठ है। अमृत की लहरें आनन्द क्रिया है। शुद्ध चिदाकाश महा सिद्धान्त है। शम दमादि दिव्य शक्तियों के आचरण में देह की तथा मन की आरोग्यता है। पर और अन्तर का संयोग हैं। तारक उपदेश है। अद्वैत सदानन्द देवता है। अपने भीतर की इन्द्रियों का निग्रह नियम है। भय, मोह, शोक और क्रोध का त्याग त्याग है। पर और अवर की एकता रसास्वाद है। अनियामकपना निर्मल शक्ति है। स्वप्रकाश ब्रह्म तत्त्व में शिव शक्ति का मेल रूप प्रपंच का छेदन है। तीनों देह कमण्डलु है। भाव, अभाव का दहन है। आकाश के आधार रूप ब्रह्म को धारण करता है। तुरीय शिव यज्ञोपवीत है। तन्मय शिखा है। चिन्मय सृष्टि दण्ड है। अखंड ज्ञान कमंडलु है।

कर्म का निर्मूल करना कंथा है। माया, ममता और अहंकार का दहन करना। (शुद्ध चैतन्य में) निर्विकार है। तीनों गुण रहित स्वरूप का अनुसंधान करना समय है। भ्रान्ति का हरण। कामादि वृत्ति का दहन करना। दृढ़ कठिनता कौपीन है। वस्त्र मृगचर्म वास है। अनाहत मन्त्र है। अक्रियसे उसका सेवन होता है। स्वेच्छाचार, स्वस्वभाव, मोक्ष परब्रह्म है। नौका रूप आचरण है। शान्तिका संग्रह करना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य आश्रम में अध्ययन किये हुए, वानप्रस्थ में अध्ययन किये हुए, इस सब संवित् का त्याग संन्यास है। अन्त में ब्रह्म अखण्डाकार है। सब संदेह का नाश रूप ज्ञान नित्य है। इस निर्वाण दर्शन को शिष्य और पुत्र के सिवाय और किसीको न देना चाहिये, यह उपनिषत् है। ॐ वाणी और मन में शान्ति हो। यह निर्वाणोपनिषत् समाप्त हुआ॥

॥ इति निर्वाणोपनिषत् समाप्त ॥

ध्यान विन्दु उपनिषत्

[३४]

यदि पर्वत के समान अनेक योजन विस्तार वाले पाप हों तो भी ध्यान योग से छेदन हो जाते हैं, इसके सिवाय दूसरे से कभी भी उनका छेदन नहीं होता ॥ १ ॥ बीजाक्षर परम विन्दु है, और उसके ऊपर नाद स्थित है, वह शब्द अक्षर में लीन होने पर शब्द रहित परम पद है ॥ २ ॥ अनाहत शब्द से परे जो शब्द है उसे प्राप्त करने से योगी संशय रहित होता है ॥ ३ ॥ बाल के अग्र भाग के सौवें भाग का हजारवां भाग और उसके अर्ध भाग और उसको अर्ध भाग का भी क्षय हो जाने से निरंजन होता है ॥ ४ ॥ जिस प्रकार पुष्प में गन्ध होता है, दूध में घी होता है, तिलों में तेल होता है और पाषाण में सुवर्ण होता है ॥ ५ ॥ जिस प्रकार धागे में मणि पिरोये हुए होते हैं इसी प्रकार उस (निरंजन) में सब भूत प्राणी पिरोये हुए हैं। स्थिर बुद्धि वाला ज्ञानी मोह रहित होकर ब्रह्म को जान कर ब्रह्म में टिका हुआ होता है ॥ ६ ॥ जैसे तेल का आश्रय तिल है और जैसे गंध का आश्रय पुष्प है इसी प्रकार पुरुष के शरीर में भीतर और बाहर वह (ब्रह्म) टिका हुआ है ॥ ७ ॥ जैसे वृक्ष को संपूर्ण जानने से उसकी छाया कला रहित होती है इसी प्रकार सब कला रहित भाव में सब स्थानों पर आत्मा टिका हुआ है ॥ ८ ॥ ॐ यह जो

एकाक्षर ब्रह्म है, वह सब मुमुक्षुओं को ध्यान करने योग्य है। पृथिवी अग्नि, ऋग्वेद, भू और पितामह ॥ ९ ॥ इनका प्रणव के प्रथम अंश अकार में लय होता है। अंतरिक्ष, वायु, यजुर्वेद, भुवः और विष्णु जनार्दन ॥१०॥ इनका प्रणवके दूसरे अंश उकार में लय होता है। आकाश, सूर्य सामवेद स्वः और महेश्वर ॥ ११ ॥ इनका प्रणव के तीसरे अंश मकार में लय होता है। अकार पीत वर्ण, रजोगुण वाला कहा जाता है ॥१२॥ उकार सतोगुणी श्वेत है, मकार तमोगुणी और काले रंग वाला है। आठ अंग वाले चार पाद वाले, तीन नेत्र वाले और पांच प्रकार के दैवत वाले ॥ १३ ॥ ॐकारको जो नहीं जानता, वह ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता है। प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है ॥ १४ ॥ बाण के समान तन्मय होकर सावधानी से वेधन करे। उस पर अक्षरको जानने से सब क्रियाओं की निवृत्ति होजाती है ॥ १५ ॥ ॐकार से देवता हुए हैं, ॐकार से स्वर हुए हैं, ॐकार से सब चर अचर रूप तीनों लोक उत्पन्न हुए हैं ॥ १६ ॥ लघु पाप को नाश करता है, दीर्घ अव्यय रूप संपत्ति को देता है और अर्ध मात्रा से युक्त प्रणव मोक्ष को देने वाला है ॥ १७ ॥ तैल की अखंडित धार के समान, घंटे के दीर्घ नाद के समान नादके अग्र में अवाच्य रूप प्रणव है, जो उसे जानता है वह वेद को जानता है ॥ १८ ॥ हृदय कमल की कर्णिका में स्थिर दीपककी शिखा की आकृति वाले, अंगुष्ठ प्रमाण वाले, स्थिर ॐकार रूप ईश्वर का

ध्यान करे ॥ १९ ॥ इड़ा नाड़ी से वायु को खेंच कर उदर में भरे और देह के मध्य में ज्वाला युक्त ॐकार का ध्यान करे ॥ २० ॥ पूरक ब्रह्मा और कुम्भक विष्णु कहा जाता है, रेचक रुद्र कहा जाता है; ये प्राणायाम के देवता हैं ॥ २१ ॥ आत्मा को नीचे की अरणी और प्रणव को ऊपर की अरणी करके मंथन रूप ध्यान के अभ्यास से गूढ तत्त्वको देखना चाहिये ॥ २२ ॥ ॐकार ध्वनि करते हुए पूर्ण रेचक होजाने पर नाद का लय भी होजाता है वहीं आत्मा का दर्शन है। जितना सामर्थ्य हो उतना उसका ध्यान करना चाहिये ॥ २३ ॥ गमनागमन में स्थित और गमनादि से शून्य है, ऐसे करोड़ों सूर्य्य के समान प्रकाश वाले, सबके हृदय में रहे हुए हंस रूप ॐकार को जो देखते हैं वे पाप रहित होजाते हैं ॥ २४ ॥ जो मन जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय तीनों क्रियाओं का करने वाला है उस मन का जहां विलय होता है; वह विष्णु का परमपद है ॥ २५ ॥ हृदय कमल आठ दल वाला और बत्तीस पंखड़ियों वाला है, उसके मध्य में सूर्य्य टिका हुआ है, और उस सूर्य के मध्य में चन्द्र है ॥ २६ ॥ चन्द्र के मध्य में अग्नि है, अग्नि के मध्य में प्रकाश है, और प्रकाशके मध्य में पीठ (आसन) है, जो अनेक प्रकार के रत्नों से जड़ा हुआ है ॥२७॥ उसके मध्य में देव है, जो सब स्थानों पर बसा हुआ निरंजन है, जो श्रीवत्स कौस्तुभ धारण किये हुए, मोती और मणियों से भूषित है ॥ २८ ॥ जो स्वच्छ स्फटिक के समान, करोड़ों चन्द्र के प्रकाश वाला है, इस प्रकार के विष्णु का विनय युक्त होकर ध्यान

करे ॥ २९ ॥ तिसी के पुष्प के समान नाभि के स्थान में टिके हुए, चार भुजा वाले महा विष्णु का पूरक प्राणायाम करता हुआ चिंतवन करे ॥ ३० ॥ कुम्भक प्राणायाम करते समय पद्मासन से बैठे हुए, चार मुख वाले, रक्त और गोरे रंग वाले पितामह ब्रह्मा का हृदय में ध्यान करे ॥ ३१ ॥ रेचक प्राणायाम करते समय ललाट में त्रिनेत्र वाले शंकर का ध्यान करे, जो शुद्ध स्फटिक के समान, कला रहित और पापों का नाश करने वाला है ॥ ३२ ॥ केले के फूलके समान नीचे फूल, ऊपर डंडी और नीचे मुख वाला सौ आरे वाला, सौ पत्रों से युक्त, विस्तीर्ण कर्णिका वाला, हृदय कमल होता है। वह सर्व वेदमय शिव का, सूर्य, चन्द्र और अग्नि के ऊपर २ चिंतवन करे ॥ ३३–३४ ॥ कमल को खोलने से चन्द्र अग्नि और सूर्य का बोध होता है, उनके बीज को ग्रहण करने से स्थिर आत्मा में विचरता है ॥ ३५ ॥ तीन स्थान, तीन मात्रा, तीन ब्रह्म, तीन अक्षर, तीन मात्रा और अर्धमात्रा जो इनको जानता है, वह वेद का जानने वाला है ॥ ३६ ॥ तैल की धार के समान अखंड दीर्घ घन्टे के (प्रणव नाद के अन्त) के समान विन्दु नाद कला से अतीत आत्मा है, जो उसको जानता है, वह वेदका जानने वाला है ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार कमल की नाल से मनुष्य जल को खेंचता है, इसी प्रकार योगी योग मार्ग में स्थित होकर वायु को खेंचे ॥ ३८ ॥ मूँदे हुए हृदय कमल को अर्ध मात्रा स्वरूप करके सुषुम्ना से खेंचे और भृकुटियों के मध्य में लय करे ॥ ३९ ॥ और नासिका के मूल से भृकुटियों के मध्य ललाट में अमृत के स्थान को जाने, वह ब्रह्म का महान् स्थान है ॥४०॥

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के छः अंग हैं ॥ ४१ ॥ जितनी जीव जाति हैं, उतने ही आसन हैं, उनके अनेक भेदों को महेश्वर जानता है ॥ ४२ ॥ सिद्ध, भद्र, सिंह और पद्म ये चार आसन हैं। आधार प्रथम चक्र है और स्वाधिष्ठान दूसरा चक्र है योनि स्थान उन दोनों के मध्य में काम रूप कहा जाता है। आधार नाम के गुदा स्थान में चार दलवाला कमल है ॥४३—४४॥ उसके मध्य में सिद्धों से वन्दना की गई काम नाम की योनि है। तथा योनि के मध्य में पश्चिम मुखवाला लिङ्ग स्थित है ॥ ४५ ॥ उसके मस्तक में मणि के समान प्रकाश को जो जानता है, वह योग जानने वाला है। तप्त सोने के आकारवाला, बिजली के रेखा के समान चंचल, अग्नि से चार अंगुल ऊपर मेढ़ू से नीचे स्वशब्द करके प्राण स्थित है, स्वाधिष्ठान उसका आश्रय है ॥ ४६—४७ ॥ स्वाधिष्ठान चक्र मेढ़ू भी कहलाता है, यहां जैसे मणि तन्तु से वैसे शरीर वायु से पूर्ण है ॥ ४८ ॥ वह नाभि मंडल चक्र मणि पूरक कहलाता है, बारह दल वाले महाचक्र में पुण्य पाप से बंधा हुआ है ॥ ४९ ॥ जीव जब तक तत्त्व को नहीं जानता तब तक भ्रमण करता है। मेढ़ू से ऊपर और नाभि के नीचे पक्षी के अंडे के समान जो कन्द है, वहां से बहत्तर हजार नाड़ियां उत्पन्न हुई हैं, उनमें बहत्तर मुख्य कही गई हैं, फिर भी उनमें प्राण को चलानेवाली दश प्रधान हैं, इड़ा, पिंगला और तीसरी सुषुम्ना ॥ ५०।५१।५२ ॥ गान्धारी, हस्ति जिह्वा,

पूषा, यशस्विनी, अलम्बुसा, कुहू और दशवीं शंखिनी ॥ ५३ ॥ इस प्रकार के नाड़ी चक्र योगियों को हमेशा जानना चाहिये। चन्द्र सूर्य और अग्नि देवता इन देवताओं वाली और सदा प्राण जिसमें चला करते हैं ऐसी ॥ ५४ ॥ इड़ा पिंगला और सुषुम्ना तीन मुख्य नाड़ियां कही गई हैं। इड़ा वाम भाग में स्थित है और पिंगला दक्षिण भाग में स्थित है ॥ ५५ ॥ सुषुम्ना मध्य देश में स्थित है, प्राण के ये तीन मार्ग कहे गये हैं। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान ॥ ५६ ॥ नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय। प्राण आदि पांच और नाग आदि पांच वायु प्रसिद्ध हैं ॥ ५७ ॥ जीव रूप से ये हजारों नाड़ियों में रहते हैं। जीव प्राण और अपान के वश होकर ऊपर नीचे दौड़ता है ॥ ५८ ॥ वाम, दक्षिण मार्ग से चंचल होने के कारण दिखाई नहीं देता। जिस प्रकार भुजाओं से फेंकी हुई गेंद चली जाती है ॥ ५९ ॥ इसी प्रकार प्राण अपान से फेंका हुआ जीव विश्राम नहीं पाता रस्सी से बंधे हुए पक्षी के समान अपान से प्राण खिचता है और प्राण से अपान खिचता है ॥ ६० ॥

जो इनको जानता है वह योगवित् है, हकार द्वारा बाहर आता है और सकार द्वारा भीतर जाता है ॥ ६१ ॥ इस प्रकार हंस हंस यह मंत्र जीव सदा जपता है, दिन रात में इक्कीस हजार छः सौ इतनी संख्या युक्त मंत्र को जीव सदा जपता है, यह जपा नाम की गायत्री योगियों को सदा मोक्ष देने वाली ॥ ६२-६३ ॥ इसके संकल्प मात्र से मनुष्य पापों से छूट

जाता है। इसके समान विद्या, इसके समान जप और इसके समान पुण्य न हुआ है और न होगा।

जिस मार्ग से निरामय ब्रह्म के स्थान को पहुँचा जाता है, उस द्वार को मुख से ढांक कर सोई हुई परमेश्वरी योग अग्नि से जागी हुई, जैसे सुई तागे को ले जाय वैसे, सुषुम्ना मन और प्राण सहित ऊपर जाती है और जैसे कुञ्जी से कपाट झट खोल लेते हैं ॥ ६४—६७ ॥ उस कुण्डलिनी से योगी मोक्ष के द्वार को खोलता है ॥ ६८ ॥ दोनों हाथों को सम्पुटित करके, दृढ़ रीति से पद्मासन बांध कर और ठोड़ी को दृढ़ रीति से वक्षस्थल में लगा कर चित्त में बारम्बार उस (ब्रह्म) का ध्यान करता हुआ, बारम्बार अपान वायु को ऊपर चढ़ाता हुआ, पूर्ण किये प्राण को नीचे ले जाता हुआ मनुष्य (कुण्डलिनी) शक्ति के प्रभाव से अतुल बोध को प्राप्त करता है ॥ ६९ ॥ जो योगी पद्मासन से बैठ कर नाड़ी द्वारों में वायु को भर कर रोकता है, वह मुक्त है, इसमें संशय नहीं है ॥ ७० ॥ श्रम से उत्पन्न हुए पसीने को अंगों में मलने वाला कड़ुये, खट्टे और लवण को त्यागने वाला, दूध पीने में प्रीति वाला, सुखी ॥ ७१ ॥ ब्रह्मचारी, सूक्ष्म आहार करने वाला योगी योग परायण होकर एक वर्ष में सिद्ध हो जाता है, इसमें संशय न करना चाहिये ॥ ७२ ॥ [कन्द (मूल) के ऊपर कुण्डलिनी शक्ति वाला वह योगी सिद्ध होता है।] सदा मूल बंध करने से अपान और प्राण की एकता होती है, मल मूत्र कम हो जाता है और बूढ़ा भी जवान हो

जाता है। एड़ी से योनि को दाबकर गुदाको सकोड़े ॥७३--७४॥ और अपान को ऊपर खेंचे, यह मूल बंध कहलाता है। थका हुआ प्राण रूप पत्ती जिससे उड़ता है, वह ही उड्डियाण होता है। उस (उड्डियाण) बंध का स्वरूप कहा जाता है। उदर में पिछली ताण को नाभि के ऊपर करे॥ ७५-७६ ॥ यह उड्डियाण बंध मृत्यु रूपी हाथी के लिये सिंह है। मस्तक के आकाश से उत्पन्न हुए जल को नीचे जाने से रोकता है॥ ७७ ॥ यह जालंधर बंध कर्म और दुःख समूह का नाश करने वाला है। कण्ठ का संकोचन करना जिसका लक्षण है, ऐसा जालंधर बंध करने से अमृत अग्नि में नहीं पड़ता और न वायु दौड़ता है।

जिह्वा को उलट कर कपाल के छिद्र में प्रवेश करने से और भृकुटियों के बीच में दृष्टि रखने से खेचरी मुद्रा होती है। जो खेचरी मुद्रा को जानता है, उसको रोग और मरण नहीं होता, निद्रा नहीं आती न भूख प्यास लगती हैं, न मूर्च्छा होती है। वह रोग से पीड़ित नहीं होता और न कर्मों से लिपायमान होता है॥ ७८--८१ ॥ जिसकी खेचरी मुद्रा है, वह काल से नहीं बंधता क्योंकि उसका चित्त आकाश में विचरता है और जिह्वा आकाश में गमन करती है॥ ८२ ॥ इसलिये यह खेचरी मुद्रा सिद्धों से नमस्कार की गई है। जिसने खेचरी से तालू के छिद्र को ढक लिया है, कामिनी के आलिंगन करने से भी उसका वीर्य नहीं गिरता, जब तक देह में वीर्य स्थित है तब तक मृत्यु कहां है॥ ८३--८४ ॥ जब तक खेचरी मुद्रा बंधी रहती है

तब तक वीर्य नहीं जाता, चला हुआ वीर्य भी जब योनि मंडल में प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ तब भी योनि मुद्रा से निरन्तर बंधा हुआ विंदु आकर्षण शक्ति से खेंचा हुआ हठ से ऊपर को चला जाता है। वह विंदु सफेद और लाल दो प्रकार का है ॥ ८६ ॥ सफेद शुक्र कहलाता है और लाल महारज कहलाता है। मूंगे के वृत्त के समान रज योनि स्थान में स्थित है, चन्द्र के स्थान में विंदु रहता है। उनकी एकता अत्यन्त दुर्लभ है। विंदु शिव है, रज शक्ति है, विंदु चन्द्रमा है, रज सूर्य है ॥ ८७-८८ ॥ दोनों के संगम से परम शरीर प्राप्त होता है। वायु द्वारा शक्ति के चलाने से जब रज आकाश में प्रेरित होता है और रवि के साथ एकता को प्राप्त होता है, तब शरीर दिव्य हो जाता है। शुक्ल चन्द्रमा के साथ संयुक्त है और रज सूर्य के साथ संयुक्त है ॥ ८९-९० ॥ जो दोनों के एक रस भाव को जानता है, वह योग को जानने वाला है। चन्द्र सूर्य को मिलाना, मल समूह को शोधन करना है ॥ ९१ ॥ रसों को भली प्रकार शोषण करना इसके लिये महा मुद्रा कहलाती है ॥ ९२ ॥ ठोड़ी को छाती पर रख कर, बांई एड़ी से योनि के छिद्र को दबा कर फैलाये हुए दक्षिण पाद को पकड़ कर, दोनों कुक्षियों को बांध कर भरी हुई श्वास को धीरे धीरे छोड़े, मनुष्यों के महा पातक को नाश करने वाली यह महा मुद्रा कहलाती है ॥ ९३ ॥

अब आत्मा के निर्णय का वर्णन करते हैं। हृदय के स्थान में आठ दल वाला कमल है, उसके मध्य में रेखाओं का अवलम्बन करके उसमें जीवात्मा ज्योति स्वरूप अणुमात्र रूप से वर्तता है। उसमें सब टिका हुआ होता है। सब जानता है, सब करता है। इन सब चरित्रों का मैं कर्ता, मैं भोक्ता, सुखी, दुखी, काना, कंजा, दुबला और मोटा हूँ, इस प्रकार स्वतन्त्रता से वर्तता है॥ पूर्व दल श्वेत वर्ण वाला है, पूर्व दल में उसका विश्राम होने से भक्ति युक्त धर्म में वुद्धि होती है। आग्नेय दल रक्त वर्ण वाला है, जब आग्नेय दल में विश्राम होता है तब निद्रा और आलस्य में वुद्धि होती है। दक्षिण दल कृष्ण वर्ण वाला है, जब दक्षिण दल में विश्राम होता है तब द्वेष और कोप की वुद्धि होती है॥ नैऋत दल नील वर्ण वाला है, जब नैऋत दलमें विश्राम होता है तब पाप कर्म हिंसा में वुद्धि होती है॥ पश्चिम दल स्फटिक के रंग का है, जब पश्चिम दल में विश्राम होता है तब क्रीडा और विनोद में वुद्धि होती है। वायव्य दल माणिक्य के रंग का है, जब वायव्य दल में विश्राम होता है तब जाने, चलने और वैराग्य में वुद्धि होती है॥ उत्तर दल पीले रंग का है, जब उत्तर दल में विश्राम होता है तब सुख और श्रृंगार में वुद्धि होती है॥ ईशान दल वैडूर्य मणि के रंग वाला है, जब ईशान दल में विश्राम होता है तब दान आदि कृपा की वुद्धि होती है। जब संधियों की संधियों में वुद्धि होती है तब वात, पित्त, कफ महा व्याधियों का कोप होता है। जब मध्य में स्थित होती

है तब सब जानती है, गाती है, नाचती है, पढ़ती है और आनन्द करती है ॥ जब नेत्र को श्रम होता है तो श्रम दूर करने को प्रथम रेखा के मध्य में डुबकी लगाती है, तब निद्रावस्था होती है, प्रथम रेखा बंधूक पुष्प (दोपहिरया) के रंग वाली है॥ निद्रावस्था के मध्य में स्वप्नावस्था है। स्वप्नावस्था में देखी सुनी अनुमान से होने वाली वार्ता इत्यादि कल्पना करती है, जब श्रम होता है॥ तब श्रम दूर करने को दूसरी वीरबुहट्टीके रंगवाली रेखाके मध्यमें डुबकी लगाती है, तब सुपुप्ति अवस्था होती है, सुपुप्तिमें वुद्धि केवल ईश्वरके सम्बन्ध वाली नित्य वोध स्वरूप होती है, पीछे परमेश्वर की प्राप्ति होती है ॥ तीसरी रेखा पद्मराग के रंग की है, जब तीसरी रेखा के मध्य में डुबकी लगाता है तब तुरीयावस्था होती है। तुरीया में वुद्धि केवल परमात्मा के सम्बन्ध वाली होती है, नित्य वोध स्वरूप वाली होती है तब शनै २ उपराम को प्राप्त होकर, धैर्य ग्रहण करने वाली वुद्धि से मन को आत्मा में स्थित कर के कुछ भी चिंतवन न करे। तव प्राण अपान को एक कर के सब विश्व को आत्म स्वरूप के लक्ष्य से धारण करता है। जब तुरीयातीत अवस्था होती हैं, तब सब आनन्द स्वरूप होता है, द्वन्द्व से अतीत होता है। जब तक देह का प्रारब्ध रहता है, तब तक ठहरता है, पश्चात् परमात्म तत्त्व की प्राप्ति होती है, इस प्रकार से मोक्ष होता है, ये आत्म दर्शन के उपाय हैं ॥

चार मार्ग से युक्त महा द्वारमें जाने वालेके वायुके साथ स्थित होकर अर्ध त्रिकोण में जाने से अच्युत (नाश रहित परमात्मा),

दीखता है ॥ ९४ ॥ पूर्वोक्त त्रिकोण स्थान से ऊपर पांच रंग वाले पृथिवी आदि ध्यान करने योग्य हैं और वीज, रंग और स्थान वाले पांच वायु ध्यान करने योग्य हैं। नीले मेघ के समान यकार वायु रूप प्राण का वीज है। आदित्य के समान रकार अग्नि रूप अपान का बीज है ॥ ९५ ॥

वन्धूक पुष्प के समान लकार पृथ्वी रूप व्यान है। शंख के रंग वाला वकार जल रूप उदान का वीज है ॥ ९६ ॥ स्फटिक के सदृश हकार आकाश रूप समान है। हृदय, नाभि, नासिका, कर्ण और पैर का अंगूठा आदि समान के स्थान हैं ॥ ९७ ॥ वह वहत्तर हजार नाड़ियों में वर्तती है। शरीरमें अट्ठाईस करोड़ रोम कूप हैं वहां भी समान रहता है ॥ ९८ ॥ समान प्राण एक है, वह ही एक जीव है। चित्त को अच्छी तरह सावधान करके रेचक आदि तीनों करे ॥ ९९ ॥ सवको धीरे २ खेंच कर हृदय कमल के कोटर में प्राण अपानको रोक कर प्रणवका उच्चारण करे ॥१००॥ कंठका संकोचन करके तथा लिंग का संकोचन करके मूलाधार से पद्म तंतु के समान सूक्ष्म सुषुम्ना का संकोचन करे ॥ १०१ ॥ वीणा दण्ड से उत्पन्न हुआ अमूर्त नाद वर्तता है। शंख नाद आदि के समान उसीके मध्य में ध्वनि होती है ॥ १०२ ॥ कपाल छिद्र के मध्य में चारों द्वारों का मध्य है, वहां आकाश रंध्र में जाता हुआ नाद मोर के नाद के समान होता है ॥ १०३ ॥ जैसे आकाश में सूर्य तैसे यहां आत्मा विराजमान है और ब्रह्मरंध्र में

दो मनुष्यों के मध्य शक्ति विराजमान है ॥ १०४ ॥ वहां मनको लय करके पुरुष अपने आत्मा को देखे, रत्नज्योति नाद रूप विन्दु परमेश्वर का पद है। जो पुरुष इस प्रकार जानता है, वह कैवल्य को भोगता है, यह उपनिषत् है ॥ १०५ ॥

॥ इति ध्यान विन्दु उपनिषत् समाप्त ॥

मण्डल ब्राह्मण उपनिषत् ।

[३५]

प्रथम ब्राह्मण ।

याज्ञवल्क्य महा मुनि आदित्य लोकको गये, उन आदित्य को नमस्कार करके बोले "हे भगवान् ! आदित्यका आत्म तत्त्व कहिये !" वह नारायण बोले ज्ञान सहित यमादि अष्टांग योग कहलाता है। शीत, उष्ण, आहार और निद्राको जीतना, हमेशा शांति, निश्चलपन, और विषय इन्द्रियों का रोकना ये यम हैं। गुरु की भक्ति, सत्य मार्गमें प्रीति, सुखसे प्राप्त हुई वस्तुका अनुभव और उस वस्तु के अनुभव से संतुष्टि, असंगपना, एकान्त वास, मन की निवृत्ति, फल में अनिच्छा और वैराग्य का भाव नियम है। आसन सुख पूर्वक रहे और बहुत काल तक रहे यह आसन का नियम है। पूरक, कुम्भक और रेचक भेद से सोलह, चौंसठ और बत्तीस यथा क्रम से प्राणायाम की संख्या है। इन्द्रियों के अर्थ यानी विषयों से मन को रोकना प्रत्याहार है। सब शरीरों में चैतन्य की एकता विचारना ध्यान है। विषयों से निवृत्त करके चित्त को चैतन्य में स्थापित करना धारणा है। ध्यान को भूल जाना समाधि है। इस प्रकार सूक्ष्म अंग हैं। जो इस प्रकार जानता है, वह मुक्त होता है ॥ १ ॥ देह के पांच दोष होते हैं:— काम, क्रोध, श्वास निकलना, भय और निद्रा। संकल्प रहित होने से क्षमा, हलका भोजन, सावधानी और तत्त्व सेवन

करने से उन दोषों का त्याग होता है। निद्रा भय नदी का प्रवाह है, हिंसा आदिक तरंग हैं, तृष्णा भँवर है, स्त्री कीचड़ है, ऐसे संसार समुद्र के पार जाने को सूक्ष्म मार्ग का अवलम्बन करके सत्त्वादि गुणों का उल्लंघन करके तारक का अवलोकन करे। भौओं के मध्य में सच्चिदानन्द तेज स्थिर पहाड़ का सा तारक ब्रह्म है। उसको प्राप्त करने का उपाय, तीन लक्ष्य का अवलोकन है। मूलाधार से लेकर ब्रह्मरंध्र तक सुषुम्ना सूर्य के समान प्रकाश वाली है। कमल की डण्डी के तन्तु के समान सूक्ष्म कुण्डलिनी है। वहां अंधेरे की निवृत्ति है। उसके दर्शन से सब पापों की निवृत्ति होती है। तर्जनी अँगुली के अग्र भाग से दोनों कानों के छिद्र बन्द करने से फुत्कार शब्द होता है। वहां मन के स्थित होने से नेत्रों के मध्य में नील ज्योति को देखता है। इसी प्रकार हृदय में भी देखता है। बहिर्लक्ष्य कहते हैं:— नासिका के अग्र में चार, छैः, आठ, दस, बारह अँगुल पर क्रम से नील ज्योति, श्यामता के समान, वीरबुहट्टी के समान, पीला और दोनों रंग युक्त आकाश को देखता है, वह योगी है। चल दृष्टि से व्योम भाग को देखने वाले पुरुष की दृष्टि के सामने ज्योति के किरण होते हैं। वहां दृष्टि स्थिर हो जाती है; मस्तक के ऊपर बारह अँगुल वाली ज्योति देखता है तब अमृतपने को प्राप्त होता है। मध्य लक्ष्य कहते हैं:— प्रातःकाल चित्रादि वर्ण, सूर्य, चन्द्र, अग्नि की ज्वाला के समान, इनसे रहित अन्तरिक्ष के समान देखता है। उसके

आकार वाला होता है। अभ्यास से निर्विकार, गुण रहित आकाश होता है। चमकते हुए तारे के आकार वाला, गाढ़ अन्धकार के समान पराकाश होता है। कालाग्नि के समान प्रकाश वाला महाकाश होता है। सबसे ऊँचा परम अद्वितीय प्रकाश वाला तत्त्वाकाश होता है। करोड़ों सूर्य के प्रकाश वाला सूर्याकाश होता है। इस प्रकार अभ्यास से तन्मय होता है, जो इस प्रकार जानता है ॥ २ ॥

पूर्व और उत्तर विभाग से उस योग को दो प्रकार का जानो। पहिले को तारक जानो और दूसरे को अमनस्क जानो। तारक दो प्रकार का है। मूर्ति तारक और अमूर्ति तारक। जो इन्द्रियों का अन्त तक है वह मूर्ति तारक है। जो दोनों भौंओं से अतीत है, वह अमूर्ति तारक है। युक्त मन होकर दोनों का ही अभ्यास करे। मन युक्त आन्तर दृष्टि तारक का प्रकाश होता है। दोनों भौंओं के मध्य बिल में तैजस का आविर्भाव हो जाता है, यह पूर्व तारक है। दूसरा अमनस्क है। तालु की मूल के ऊपर के विभाग में महा ज्योति विद्यमान है। उसके दर्शन से अणिमा आदि सिद्धियां होती हैं। अन्तर और बाहर के लक्ष्य में दृष्टि को खुलने और मुंदने से रहित रखना, यह शांभवी मुद्रा है। सब तंत्रों में यह महाविद्या गुप्त रखने योग्य होती है। उसके ज्ञान से संसार की निवृत्ति होती है। उसका पूजन मोक्ष फल देने वाला है। अन्तर्लक्ष्य जल ज्योति स्वरूप होता है। महा ऋषियों के जानने योग्य, अन्तर और बाहर की इन्द्रियों से न देखी जा

सके ऐसी है ॥ ३ ॥ हजारों किरणों वाला जल ज्योति अन्तर्लक्ष्य है। दूसरे ऐसा कहते हैं, बुद्धि रूपी गुफा में सब अंगों से सुन्दर पुरुष रूप अन्तर्लक्ष्य है। मस्तक के भीतर मण्डल में रहने वाला, पांच मुख वाला, उमा सहाय :वाला, नील कण्ठ वाला, अत्यंत शान्त, ऐसा शिव अन्तर्लक्ष्य है ऐसा कोई कहते हैं। कोई कहते हैं कि अंगुष्ट मात्र पुरुष ही अन्तर्लक्ष्य है। कहा हुआ सब विकल्प आत्मा ही है और उस लक्ष्य को जो शुद्ध आत्म दृष्टि से देखता है वह ही ब्रह्मनिष्ठ होता है। पचीसवां जीव अपने कल्पे हुए चौबीस तत्त्वों को त्याग कर मैं छब्बीसवां परमात्मा हूँ ऐसा निश्चय करने से जीवन्मुक्त होता है। इस प्रकार अन्तर्लक्ष्य को देखने से जीवन्मुक्त की दशा में आप ही अन्तर्लक्ष्य होकर अखण्ड मण्डल वाला परमाकाश होता है ॥ ४ ॥

दूसरा ब्राह्मण।

अब याज्ञवल्क्य ने आदित्य मंडल के पुरुष से पूछा "हे भगवन्! आपने अन्तर्लक्ष्य आदिक बहुत प्रकार से कहे। मैंने उस (आत्म तत्त्व) को न जाना। उसको मुझसे कहो।" तब उसने कहा, वह पंच भूतों का कारण, बिजली के पर्वत के समान, प्रकाश वाला और वैसे ही चार पीठ वाला है। उसके मध्य में तत्त्व का प्रकाश होता है। वह अत्यन्त गुप्त और अप्रकट है। उसको ज्ञान की नौका पर चढ़ कर जानना चाहिये। वह भीतर और बाहर का लक्ष्य है। उसके मध्य में जगत् लीन है। वह नाद

विन्दु कला से अतीत अखंड मंडल है। वह सगुण और निर्गुण स्वरूप है। उसका जानने वाला विमुक्त होता है। आदि में अग्नि मंडल है। उसके ऊपर सूर्य मंडल है। उसके मध्य में अमृतमय चन्द्र मंडल है। उसके मध्य में अखंड ब्रह्म तेज का मंडल है। वह विजली की किरणों के समान शुक्ल प्रकाश वाला है। वह ही शांभवी लक्षण है, उसके दर्शनमें अमावस, पड़वा और पूर्णमासी तीन दृष्टियां हैं। मुंदी हुई आंखों से देखना अमावस की दृष्टि है। आधी मुंदी हुई आंखों से देखना पड़वा है। आंखें विलकुल खुली रखना पूर्णिमा है। इसलिये पूर्णिमा का अभ्यास करना चाहिये। उसका लक्ष्य नासिका का अग्र भाग है। तब तालू के मूल में गाढ़ा अन्धकार दिखाई देता है। उसके अभ्यास से अखंड मंडल के आकार की ज्योति दीखती हैं वह ही सच्चिदानन्द ब्रह्म है। इस प्रकार सहज आनन्द में जब मन लवलीन होजाता है तब शांतोभवी (मुद्रा) होती है। उसको ही खेचरी कहते हैं। उसके अभ्यास से मनकी स्थिरता होती है। फिर वायु की स्थिरता होती है। ये उसके चिह्न हैं। आदि में तारों के समान दिखाई देता है। फिर दर्पण, उसके पश्चात् चन्द्र मंडल, फिर नव रत्न प्रभा का मंडल, फिर दोपहर के सूर्य का मंडल, फ़िर अग्नि की शिखा का मंडल, ये क्रम से दीखता है॥ १॥

तब पश्चिम मुख वाला प्रकाश, स्फटिक, धुवां, विन्दु, नाद, कला, नक्षत्र, जुगनु, दीप की शिखा सुवर्ण नव रत्न आदि प्रभा दीखती हैं। वह ही प्रणव का स्वरूप है। प्राण और अपान

की एकता करके कुम्भक धारण करके दृढ़ भावना से नासिका के अग्रभाग को देखना, दोनों हाथों की अंगुलियों से षण्मुखी (कर्ण, नेत्र, नासिका को बन्द) करके प्रणव की ध्वनि सुनकर मन वहां लीन हो जाता है। उसको कर्म का लेप नहीं होता। सूर्य के उदय और अस्त के काल में कर्म अवश्य करना चाहिये, परंतु इस प्रकार जानने वाले को चैतन्य रूपी सूर्य के उदय और अस्त के अभाव से कर्म का अभाव होता है। शब्द और काल के लय होने से दिन और रात्रि से अतीत होकर सबके परिपूर्ण ज्ञान से उन्मनी अवस्था की प्राप्ति से ब्रह्म की एकता होती है। उन्मनीं अमनस्क होती है, चिंता रहित होना उसका ध्यान है। सब कर्मों का नाश आवाहन है। दृढ़ ज्ञान आसन है। उन्मनी भाव पाद्य है, सदा अमनस्क अर्घ्य है, सदा प्रकाश और अखंड ब्रह्म की वृत्ति रखना स्नान है। सर्वत्र ब्रह्म की भावना गंध है। द्रष्टाके स्वरूप की अवस्था अक्षत् है। चैतन्य की प्राप्ति पुण्य है चैतन्य अग्नि स्वरूप धूप है, चैतन्य आदित्य स्वरूप दीप हैं। परिपूर्ण चन्द्र के अमृत रस को एकत्र करना नैवेद्य है। निश्चलता प्रदक्षिणा है। सोऽहं (वह मैं) भाव नमस्कार और मौन स्तुति है और पूर्ण सन्तोष उसका विसर्जन है, जो इस प्रकार जानता है ॥ २ ॥

इस प्रकार त्रिपुटी छूटने पर तरंग रहित समुद्र के समान वायुरहित स्थान पर रक्खे हुए दीप के समान अचल, संपूर्ण भाव अभाव से रहित, कैवल्य का प्रकाश होता है। जाग्रत और

निद्रा के मध्य को जानने से ब्रह्म को जानने वाला होता है। अज्ञान में लीन होने के कारण और मुक्ति के हेतु का अभाव होने से सुषुप्ति और समाधि में मन का लय समान होने पर भी दोनों में महान अन्तर है। प्रपंच मनका कल्पा हुआ होने से समाधि में अज्ञान का विकार मिट जाने से उसके आकार से आकार वाली अखंडाकार वृत्ति वाले आत्म रूप साक्षी चैतन्य में प्रपंच का लय हो जाता है। इसलिये भेद के अभाव और मिथ्यापने के भान से कभी वृत्ति वाहर जाय तो भी एक वार प्रकाश रूप सदानन्द के अनुभव होने से ब्रह्म जानने वाला ब्रह्म ही होता है। जिसका संकल्प नाश हुआ है उसके हाथ में ही मुक्ति रक्खी हुई है। इसलिये भाव अभाव को छोड़ कर परमात्मा का ध्यान करने से मुक्ति होती है। वारंवार सब अवस्थाओं में ज्ञान ज्ञेय, ध्यान, ध्येय, लक्ष्य, अलक्ष्य, दृश्य अदृश्य और ऊहापोह आदि छोड़कर जो इस प्रकार जानता है वह जीवन्मुक्त होता है॥३॥ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुर्य और तुर्यातीत पांच अवस्थायें हैं। जाग्रत में प्रवृत्त हुआ जीव प्रवृत्ति मार्ग में आसक्त होकर पाप का फल नरकादि मत हो, शुभ कर्म का फल स्वर्ग हो इस प्रकार की इच्छा करता हैं। वह ही स्वीकार किये हुए वैराग्य से कर्म का फल जन्म रूप संसार अब बस है ऐसा विचार के विमुक्ति की इच्छा करके निवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त होता है। वह ही संसार से तरने के लिये गुरु का आश्रय लेकर कामादि त्याग कर शास्त्र विहित कर्मों का आचरण करते हुए, साधन चतुष्टय

से संपन्न होकर हृदय कमल के मध्य में भगवत् सत्ता मात्रका अंतर्लक्ष्य करके सुपुप्ति अवस्था की मुक्त, ब्रह्मानन्द की स्मृति प्राप्त करके 'मैं ही एक अद्वितीय हूँ,' कुछ कालसे अज्ञान वृत्तिसे भूलकर जाग्रतकी वासनाके फल से 'मैं तैजस हूं, इस प्रकार उन दोनों के निवृत्त होने पर मैं एक ही अत्र प्राज्ञ हूँ, स्थान और अवस्थाओं के भेद से ऐसा है परन्तु मैं इनसे अन्य हूँ, इस प्रकार विवेक होने पर शुद्ध अद्वैत ब्रह्म मैं हूँ, इस प्रकार भेद की गन्ध को त्याग कर अपने अंतर में व्यापक भानुमण्डल का ध्यान करके उसके आकार का होने से परब्रह्म के आकार वाले मुक्ति मार्ग पर आरूढ़ होकर परिपक होता है। संकल्पादि वाला मन वन्धन का हेतु है, इनसे रहित मन मोक्ष के योग्य होता है। मोक्ष वाला चक्षु आदि पांच से अतीत प्रपंच की गन्ध रहित सब जगत को आत्मरूप देखता हुआ अहंकार को त्याग कर मैं ब्रह्म हूँ, इस प्रकार चिंतवन करता हुआ जो यह है, सब आत्मा ही है, इस प्रकार भावना करता हुआ कृत कृत्य होता है ॥ ४ ॥ सर्व परिपूर्ण तुर्यातीत ब्रह्म रूप योगी होता है। उसकी ब्रह्म के समान स्तुति करते हैं। वह सब लोकों को स्तुति करने योग्य है सर्व देशों में व्यापक होता है, परमात्मा रूपी आकाश में बिंदु को धारण करके शुद्ध अद्वैत जड़ता रहित सहज अमनस्क योग निद्रा के अखंड आनन्द पद की अनुवृत्ति से जीवन्मुक्त होता है। योगी आनन्द समुद्र में मग्न होते हैं। उनकी अपेक्षा

से इन्द्र आदिक का आनन्द थोड़ा है। इस प्रकार आनन्द प्राप्त करने वाला परम योगी होता है, यह उपनिषत् है ॥ ५ ॥

तीसरा ब्राह्मण।

याज्ञवल्क्य महा मुनि ने मण्डल पुरुष से पूछा "स्वामिन्! अमनस्क के लक्षण कहने पर भी याद नहीं है, इसके लक्षण फिर कहिये," तब इस प्रकार मंडल पुरुष बोलाः—यह अमनस्क अत्यन्त रहस्य है जिसके जानने से भी कृतार्थ होता है। वह नित्य शांभवी मुद्रा से युक्त है। परमात्म दृष्टि से उसके प्रत्यक्ष लक्षणों को देखकर उसके पीछे सर्व के ईश्वर, प्रमाण रहित, अज, शिव, परमाकाश, आलम्बन रहित अद्वय, ब्रह्मा विष्णु रुद्रादि का एक मात्र लक्ष्य रूप, सबके कारण को परब्रह्म रूप आत्मा में ही देखता हुआ, यह जीव अतःकरण रूप में विहार करता है, ऐसा निश्चय पूर्वक जानकर भाव अभाव आदि द्वन्द्वों से अतीत होकर, मनोन्मनी के अनुभव को जानकर, उसके पीछे सब इन्द्रियों के क्षय होने से अमनस्क सुख रूप ब्रह्मानन्द के समुद्र में मन का प्रवाह योग रूप, निर्वात स्थान में रक्खे हुए दीपक के समान, अचल परब्रह्म को प्राप्त होता है। तब सूखे वृक्ष के समान मूर्छा और निद्रामय श्वासोश्वास के अभाव से निर्द्वन्द्व और सदा अचंचल गात्र वाला होकर परम शांति को प्राप्त करके मन प्रचार से शून्य होने से वह परमात्मा में लीन होता है। दूध निकालने के बाद गौ के थनों के दूध के समान

सब इन्द्रिय समूह के नष्ट होने से मन का नाश होता है, वह ही अमनस्क है। उस के पीछे नित्य शुद्ध परमात्मा 'मैं ही हूँ' इस प्रकार तत्त्वमसि के उपदेश से 'तू ही मैं हूं, मैं ही तू है' इस प्रकार तारक योग के मार्ग से अखंड आनन्द से पूर्ण होकर कृतार्थ होता है॥ १ ॥ पराकाश में परिपूर्ण मग्न होकर उन्मनी अवस्था को प्राप्त करके सब इन्द्रिय समूह को त्याग कर अनेक जन्मों के किये हुए पुण्य समूह के पक होने से कैवल्य फल को पाकर अखंडानन्द स्वरूप सब क्लेशों और पापों से रहित ब्रह्म मैं हूँ, इस प्रकार (अनुभव कर) कृत कृत्य होता है। परमात्मा पूर्ण होने से तू और मैं में भेद नहीं है। इस प्रकार कहते हुए शिष्य को आलिंगन देकर उसको ज्ञान को प्राप्त किया॥ २ ॥

चौथा ब्राह्मण।

याज्ञवल्क्यने मंडल पुरुषसे फिर पूछा "व्योम पंचकका लक्षण विस्तार से फिर कहिये" वह बोला:—आकाश पराकाश, महाकाश, सूर्याकाश, परमाकाश इस प्रकार आकश पांच हैं। बाहर और भीतर अंधकारमय आकाश है। बाहर और भीतर कालाग्नि के समान पराकाश है। बाहर और भीतर प्रमाण रहित ज्योति की प्रभा वाला तत्त्व महाकाश है, बाहर और भीतर सूर्य की प्रभा वाला सूर्याकाश है। अनिर्वचनीय ज्योति, सर्व व्यापक अत्यंत आनंदलक्षण वाला परमाकाश है। इस प्रकार उस उसके लक्ष्यको देखने से उस उसका रूप होता है। नव चक्र वाला, छः आधार वाला, तीन लक्ष्य वाला व्योम पंचक है। जो इनको यथार्थ नहीं जानता वह नाम मात्र का योगी होता हैं॥ १ ॥

विषय वाला मन बंध का और विषय रहित मन मुक्ति का हेतु होता है। इसलिये सब जगत चित्त का विषय है वह ही चित्त आश्रय रहित और ममोन्मनी अवस्था के पक होने पर लय के योग्य होता है। मुझ पूर्ण में उसके लय करने का अभ्यास करे। मन के लय का कारण मैं ही हूं। अनाहत शब्द की जो ध्वनि है उस ध्वनि के अन्तर्गत ज्योति है, ज्योति के अंतर्गत मन है। जिससे तीनों जगत सृष्टि स्थिति और लय का कर्म है।

वह मन जहां लय हो जाता है, वह विष्णु का परम पद है। उसके लय होने से भेद के अभाव से शुद्ध अद्वैत की सिद्धि होती है। यह ही परम तत्त्व है उसका जानने वाला बाल, उन्मत्त अथवा पिशाच के समान जड़ कृति से इस लोक में आचरण करे। इस प्रकार अमनस्क के अभ्यास से ही नित्य तृप्ति, अल्प मल मूत्र थोड़ा भोजन, दृढ़ अंग तथा जड़ता, निंद्रा, दृष्टि और वायु चलना इनका अभाव होता है ब्रह्मके दर्शनसे जाने हुए सुख स्वरूप की सिद्धि होती है। इस प्रकार दीर्घ काल तक की हुई समाधि से उत्पन्न हुए ब्रह्म रूपी अमृत के पान में परायण होकर वह संन्यासी परमहंस अवधूत होता है। उसके दर्शन से सर्व जगत पवित्र होता है। उसकी सेवा करने वाला अज्ञानी भी मुक्त होता है। वह एक सौ एक कुल को तारता है। उसके माता, पिता, स्त्री और पुत्र समूह मुक्त होते हैं। यह उपनिषत् है।

॥ इति मण्डल ब्राह्मण उपनिषत् समाप्त ॥

भिक्षुकोपनिषत् ।

[३६]

मोक्ष की इच्छा वाले संन्यासी कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस चार प्रकार के हैं। गौतम, भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ कुटीचक नाम के संन्यासी आठ ग्रास का भोजन करके योग मार्ग से ही मोक्ष की प्रार्थना करते हैं। और बहूदक नाम के संन्यासी त्रिदंड, कमंडलु, शिखा, यज्ञोपवीत और काषाय वस्त्र धारण करने वाले ब्रह्मर्षि के घर में मधुमास को छोड़कर आठ ग्रास का भोजन करके योग मार्ग से मोक्ष ही की प्रार्थना करते हैं। और हंस नाम के (संन्यासी) ग्राम में एक रात्रि, नगर में पांच रात्रि और क्षेत्र में सात रात्रि से उपरांत वास नहीं करते। वे गोमूत्र और गोबर का आहार करने वाले नित्य चांद्रायण व्रत करते हुए योग मार्ग से मोक्ष ही की प्रार्थना करते हैं। और परमहंस नाम के (संन्यासी) संवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, जड़ भरत, दत्तात्रेय, शुक, वामदेव, हरीतक आदि आठ ग्रास का भोजन करके योग मार्ग से मोक्ष ही की प्रार्थना करते हैं। वे वृक्ष की जड़, शून्य गृह, अथवा श्मशानमें वास करनेवाले वस्त्र सहित अथवा नग्न रहते हैं। उनको धर्म, अधर्म, लाभ, अलाभ, शुद्ध, अशुद्ध और द्वैत नहीं होता, वे मिट्टी का डेला, पत्थर और सुवर्ण

में समान भाव रखते हैं, सब वर्णों में से भिक्षा करके सर्वत्र आत्मा ही देखते हैं। वे नंगे, निर्द्वन्द्व, परिग्रह रहित, शुक्ल ध्यान परायण, आत्मनिष्ठा वाले प्राण धारण के लिये यथा योग्य समय पर भिक्षा करके शून्य स्थान, देव मन्दिर, पर्णकुटी, वांबी, वृक्षकी जड़, कुम्हार के घर, अग्नि होत्र के स्थान, नदी के किनारे, गिरि-गुफा, टीला, गड्ढा अथवा स्रोत के स्थान में रह कर ब्रह्म मार्ग में अच्छी प्रकार से संपन्न होकर शुद्ध मन से परमहंस के आचार से, संन्यास से देह त्याग करते हैं, वे परमहंस नाम के संन्यासी हैं। उपनिषत् समाप्त हुआ।

॥ इति भिक्षुकोपनिषत् समाप्त ॥

आरुणीक उपनिषत् ।

[३७]

प्रजापति से उत्पन्न हुए अरुणि नाम के एक मुनि एक समय प्रजापति के लोक में गये और पूछने लगे "हे भगवन् किस उपाय करके मैं सब कर्मों का त्याग करूं ?" तब प्रजापति कहने लगे "तुम को पुत्र, भाई, बान्धव, शिखा, यज्ञोपवीत, याग, स्वाध्याय, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक सत्यलोक, अतल, तलातल, वितल, सुतल, रसातल, महातल, पाताल और ब्रह्माण्ड सबका त्याग करना चाहिये, (सब लोकोंकी इच्छाओं का त्याग करना) दण्ड और वस्त्रों में चादर और कोपीन को ग्रहण करना चाहिये, शेष सबका त्याग करना चाहिये" ॥१॥

गृहस्थ ब्रह्मचारी और वानप्रस्थको अपने उपवीत को भूमि में अथवा जल में त्याग करना चाहिये। अग्निहोत्र के पंचाग्नि को उदराग्नि में आरोपण करना और गायत्री का वाणी रूप अग्नि में आरोपण करना। कुटीचर (कुटी में रहने वाले) ब्रह्मचारी को प्रथम कुटुम्ब का त्याग करना, पात्र का त्याग करना, पवित्र का त्याग करना, दण्ड और लोक का त्याग करना, मंत्र रहित होना, ऊर्ध्वगमन यानी इस लोक में या परलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के भाव को छोड़ देना, औषधि रूप से अन्न को खाना,

तीनों काल की सन्ध्या में स्नान करना और सन्धि समय आत्मा की समाधि में व्यतीत करना। सब वेदों में से आरण्यक उपनिषत् का पठन करना, ब्रह्म ज्ञान का पठन करना ॥ २ ॥

मैं ही ब्रह्म सूत्र रूप हूँ, (वस्त्र) उत्पन्न करने वाले को सूत्र कहते हैं (जगत्को) उत्पन्न करने वाला ब्रह्म सूत्र मैं ही हूँ। ऐसा ज्ञान कर विद्वान् अधिकारी तीन तार वाले उपवीत का त्याग करे। इस प्रकार जिसको ज्ञान है वह परम विद्वान् अधिकारी है। 'मैंने सब वस्तुओं का त्याग किया है' ऐसे तीन वार कहना, मैं सब भूत प्राणियोंसे भयरहित हूँ, मुझसे सब प्रवृत्त हो रहा है।

सखा मागोपायौजः सखायोऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि
वार्त्रघ्नः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारय ।

अर्थः—हे मित्र, तुम तेजस्वी हो, इन्द्र का सखा वज्र हो, वृत्र का तुमने ही नाश किया। तुम मेरे लिये कल्याणकारी बनो और मेरा जो पाप हो उसका निवारण करो।

इस मंत्र से मन्त्रित वैष्णव दण्ड और कोपीनको धारण करे। औषधि के समान प्राण रक्षणार्थ अन्न भक्षण करे, औषधि समान अन्न भक्षण करे, जिस समय जो मिले भक्षण करे। ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अप्रतिग्रह, सत्य इन सबका यत्न से रक्षण करे ॥ ३ ॥ परमहंस संन्यासियों को आसन शयनादि भूमि पर करना चाहिये और ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये; तैसे ही

यति को मट्टी की हांडी, तुम्बी पात्र, अथवा लकड़ी के कमंडलु को रखना चाहिये। काम, क्रोध, हर्ष, रोष, लोभ, मोह, दम्भ, दर्प, इच्छा, असूया, ममत्व और अहंकार आदि का यति त्याग करे। वर्षा ऋतु में सदाचार से एक स्थान पर रहे और आठ मास अकेला अथवा दो साथ रह कर फिरे॥ ४॥ इस प्रकार का अधिकार जिसको प्राप्त हुआ है वह विद्वान् उपनयन संस्कार के पश्चात् अथवा उससे भी प्रथम सब वस्तु का त्याग करे। पिता, पुत्र अग्नि, उपवीत, कर्म, स्त्री तथा और सब वस्तुओं का त्याग करे, और हाथ रूपी पात्र वा उदर रूपी पात्र को ही साथ रख कर ॐ हि ॐ हि ॐ हि इस उपनिषत् वाक्य का उच्चारण करते हुए भिक्षा मांगे। सच मुच यह हां ब्रह्मज्ञान है, जो अधिकारी इस प्रकार जानता है उसको ढाक की, बेल की पीपल की, अथवा गूलर की लकड़ी का दण्ड तथा मौंजी, मेखला, तथा यज्ञोपवीतका त्याग करना चाहिये, जो इस प्रकार का अधिकारी है वह ही श्रेष्ठ है। जिस पदको नित्य देवता देखा करते हैं अर्थात् इच्छा करते हैं वह ही विष्णु का परमधाम है। स्वर्ग में विस्तार को प्राप्त चक्षु हो उसके समान वह धाम है। इस प्रकार का जो विष्णु का परम धाम है उसको उत्तम अधिकारी ब्रह्म भाव में लीन होकर प्राप्त होता है, ये ही मोक्ष का उपदेश है, और वेद का उपदेश है॥ ५॥

॥ इति आरुणिक उपनिषत् समाप्त॥

मैत्रायणी उपनिषत् ।

[३८]

प्रथम प्रपाठक ।

बृहद्रथ नामक राजा ने अपने बड़े पुत्र को राजा के स्थान में स्थापित किया। राजा इस शरीर को अशाश्वत मानता था, वैराग्य उत्पन्न होने से वह अरण्य में गया। वहां जाकर उसने परम तपश्चर्या की। ऊँचे बाहु करके श्रीसूर्य नारायण के समक्ष खड़ा रहा। अन्त में सूर्य नारायण की कृपा से राजा के पास एक मुनि आया। वह मुनि धुंवें रहित अग्नि के समान अपने तेज से सर्व को दहन करता हो ऐसा तेजस्वी और आत्मज्ञानी था। उस मुनि का नाम भगवान् शाकायन्य था। उसने राजा से कहा "हे राजन्! खड़ा हो और वरदान मांग।" राजा ने मुनि को नमस्कार किया और कहा "हे भगवन्! मैं आत्मज्ञानी नहीं हूँ, आप तत्त्व ज्ञानी हैं, जो आप उपदेश करेंगे सो मैं एकाग्र चित्त होकर सुनूंगा" मुनि ने कहा "हे ऐक्ष्वाक! तू कोई अन्य वरदान जो तेरी इच्छा में आवे सो मांग क्योंकि तेरे इस शरीर से आत्मज्ञानकी प्राप्ति होना अशक्य है।" तब राजा मुनि का चरण स्पर्श करके इस प्रकार कहने लगा (१)

"हे भगवन्! यह शरीर, हड्डी, चमड़ी, स्नायु, मज्जा, मांस, वीर्य, रक्त, श्लेष्म और आंसु से दूषित है। वह विष्टा, मूत्र, वात,

पित्त और कफ से पूर्ण है दुर्गंधि युक्त है और सर्व प्रकार के सार से रहित है, इसमें भोग की कामना का क्या प्रयोजन है.? (२) यह शरीर काम, क्रोध, लोभ, भय, शोक, ईर्षा, इष्ट वस्तुओं का वियोग, अनिष्ट का संयोग, क्षुधा, तृषा, जरा, मृत्यु, रोग और शोकादिक से पूर्ण है। ऐसे शरीर में कामोपभोग से क्या फल होगा ? (३) इस लोक में सब नाशवंत है। डांस मच्छर और तृण के समान नाश को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार सबका मरण जन्म हुआ ही करता है। (४) कितने बड़े धनुर्धारी, चक्रवर्ती हो गये हैं; जैसे कि सुद्युम्न, भूरिद्युम्न इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वृद्धियाश्व, अश्वपति, शशबिन्दु, हरिश्चन्द्र, अंबरीप, स्वयाति, ययाति, अनरण्य, उक्षसेनोत्थ, मरुत्त, भरत आदिक राजाओं ने अपने बन्धु वर्ग के अर्थ अनेक प्रकार की लक्ष्मी सम्पादन की; और उसका त्याग करके इस लोकसे परलोकको चले गये (५) और भी लोग गंधर्व, असुर, यक्ष, राक्षस, भूत गण, पिशाच, सर्प और ग्रह के आदि निरोध (नाश) को देखते हैं इससे क्या ? (६) और बड़े महासागर भी सूख जाते हैं, पर्वतों का नाश हो जाता है। अचल पदार्थ हिल जाते हैं अथवा वृक्ष उखड़ जाते हैं, पृथ्वी डूब जाती है और देवताओं का स्वर्ग से पतन होता है। ऐसा जानने वाले मुझको इस संसारके काम और भोगों से क्या ? यदि इनका आश्रय किया जावे तो बारम्बार जन्म मरण ही देखने में आता है। आपको इस संसार से मेरा उद्धार करना चाहिये। जैसे अंधेरे कुए में मेंडक हो इस प्रकार

संसार में हमारी स्थिति है। हे भगवन्! आप मेरे आश्रय रूप है"। (७)

दूसरा प्रपाठक।

भगवान् शाकायन्य प्रसन्न होकर राजा से कहने लगे "हे महाराज बृहद्रथ! तू इक्ष्वाकु वंश के ध्वजशीर्ष का पुत्र है, तू कृत कृत्य है और 'मरुत' नाम से प्रसिद्ध है। आत्मा कैसा है, उसका मैं वर्णन करता हूँ, वह तू श्रवण कर [१] यह प्राणात्मा बाह्येन्द्रियों के रोधन करने रूप योग से ऊर्ध्व गति करने वाला, दुःख से रहित और तम का नाश करने वाला है। यह आत्मा जीव भाव में से छूट कर शिव भाव को प्राप्त होकर अपने तेज से प्रकाशित होता है। यह आत्मा अमृत रूप, अभय रूप और ब्रह्म रूप है [२] हे राजन्! भगवान् मैत्रेय ने ब्रह्म विद्या रूप उपनिषदों का जो हम से वर्णन किया है सो मैं तुझसे कहूंगा। पाप से रहित, उत्कृष्ट तेज वाले और ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी वालखिल्य नाम के मुनि कहलाते हैं वे एक समय प्रजापति के पास जाकर कहने लगे 'हे भगवन्! गाड़ी के समान यह शरीर अचेतन है, ऐसे शरीर को प्रेरणा करने वाला कौन है? सो आप हमसे कहो।' तब भगवान् ब्रह्मा ने कहा [३] 'जो ऊर्ध्व भाग में रहने वाला कहलाता है वह ही शुद्ध, पूत, शान्त, प्राण रहित, मन रहित, अनन्त, अक्षय, स्थिर, शाश्वत, अज, स्वतन्त्र और जो अपनी महिमा में रहता है, उससे यह शरीर चेतन समान होता

है, वह ही इस शरीर को प्रेरणा करने वाला है।' तब वालखिल्य कहने लगे 'हे भगवन्! इस इच्छा से रहित ने इस चेतन वाले शरीर को क्यों प्रेरणा की? इस शरीर को प्रेरणा करने वाला किस प्रकार है सो कहो' प्रजापति कहने लगे [४] 'यह आत्मा सूक्ष्म, अग्राह्य, अदृश्य, पुरुष संज्ञा वाला, अपने अंश से बुद्धि पूर्वक आवर्तन करने वाला, सुषुप्त को बुद्धि पूर्वक जाग्रत करने वाला, जो चेतन मात्र है उसका यह निश्चय करके अंश है। सब शरीरों में क्षेत्रज्ञ रूप से रहने वाला, संकल्प, निश्चय और अभिमान वाला, प्रजापति रूप और सर्वत्र द्रष्टा रूप है इस प्रकार के चेतन ने इस शरीर को चेतन वाला किया है, इसलिये वह प्रेरणा करने वाला कहलाता है।' तब मुनि ने कहा 'जो आत्मा सूक्ष्मादि स्वरूप वाला है, उसको अपने अंश से बर्ताव किस प्रकार संभवे?' भगवान् प्रजापति ने कहा [५] आद्य में मात्र प्रजापति था, उसको अकेले न सुहाया तब उसने आत्मा का ध्यान करके अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न की। उत्पन्न की हुई इस प्रजा को ज्ञान रहित प्राण से रहित और स्थाणु की समान स्थिर देखा इसलिये उसको ठीक नहीं लगा। प्रजापति ने विचार किया कि मैं उसमें प्रवेश करके उसको चेतना युक्त करूं, इसलिये उसने वायु रूप बनकर प्रजा में प्रवेश किया। उसने एक रूप से प्रवेश नहीं किया परन्तु पांच प्रकार का होकर प्रवेश किया। ये पांच वायु प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान हैं [६] जो ऊर्ध्व गति करता है सो प्राण है, जो नीचे गति करता है सो अपान

वायु है, जो स्थूल अन्न को अपान में योजता है और सब अंग में वायु को सम भाग में रखता है, उसको समान कहते हैं, जो जल को और अन्न को ऊपर नीचे ले जाता है, उसको उदान कहते हैं। जो नाड़ियों में व्याप्त होकर रहता है उसको व्यान कहते हैं [७] अन्तर्यामी अदृश्य प्राणवायु उपांशु—व्याप्त होकर रहने वाले प्राण वायु को अभिभव करता है। इन दोनों प्राण वायु के मध्य में जो मांस वत् उष्णता है, वह ही पुरुष रूप है, वही वैश्वानर अग्नि है; ऐसा अन्यत्र भी कहा है। उससे जिस अन्न का भक्षण किया जाता है, वह पाचन होता है। जब कान को दाब देते हैं तब जो घोष सुनने में आता है, वह उसका ही है। जब यह प्राणात्मा शरीर में से जाता है तब घोष सुना नहीं जाता। [८] यह आत्मा अपनेको मनोमय, प्राण, शरीर, बहु रूप, सत्य संकल्प और आत्मा पांच प्रकार से विभक्त करके हृदयाकाशमें रहता है। हृदयाकाश में रहने से वह मनोमयादिकों को अकृतार्थ मानने लगा। वह अपने पांच द्वारों को भेदन करके प्रगट होता है और पांच रश्मि रूप इन्द्रियों से विषयों का भक्षण करता है। इसमें बुद्धि इन्द्रियादि रश्मि रूप हैं, कर्मेन्द्रियां अश्व रूप हैं, शरीर रथ रूप है, मन सारथी रूप है और स्वभाव चाबुक रूप है। इस प्रकार प्रेरित हुआ शरीर चक्र के समान घूमा करता है। मरने के पीछे शरीर चेतन वाला नहीं दीखता इसलिये आत्मा को शरीर का प्रेरक कहा है [९] यह आत्मा शरीर के वश में हो इस प्रकार शुभाशुभ कर्म के फल से अभिभव को प्राप्त हुआ

हो इस प्रकार सब शरीरों में संचार करता है। 'अव्यक्त, सूक्ष्म, अदृश्य, अग्राह्य और ममता से रहित होने से सब प्रकार अवस्थाओं से रहित और कर्तृत्व भाव से रहित है तो भी कर्ता रूप हो ऐसे रहता है। [१०] आत्मा, शुद्ध, स्थिर, अचल, संग रहित, दुःख रहित, स्पृहा रहित द्रष्टा रूप रहता है, और अपने चरित्रों को भोगता हुआ गुण रूप वस्त्र से वेष्टित होकर रहता है [११]

तीसरा प्रपाठक।

वालखिल्य कहने लगे 'हे भगवन्! आप आत्मा की महिमा इस प्रकार कहते हैं तब शुभाशुभ कर्म फल से अभिभव को प्राप्त होने वाला और इसीसे सत् असत् योनियों को प्राप्त होने वाला आत्मा क्या कोई और है ? सुख दुःखादि द्वन्द्व वाली ऊंच नीच गति में यह कौन भ्रमण करता है ?' ऐसा प्रश्न सुनकर प्रजापति ने कहा ॥ १ ॥ "दूसरा भूतात्मा है जो शुभाशुभ कर्म के फल से अभिभव को प्राप्त होकर सत् असत् योनियों को प्राप्त होता है और सुख दुःखादि द्वन्द्व भाव से अभिभव को प्राप्त होकर ऊंच नीच गति में भ्रमण करता है। यह भूतात्मा इस प्रकार है:-भूत शब्द से पांच तन्मात्रायें कही हैं।

भूत शब्द से पांच महाभूत कहे जाते हैं, इन पंच महाभूतों के समुदाय को शरीर कहते हैं। यह जो शरीर है उसीको भूतात्मा कहते हैं। इसमें रहने वाला आत्मा कमल पर जलकी बिन्दु

समान रहता है। यह अपने प्राकृत गुणों से अभिभव को प्राप्त होता है इसी से मोह को प्राप्त होता है और मोह से आत्मा में रहने वाले कर्ता रूप प्रभु भगवान् को नहीं देखता, गुणों के समूह से तृप्त, पापयुक्त, अस्थिर, चंचल, लालसायुक्त, स्पृहावाला, व्यग्र, अभिमान को प्राप्त और इसीलिये 'यह वह और मेरा' इत्यादि भाव वाला होकर जिस प्रकार पक्षी जाल से वन्धन में पड़ता है इसी प्रकार अपने को आप ही बांधता है और किये हुए कर्मों का फल भोगता हुआ भ्रमता है॥ २॥ और अन्यत्र कहा है कि जो कर्ता है वह ही भूतात्मा है, वह इन्द्रियों से कर्मों का कराने वाला अन्तः पुरुष है। जैसे लोह पिंड अग्नि से आवृत होकर कर्ता से कूटा जाता है तब त्रिविध भाव को प्राप्त होता है। इस प्रकार अन्तः पुरुष से आवृत हुआ गुणों से दबा हुआ विविध भाव को प्राप्त होता है। चौरासी लक्ष योनियों में परिणत होने वाला त्रिगुणात्मक भूतात्मा होता है, यह ही उसके विविध प्रकार के रूप हैं। जैसे चक्र का चलाने वाला चक्र को प्रेरता है वैसे पुरुष इन गुणों का प्रेरक है। जैसे लोह पिंड को कूटने से उसमें रहने वाले अग्नि का पराभव नहीं होता वैसे ही पुरुष का अभिभव नहीं होता परन्तु भूतात्मा का संसर्ग के दोष से अभिभव होता है॥ ३॥ इस शरीर का उद्भव मैथुन से है, यह शरीर चेतन रहित है, नरक रूप है, मूत्र द्वार से बाहर निकलता है, हड्डियों से बनता है, मांस से वेष्टित होता है, चर्म से बंधा होता है और विष्ठा, मूत्र, पित्त, कफ,

मज्जा मेद, वसा और अन्य बहुत मलों से पूर्ण एक भंडार के समान है ॥ ४ ॥ संमोह, भय, विषाद, निद्रा, तन्द्रा, व्रण, जरा, शोक, क्षुधा, पिपासा, कृपणता, क्रोध नास्तिक्यता, अज्ञान, मत्सर, क्रूरता, मूढ़ता, निर्लज्जता शठता, उद्धतपना, असमता आदिक गुण यह भूतात्मा (शरीर) तामस गुण युक्त होने से होते हैं। तृष्णा, स्नेह, राग, लोभ, हिंसा रति और देखने में आसक्ति, ईर्षा, कामना, चंचलता, हरण करने की इच्छा, अर्थ प्राप्ति करना मित्र में अनुग्रह, परिग्रह, आश्रय, इन्द्रियों के अनिष्ट विषयों में द्वेष, इष्ट विषयों में प्रीति, इस प्रकार के अनेक राजस गुणों से भूतात्मा परिपूर्ण होता है इसलिये इन गुणों से अभि-भव को प्राप्त हुआ अनेक रूपों को प्राप्त होता है" ॥ ५ ॥

चौथा प्रपाठक ।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी वालखिल्य अति आश्चर्य को प्राप्त हो कहने लगे, "हे भगवन् ! आपको नमस्कार है, हमको उपदेश दीजिये। आपके सिवाय हमको अन्य आश्रय नहीं हैं। भूतात्माओं में से कौन पुरुष इस सबको त्याग कर सायुज्यता को प्राप्त होता है?" तब शाकायन्य कहने लगे [१] "जैसे महानदीमें विवर्त होता है तैसे इस भूतात्मा को पूर्वके कर्म होते हैं, जो अवश्य भोगने पड़ते हैं। जैसे समुद्र का किनारा अवश्य है तैसे भूतात्मा को मृत्यु की प्राप्ति अवश्य होती है। जैसे पशु रस्सी से बांधा जाता है तैसे शुभाशुभ कर्मों से यह भूतात्मा बंधन को प्राप्त होता है।

जेलखाने में पड़े हुए जन्तु की समान अस्वतन्त्र होता है। यम के राज्य में रहता हो इस प्रकार वह अत्यन्त भय युक्त होता है। जैसे कोई मदिरा पीकर उन्मत्त हुआ हो ऐसे सुख रूप मदिरा से उन्मत्त हो जाता है। दुष्टों से घिर गया हो ऐसे भटकता है। महा सर्पसे काटे हुए के समान विपत्ति से दुखी होता है। महा अन्धकार में हो ऐसे राग से अन्ध हो जाता है। जादू की समान मायामय होता है। स्वप्न की समान मिथ्या देखता है। केले के वृक्ष के समान सार रहित होता है। नट की समान क्षण क्षण में वेष बदलने वाला होता है। दीवार के ऊपर के चित्र के समान मिथ्या सुन्दर है। शब्द स्पर्शादि सब विषय अनर्थ रूप हैं। इनमें आसक्त भूतात्मा परम पद का स्मरण नहीं करता [२] इस भूतात्मा के तैर जाने का उपाय इस प्रकार है:—विद्या की प्राप्ति रूप धर्म का आचरण करना, अपने आश्रम के अनुसार रहना। वह अपने धर्म से ही सबका धारण करता है, अन्य सब (धर्म रूप) स्तम्भकी शाखाके समान है स्वयं ही ऊर्ध्व गतिको प्राप्त होते हैं यानी उनका धारण होता है। ऐसा न करने से वे सब नीचे गिरते हैं। यह स्वधर्म वेद में कहा हुआ है. इसका उल्लंघन करने वाला आश्रमी नहीं कहलाता। जो अपने आश्रम धर्म को आचरता है उसी को तपस्वी कहते हैं। जो तपस्वी नहीं होता उसको आत्म ध्यान की प्राप्ति अर्थात् कर्म शुद्धि नहीं होती। तप से सत्त्व की शुद्ध बुद्धिकी प्राप्ति होती है, सत्त्वसे मन यानी (प्रयत्न की) वृत्ति की प्राप्ति होती है, मन से आत्मा की प्राप्ति

होती हैं और आत्म साक्षात्कार होने से संसार चक्र से निवृत्त होता है [३] इन श्लोकों में कहा है कि जैसे लकड़ी बिना अग्नि शान्त यानी अपनी प्रकृति में लय हो जाती है तैसे वृत्ति का क्षय होने से चित्त अपनी मूल प्रकृति में लय हो जाता है (१) जिनका चित्त अपने कारण में लय हो जाता है उनका मन इन्द्रियों के विषयों में मोह को नहीं प्राप्त होता। उन सत्य कामियों के मन की वृत्तियां केवल प्रारब्ध के अनुसार उठती हैं इसलिये वे मिथ्या हैं (२) चित्त ही संसार है, प्रयत्न करके उसका शोधन करना चाहिये, क्योंकि जैसा चित्त होता है वैसा ही वह बन जाता है यह ही सनातन रहस्य है (३) चित्त की कृपा से शुभाशुभ कर्मों का नाश होता है, प्रसन्नात्मा आत्मा में रह कर ही अव्यय सुख की प्राप्ति करता है (४) प्राणी का चित्त जिस प्रकार विषयों में आसक्त होता है यदि ऐसा ही ब्रह्म में आसक्त हो तो कौन मनुष्य बन्धन से मुक्त न हो (५) मन दो प्रकार का है शुद्ध और अशुद्ध। कामना युक्त मन अशुद्ध और कामना रहित मन शुद्ध कहलाता है (६) मन को लय और विक्षेप से रहित और भली प्रकार स्थिर करे, जब मन अमन बन जाता है तब परम पद की प्राप्ति होती है (७) जब तक मन के संकल्पों का क्षय न हो तब तक मन को हृदय में रोका करे, यह ही ज्ञान और मोक्ष है अन्य सब ग्रन्थ का विस्तार रूप है (८) समाधि से जिसका मल दूर हो जाता है, ऐसे मन को आत्मा में युक्त करने से जो सुख होता है उसका वर्णन वाणी से करना अशक्य है,

वह स्वयं अन्तः करणसे ग्राह्य है (९) जैसे जलमें जल, अग्निमें अग्नि और आकाश में आकाश एकत्र हुआ देखने में नहीं आता इसी प्रकार जब चित्त का लय होता है तब पुरुष मोक्ष भाव को प्राप्त होता है (१०) मनुष्य का मन ही बंधन और मोक्ष में कारण है, जब मन विषयों में आसक्त होता है तब बंधन को प्राप्त होता है और जब विषयों से रहित होता है तब मुक्त होता है। (११)

कौत्सायनि ने ब्रह्म की इस प्रकार स्तुति की है:—तू ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, वरुण, वायु, इन्द्र और चन्द्र रूप है। (१२) तू मनु, यम, पृथ्वी, अच्युत स्वार्थ तथा स्वाभाविक अर्थ में और बहुत रूप से स्वर्ग में रहता है (१३) हे विश्वेश्वर! तुझे नमस्कार है, तू विश्वात्मा, विश्व के कर्म करने वाला, विश्व का भोक्ता, विश्व की माया वाला विश्व क्रीड़ा-प्रिय और व्यापक है । (१४) शांतात्मा, ऐसे तुझे नमस्कार है, अत्यंत गुह्य ऐसे तुझे नमस्कार है। अचिंत्य, अप्रमेय, आदि और अंत से रहित ऐसे तुझे नमस्कार है। (१५) [४]

प्रथम केवल तम ही था यह तम पुरुष से प्रेरित होकर विषमता को प्राप्त होता है इससे रज रूप होता है। इस रजस में प्रेरणा होती है तब विषम भाव को प्राप्त होता है यह तम का रूप है। इस तम में प्रेरणा होने से उसमें से सत्व रूप प्रगट होता है, इस सत्व गुण में जब प्रेरणा की जाती है तब वह अंश

रूप से प्रगट होता है। यह अंश चेतन मात्र, सब पुरुषों में क्षेत्रज्ञ रूप और संकल्प, प्रयास, अभिमान रूप प्रजापति है। उसका प्रथम का शरीर इस प्रकार है:—ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र। जो राजस अंश रूप है सो ब्रह्मा, तमका अंश रूप रुद्र, और सत्त्व का अंश रूप विष्णु, इस प्रकार एक प्रजापति तीन रूप से, आठ रूप से, एकादश रूप से, द्वादश रूप से और अनेक रूप से हुआ है जो प्रगट हुए सब प्राणियों में रहता है, वह सब प्राणियों का आधार रूप और अधिपति रूप है। यह आत्मा भीतर और बाहर सब स्थानों में व्यापक है। [५]

पांचवां प्रपाठक।

जो प्रथम एक था सो दो प्रकार का हुआ, प्राण और आदित्य। ये दोनों पांच प्रकार के होकर रात्रि दिन, भीतर और बाहर सर्वत्र व्याप रहे हैं। आदित्य बहिरात्मा है अन्तरात्मा प्राण है अन्तरात्मा की गति से बहिरात्मा का अनुमान होता है। गति क्या है सो कहते हैं। जो कोई विद्वान् है, जिसका पाप नाश हो गया है, जो श्रेष्ठ है, जो शुद्ध मन वाला है, ब्रह्म में निष्ठा वाला है और जिसने चक्षु बंद किये हैं ऐसा, अन्तरात्मा की गति से बहिरात्मा का स्थूल वस्तु का अनुमान बांधता है, इसको गति कहते हैं। जो इस आदित्य में हिरण्यमय पुरुष रूपसे मेरा दर्शन करता है वह हृदय कमल ही में रह कर, हिरण्यगर्भ के समान भोगोंको

भोगता है। (१) जो अन्तरात्मा हृदय कमल में रहता है और अन्न का भक्षण करता है यानी भोग भोगता है, सो ही अग्नि रूप है स्वर्ग में रहता है, सौर रूप है, कालरूप है अदृश्य रूप हैं और सब प्राणियों के अन्न का भक्षण करता है। कमल किसको कहते हैं और वह क्या है ? जो आकाश रूप है सो कमल है, इसकी ये चार दिशा और उपदिशा हैं। यही अग्नि प्राचीन है, प्राण और आदित्य इससे इधर है। व्याहृति के गायत्री युक्त ॐकार अक्षर से इनकी उपासना करे। (२) ब्रह्म के दो स्वरूप हैं मूर्त और अमूर्त। जो मूर्त स्वरूप है सो असत्य है, जो अमूर्त है वही सत्य है, वही ब्रह्म है। जो ब्रह्म है वही ज्योति रूप है जो ज्योति रूप है वही आदित्य रूप है और वही ॐकार रूप है। उसने अपने आत्मा को तीन प्रकार से व्यक्त किया है। इसलिये ॐकार तीन मात्रा वाला है इन मात्राओंसे सब जगत् व्याप्त है। आदित्य का ॐकार रूप से ध्यान करे और उसमें आत्माको लगावे (३) और कहा है जो उद्गीथ है सो ही प्रणव है, प्रणव ही उद्गीथ है आदित्य और उद्गीथ यह ही प्रणव है। इस उद्गीथको प्रणवरूप प्रेरक, नाम और रूप वाला, निद्रा रहित और जरा रहित, मृत्यु से रहित और पांच प्रकार का जाने। आकाश में उसकी स्थिति है। ऊर्ध्व मूल वाला, ब्रह्म तक शाखा वाला, आकाश, वायु, अग्नि, उदक और भूमि आदि रूप, एक रूप होकर सर्वत्र व्यापक और ब्रह्म रूप है। यह आदित्य ॐकार के विषे है। इससे ॐकार की निरंतर उपासना करे। इसको रस रूप जो जानता

है कि यह अक्षर पुण्य रूप है, इस प्रकार जान कर जिसकी जो कामना होती है वह पूर्ण होती है (४) और कहा है कि इस प्रजापतिका ॐकार इस अक्षरसे नाद वाला शरीर है, स्त्री पुमान् और नपुंसक से लिंग वाला, अग्नि वायु और आदित्यसे प्रकाश वाला विष्णु और रुद्रसे अधिपति रूप, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनी से मुख रूप, ऋक् यजुः और साम से विज्ञान रूप, भू भुवः और स्वः से लोक वाला, भूत भविष्य और वर्तमान से काल वाला और प्राण, अग्नि और सूर्य से प्रताप वाला है। अन्न जल और चन्द्र से पोषण करने वाला, और मन बुद्धि अहंकार से चेतन वाला, प्राण अपान और व्यान से प्राण वाला है। कितनेक कहते हैं कि प्रजापति ऐसा कहते हैं कि अमुक शरीर का मैं त्याग करता हूँ इसलिये प्रस्तोता रूप से वह शरीर धारण किया हुआ है। ये ही, हे सत्य काम, पर और अपर रूप है जो ॐकार रूप है। (५) यह सब सत्य रूप से था, प्रजापति तपश्चर्या करके भूर्भुवः और स्वः बोले। यह प्रजापति का स्थूल अथवा लोक वाला शरीर है। स्वः यह प्रजापति का मस्तक है, भूः नाभि रूप और भुवः पाद रूप है। इस व्यापक पुरुष के चक्षु आदित्य रूप हैं ॐकार की मात्रायें महत् अहंकार में रहती हैं। चक्षु से यह प्रजापति मात्रा में संचार करता है। सत्य ही चक्षु है इस चक्षु में रहने वाला पुरुष सब विषयों में व्यक्त होता है इसलिये भूर्भुवः और स्वः रूप से उसकी उपासना करे। अन्न ही प्रजापति और विश्वात्मा रूप है।

आदित्य की समान इस विश्वात्मा की उपासना होती है यह शरीर प्रजापति और विश्व रूप है और सर्वत्र रहता है इस शरीर में सब और सब में यह शरीर रहता है। इसलिये इस प्रजापति के शरीर की उपासना करे। (६) तत्सवितुर्वरेण्यं इस चरण में सविता को आदित्य भगवान् समझो ब्रह्मवादी कहते हैं कि आत्मा की कामना से याचना करने को यह कहा है। भर्गो देवस्य धीमहि इस चरण के लिये ब्रह्मवादी कहते हैं कि हम किस का चिन्तवन करते हैं कि जो सविता रूप से स्थित कर रहा हैं उसके तेज को। धियो योनः प्रचोदयात् इस चरण से ब्रह्मवादी कहते हैं कि हमारी बुद्धि के विषे तुम प्रेरणा करो तारक रूप, चक्षु रूप, इस आदित्य में जो भर्ग रहता है, उसकी हम उपासना करते हैं, कान्ति से जिसकी गति सर्वत्र है, उसको भर्ग कहते हैं अथवा जो सब को तपावे उसको भर्ग कहते हैं। भर्ग यह ही रुद्र है। ब्रह्मवादी कहते हैं कि भर्ग अर्थात् जो सर्व लोकों को प्रकशता है वह भर्ग, भूतमात्र को जो रंजन करता है वह भर्ग है। इस प्रजा का जिसमें गमन होने के पीछे आना नहीं होता, इस प्रकार रक्षा करने वाला होने से उसको भर्ग कहते हैं। शत्रु को तपाने वाला होने से उसको सूर्य, उत्पन्न करने से सविता, दान अर्थात् इच्छा पूर्ण करने से आदित्य, पवित्र करने वाला होने से पावमान और सुषुप्त को उठाने वाला होने से आदित्य कहते हैं। सत् होने से आत्मा अमृत रूप कह-

लाता है। सो ही आत्मा मनन करने वाला, गमन वाला, खिसकने वाला, आनन्द प्राप्त करने वाला, कर्ता, वक्ता, स्वाद लेने वाला, सूंघने वाला, स्पर्श करने वाला और सब के शरीर में रहता है। जब आत्मा में द्वैत ज्ञान होता है सब वह सुनता है देखता है सूंघता है चखता है और स्पर्श करता है और इस प्रकार आत्मा सब जानता है जब अद्वैत भान हो जाता है तब आत्मा कार्य कारण से मुक्त है, वर्णन न हो ऐसा है, उपमा से रहित है, उसकी वाचा क्या है? (७) यह आत्मा ईशान, शंभु रूप, भव रूप, रुद्र रूप, प्रजापति रूप, विश्व कर्ता रूप, हिरण्य-गर्भ, सत्य, प्राण, हंस, शांत, विष्णु, नारायण, अर्क, सविता, धाता, साम्राट् इन्द्र और इन्दु रूप से है। अग्नि से आवृत्त होकर वही प्रकाशता है; सहस्राक्षि रूप से, हिरण्य-मय रूप से और आनन्द रूप से उसे जानना चाहिये और ध्यान करना चाहिये। सब प्राणी मात्र को अभय देकर मनुष्य को अरण्य में जाकर सब इन्द्रियों के विषयों को अपने शरीर से बाहर निकाले। इसप्रकार करनेसे परमात्माका साक्षात्कार होता है। वह विश्वरूप है, पापोंका हरण करनेवाला, जातवेदस्, अंतिम गतिरूप, ज्योति, एक, प्रकाश रूप, सहस्र रश्मि रूप, अनेक रूप से स्थिति कर्ता और प्रजा का प्राण रूप है, यह ही सूर्य उदय को प्राप्त होता है।

॥ इति मैत्रायणी उपनिषत् समाप्त ॥

योग शिखोपनिषत् ।

[३६]

'सब जीव सुख दुःख और मायाजाल से घिरे हुए हैं, हे शंकर, उनकी मुक्ति किस प्रकार होगी, हे देव, कृपा करके कहिये ॥ १ ॥ सर्वसिद्धि करने वाला, मायाजाल का काटने वाला, जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि का नाश करने वाला और सुख देने वाला कोई मार्ग कहिये' ॥ २ ॥ इस प्रकार हिरण्य-गर्भ ने पूछा तब महेश्वर ने कहा, 'कैवल्य परमपद नाना मार्गों से प्राप्त होना कठिन है ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मा, वह सिद्धि मार्ग से प्राप्त होता है अन्य मार्ग से नहीं; शास्त्रजाल में उनकी बुद्धि फँसी हुई है इसलिये वे मोह को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ स्वात्म प्रकाश रूप, कला रहित, मल रहित, शान्त, सबसे परे और उपद्रव रहित ऐसा कैवल्यपद शास्त्र द्वारा कैसे प्रकाशित होगा ॥ ५ ॥ वह जीवरूप से पुण्य-पाप के फल द्वारा आवृत्त है। परमात्पद नित्य है, वह तत्त्वातीत है सर्व भावों से परे है, ज्ञान रूप और निरंजन है। ऐसा कैवल्य पद, जीव भाव को कैसे प्राप्त हुआ, हे देव यह कृपा करके कहिये ॥ ६--७ ॥ अपने में (कैवल्यपद में) वायु के समान स्फुरण हुआ, यही अहंकार उत्पन्न हुआ; तथा पंच भूतात्मक सप्त धातुओं (रक्तमांस अस्थि आदि) से युक्त और गुणात्मक ऐसा देह उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥ सुख दुःख से

और जीव भाव से युक्त होने से उस विशुद्ध परमात्मा में ही वे जीव कहलाते हैं ॥ ९ ॥ काम, क्रोध, भय, मोह, लोभ, चंचलता, जन्म, मृत्यु, कृपणता, शोक, आलस्य भूख, प्यास ॥ १० ॥ तृष्णा, लज्जा, भय, दुःख, विषाद और हर्ष इन दोषों से मुक्त होने पर जीव शिव कहलाता है ॥ ११ ॥ इसलिये दोष नाश करने के लिये मैं तुझसे उपाय कहता हूँ। कोई ज्ञान को उपाय रूप कहते हैं परन्तु केवल ज्ञान से सिद्धि नहीं होती ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मा, इस संसार में योग रहित ज्ञान किस प्रकार मोक्ष देने वाला होगा और ज्ञान रहित योग भी मोक्ष के लिये असमर्थ है ॥ १३ ॥ इसलिये मुमुक्षु ज्ञान और योग का दृढ अभ्यास करे। प्रथम ज्ञान के स्वरूप को जाने (क्योंकि) वही एक ज्ञान का साधन है ॥ १४ ॥ वैसे ही मुमुक्षु विचार करे कि अज्ञान किस प्रकार का है। जिसने अपना स्वरूप कैवल्य परमपद जान लिया है ॥ १५ ॥ वह काम, क्रोध, भय आदि दोषों से रहित है। सर्व दोषों से युक्त जीव ज्ञान से किस तरह मुक्त हो जायगा ? ॥ १६ ॥ (यदि कहो कि) आत्मरूप ज्ञान जब पूर्ण और व्यापक है तब काम क्रोध, आदि दोष भी स्वरूप से भिन्न नहीं हैं ॥ १७ ॥ फिर उसके लिये विधि क्यों और निषेध भी क्यों ? संसार भ्रम से रहित विवेकी मुक्त है ॥१८॥ (तो) हे ब्रह्मन, वास्तविक वह परिपूर्ण स्वरूप सकल और निष्कल है; और पूर्ण होने से वह ही ॥ १९ ॥ भेदभाव का स्फुरण होने से निष्कल, निर्मल, प्रत्यक्ष परिपूर्ण तथा आकाश

के समान व्यापक होते हुए भी उत्पत्ति स्थिति संहार की गति के ज्ञान से रहित हुआ संसार भ्रम को प्राप्त होता है। इस रूप को प्राप्त हुआ वह विद्या को छोड़-कर हे महावाहो, किस प्रकार मोह सागर में बार बार डूबता रहता है और संसारी लोगों के समान सुख दुःख मोह में गोते खाता हैं॥ २०-२१-२२ ॥ यदि ज्ञानी भी इसी प्रकार वासना से युक्त ही रहे तो दोनों में विशेष (भेद) क्या रहा संसार भावना दोनों की एक सी ही रही ॥२३॥ इस प्रकार के जानने (ही) को यदि ज्ञानं कहे तो अज्ञान और कैसा होता है ? (इसलिये) कोई ज्ञाननिष्ठ विरक्त धर्मज्ञ और विजितेन्द्रिय भी हो ॥ २४ ॥ देह के योग के विना हे ब्रह्मन् ! वह मोक्ष को प्राप्त नहीं होता।

देही दो प्रकार के होते हैं; एक अपक्व और दूसरे परिपक्व ॥२५॥ योग रहित देही अपक्व है और योग किये हुए पक्व है (क्योंकि) योगाग्नि से उसका सर्व देह अजड़ यानी चेतन और शोक रहित हो जाता है ॥ २६ ॥ पृथ्वी का अंश जिसमें अधिक है उसको जड़ कहते हैं ऐसा देह अपक्व और दुःखदायी होता है। ध्यानमें बैठा हुआ भी वह इन्द्रियों से व्याकुल होता हैं॥ २७ ॥ उनको बहुत २ रोकने पर, शीत, उष्ण, सुख, दुःख आदि मानसिक व्याधियों से व्याकुल होता है॥ २८ ॥ और भी जब नाना प्रकार के जीव द्वारा, शस्त्र अग्नि जल या पवन द्वारा शरीर को पीड़ा पहुंचती है, तब मन भी उस समय क्षोभको प्राप्त होता है ॥२९॥ वैसे ही प्राण निकलने के समय वायु का क्षोभ होता है और

इस करके सैकड़ों दुःख से युक्त होकर चित्त क्षोभ को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ देह छूटने के समय चित्त जो जो भावना करेगा उस उस गति को प्राप्त होगा—यही जन्म का कारण है ॥ ३१ ॥ देह का नाश होने पर कौनसा जन्म होगा यह मनुष्य नहीं जानते इसलिये जीवका ज्ञान और वैराग्य केवल श्रम ही है ॥ ३२ ॥ जो चींटी भी काट जाय तो ध्यान से चलित हो जाता है, उसको मरण समय अनेक विच्छू काटते हैं तब किस प्रकार सुखी रह सकता है ॥ ३३ ॥ इसलिये, मिथ्या तर्क से युक्त मूढ़ मनुष्य इस बात को नहीं जानते कि जिसका अहंकार नष्ट हुआ है उसका ॥ ३४ ॥ देह भी नष्ट होता है फिर उसको रोग, जल, अग्नि, शस्त्र घात आदि की पीड़ा किस प्रकार होगी ॥ ३५ ॥ जब २ क्षीण हुआ अहंकार पुनः पुष्ट होजाता है, तब २ रोग आदि प्रवृत्त होकर इस द्वारा उसका नाश करते हैं ॥ ३६ ॥ कारण के बिना कार्य कभी भी विद्यमान नहीं होता वैसे ही बिना अहंकार के देह में दुःख कैसे हो ॥ ३७ ॥ शरीर ने सबको जीत लिया है और योगियों ने शरीर को जीत लिया है वह सुख दुःख आदि फल उनको किस प्रकार प्रदान कर सकते हैं ॥ ३८ ॥ जिसने इन्द्रिय, मन, बुद्धि और काम क्रोधादि जीत लिये उसने सब कुछ जीत लिया इसको किसी से भी बाधा नहीं पहुंचती ॥ ३९ ॥ जिसने महाभूत और तत्त्वों का क्रम से संहार किया है और सप्त धातु वाला देह योगाग्नि द्वारा धीरे २ जला दिया है ॥ ४० ॥ नाना शक्ति युक्त, भेद बंध से विमुक्त महाबल शाली ऐसे

श्रेष्ठ योगी के देहको देवता भी नहीं जान सकते ॥ ४१ ॥ उसका देह आकाश के समान है वा आकाश से भी निर्मल हैं। उसको सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म स्थूल से स्थूल और जड़ से जड़ समझो ॥ ४२ ॥ क्योंकि योगीन्द्र अपने इच्छानुसार रूप धारण करके स्वतंत्र अजर और अमर होकर तीनों लोकों में जहां तहां लीला से क्रीड़ा करता है ॥ ४३ ॥ विजितेन्द्रिय और अचिंत्य शक्ति वाला योगी नाना प्रकार के रूप धारण कर सकता है और पुनः अपनी इच्छा से उनका संहार भी कर सकता है ॥ ४४ ॥ योगवल के होने से योगी फिर मृत्यु को प्राप्त नहीं होता; हठ (योग) से वह मरा हुआ ही है; मरे हुए का और मरण कहां से होगा ॥ ४५ ॥ जहां सब मरे हुए हैं वहां यह भली प्रकार जीता है और जहां मूढ़ जीते हैं वहां यह मरा हुआ है ॥ ४६ ॥ उसको कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है और कुछ कर्म करे तो उसको उसका लेप भी नहीं होता। वह जीवन्मुक्त है सदा स्वच्छ है और सर्व दोषोंसे रहित है ॥ ४७ ॥ और जो ज्ञानी तथा विरक्त होते हुए देह से सदा जीते हुए हैं ऐसे वे मांस पिंड वाले कुदेही किस प्रकार योगी के समान हो सकते हैं ॥ ४८ ॥ देह छूटने पर ज्ञानियों को पुण्य पाप का फल मिलता है ऐसा हो तो उसका भोग होने पर ज्ञानी को पुनः जन्म मिलेगा ॥ ४९ ॥ पश्चात् पुण्य से उसको सिद्ध की संगति होती है, फिर सिद्ध की कृपा से वह योगी होता है अन्यथा नहीं ॥ ५० ॥ तब ही संसार (संसरण) नष्ट होता है—शिवभाषित मिथ्या नहीं

होता—हे ब्रह्मा, योग रहित ज्ञान मोक्षदायी नहीं होता ॥ ५१ ॥ विना ज्ञान के योग की सिद्धि कभी नहीं होती; ज्ञान से अनेक जन्मों के पश्चात् योग की प्राप्ति होती है ॥ ५२ ॥ परन्तु योग से एक ही जन्म में ज्ञान हो जाता है इसलिये मोक्ष देने वाला योग को छोड़कर और कोई मार्ग नहीं है ॥ ५३ ॥ ज्ञान का वहुत काल तक विचार करके मैं मुक्त हूँ ऐसी भावना करता है। भावना करने से क्या यह तत्काल मुक्त हो जाता है ॥ ५४ ॥ अन्य सैकड़ों जन्मों के पश्चात् योग ही से वह मुक्त होता है; इस प्रकार योग से वारम्वार जन्म मरण नहीं होता ॥ ५५ ॥ प्राण और अपान के योग से चन्द्र सूर्य की एकता होवे और सप्तधातु वाला देह उस अग्नि द्वारा परिपूर्ण होवे ॥ ५६ ॥ तव उसकी सव व्याधियां जल अग्नि, शस्त्र आदि की वाधा नष्ट हो जाती हैं तव यह देही परम आकाशरूप रह जाता है ॥ ५७ ॥ अधिक क्या कहना, उसका मृत्यु ही नहीं होता; जले हुए कपूर के समान वह देही हो ऐसा लोक में प्रतीत होता है ॥ ५८ ॥ सव जीवों के चित्त, प्राण से वंधे हुए हैं। जैसे रस्सी से पक्षी वंधा हुआ होता है; मन भी वैसा ही वंधा हुआ है ॥ ५९ ॥ नाना प्रकार के विचारों से भी मन जीता नहीं जाता; इसलिये उसको जीतने का उपाय एक प्राण ही है अन्य कोई उपाय नहीं है ॥ ६० ॥

सिद्धि योग के विना तर्क से, वाद विवाद से, शास्त्रों से युक्तियों से, मंत्र और औषधियों से, हे ब्रह्मा, प्राण वश नहीं होता ॥ ६१ ॥ उस उपाय को (सिद्धि योग को) न जानकर जो

योग मार्ग में प्रवृत्त होता है उसको अल्प ज्ञान के कारण अधिक क्लेश ही होता है ॥ ६२ ॥ जो पवन को न जीतते हुए मोह से योगियों के योग की इच्छा करता है वह (मानो) कच्चे घड़े पर चढ़ कर समुद्र को पार करना चाहता है ॥ ६३ ॥ जिस साधक के जीवित रहते हुए प्राण भीतर विलीन होगया हो और पिंड (शरीर) नहीं गिरे, उसका चित्त दोषों से रहित होजाता है ॥ ६४ ॥ चित्त शुद्ध होने पर उसका आत्मज्ञान प्रकाशित होता है, इस प्रकार हे ब्रह्मा योग से एक ही जन्म में ज्ञान होजाता है ॥ ६५ ॥ इसलिये प्रथम साधक उस योग का सदा अभ्यास करे । मुमुक्षुओं को भी मोक्ष के लिये प्राण का जय करना चाहिये ॥ ६६ ॥ क्योंकि योग से बढ़ कर पुण्य नहीं है, योग से बढ़ कर कल्याण नहीं है, योग से अधिक कुछ सूक्ष्म नहीं है योग से बढ़कर कुछ भी नहीं है ॥ ६७ ॥ प्राण और अपानकी एकता, अपने रज और वीर्य की एकता, सूर्य और चन्द्रमा का संयोग, जीवात्मा और परमात्मा का संयोग ॥ ६८ ॥ इस प्रकार के द्वंद्वों का संयोग योग कहलाता है । अब मैं सब ज्ञानों में उत्तम योग शिखा का वर्णन करता हूँ ॥ ६९ ॥

जब मंत्र का ध्यान किया जाता है तब शरीर में कंप होता है, इसलिये पद्मासन अथवा अन्य आसन, जिसमें रुचि हो, बांध कर ॥ ७० ॥ नासा के अग्रभाग में दृष्टि लगा कर हाथ और पैरों को मिला कर, मन को सब तरफ से रोकते हुए वहां ॐकार का चिंतन (ध्यान) करे ॥ ७१ ॥ प्राज्ञ हमेशा परमेश्वर को हृदय

में रख कर ध्यान करे, एक स्तम्भ वाले नौ द्वार वाले तीन कड़ी वाले और पांच देवता वाले ॥ ७२ ॥ ऐसे शरीर में बुद्धिमान् लक्ष्य न दें। आदित्य मंडल के आकार वाला किरणों की ज्वाला से युक्त ॥ ७३ ॥ उस (ॐकार) के मध्य में दीपशिखा (दीपक की वत्ती) के समान अग्नि को प्रज्वलित करे। जितना दीपशिखा का परिमाण है उतने परिमाण की ज्योति का परमेश्वरका ध्यान करे ॥ ७४ ॥ योगी लोग, पश्चात् योगाभ्यास से सूर्य का भेदन करते हैं, सुषुम्ना के परमशुभ्र द्वितीय द्वार से ॥ ७५ ॥ कपाल संपुट का पान करके उससे उस परमपद को देखता है। परन्तु जीव आलस से या प्रमाद से ध्यान नहीं करता ॥ ७६ ॥ यदि तीनों काल कपाल संपुट का पान करे तो महान् पुण्य को प्राप्त करता है, इस पुण्य को प्राप्त करके मैंने संक्षेप से कहा है ॥ ७७ ॥ योग का लाभ होने पर प्रसन्न हुए परमेश्वर को जानता है, तब उसके सहस्र जन्मों का पाप क्षीण होजाता है ॥ ७८ ॥ और योग से संसार के संपूर्ण उच्छेद [नाश] को देखता है।

अब मैं योगाभ्यास के लक्षण कहता हूँ ॥ ७९ ॥ जिसने प्राण जय कर लिया है ऐसे गुरु का सदा सेवन करे गुरु के वचन प्रसाद से बुद्धिमान प्राण का जय करे ॥ ८० ॥ एक वालिश्त लम्बा और चार अंगुल चौड़ा, शुभ्र और कोमल, लपेटने के वस्त्र के समान (कन्द होता है) ॥ ८१ ॥ (उसमें) प्राण को दृढ़ता पूर्वक रोक कर शक्ति चालन युक्ति से आठ वार कुण्डलाकार होकर रही हुई कुण्डली को सीधी करे ॥ ८२ ॥ गुदा का संकोच

करते हुए कुण्डली को चलावे, तब मृत्यु के चक्र में भी फंसे हुए योगी को भी मृत्यु का भय कहां ॥ ८३ ॥ यह परम गुह्य मैंने तुमसे कहा है—(और) वज्रासन लगा कर नित्य ऊर्ध्व आकुंचन करने का अभ्यास करे ॥ ८४ ॥ वायु प्रज्वलित किये हुए अग्नि से रात दिन कुण्डली को तपावे। अग्नि से संतप्त हुई, तीनों लोकों को मोहने वाली वह जीव शक्ति ॥ ८५ ॥ मेरुदण्ड में सुषुम्ना के मुख से प्रवेश करती हुई अग्नि युक्त वायु से ब्रह्म-ग्रन्थि का भेदन करती है ॥ ८६ ॥ पश्चात् विष्णुग्रन्थि का भेदन करके रुद्र ग्रन्थि में स्थित रहती है, तब वारम्वार पूरक करते हुए दृढ़ कुम्भक युक्त ॥ ८७ ॥ सूर्य भेदन उज्जाई शीतली और भस्रा इन चार कुम्भकों का अभ्यास करें ॥ ८८ ॥ तीन बंधों से युक्त ये कुम्भक केवल कुम्भक को प्राप्त कराते हैं। अब इनके लक्षण संक्षेप से भली प्रकार कहता हूँ ॥ ८९ ॥ निर्जन देश में अकेला जाकर हलका भोजन करता हुआ, धैर्य पूर्वक, संसार रोग को निवारण करने वाली अद्वितीय औषधि के समान जो परमार्थ तत्त्व रूप और अमृतरूप है ऐसा प्राण जय करे ॥ ९० ॥ योगाभ्यासी सूर्य नाड़ी से वायु का आकर्षण कर, विधिवत् कुम्भक करके चन्द्रनाड़ी से रेचन करे ॥ ९१ ॥ यह उदर के रोगों को और कृमिदोष को दूर करता है। ऊपर लिखा हुआ सूर्य भेदन वार२ करना चाहिये ॥ ९२ ॥ दोनों नाड़ियों से वायु आकर्षण करके बुद्धिमान उसको कुण्डली के बाजू में ले जाकर उदरमें धारण करे फिर बुद्धिमान इडा से रेचन करे ॥ ९३ ॥ कंठ के कफ

आदि दोषों को दूर करने वाला, शरीर की अग्नि बढ़ाने वाला, नाड़ी जल का नाश करने वाला और धातु गत दोषों को दूर करने वाला ॥ ९४ ॥ यह उज्जाई कुंभक चलते बैठते हर हालत में करना चाहिये। मुख से वायु का ग्रहण करके नाक से रेचन करे ॥ ९५ ॥ यह शीतलीकरण पित्त और क्षुधातृषा को दूर करता है। छाती से लुहार की धोंकनी के समान वेगपूर्वक ॥ ९६ ॥ देह को श्रम मालूम होने तक बुद्धिमान वायु का रेचक पूरक करे। जब श्रम प्रतीत होने लगे तब सूर्य से पूरक करे ॥ ९७ ॥ कण्ठ का संकोच करके फिर चन्द्र से रेचन करे। वात, पित्त, कफ का नाश करने वाला शरीर की अग्नि को बढ़ाने वाला ॥९८॥ कुंडली का बोधन कराने वाला मुख के दोषों को दूर करने वाला सुखकर और शुभ कर ब्रह्मनाड़ी के मुख में स्थित कफ आदि की रुकावटें दूर करने वाला ॥ ९९ ॥ भली प्रकार से बंध सहित करने से तीनों ग्रन्थियों का भेदन करने वाला यह भस्त्रिका कुंभक विशेष करके करना चाहिये ॥ १०० ॥

अब यथा क्रम से तीनों बंधों को कहता हूँ। उनके नित्य करनेसे वायुका जय होता है ॥१०१॥ चारों प्रकारके कुंभक करते समय तीनों बंध करना चाहिये (वह किसप्रकार करना) सो मैं कहता हूँ ॥१०२॥ पहिला मूलबंध दूसरा उड्डियानबंध और तीसरा जालंधर बंध है। उनके लक्षण कहता हूँ ॥ १०३ ॥ एडी से गुदा को दबा कर उसका (गुदा का) बल से बारंबार आकुंचन करे, जिस करके वायु ऊपर चला जाय ॥ १०४ ॥ प्राण और अपान, तथा

नाद और बिंदु मूल बंध से एकता को प्राप्त होकर संसिद्धिको देता है इसमें कुछ भी संदेह नहीं ॥ १०५ ॥ कुंभक के अन्त में और रेचक के आदि में उड्डियान बंध करना चाहिये जिससे प्राण सुषुम्ना में उड़ता है (गमन करता है) ॥ १०६ ॥ इसीलिये योगी इस को उड्डियान कहते हैं। गुरु का कथन है कि उड्डियान का सदा स्वभाविकता से ॥ १०७ ॥ आलस रहित अभ्यास करने से वृद्ध भी तरुण होजाता है। नाभी के ऊपर और नीचे भी प्रयत्न से तान रखे यानीं खिंचाव रखे ॥१०८॥ जो इसका छः मास अभ्यास करे वह मृत्यु को जीत लेता है इसमें संशय नहीं है। पूरक के अन्त में जालंधर नामक बंध करना चाहिये ॥ १०९ ॥ इसमें कंठ का संकोच किया जाने से यह वायु के मार्ग को रोकने वाला है। कंठ का आकुंचन करके इच्छा से (प्रयत्न से) दृढ़ता पूर्वक हृदय में स्थापन करे ॥ ११० ॥ यह जालंधर बंध अमृत की प्राप्ति कराने वाला है। नीचे से जरा आकुंचन करते हुए कंठ के संकोचन करने से ॥ १११ ॥ तथा पश्चिमतान से प्राण ब्रह्मनाड़ी में जाने लगता है। वज्रासन लगाये हुए कुण्डली को चालन कर, योगी ॥ ११२ ॥ पश्चात् भस्त्रा को करे और कुण्डलनी को जगावे। जैसे गरम लोहे की छड़ से बांस की गांठों का भेदन होता है ॥ ११३ ॥ इसी प्रकार मेरुदंड में प्राण से ग्रन्थियों का भेदन होता है। तब चींटी लगने के समान वहां खुजली होती है ॥ ११४ ॥ सदा अभ्यास करने से इस प्रकार वायु से खुजली मालूम होती है तब रुद्र ग्रन्थि का भेदन करके शिव रूप हो

जाता है ॥ ११५ ॥ चन्द्र सूर्य को समान करने से उन दोनों का योग होता है। तीनों ग्रन्थियों का भेदन करने से योगी तीनों गुणों से अतीत हो जाता है ॥ ११६ ॥ शिव और शक्ति के संयोग में वह परम श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त होती है। जैसे हाथी सूँड़ से सदा पानी पिया करता है ॥ ११७ ॥ इसी प्रकार सुषुम्ना वज्रनाल से (ब्रह्म नाड़ी से) वायु को ग्रहण करती है। वज्र दण्ड से उत्पन्न इक्कीस मणि होते हैं ॥ ११८ ॥ वह सब सुषुम्ना में रहे हुए हैं जैसे सूत्र में मणि होते हैं। मोक्ष मार्ग में स्थित होने से सुषुम्ना विश्वरूपिणी है ॥ ११९ ॥

निश्चित काल तक चन्द्र सूर्य के निबंधन से पूरक करके कुम्भक किया हुआ वायु साधक के बाहर नहीं जाता ॥ १२० ॥ इसी तरह से पश्चिम द्वार के लक्षण वाला वायु बार बार पूर्ण किया हुआ उन द्वारों से किंचित् कुम्भकत्व को प्राप्त होता है ॥ १२१ ॥ पश्चिम मार्ग से वायु सर्व गात्रों में प्रवेश करता है। रेचन करने से वह क्षीण होता है और पूरक करने से पोषित होता है ॥ १२२ ॥ शरीर सहित मन जहांसे उत्पन्न होता हैं, वहीं उसे योग बल से जो लीन कर देता है, वही एक मुक्त है, अहंकार रहित और सुखी है। जो केवल खाने ही से गरज रखते हैं ऐसे मूर्ख इस बात को नहीं जानते ॥ १२३ ॥ यदि चित्त का नाश प्रतीत होवे तो वहां प्राण का भी नाश होता है। ऐसा यदि न होवे तो उसके लिये न शास्त्र है, न अनुभव, न गुरु

है, न मोक्ष ॥ १२४ ॥ जिस प्रकार जौंक स्वयं बल से रुधिर को खींचती है इसी प्रकार योग के सतत अभ्यास से ब्रह्मनाड़ी धातुओं को खींचती हैं ॥ १२५ ॥ आसन बंध के नित्य अभ्यास योग से चित्त लीन हो जाता है और बिंदु नीचे को नहीं जाता ॥ १२६ ॥ तथा रेचक और पूरकको छोड़कर प्राण स्थिर होता है, तब नाना प्रकार के नाद प्रवृत्त होते हैं और चंद्रमण्डल (से अमृत) टपकने लगता है ॥ १२७ ॥ तब भूख प्यास आदि सर्व दोष नष्ट हो जाते हैं, केवल सच्चिदानन्द में उसकी स्थिति हो जाती है ॥ १२८ ॥ तेरी प्रीति के अर्थ यह अभ्यास का वर्णन किया है ।

मंत्र, लय, हठ और राजयोग यह क्रमशः अन्तर्भूमिकाएं हैं ॥ १२९ ॥ एक ही महायोग इस प्रकार के चार भेद से कहा जाता है । (प्राण हकार से बाहर जाता है, सकार से फिर भीतर चला जाता है ॥ १३० ॥ इस प्रकार 'हंस हंस' यह सब जीव जपते रहते हैं । गुरु वाक्य से सुषुम्ना में यह जप उलटा होने लगता है ॥ १३१ ॥ इसीको सोहं सोहं मंत्र कहते हैं, इसीको मंत्र योग कहते हैं । मंत्र योग से पश्चिम मार्ग में प्रतीति होने लगती है ॥ १३२ ॥ सूर्य को हकार कहते हैं, सकार चन्द्रमा कहलाता है और सूर्य चन्द्र की एकता को हठ कहते हैं ॥ १३३ ॥ सर्व दोषों द्वारा उत्पन्न हुई जड़ता हठ से नाश हो जाती है । जब क्षेत्रज्ञ और परमात्मा इन दोनों की एकता हो जाती है ॥ १३४ ॥ हे ब्रह्मन्, उनकी एकता होने पर चित्त विलीन होजाता है और

लय योग का प्रारम्भ होते ही प्राण स्थिरता को प्राप्त होते हैं ॥१३५॥ लय होने पर सुखरूप और स्वरूपानन्दरूप परमपद प्राप्त होता है। महाक्षेत्रके योनि मध्यमें तथा जपापुष्प या बंधूक पुष्प के समान (रक्तवर्ण) ॥१३६॥ जीवोंका रज रहता है यही ढका हुआ दैवी तत्त्व है। रजक और रेतके योगको राजयोग कहते हैं ॥१३७॥ राजयोगसे योगी अणिमादि सिद्धियां प्राप्त करके विराजता है। प्राण और अपान का योग ही योग चतुष्टय जानो ॥ १३८ ॥ यह हे ब्रह्मन्, तुझको संक्षेपसे कहा है। शिव कथन मिथ्या नहीं होता। अभ्यास द्वारा क्रम से प्राप्य वस्तु पाई जाती है, अन्यथा नहीं ॥ १३९ ॥ योगी एक ही शरीर से धीरे धीरे दीर्घ काल तक के योगाभ्यास द्वारा मुक्ति को प्राप्त होता है; बंदर के समान ही यह बात है (बंदर एक शाख से दूसरी शाख के प्रति ऐसे क्रम से पेड़ की चोटी पर चढ़ जाता है) ॥ १४० ॥ प्रमाद से यदि योग सिद्ध के पूर्व ही देह का नाश हो जाय, तो पूर्व वासना से युक्त होने के कारण उसको दूसरा शरीर प्राप्त होता है ॥ १४१ ॥ तब पुण्य बल से सिद्ध गुरु की संगति पाता है। पश्चिम द्वार मार्ग से फल तुरन्त प्राप्त होता है ॥ १४२ ॥ पूर्व जन्म में अभ्यास किया हुआ होने से उसको तुरन्त फलकी प्राप्ति होती है। यही जानने योग्य है, इसको काकमत कहते हैं ॥ १४३ ॥ काकमत के अभ्यास योग से अन्य और कोई श्रेष्ठ योग नहीं है, इसीसे मुक्ति प्राप्त होती है। शिव भाषित मिथ्या नहीं होता ॥ १४४ ॥ हठ योग क्रम से उसकी पराकाष्ठा रूप जीव लयादि जिसने न किया हो, उसको मोक्ष

नहीं होता, क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि पश्चिम मार्ग के बिना मोक्ष लाभ नहीं होता ॥ १४५ ॥ (इस योग में) प्रथम रोग नष्ट हो जाते हैं पीछे शरीर की जड़ता दूर होती है, तब चन्द्र समरस होकर सदा बरसता रहता है ॥ १४६ ॥ पवन से अग्नि चारों ओर से धातुओं को खींचता है तब शरीर में कोमलता आजाती है और नाना नाद प्रवृत्त होते हैं ॥ १४७ ॥ वृष्टि आदि जनित जड़ता को जीत कर वह योगी खेचर यानी आकाश में चलने वाला हो जाता है, पवन के समान वेग वाला सर्वज्ञ और सुन्दर रूप वाला हो जाता है ॥ १४८ ॥ वह तीनों लोकों में क्रीड़ा करता है और उसमें सब सिद्धियां उत्पन्न होजाती हैं। कपूर के लीन हो जाने पर उसमें फिर कठिनता कहां ? ॥ १४९ ॥ वैसे ही अहंकार के नाश होने पर (योगीके देहमें) कठिनता कहांसे रहे ? वह सर्वकर्ता, स्वतंत्र और अनन्त रूप वाला ॥ १५० ॥ महायोगी जीता हुआ भी मुक्त ही है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

इस जगत में सिद्धियां दो प्रकार की होती हैं, एक कल्पित और दूसरी अकल्पित ॥ १५१ ॥ रस, औषधि और नाना प्रकार की क्रियाओं के साथ मन्त्र अभ्यास के साधन से जो सिद्धियां प्राप्त होती हैं वे कल्पित कही जाती हैं ॥ १५२ ॥ वे साधन द्वारा उत्पन्न हुई सिद्धियां अनित्य और अल्प शक्ति वाली होती हैं। ऐसे ही बिना साधन के स्वभाव ही से उत्पन्न हुई सिद्धियां होती हैं ॥ १५३ ॥ अपने आत्मा के योग में निष्ठा रखने वालों में स्वतन्त्रता से ईश्वर को प्रिय ऐसी सिद्धियां उत्पन्न होती हैं, वे

अकल्पित कही जाती हैं। ॥ १५४ ॥ वासना रहित (योगियों) में महा शक्ति वाली अपने योग से उत्पन्न हुई, इच्छा रूप सिद्धियां चिर काल के अभ्यास से उत्पन्न होती हैं ॥ १५५ ॥ परन्तु अन्यत्र ऐसे परमात्म पद के योग के लिये उन सिद्धियों को सदा गुप्त रखना चाहिये। विना कार्य के सदा गुप्त रहना यही योग सिद्ध का लक्षण है ॥ १५६ ॥ आकाश मार्ग से जाने वाले पथिक को मार्ग में जैसे अनेक तीर्थ और नाना मार्ग नज़र आते हैं वैसी ही नाना प्रकार की सिद्धियां हैं ॥ १५७ ॥ लाभ हानि से रहित निर्वासन योगी को योग मार्ग में चलते हुए नाना प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं ॥ १५८ ॥ परीक्षक सुवर्णकार जैसे सुवर्ण की परीक्षा करता है वैसे सिद्धियों से सिद्ध और जीवन्मुक्त को पहचानना चाहिये ॥ १५९ ॥ कभी उसके अलौकिक गुण अवश्य दिखाई देते हैं परन्तु जिसकी सिद्धियां चली गई हों ऐसे पुरुष को बद्ध ही समझो ॥ १६० ॥ जिसकी देह जरा रहित अमर है वही जीवन्मुक्त है और वे पशु पक्षी, कीटक (के समान) हैं जो मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ १६१ ॥ उनको, हे ब्रह्मन् ! क्या शरीर नष्ट होने के पश्चात् मुक्ति मिलती है ? उनके प्राण ही बाहर नहीं निकलते तो शरीर कहां से गिरेगा ? ॥ १६२ ॥ शरीर के पतन से जो मुक्ति हो वह मुक्ति नहीं मृत्यु है। देह को ब्रह्मत्व प्राप्त होने पर जैसे जल में नमक ॥ १६३ ॥ अनन्यता को प्राप्त होता है, (वैसे ही देह और ब्रह्म अनन्यताको प्राप्त होनेपर) उसको मुक्त कहते हैं, शरीर और इन्द्रियां उससे वैसे ही अभिन्न

हैं ॥ १६४ ॥ ब्रह्म देहत्व को वैसे ही प्राप्त होता है जैसे जल बबूले बन जाय। दस द्वार वाले नगर के समान दस नाड़ी रूप जिसमें मार्ग हैं ऐसे, ॥ १६५ ॥ दस वायुओं से युक्त, दस इन्द्रियों के परिवार वाले, छः आधाररूप निवास स्थान वाले, छः अन्वयरूप महा वन वाले ॥ १६६ ॥ चार पीठों से युक्त, चार वेद रूप दीपक वाले, विन्दु नाद और महत लिंग वाले, शिव शक्ति के निवास स्थान रूप ॥ १६७ ॥ देह को शिवालय कहते हैं, यही सब देहधारियों को सिद्धि देने वाला है। गुदा और मेढ़ू के बीच में त्रिकोणाकार मूलाधार चक्र है ॥ १६८ ॥ जीव रूप वह स्थान बोला जाता है, यहीं पर कुण्डलिनी नाम की परा शक्ति प्रतिष्ठित है ॥ १६९ ॥ यही स्थान है जिससे वायु उत्पन्न होता है, जिससे अग्नि उत्पन्न होता है, जिससे विन्दु और नाद उत्पन्न होते हैं ॥ १७० ॥ और जिससे हंस और मन उत्पन्न होते हैं, ऐसा यह काम रूप नाम का पीठ सर्व कामनाओं को पूर्ण करने वाला है ॥ १७१ ॥ छः पखुरीवाला स्वाधिष्ठान नामक चक्र लिंग मूलमें है। दस पखुरीवाला मणिपूरक चक्र नाभी देश में स्थित है ॥ १७२ ॥ बारह पखुरीवाला अनाहत नाम का महान् चक्र हृदय में स्थित है। हे ब्रह्मा यही वह ब्रह्मागिरी नाम की पीठ है ॥ १७३ ॥ कंठ कूप में सोलह पखुरीवाला विशुद्ध नामक चक्र है जालंधर नाम की पीठ, हे सुरेश्वर यहां पर स्थित है ॥ १७४ ॥ भ्रूमध्य में दो दल वाला आज्ञा नाम का उत्तम चक्र है, इसके ऊपर उड्डयान नामक महापीठ प्रतिष्ठित है ॥ १७५ ॥

चार पखुरीवाला पृथ्वी का मंडप है, उसका अधिदेवता ब्रह्म है। अर्ध चंद्राकार जल का मंडल है यहां विष्णु अधिदेव हैं॥ १७६॥ त्रिकोणाकार मंडल अग्नि का है, उसका अधिदेवता रुद्र हैं, वायु का विंब त्रिकोण वाला है ईश्वर उसका अधिदेवता हैं ॥ १७७॥ आकाश का मंडल वर्तुलाकार है इसका देवता सदाशिव है। नाद रूप मन का मंडल भ्रूमध्य में है, ऐसा जानते हैं॥ १७८॥

॥ इति प्रथमोऽध्याय ॥

हे शंकर, मैं योगके महात्म्यको फिर सुनना चाहता हूं जिसके जानने ही से खेचरी समान अवस्था प्राप्त होती है॥१॥ (शंकरने कहा) हे ब्रह्मन्, प्रयत्न से गुप्त रखने के योग्य वात कहता हूँ सो श्रवण कर। जोवारह वर्ष तक प्रमादरहित सेवा करे॥२॥ उस दमनशील ब्रह्मचारी को यह यथार्थ रूप से वताना चाहिये। पांडित्य वताने के लिये, धन के लोभ से अथवा प्रमाद से किसी को नहीं देना चाहिये॥ ३॥ उसने सव कुछ पढ़ लिया और सुन लिया और सबका अनुष्ठान कर लिया जो विद्वान् गुरु के वताये हुए मूलमंत्र को जानता है॥ ४॥ मूलाधार से उत्पन्न हुआ शिव शक्तिमय मंत्र है। उस मंत्र के, हे ब्रह्मन्, श्रोता और वक्ता दोनों दुर्लभ हैं॥ ५॥ इसको पीठ कहते हैं। यह चिदात्मक और नादलिंग रूप है। इसके अनुभव मात्रसे मनुष्य जीवन्मुक्त होजाता है॥६॥ और अल्प काल में अणिमादि सिद्धियां उसको प्राप्त होती हैं। मेरे स्वरूप का मनन, ध्यान तथा मेरे स्वरूप का बोध करता है

इसलिये ॥ ७ ॥ इसको मंत्र कहते हैं। अथवा, हे ब्रह्मन्, मेरा अधिष्टान होने से अथवा सर्व मन्त्रों का मूल होने से, मूलाधार से उत्पन्न होने से और ॥ ८ ॥ मूल स्वरूपका चिह्न होने से इसको मूल मंत्र कहते हैं। सूक्ष्म होने से, कारण होने से तथा उसमें सबका लय वा गमन होने से ॥ ९ ॥ तथा यह परमेश्वर का लक्षण होने से इसको लिंग कहते हैं। सब जन्तुओं के सदा समीप और व्यापक होने से ॥ १० ॥ तथा रूप का सूचन करने वाला होने से उसको सूत्र कहते हैं। महामाया, महालक्ष्मी, महा-देवी सरस्वती रूप ॥ ११ ॥ अव्यक्त आधार शक्ति जिससे विश्व चलता है, सूक्ष्म तेज युक्त बिंदुरूप से और पीठरूप से रहती है ॥ १२ ॥ बिंदुपीठ का भेदन करने से नादलिंग उत्पन्न होता है, हे ब्रह्मन्, जिसका पराङ्मुखी क्रिया द्वारा प्राण से उच्चारण किया जाता है ॥ १३ ॥ गुरु के उपदेश के अनुसार, ब्रह्म के स्थूल सूक्ष्म और कारण तीनों शरीर सहज में प्रकाशित होते हैं ॥ १४ ॥ पंच ब्रह्म मय, स्थूल रूप को विराट् कहते हैं। नादमय और बीजत्रया-त्मक सूक्ष्म को हिरण्यगर्भ कहते हैं ॥ १५ ॥ परब्रह्म, परम सत्य, सच्चिदानन्द लक्षण वाला, अपरिमेय, जिसका निर्देश हो न सके ऐसा इन्द्रिय और मनका अविषय ॥ १६ ॥ शुद्ध सूक्ष्म निराकार, निर्विकार निरंजन अनन्त, परिच्छेद रहित, उपमा रहित, उपद्रव रहित ॥ १७ ॥ ऐसा परम तत्त्व आत्म मंत्र के सदा अभ्यास करने से प्रकाशित होता है। उसके प्रकट होने के चिह्न रूप सिद्धि द्वार मुझसे श्रवण कर ॥ १८ ॥ सदा युक्त योगी को प्रकाशमान

दीपज्वाला, चन्द्र, खद्योत (पटवीजना), बिजली और नक्षत्र ये सूक्ष्म रूप से दिखाई देते हैं ॥ १९ ॥ शीघ्र ही उसको अणिमादि ऐश्वर्य प्राप्त होता है। नाद से श्रेष्ठ मंत्र नहीं है, आत्मा से श्रेष्ठ कोई देव नहीं है ॥ २० ॥ अनुसंधान से बढ़ कर कोई पूजा नहीं है, तृप्ति से श्रेष्ठ कोई सुख नहीं है। यह सिद्धि चाहने वाले को प्रयत्न से गुप्त रखना चाहिये। मेरा भक्त इसको जान कर कृत कृत्य और सुखी होजाता है ॥ २१ ॥ जिसकी देव में परमभक्ति है और जैसी देव में है वैसी ही गुरु में है, उसी महात्मा को ऊपर कहे हुए अर्थ प्रकाशित होते हैं ॥ २२ ॥

॥ इति द्वितीय अध्याय ॥

जो नमस्कार करने योग्य है, जो चित् रूप है, जो सिद्धियों का कारण है, जिसके जानने मात्र ही से जन्म के बन्धन से जीव छूट जाता है ॥ १ ॥ ऐसे अक्षर और परम नाद को शब्द ब्रह्म कहते हैं। मूलाधार चक्र में रही हुई बिंदुरूपिणी शक्ति अपने आधार में होती है ॥ २ ॥ सूक्ष्म बीज में से जिस प्रकार अंकुर उत्पन्न होता है इस प्रकार बिंदुरूपिणी शक्ति में से नाद उत्पन्न होता है उसको पश्यन्ति कहते हैं, क्योंकि योगी लोग इसी शक्ति से विश्व को देखते हैं ॥ ३ ॥ हृदय में मेघ की गर्जना के समान बड़ी ध्वनि होती है, वहां, हे ब्रह्मन् जो शक्ति होती है उसको मध्यमा कहते हैं ॥ ४ ॥ प्राण के योग से स्वर रूप से प्रकट होने वाली वैखरी शक्ति है तालु आदि स्थानों के स्पर्श से

शाखा पत्तों के समान वह नाना अक्षरों के रूप से प्रकट होती है ॥ ५ ॥ इस प्रकार 'अ' से लेकर 'क्ष' तक के सब अक्षरों का उच्चारण होता है। अक्षरों से पद और पदों से वाक्य होते हैं ॥ ६ ॥ मंत्र वेद और शास्त्र, सब पुराण तथा कल्प और नाना भाषाएँ सब वाक्यमय ही होते हैं ॥ ७ ॥ सात स्वर तथा गाथाएँ यह सब नाद ही से उत्पन्न होते हैं (इसलिये) सब प्राणियों के हृदय में रही हुई यह सरस्वती देवी है ॥ ८ ॥ प्राण और अग्नि को प्रेरणा से धीरे धीरे यही विवर्त रूप होकर पद और वाक्य रूप से वर्तती हैं ॥ ९ ॥ जो योगी इस वैखरी शक्ति को अपने में देखता है, वह सरस्वती के प्रसाद से वाक्-सिद्धि को प्राप्त करता है ॥ १० ॥ वह स्वयं वेद, शास्त्र और पुराणों का कर्त्ता बनता है। जहां बिंदु, नाद, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु ॥ ११ ॥ और सब इन्द्रियां लय को प्राप्त होती हैं, हे सुव्रत, जहां प्राण लीन हो जाते हैं मन भी लीन हो जाता है ॥ १२ ॥ जिसको प्राप्त करने पर उससे अधिक प्राप्त करने योग्य कुछ भी नहीं मानता, जिसमें स्थित हुआ महात्मा महान् दुःख से भी विचलित नहीं होता ॥ १३ ॥ जहां योगाभ्यास द्वारा निरोध को प्राप्त हुआ चित्त उपराम को प्राप्त होता है और जहां आत्मा ही से आत्मा को देखकर योगी संतोष को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ जो इन्द्रियातीत और बुद्धि से ही ग्रहण करने योग्य ऐसा आत्यंतिक सुखरूप है उसको क्षर और अक्षर से परे ऐसा (परम) अक्षर कहते हैं ॥ १५ ॥ सब भूत प्राणियों को क्षर और सूत्रात्मा को

अक्षर कहते हैं और निर्विशेष निरंजन परब्रह्म को परम अक्षर कहते हैं ॥ १६ ॥ वह लक्षण रहित, अलक्ष्य और अतर्क्य है, उपमा रहित है, उसका पारावार नहीं है, उसका छेदन नहीं हो सकता, तथा उसका चिन्तवन नहीं हो सकता और वह परम निर्मल हैं ॥ १७ ॥ वह सब भूतों का आधार है, उसका कोई आधार नहीं हैं। वह निर्दोष और प्रमाण रहित है, उसको कोई बता नहीं सकता, उसका कोई माप नहीं है और वह इन्द्रियों से परे है ॥ १८ ॥ वह स्थूल नहीं हैं, सूक्ष्म भी नहीं है; ह्रस्व या दीर्घ नहीं है। वह अजन्मा और नाश रहित है। वह शब्द, स्पर्श, रूप या आंख, कान तथा नाम से रहित है ॥ १९ ॥ वह सबको जानने वाला है, सब स्थान पर उसकी गति है। वह शान्त हैं और सब प्राणियों के हृदय में रहा हुआ है। गुरु के वाक्य से वह सहज जाना जाता है और भाव हीन मनुष्य उसको बड़ी कठिनाई से जानने पाता है ॥ २० ॥ वह कला रहित और गुण रहित है शान्त और निर्विकार है, वह आश्रय रहित निर्लेप नाश रहित कूटस्थ अचल और ध्रुव हैं ॥ २१ ॥ वह अँधेरे के परे रहा हुआ है और ज्योति की भी ज्योति है। वह भाव और अभाव से रहित केवल भावना गोचर है ॥ २२ ॥ चित्त को अन्तरलीन करके भक्ति युक्त होकर उस परम तत्त्व को पाया जाता है। इसमें, हे ब्रह्मन्, भावना ही केवल कारण है ॥ २३ ॥ जैसे दूसरे देह की प्राप्ति में मनुष्य को भावना कारण होती है, जिस प्रकार विषय का ध्यान करने वाले का मन

विषय में रमता रहता है ॥ २४ ॥ वैसे ही मेरा अनुसरण करने वाले का चित्त मुझमें ही विलीन हो जाता है। सर्वज्ञता परमेश्वरत्व तथा सब प्रकार की सम्पूर्ण शक्तियां ॥ २५ ॥ तथा अनंत शक्तियां मेरे अनुसरण से प्राप्त होती हैं।

॥ इति तीसरा अध्याय ॥

चैतन्य के एक रूप होने के कारण कहीं भी भेद का मानना युक्त नहीं है। रज्जु में सर्प का भ्रम होता है, वैसा ही जीव भाव समझो ॥ १ ॥ रज्जु के अज्ञान से क्षण में ही जैसे रज्जु सर्पिणी *भासने लगती है वैसे ही अज्ञान से साक्षात् एक चिति ही विश्व* रूप से भासती है ॥ २ ॥ प्रपंच के उपादान कारण ब्रह्म को छोड़ कर और कुछ भी नहीं है, इसलिये यह सब प्रपंच ब्रह्म ही है, और कुछ नहीं है ॥ ३ ॥ सब कुछ आत्मा ही है, इस उपदेश द्वारा व्याप्य व्यापक भाव मिथ्या होजाता है। इस प्रकार अद्वैत परम तत्त्व को जानने पर भेद को स्थान ही कहां ? ॥ ४ ॥ परमात्मा परब्रह्म से सब भूत उत्पन्न होते हैं, इसलिये यह सब ब्रह्म ही है ऐसा चिन्तन करो ॥ ५ ॥ सब नाम, नाना प्रकार के रूप तथा सब कर्म ब्रह्म ही धारण करता है ऐसा समझो ॥ ६ ॥ सुवर्ण से उत्पन्न हुई वस्तु सदा सुवर्ण ही होती है वैसे ही ब्रह्म से उत्पन्न हुआ विश्व सदा ब्रह्म स्वरूप ही है ॥ ७ ॥ जो जीवात्मा और परमात्मा में अल्प भी भेद मानता है उस विमूढ़ आत्मा को भय की प्राप्ति होती है ऐसा (श्रुति का) कथन है ॥ ८ ॥ अज्ञान

से द्वैत भासता है तब अन्य को देखने लगता है। आत्म दृष्टि से देखा जाय तो यह सब (जगत) आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है ॥ ९ ॥ इस लोक का अनुभव होता है, यहां व्यवहार भी होता है तो भी जागने के उत्तर क्षण में स्वप्न जैसा असत् होजाता है, वैसे यह सब असद्रूप ही है ॥ १० ॥ स्वप्न में जाग्रत नहीं होता, और जाग्रत में स्वप्न नहीं होता। यह दोनों लय में नहीं होते और इन दोनों में लय नहीं होता ॥ ११ ॥ तीनों गुणों से उत्पन्न हुई यह तीनों अवस्थायें मिथ्या हैं; इनका द्रष्टा गुणातीत और नित्य ऐसा चैतन्य है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार मिट्टी में घट की भ्रान्ति होती है; सीपी में चाँदी होती है वैसा ही ब्रह्म में जीव भाव है। उसको विचारपूर्वक देखने से वह नष्ट होजाता है ॥ १३ ॥ जैसे मृतिकामें घट होता है, कनकमें कुण्डल का कथन होता है, सीपी को रजत कहा जाता है, वैसा जीव भी कथन मात्र है ॥ १४ ॥ जिस प्रकार आकाश में नीलता होती है मरुभूमि में जल होता है, स्थाणु (ठूँठ) में पुरुष की भ्रान्ति होती है, वैसा ही चैतन्य में यह विश्व है ॥ १५ ॥ जैसे शून्य में वैताल या गन्धर्व नगर मिथ्या होता है, जिस प्रकार आकाश में (नेत्र दोष से) दो चन्द्र भासते हैं वैसे ही सत्य (ब्रह्म) में जगत भासता है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार तरंग और लहरों में जल ही जल स्फुरता है, घट नाम से जैसे मिट्टी ही वर्तती है या पट नाम से तन्तु ही रहते हैं ॥ १७ ॥ वैसे ही जगत के नाम से चिति ही प्रकाशती है। सब कुछ केवल ब्रह्म ही है। जिस प्रकार वन्ध्यापुत्र कोई वस्तु

नहीं है या मरुभूमि में जल नहीं होता ॥ १८ ॥ जिस प्रकार आकाश में वृक्ष होता ही नहीं, वैसे ही जगत की स्थिति है ही नहीं। घट का ग्रहण करने पर जैसे वलात्कार से मिट्टी ही नजर आती है ॥ १९ ॥ प्रपञ्च को विचारपूर्वक देखा जाय तो प्रकाश स्वरूप ब्रह्म ही दीखता हैं। आत्मा सदा विशुद्ध है तो भी वह अशुद्ध भासता है, ॥ २० ॥ जिस प्रकार रज्जु ज्ञानी को और अज्ञानी को सदा दो प्रकार से भासती है। जिस प्रकार घड़ा मिट्टो ही है वैसे देह भी चैतन्य ही है ॥ २१ ॥ विद्वान् लोग आत्मा और अनात्मा का विवेक वृथा ही करते हैं। जैसे रस्सी को सर्प रूप से और सीपी को रजत रूप से देखा जाय ॥ २२ ॥ वैसे ही मूढ़ मनुष्य आत्मा को देह रूप से देखता है, मिट्टी को घट रूप से, मरुभूमि को जल रूप से देखता है ॥ २३ ॥ काठ को घर रूप से और लोहे को तलवार रूप से देखा जाय वैसे ही मूढ़ जन आत्मा को देह रूप से देखते हैं ॥ २४ ॥

॥ इति चतुर्थ अध्याय ॥

फिर मैं तुमसे ब्रह्मस्वरूप के गुह्य योग को क्रमपूर्वक कहता हूँ, हे ब्रह्मा, स्थिर चित्त होकर सुनो ॥ १ ॥ दस द्वार वाले नगर के समान, दस नाड़ी रूप जिसमें महा मार्ग हैं, जो दस वायुओं से युक्त है ऐसे दस इन्द्रियों के परिवार वाले ॥ २ ॥ छः आधार रूप निवास स्थान वाले, छः अन्ययरूप महावन वाले, चार पीठों से युक्त, चार वेद रूप दीपक वाले ॥ ३ ॥ विन्दु नाद और

महालिंग वाले, विष्णु तथा लक्ष्मी के निवास स्थानरूप, देह को विष्णु का मन्दिर कहते हैं, यही सब देह धारियों को सिद्धि देने वाला है ॥ ४ ॥ गुदा और मेढ़ू के बीच में त्रिकोणाकार मूलाधार चक्र है। वह जीवरूप शिवका स्थान कहा जाता है ॥ ५ ॥ यहीं पर कुंडलिनी नाम की परा शक्ति प्रतिष्ठित है। यहीं से वायु उत्पन्न होता है, यहीं से वह्नि उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥ जिससे बिन्दु उत्पन्न होता है और जिससे नाद उत्पन्न होता है, जिससे हंस और मन उत्पन्न होते हैं ॥ ७ ॥ ऐसा यह कामरूप नाम का पीठ सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। छः पखुरीवाला स्वाधिष्ठान नाम का चक्र लिंगमूल में है ॥ ८ ॥ दस पखुरी वाला मणि पूरक चक्र नाभि देश में स्थित है। बारह पखुरीवाला अनाहत नाम का महान् चक्र हृदय में स्थित है ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मा, यही वह ब्रह्मगिरि नाम का पीठ है। कंठ कूप में सोलह पखुरी वाला विशुद्ध नामक चक्र है ॥ १० ॥ जालंधर नाम का पीठ, हे ब्रह्मा, यहां पर स्थित है। भ्रूमध्य में दो दल वाला आज्ञा नाम का उत्तम चक्र है ॥ ११ ॥ इसके ऊपर उड्डियान नामक महापीठ प्रतिष्ठित है, इस देहमें इतने स्थान शक्तिरूप से विराजते हैं ॥१२॥ चार पखुरी वाला पृथ्वी का मंडल है, उसका अधिदेवता ब्रह्मा है। अर्ध चन्द्राकार जलका मंडल है यहां विष्णु अधिदैवत है ॥ १३ ॥ त्रिकोणाकार मंडल अग्नि का है, उसका अधिदेवता रुद्र है। वायु का बिंब षट्कोणाकार है; संकर्षण उसका अधिदेवता है ॥१४॥ आकाश का मण्डल वर्तुलाकार है इसका देवता

नारायण है, नाद रूप मनका मण्डल भ्रूमध्य में है ऐसा जानते हैं ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मा, यह शांभव स्थान का तुमसे वर्णन किया। अब नाड़ी चक्रका निर्णय कहता हूं ॥१६॥ मूलाधार चक्रके त्रिकोण में बारह अंगुलकी सुषुम्ना होती है, यह मूलके अर्ध में से निकली हुई वांसके समान होती है और इसीको ब्रह्म नाड़ी कहते हैं ॥१७॥ इसके दोनों ओर इडा और पिंगला होती है, और यह तीनों विलंबिनी में पिरोई हुई होती है जो नाक तक जाती है ॥१८॥ इडा में वाईं ओर से सुवर्णरूप वायु गमन करता है। दाहिने ओर से सूर्य रूप प्राण पिंगला में गमन करता है ॥ १९ ॥ विलंविनी नाड़ी नाभि स्थान में प्रकट होती है। नाभि स्थान में से नाड़ियां उत्पन्न होती हैं और ऊंची नीची और तिरछी जाती हैं ॥ २० ॥ इसको नाभि चक्र कहते हैं और यह मुर्गी के अण्डे के समान होता है; यहां से गान्धारी और हस्ति जिह्वा दो नाड़ियां दोनों नेत्रों को जाती हैं ॥ २१ ॥ पूषा और अलंवुसा यह दो कानों के प्रति जाती हैं। शूरा नाम की वड़ी नाड़ी है, वह यहां से भ्रू मध्य को जाती है ॥ २२ ॥ विश्वोदरी वह नाड़ी है जो चतुर्विध अन्न का भोजन करती है। सरस्वति नाड़ी जिह्वा के अन्त तक गई हुई है ॥ २३ ॥ राका नाम की नाड़ी है, वह तुरन्त जल का पान करती है भूख को उत्पन्न करती है और नाक में श्लेष्मा का सञ्चय करती है ॥ २४ ॥ कण्ठ कूप में उत्पन्न हुई अधोमुख वाली शंखिनी नाम की नाड़ी है, वह अन्न के सार को ग्रहण करके उसका शिरोभाग में सञ्चय करती

है ॥ २५ ॥ नाभि से तीन अधोमुख वाली नाड़ियां नीचे को जाती हैं उनमें से कुहू नाड़ी मल का त्याग करती है, वारुणी मूत्र का त्याग करती है ॥ २६ ॥ चित्रा नाम की नाड़ी सीवनी में है वह शुक्र मोचन करती है । इस प्रकार नाड़ी चक्र तुझसे कहा अब बिंदु का रूप श्रवण कर ॥ २७ ॥ स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीन ब्रह्म के शरीर हैं; शुक्ररूप बिंदु स्थूल है, पंचाग्नि रूप सूक्ष्म शरीर है ॥ २८ ॥ और चन्द्ररूप कारण शरीर है वह सदा साक्षी रहता है और सर्वदा जैसा का वैसा ही रहता है । जो पातालों के नीचे कालाग्नि रहता है ॥ २९ ॥ वही शरीर में मूलाग्नि है, जिसमें से नाद उत्पन्न होता है । वड़वाग्नि शरीर में होता है, वह अस्थि में रहता है ॥ ३० ॥ काष्ठ और पाषाण का अग्नि अस्थि में रहता है और काष्ठ और पाषाण से जनित पार्थिव अग्नि आंतों में होता है ॥ ३१ ॥ वैद्युत अग्नि आकाश का है वह शरीर के भीतर है । आकाश में रहा हुआ सूर्यरूप अग्नि नाभि मण्डल में स्थित है ॥ ३२ ॥ सूर्य विष की वर्षा करता है (परन्तु) उसके ऊपर के मुख से अमृत झरता है; तालु मूल में रहा हुआ चन्द्र अधोमुख अमृत की वृष्टि करता है ॥ ३३ ॥ भ्रूमध्य में शुद्ध स्फटिक के समान बिन्दु रहा हुआ है, वह महा विष्णु का सूक्ष्म स्वरूप कहा जाता है ॥ ३४ ॥ जो बुद्धिमान पुरुष बताये हुए पञ्चाग्नि की बुद्धि से भावना करता है वह जो कुछ खाता है या पीता है

सभी स्रवन ही करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ बड़े प्रेम के साथ उत्तम प्रकार से सेवा करके शयन करते हुए भली प्रकार पाचन हो सके ऐसा लघु भोजन करके प्रथम शरीर की शुद्धि करे। पश्चात् सुखासन में स्थित हो कर ॥ ३६ ॥ रेचक कुंभक द्वारा प्राण के मार्ग का शोधन करे। प्रयत्न पूर्वक गुदा का आकुंचन करके मूलाधार में रही हुई शक्ति की उपासना करे ॥ ३७ ॥ नाभि और लिंग के मध्य में उड्यान बन्धको करे, इस बन्ध द्वारा शक्ति उड़कर ऊपर पीठ में जाती है, इसलिये इसको उड्यान पीठ कहते हैं ॥ ३८ ॥ किंचित् कंठ का संकोच करे, यह जालंधर बंध है सावधानता पूर्वक दृढ़ चित्त से खेचरी मुद्रा को करे ॥ ३९ ॥ कपाल के छिद्र में जीभ को उलटा कर लगावे और दोनों भ्रुकुटियों के बीच में दृष्टि रखे। इसको खेचरी मुद्रा कहते हैं ॥ ४० ॥ खेचरी मुद्रा द्वारा जिह्वा के अग्र भाग से जिसने कपाल विवर बन्द किया हो उसका अमृत अग्नि में नहीं गिरता और प्राण भी नहीं चलते ॥ ४१ ॥ उसको भूख, प्यास, निद्रा या आलस्य नहीं उत्पन्न होते। जो खेचरी मुद्रा जानता है, उसकी मृत्यु ही नहीं होती ॥ ४२ ॥ पश्चात् पूर्वापर आकाश में अच्युत रूप द्वादशान्त में, निरालम्ब और निरंजन द्वन्द्व रहित उड्यान पीठ में ॥ ४३ ॥ और पश्चात् चंद्र मंडल के अंतर्गत कमल के मध्य में, जिससे अमृत सदा स्रवता रहता है ऐसे नारायण का ध्यान करे ॥ ४४ ॥ जिसको परम ब्रह्म का साक्षात्कार होगया है उसकी हृदयग्रंथि विनष्ट हो जाती है सर्व

संशय नष्ट हो जाते हैं और उसके सर्व कर्मों का क्षय हो जाता है ॥ ४५ ॥ हे सुरेश्वर जो जितेन्द्रिय और शान्त है और जिन्होंने मन और प्राण जीत लिये हैं उनको सुखपूर्वक प्राप्त होने वाली सिद्धियों को कहता हूँ ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मा नाद में मनोलय करने से दूर श्रवण प्राप्त होता है, बिंदु में मनोलय करने से दूर दर्शन प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ कालात्मा में मनको लीन करने से त्रिकाल ज्ञान प्राप्त होता है और परकाया प्रवेश करने वाला दूसरे के शरीर में अपने मन का लय करदे ॥ ४८ ॥ क्षुधा, तृषा या विष के निवारण के लिये मूर्धा में अमृत का चिंतवन करे। पृथ्वी में चित्त को धारण करने से पाताल गमन सिद्ध होता है ॥ ४९ ॥ जल में चित्त को धारण करने से जल से निर्भय हो जायगा। अग्नि में चित्त की धारणा करने से वह आग से जलेगा नहीं ॥ ५० ॥ वायु में मन को लय कर देने से आकाश गमन सिद्ध होगा। आकाश में चित्त को धारण करने से अणिमादिक सिद्धियां प्राप्त होती हैं ॥ ५१ ॥ विराट् के रूप से मन का योग करने से महिमा को प्राप्त होगा। ब्रह्मा में मन का योग करने से वह जगत का सृष्टिकर्त्ता बनेगा ॥ ५२ ॥ मृत्यु लोक के भोगों की इच्छा रखने वाला इंद्ररूप आत्मा की भावना करे और विष्णु रूप में यदि महायोगी धारणा करे तो वह अखिल जगत का पालन करेगा ॥ ५३ ॥ रुद्र रूप में मनको धारण करने से अपने तेज से जगत का संहार करेगा और नारायण में मनको लय करने से वह नारायण मय हो जायगा और वासुदेव में

मनको लय कर देने से सर्व सिद्धियां प्राप्त होती हैं ॥ ५४ ॥ योग युक्त और जितेन्द्रिय योगी जो जो संकल्प करेगा वही सब उस को प्राप्त होगा, इसमें केवल एक भाव ही कारण है ॥ ५५ ॥ गुरु ब्रह्मा है, गुरु विष्णु है, गुरु ही देव और सदा अच्युत है। तीनों लोक में गुरु से अधिक कुछ भी नहीं है ॥ ५६ ॥ दिव्य ज्ञान का उपदेश करने वाले देशिक (ब्रह्मनिष्ठ गुरु) भगवान् की परम भक्ति से जो पूजा करता है वह ज्ञान रूप फल को प्राप्त करता है ॥ ५७ ॥ जैसा गुरु वैसा ही ईश्वर और जैसा ईश्वर वैसा ही गुरु है इनकी महाभक्ति से पूजा करनी चाहिये, इन दोनों में कुछ भी भेद नहीं है ॥ ५८ ॥ कभी गुरु के साथ अद्वैत की बात न करे। भक्ति से गुरुदेव और आत्मा में अद्वैतता करे ॥ ५९ ॥ जो बुद्धिमान अत्यंत गुह्य योग शिखाको जानता है उसको तीनों लोक में अज्ञात कुछ भी नहीं है ॥ ६० ॥ उसको न पुण्य पाप है, न अशान्ति है, न दुःख और पराजय है; उसकी इस संसार में पुनरावृत्ति भी नहीं है ॥ ६१ ॥ चित्त की चपलता के वश सिद्धियों में चित्त न लगावे और इस प्रकार तत्त्व को जानले वह मुक्त ही है इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ ६२ ॥

॥ इति पांचवां अध्याय ॥

हे परमेश्वर, आप मुझसे ऐसी उपासना का प्रकार कहो, जिसको भली प्रकार जानने मात्र से मनुष्य संसार से मुक्त हों

जाता है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मा, श्रुति का साररूप और गुह्य ऐसी उपासना का प्रकार तुमसे कहता हूँ, उसको श्रवण करके ठीक २ उपासना कर ॥ २ ॥ सुषुम्ना कुण्डलिनी, चन्द्रमण्डल से गिरने वाला अमृत, मन की उन्मन अवस्था इन सब रूप से विराजने वाली, हे चैतन्यस्वरूप महाशक्ति, तुमको मेरा नमस्कार है ॥ ३ ॥ हृदय से एक सौ एक नाड़ियां निकलती हैं, उनमें से एक सिर की ओर जाती है । इस नाड़ीसे ऊर्ध्व गमन करने वाला अमृतत्व को प्राप्त होता है । अन्य चारों ओर जाने वाली नाड़ियों से मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ एक सौ एक नाड़ियों में एक ही नाड़ी श्रेष्ठ है, उसको सुषुम्ना कहते हैं । रजोगुण रहित, ब्रह्मरूपिणी वह नाड़ी ब्रह्म में विलीन रहती है ॥ ५ ॥ उसके बाईं ओर इडा और दाहिनी ओर पिंगला रहती है, उसके बीच में परम स्थान है, उसको जो जानता है वही सच्चा विद्वान् है ॥ ६ ॥ नासिका में चलने वाले प्राण उसमें धारण करे । वहां प्राण स्थिर करके धीरे २ अभ्यास करे ॥ ७ ॥ गुदा के पृष्ठ भाग में वीणा दंड के समान मेरु दंड है, वह देह को धारण करता है, दीर्घ अस्थि देह (मेरुदण्ड में की नीचेकी बड़ी हड्डी) तक ब्रह्मनाड़ी कही जाती है ॥ ८ ॥ उसमें एक सूक्ष्म विवर है उसको विद्वान् ब्रह्मनाड़ी कहते हैं । इडा और पिंगला के मध्यमें सूर्य रूपिणी सुषुम्ना होती है ॥ ९ ॥ उसमें सब कुछ रहा हुआ है, वह सर्वव्यापी और सब देह वाली है सूर्य, चन्द्र, अग्नि और परमेश्वर उसीमें रहे हुए हैं ॥ १० ॥ भूतलोक, दिशा, क्षेत्र, समुद्र, पर्वत, शिला, द्वीप,

नदियां उसीमें हैं, वेद, शास्त्र, विद्या कला अक्षर ॥ ११ ॥ स्वर, मंत्र, पुराण और सब प्रकार के गुण, बीज और बीज के आत्मा-रूप क्षेत्रज्ञ, प्राणवायु ॥ १२ ॥ सब विश्व सुषुम्ना के अन्तर्गत है सब उसीमें रहा हुआ है, वही सब भूतों के शरीरों में नाना नाड़ियां उत्पन्न करती है ॥ १३ ॥ उसका मूल ऊपर है और शाखायें नीचे हैं वायुमार्ग से वह सर्वत्र गमन करती है। बहत्तर हजार नाड़ियों में वायु चलती है ॥ १४ ॥ कुण्डलिनी के तिरछे, ऊपर और नीचे चारों ओर छेद हैं, इन सब द्वारों को रोकने से ॥ १५ ॥ प्राण के साथ जीव ऊर्ध्वगामी होने से मोक्ष को प्राप्त होता है। सुषुम्ना को जानकर उसका भेद करके वायु को उसके बीच चला कर ॥ १६ ॥ ब्रह्मरंध्र के चन्द्रपीठ में उसका निरोध करे। शरीरमें बहत्तर हजार नाड़ियोंके द्वार हैं ॥१७॥ उनमें सुषुम्ना ही एक शांभवी शक्ति है और सब निरर्थक हैं। वह परमानंदरूप हृदय में और तालु मूल में स्थित है ॥ १८ ॥ इसके ऊपर प्राण का निरोध मध्य में होने से मध्यम कहा जाता है। फिर ब्रह्मरंध्र में स्थित पराशक्ति चलावें, इस समय यदि भ्रमर सृष्टि यानी भंवरों की सी गुंज सुनाई दे तो चित्त को संसार में न भ्रमावे यानी उसीमें लगावे ॥ १९ ॥

गमनागमन में रहा हुआ और गमनागमन से रहित, घन अन्धकार का नाश करने वाले चिद्रूप दीप के समान, सब लोगों के अन्तःकरण में रहे हुए परमात्मस्वरूप हंसको मेरा नमस्कार है ॥ २० ॥ अनाहत शब्द के भीतर जो ध्वनि होती है उसके

अन्दर ज्योति होती है और उस ज्योति के भीतर मन रहा हुआ होता है। वह मन जहां लय को प्राप्त होता है वह विष्णु का परम पद है ॥ २१ ॥ उसको कोई आधार कहते हैं, और कोई सुषुम्ना या सरस्वति कहते हैं। आधार से विश्व उत्पन्न होता है और उसी में विश्व का लय होजाता है ॥ २२ ॥ इसलिये सर्व प्रयत्न से गुरु चरणों का सेवन करे (क्योंकि) आधार शक्ति की निद्रा में अविद्या से विश्व उत्पन्न हो जाता है ॥ २३ ॥ उस शक्ति को जाग्रत करने से त्रैलोक्य जाग्रत होजाता है। आधार को जो जानता है वह अन्धकार रूप माया से श्रेष्ठ ऐसे परमपद का सेवन करता है ॥ २४ ॥ उसके अनुभव मात्र से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त होजाता है ॥ २५ ॥ आधार चक्र के बल से विद्युत्पुन्ज के समान प्रकाश प्राप्त हो और यदि उस पर स्वयं गुरु प्रसन्न हैं तब उसको मोक्षपद प्राप्त होता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ आधार चक्र के बल से पुण्य पाप का नाश करो, आधार चक्र में प्राण का अवरोध करने से वह आकाश में लीन होजाता है ॥ २७ ॥ आधार चक्र में वायु का जब अवरोध होता है, योगी का शरीर कांपने लगता है। आधार चक्र में प्राण रोकने से योगी सर्वदा नृत्य करने लगता है ॥ २८ ॥ आधार चक्र में वात का निरोध करने से वहीं सम्पूर्ण विश्व दीखने लगता है। आधार ही सृष्टि है, आधार ही में सर्व देवता हैं, आधार में वेद है, इसलिये आधार ही का आश्रय ग्रहण करो ॥ २९ ॥ आधार के पश्चिम

भाग में त्रिवेणी का संगम होता है वहां स्नान करने से और उसका पान करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त होजाता है ॥ ३० ॥ आधार के पश्चिम में लिंग होता है, वहां एक द्वार होता है; उसको खोलने ही से मनुष्य जन्म बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥ ३१ ॥ आधार के पश्चिम भाग में यदि चन्द्र, सूर्य सदा स्थिर हो जायँ तो वहां स्वयं विश्वेश्वर रहा हुआ है। उसका ध्यान करके ब्रह्ममय हो जाता है ॥ ३२ ॥ आधार के पश्चिम में ज्ञानमयी मूर्ति (जीव) रहती है वह छःओं चक्रों का भेदन करके ब्रह्मरंध्र के बाहर जाती है ॥ ३३ ॥ बाएँ और दाहिने प्राण को एक कर सुषुम्ना में प्रवेश करते हुए, ब्रह्मरंध्र में योगी प्रविष्ट हो अन्त में परमगति को प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥ सुषुम्ना में जब प्राण ऊँचे नीचे दौड़ता है और योगी सुषुम्ना में प्राण को निरन्तर चलाता रहता है ॥ ३५ ॥ जब बुद्धिमान योगी का प्राण सुषुम्ना में स्थिर हो जाता है, तब सुषुम्ना में प्रवेश होने से चन्द्र सूर्य का लय होजाता है ॥३६॥ उस समयके समरस भावको जो जानता है वही योग का जानने वाला है। सुषुम्ना जब स्थिर होती है योगी के मन का चांचल्य दूर हो जाता है ॥ ३७ ॥ सुषुम्ना में योगी जब एक क्षण भी टिकता है या अर्ध क्षण भी रहता है ॥ ३८ ॥ या पानी में जैसा नमक मिल जाता है वैसा योगी जब सुषुम्नामें एकमेक होजाता है जैसे पानी दूध में मिल जाता है वैसे योगी जब सुषुम्ना के साथ विलीन हो जाता है ॥ ३९ ॥ तब उसकी हृदय ग्रन्थि टूट जाती है और सब संशय नष्ट हो

जाते हैं। वे परमाकाश में विलीन होकर परमगति को प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥ गंगा में और सागर में स्नान कर मणिकर्णिका को नमस्कार करे, वह मध्य नाड़ी में विचरण करने वाले के सोलहवें अंश के भी बराबर नहीं हैं ॥ ४१ ॥ श्रीशैल के दर्शन से मुक्ति होती है। वाराणसी में मृत्यु यानी लय होने से मुक्ति होती है, केदार का जल पान करने से और मध्य नाड़ी का दर्शन करने से मुक्ति होती है ॥ ४२ ॥ हजारों अश्वमेध यज्ञ तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञ सुषुम्ना के ध्यान योग के एक सोलहवें अंश के भी बराबर नहीं हैं ॥ ४३ ॥ जो सुषुम्ना का सदा योग करता है वह पुरुष सब पापों से मुक्त होकर परम कल्याण को प्राप्त करता है ॥ ४४ ॥ सुषुम्ना ही परम तीर्थ है, सुषुम्ना ही परम जप है, सुषुम्ना ही श्रेष्ठ ध्यान है और सुषुम्ना ही परम गति है ॥ ४५ ॥ नाना प्रकार के यज्ञ, दान, व्रत और नियम, सुषुम्ना के ध्यान योग के सोलहवें अंश की भी बराबरी नहीं करते ॥ ४६ ॥ ब्रह्मरन्ध्र के महास्थान में हमेशा शिव रूपिणी शक्ति रहती है, परमदेवी चिच्छक्ति मध्यम में प्रतिष्ठित रहती है ॥ ४७ ॥ ललाट के अग्र-भाग में स्थित आकाश कमल में मायाशक्ति रहती है। ललाट के मध्य भाग में नादरूपा श्रेष्ठ शक्ति रहती है ॥ ४८ ॥ ललाट के अपर भाग में बिंदुमयी शक्ति रहती है; बिंदु के मध्य में जीवात्मा सूक्ष्म रूप से वास करता है ॥ ४९ ॥ हृदय में स्थूल रूप से और शरीर के मध्य (मेरुदण्ड) में मध्यम रूप से रहता है ॥ ५० ॥

प्राण और अपान के वश हो जीव नीचे और ऊपर बाएँ और दाहिने मार्ग से दौड़ता रहता है परन्तु चंचलता के कारण दीखता नहीं ॥ ५१ ॥ हाथ के आघात से गेंद जैसी उछलती रहती है वैसे ही प्राण और अपान के आघात से जीव को विश्रान्ति नहीं मिलती ॥५२॥ अपान प्राण को खींचता है और प्राण अपान को; हकार से बाहर आता है और सकार से भीतर जाता है ॥ ५३ ॥ इस प्रकार 'हंस-हंस' यह मंत्र जीव सर्वदा जपता रहता है। उसी को जो विद्वान् अजर और नित्य समझता है वही सच्चा विद्वान है ॥ ५४ ॥ कन्द के ऊर्ध्व भाग में कुण्डली शक्ति रही हुई है; योगियों को वह मुक्ति देती है और मूढ़ लोगों को बंधन में रखती है। जो उसको जानता है वही योग को जानता है ॥ ५५ ॥ भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक तथा चन्द्र, सूर्य, अग्नि आदि देवता यह जिसकी मात्रा में रहते हैं वह परमज्योति ॐ है ॥५६॥ तीन काल, तीन देवता, तीन लोक, तीन स्वर, तीन वेद जिसमें स्थित हैं वह परं ज्योति ॐ है ॥ ५७ ॥ चित्त चलता है तब संसार है, वह निश्चल हो जाय उसीको मोक्ष कहते हैं। इसलिये, हे ब्रह्मा, दृढ़ बुद्धिपूर्वक चित्त को स्थिर करना चाहिये ॥ ५८ ॥ विषयों का कारण चित्त है, चित्तके होने ही से तीन लोक हैं; उसके क्षीण होने से जगत का क्षय हो जाता है, इसका ठीक ठीक विचार कर ॥ ५९ ॥ मन या अहंकार आकाश के समान विशाल है मन या अहंकार सर्वतोमुख है मन या अहंकार ही सब का आत्मा है जहां मन नहीं है वहां केवल परमब्रह्म

हैं ॥ ६० ॥ कर्मों से मन उत्पन्न होता है और मन ही पातकों से लेपायमान होता है; मनही यदि उन्मन होजाय तो न पुण्य है न पाप ॥ ६१ ॥ मन से मन को देखकर जब वृत्ति शून्य हो जाय तो परम दुर्लभ ऐसे परब्रह्म का दर्शन हो जाता है ॥ ६२ ॥ योगी मन से मनको देखकर मुक्त हो जाता है, मन से मनको देखकर उन्मनी के अन्त स्वरूप का सदा स्मरण करे ॥ ६३ ॥

मन से मनको देखकर सदा योगनिष्ठ रहना चाहिये। मनसे मन को देखने से दस अनुभव प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥ जब ये अनुभव आजाय तब वह योगीश्वर हो जाता है ॥ ६५ ॥ बिन्दु, नाद, कला, ज्योति, सूर्य, चन्द्र, ध्रुव, तारका, शान्त और शान्तातीत यह शान्तातीत ही परब्रह्म है ॥ ६६ ॥ (यह अनुभव प्राप्त होने के) पश्चात् योगी हंसता है प्रसन्न होता है, प्रेम से क्रीड़ा करता है और सुखी होता है। अनुभव युक्त बुद्धि से जीवन व्यतीत करता है, सब ओरसे भय रखता है यानी विषयों से दूर रहता है ॥६७॥ शोक के समय वह नियम से तथा बुद्धिमानी से रहता है और सम्पदा प्राप्त होने से वह मोह में नहीं गिरता। शत्रुता के कार्य में कांपता है और काम की उपेक्षा करते हुए उसमें रमण नहीं करता ॥६८॥ चित्त काममें रत है ऐसा स्मरण रखकर उसको शरीर में जानता है क्योंकि जहां प्राण रहता है वहीं चित्त अवश्य रहता है ॥ ६९ ॥ मन चन्द्र है, रवि प्राण है और दृष्टि (इन्द्रिय) अग्नि है। हे ब्रह्मा, बिन्दु, नाद और कला ये; विष्णु, ब्रह्मा और शंकर ये तीन देवता हैं ॥ ७० ॥ सदा नाद का अनुसन्धान करने से

वासना क्षीण हो जाती है, तब हे ब्रह्मा, प्राण निरंजन (तम रहित) मनमें लीन हो जाते हैं ॥ ७१ ॥ जो नाद है वह ही बिन्दु है और जो बिन्दु है उसी को चित्त कहते हैं; नाद बिन्दु और चित्त तीनों से एकता प्राप्त कर ले ॥ ७२ ॥ मन ही बिन्दु है. वही उत्पत्ति स्थिति का कारण है; जैसे दूध से घी उत्पन्न होता है, वैसे मनसे बिंदु उत्पन्न होता है ॥ ७३ ॥ छःओं चक्रोंको जानकर सुख रूप मण्डल में प्रवेश करे। प्राण को खींच कर प्रवेश करे और उसको ऊर्ध्व चढ़ावे ॥ ७४ ॥ प्राण, बिंदु, चक्र और चित्त इनका अभ्यास करे एक ही समाधि से योगी समता रूप अमृत को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ७५ ॥ काष्ठ में रही हुई अग्नि जिस प्रकार बिना मथन के निकलती नहीं, वैसे ही अभ्यास के बिना ज्ञानदीप भी प्रज्वलित नहीं होता ॥ ७६ ॥ जैसे घड़े में रखा हुआ दीप घट के बाहर नहीं प्रकाशता और उससे भिन्न ऐसे घट में दीप की ज्वाला भासती है ॥ ७७ ॥ उसी प्रकार उसके शरीर को घट कहते हैं और जीव उसका स्थान हैं और गुरु के उपदेश के प्राप्त होने से ब्रह्मज्ञान प्रकाशने लगता हैं ॥ ७८ ॥ मल्लाह रूप गुरु को प्राप्त करके उसके वचन का नौका के समान दृढ़ आश्रय करके, अभ्यास और वासना शक्ति के बल से मनुष्य भवसागर को तैर जाते हैं ॥ ७९ ॥ इति छठा अध्याय।

॥ इति योग शिखोपनिषत् समाप्त ॥

पैङ्गलोपनिषत् ।

[४०]

पैङ्गल ऋषि याज्ञवल्क्य के यहां गये। वारह संवत्सर उनकी सेवा सुश्रुषा करने के पश्चात् पैङ्गल ऋषि बोले, 'परम गूढ़ कैवल्य का मुझे उपदेश दीजिये।' याज्ञवल्क्य बोले, हे सोम्य यह संसार पहले सत् ही था। वही नित्यमुक्त अविक्रिय, सत्य, ज्ञान और आनन्द स्वरूप, परिपूर्ण, सनातन अद्वितीय केवल एक ऐसा ब्रह्म है। उसमें मरुभूमि में जल के समान अथवा सीपी में चांदी के समान अथवा स्थाणु में पुरुष के समान अथवा स्फटिक में रेखा के समान लाल श्वेत और काले गुण वाली परन्तु जिसमें यह तीनों गुण साम्य अवस्था में हैं ऐसी अनिर्वचनीय मूल प्रकृति हुई। उसमें प्रतिविंवित हुआ वह साक्षी चैतन्य हुआ। फिर वह ('मूल प्रकृति') विकृति को प्राप्त होकर सत्व गुण वाली आवरण शक्ति हुई, इसीको अव्यक्त कहते हैं। उसीमें जो प्रतिविंव पड़ा वह ईश्वर चैतन्य हुआ। वह सर्वज्ञ है, माया उसके अधीन है वह सृष्टि स्थिति और प्रलय का आदि कर्ता है, वही जगत का अंकुर है। अपने में छिपा हुआ सकल जगत वह उत्पन्न करता है। प्राणियों के कर्मानुसार जिस प्रकार वह विश्व पट फैलाता है, उन प्राणियों के कर्मों का क्षय हो जाने से वह उसको उसी प्रकार समेट लेता है। तव उसीमें अखिल विश्व लपेटे हुए वस्त्र के

समान रहता है। ईश्वर में अधिष्ठित आवरण शक्ति से रजोगुण मयी विक्षेप शक्ति होती है उसको महत् कहते हैं। उसमें प्रतिबिंबित चैतन्य हिरण्यगर्भ चैतन्य कहा जाता है। वह महत्तत्व का अभिमानी है और उसका शरीर कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट होता है। हिरण्यगर्भ में रही हुई विक्षेप शक्ति से तमोगुण वृद्धि वाली अहंकार नामक स्थूल शक्ति होती है। उसमें प्रतिबिंबित जो चैतन्य है वह विराट् चैतन्य हुआ। उसका अभिमानी स्पष्ट शरीर वाला सर्व स्थूल जगत का पालन कर्ता प्रधान पुरुष विष्णु होता है। उस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ; आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी उत्पन्न हुई। यह पंचतन्मात्र तीनों गुणों वाले होते हैं। जगत्कर्ता को सृष्टि करने की इच्छा हुई तब उसने तमोगुण का अंगीकार करके सूक्ष्मतन्मात्राओं को स्थूल भूतों में परिणत करने की इच्छा की। उत्पन्न किये हुए परिमित भूतों में से हर एक को आधा करके हर आधे के पुनः चार भाग किये। प्रति अर्ध भाग के साथ अन्य भूतोंके आधेके चौथे भाग मिलाके भूतोंका पंचीकरण किया और इन पंचीकृत भूतों से अनंत कोटि ब्रह्माण्ड, उन उन ब्रह्माण्डों के उचित चौदह भुवन और उन उन भुवनों के उचित इन्द्रिय वाले स्थूल शरीर उसने उत्पन्न किये। पंच भूतों के रजोगुण के अंश के उसने चार विभाग किये इनके तीन भागों से पाँच प्रकार के प्राण उत्पन्न किये और चौथे भाग से कर्मेन्द्रियों को उत्पन्न किया। भूतों के सत्वांश के चार भाग कर

के उनमें से तीन भागों से पांच वृत्ति वाला समष्टि अंतःकरण उत्पन्न किया और चौथे सत्वगुण के अंश से ज्ञानेन्द्रियां उत्पन्न कीं। सत्वगुण के समष्टि से इन्द्रियों के देवता उत्पन्न किये। उनको उत्पन्न करके उसने ब्रह्माण्डों में स्थापित कर दिये और उसकी आज्ञा से वे समस्त ब्रह्माण्ड को व्याप करके स्थित हुए उसकी आज्ञा से अहंकार से युक्त विराट स्थूलों की रक्षा करने लगा। हिरण्यगर्भ उसकी आज्ञा से सूक्ष्म सृष्टियों की पालना करने लगा। ब्रह्माण्ड में स्थित वे सब उसके बिना चल न सके। न कुछ चेष्टा कर सके। उसको सचेतन करने की उसने इच्छा की और समस्त व्यष्टि का मस्तक विदीरण करके उसने ब्रह्माण्डों में और ब्रह्मरन्ध्रों में प्रवेश किया, तब वे सब जड़ होते हुए भी चेतन के समान सब प्रकार के काम करने लगे। सर्वज्ञ ईश्वर माया के अंश से युक्त होकर व्यष्टि शरीर में प्रवेश करके माया से मोहित होकर जीव भाव को प्राप्त हुआ। तीनों शरीरों से तादात्म्य को प्राप्त करके वह कर्ता भोक्ता बन गया। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्छा और मरण इन धर्मों से युक्त होकर बहुत दुख को प्राप्त करता है, घटियंत्र के समान अथवा कुम्हार के चक्र के समान जन्म मरण के फेरे में फिरा करता है।

॥ इति प्रथम अध्याय ॥

पैङ्गल ऋषि ने पुनः याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया कि 'सब लोकों की सृष्टि स्थिति और संहार करने वाला उसका प्रभु ऐसा

ईश्वर जीव भाव को किस प्रकार प्राप्त हुआ ?' याज्ञवल्क्य ने कहा; स्थूल, सूक्ष्म और कारण देहों की उत्पत्ति सहित जीव के और ईश्वर के स्वरूप का विवेचन करके तुमसे कहता हूँ, सावधानता पूर्वक एकाग्रता से श्रवण कर। पंचीकृत महाभूतों के अंश को ग्रहण करके व्यष्टि और समष्टि के स्थूल शरीरों को ईश्वर ने क्रमशः उत्पन्न किया। कपाल, चर्म, आंतें, हड्डी, मांस और नख ये पांच पृथिवी के अंश हैं। रुधिर, मूत्र, लार, पसीना आदि जल के अंश हैं। भूख, प्यास, उष्णता, मोह, मैथुन आदि अग्नि के अंश हैं। चलना, उठना, सांस लेना आदि वायु के अंश हैं। काम, क्रोध आदि आकाश के अंश हैं। इन सबका संघात रूप, कर्म से बना हुआ, त्वचा आदि इन्द्रियों से युक्त बाल्य आदि अवस्थाओं के अभिमान का आधार भूत और नाना प्रकार के दोषों से युक्त ऐसा यह स्थूल शरीर है।

पश्चात् अपंचीकृत महाभूतों के समष्टि रजोगुण के तीन अंश से प्राण उत्पन्न किये। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान यह पांच प्रकार के प्राण हैं। नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय ये उप प्राण हैं। हृदय, मुख, नाभि, कंठ और सर्व शरीर यह उनके स्थान हैं। आकाशादि के रजोगुण के चतुर्थ अंश से उसने कर्मेन्द्रिय उत्पन्न किये। वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं। बोलना, ग्रहण करना, चलना, मल विसर्जन करना और आनन्द यह उनके विषय हैं। इस प्रकार पंच महाभूतों के सत्व गुणी तीन अंश के समष्टि से उसने अन्तःकरण

उत्पन्न किया। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और अन्तःकरण उसकी वृत्तियां हैं। संकल्प, निश्चय, स्मरण, अभिमान और अनुसंधान उसके विषय हैं। गला, मुख, नाभि, हृदय और भ्रूमध्य उनके स्थान हैं। भूतों के सत्वगुणी चतुर्थ अंश से ज्ञानेन्द्रियां उत्पन्न कीं। श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जीभ और नाक यह पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध उनके विषय हैं। दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, यम, चन्द्र, विष्णु, चतुर्मुखी ब्रह्मा और शंकर—यह इन्द्रियों और अंतःकरण के अधिपति हैं।

अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय यह पांच कोश हैं। अन्न के रस से उत्पन्न हुआ, अन्न रस से ही बढ़ने वाला और अन्नरस मय पृथ्वी में जो लय को प्राप्त होता है वह अन्नमय कोश है। यही स्थूल शरीर है। कर्मेन्द्रियों के सहित पांच प्राणों का प्राणमय कोश होता है। ज्ञानेन्द्रियों के सहित मन लेने से मनोमय कोश और ज्ञानेन्द्रियों के साथ बुद्धि लेने से विज्ञानमय कोश होता है। यह तीन कोश वाला लिंग शरीर है। स्वरूप का जिसमें अज्ञान होता है वह आनन्दमय कोश है। यही कारण शरीर है। ज्ञानेन्द्रिय पंचक, कर्मेन्द्रिय पंचक, प्राणादि पंचक, पंच महाभूत, अन्तःकरण चतुष्टय, काम, कर्म और अविद्या इनको पुर्यष्टका कहते हैं। ईश्वर की आज्ञा से विराट ने व्यष्टि देह में प्रवेश किया और बुद्धि में रह कर विश्व संज्ञा को प्राप्त

हुआ। विज्ञानात्मा, चिदाभास, विश्व, व्यवहारिक, जाग्रत अवस्था के स्थूल देह का अभिमानी और कर्मभू यह विश्व के नाम हैं। ईश्वर की आज्ञा से सूत्रात्मा मन के अधिष्ठान में व्यष्टि सूक्ष्म शरीर को प्राप्त होकर तैजस् हुआ। तैजस्, प्रातिभासिक, स्वप्न कल्पित—यह तैजस के नाम हैं। ईश्वर की आज्ञा से माया की उपाधि वाला अव्यक्त से युक्त हुआ व्यष्टि के कारण शरीर में प्रवेश करके 'प्राज्ञ' संज्ञा को प्राप्त हुआ। प्राज्ञ अविच्छिन्न, पारमार्थिक, सुषुप्ति का अभिमानी—यह प्राज्ञ के नाम हैं। अव्यक्त के अंश रूप अज्ञान से आच्छादित हुए परमार्थिक जीव की 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य ब्रह्म से एकता बताते हैं न कि व्यावहारिक या प्रातिभासक की ब्रह्म से। अंतःकरण में जो प्रतिबिंबित चैतन्य है वही अवस्थात्रय को प्राप्त होता है। वह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्था को प्राप्त होता है। यह जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होकर घटी यंत्र के समान दुखी होता है और मृत के समान हो रहता है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्छा और मरण यह पांच अवस्था हैं।

अपने अपने देवताओं के अंश से युक्त होकर श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियां शब्दादि विषयों का ग्रहण जिस अवस्था में करती हैं वह जाग्रत अवस्था है। उस अवस्था में जीव भ्रूमध्य में रहकर मस्तक से लेकर चरण तक व्याप्त करके खेती और श्रवणादि यानी कर्मेंद्रिय तथा ज्ञानेंद्रियों के समस्त कर्म करता है; और उन उन कर्मों के फल का भोगने वाला होता है। वही परलोक

में जाकर अपने कर्मों के फल भोगता है। वह सार्वभौम राजा के समान व्यवहार से श्रमित होकर अंतर्गृह में प्रवेश करने की इच्छा से मार्ग में ठहरता है। इन्द्रियों की क्रिया बन्द होने पर जाग्रत अवस्था के संस्कारों से उपस्थित हुई प्रबोध अवस्था में विषय विषयी रूप जो स्फुरणा होती है वह स्वप्नावस्था है। उस अवस्था में जागृति के व्यवहार का लोप कर विश्व नामा जीव नाड़ी मध्य में विचरण करता हुआ तैजस् के भावको प्राप्त होता है और अपनी वासना के अनुरूप विचित्र सृष्टि अपने आभास से भासित करता है और स्वयं ही अपनी इच्छानुसार भोग भोगता है।

जिसमें चित्त ही एक कारण होता है उस अवस्था को सुषुप्ति कहते हैं। भ्रमण करके थका हुआ पक्षी जिस प्रकार पंख समेट कर घोंसले की ओर जाता है वैसे ही जाग्रत स्वप्न के प्रपंच के व्यवहार से थका हुआ जीव भी अज्ञान में प्रवेश करके स्वानंद का भोग करता है।

अकस्मात् दण्ड या मुद्गर से ताडन किये हुए मनुष्य के समान भय और अज्ञान से जिसमें सब इन्द्रियां कांप रही हों ऐसी मृत तुल्य अवस्था मूर्छा है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और मूर्छा इन अवस्थाओं से भिन्न कीट से लेकर ब्रह्मा तक सब जीवों को भय देने वाली स्थूल देह का नाश करने वाली मरण अवस्था है। कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, उनके विषय (तन्मात्राएं) और प्राण इन

सबको संकलित करके काम और कर्म से युक्त हुआ और अविद्या से वेष्टित हुआ जीव अन्य देह को प्राप्त करके परलोक को जाता है। पूर्व कर्मों के फल के विपाक से भंवर में फँसे हुए कीट के समान शान्ति को प्राप्त नहीं होता। सत्कर्मों के परिपाक से बहुत जन्मों के पश्चात् मनुष्य को मोक्ष की इच्छा होती है तब सद्गुरु का आश्रय कर और उनकी चिरकाल सेवा करके वह बंध से मोक्ष पाता है। अविचार से बंध है। विचार से मोक्ष होता है इसलिये सदा विचार करे। अध्यारोप और अपवाद से स्वरूप का निश्चय किया जा सकता है इसलिये जगत, जीव और ईश्वर के जीव भाव और (जगत के) भाव का बाध करने से अपने प्रत्यगात्मा से अभिन्न ऐसा ब्रह्म ही शेष रहता है इस प्रकार सदा विचार करते रहना चाहिये।

॥ इति द्वितीय अध्याय ॥

पश्चात् पैङ्गल ऋषि ने याज्ञवल्क्य ऋषि से कहा, 'मुझे महावाक्यों का विवरण सुनाइये'। याज्ञवल्क्य बोले, 'तत्त्वमसि' (वह तू है) त्वं तदसि (तू वह है) त्वं ब्रह्मासि (तू ब्रह्म है), अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूँ), इस प्रकार महावाक्य का अनुसंधान करना चाहिये। 'तत्त्वमसि' महावाक्य में सर्वज्ञता आदि लक्षणों से युक्त माया की उपाधि वाला, सत्, चित् और आनन्द स्वरूप, जगत का कारण ऐसा अव्यक्त ईश्वर 'तत्' पद का वाच्य है। वही अन्तःकरण की उपाधि के कारण भिन्नता से बोध करता हुआ 'मैं' शब्द का प्रयोग करने वाला

जीव 'त्वम्' पद का वाच्य है। ईश्वर और जीव की उपाधियां जो माया और अविद्या है, उनको छोड़ कर जो 'तत्' और 'त्वम्' पद का लक्ष्य होता है वह अपने प्रत्यगात्मा से अभिन्न ऐसा ब्रह्म है। 'तत्त्वमसि' (वह तू है) और 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूं) इन महावाक्यों का विचार करना श्रवण है। एकान्त में बैठ कर श्रवण किये हुए वाक्यों का जो लक्ष्यार्थ है उसका अनुसंधान करना मनन है। श्रवण और मनन द्वारा सुनिर्णीत अर्थ स्वरूप जो वस्तु है, उसमें एकाग्रता पूर्वक चित्त की स्थापना करना निदिध्यासन है। ध्याता ध्यान के भाव को छोड़ कर वात रहित स्थान में रहे हुए दीप की ज्योति के समान, केवल ध्येय के आकार वाली चित्त की अवस्था को समाधि कहते हैं। उस अवस्था में वृत्तियां केवल आत्माकार ही होती हैं परन्तु जानी नहीं जातीं, पश्चात् उनका स्मृति से अनुमान किया जाता है। इस अवस्था में आत्माकार वृत्ति द्वारा अनादि संसार में संचय किये हुए अनंत कर्म नष्ट हो जाते हैं, पश्चात् अभ्यास में प्रवीणता प्राप्त होने पर सदा अमृत की सहस्रों धारा बरसती है इसलिये योगी लोग इसको धर्म मेघ समाधि कहते हैं। इस धर्म मेघ समाधि द्वारा समस्त वासनाओं का जाल कट जाता है, पुण्य पाप रूप संचित कर्म समूल नष्ट हो जाते हैं और 'तत्त्वमसि' महावाक्य का बोध जो पहिले परोक्ष होता था सो अब हथेली में रखे हुए आंवले के समान वह वाक्य स्पष्टतया

बिना किसी अवरोध के, ब्रह्म के अपरोक्ष अनुभव को कराता है, तब योगी जीवन्मुक्त होता है ।

ईश्वर ने पंचीकृत भूतों को अपंचीकृत करने की इच्छा की। ब्रह्माण्ड तथा उसमें रहे हुए कार्य रूप लोक उसने उनके कारण भाव को प्राप्त कर दिये। पश्चात् सूक्ष्म कर्मेन्द्रिय, प्राण, ज्ञानेन्द्रिय और अन्तःकरण चतुष्टय, इन सबको एकत्रित करके सब भौतिक पदार्थों को उनके कारण भूत पंचक में मिलाकर भूमि जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहंकार में, अहंकार महत् में, महत् अव्यक्त में और अव्यक्त पुरुष में इस क्रम से लय किया। विराट, हिरण्यगर्भ और ईश्वर की उपाधियां नष्ट हो जाने से वे परमात्मा में विलीन होजाते हैं। पंचीकृत महाभूतों से बना हुआ कर्मों द्वारा प्राप्त होने वाला स्थूल शरीर कर्मों के (असत् कर्मों के) चय से और सत्कर्मों के परिपाक से अपञ्चीकृत होकर सूक्ष्म में संमिलित होता है और कारण रूप को प्राप्त होकर कारण के कारण रूप कूटस्थ प्रत्यगात्मा में विलीन हो जाता है। विश्व तैजस् और प्राज्ञ अपंची २ उपाधियों के लय होने से प्रत्यगात्मा में लीन हो जाते हैं। ज्ञान रूपी अग्नि से दग्ध होनेके कारण ब्रह्माण्ड उसके कारणरूप अविद्या के साथ परमात्मामें लीन होजाता है इसलिये ब्रह्मरत पुरुष (ब्राह्मण) समाहित होकर हमेशा 'तत्' और 'त्वम्' पदका ऐक्य किया करे। ऐसा करने से मेघ के दूर होने से जैसे सूर्य प्रकाशता है वैसे आत्मा का साक्षात्कार होता है।

घड़े में रहे हुए दीपक के समान शरीर में रहने वाले निर्धूम ज्योतिरूप अंगुष्ठमात्र आत्मा का ध्यान करें ॥ १ ॥ भीतर रहे हुए प्रकाशमान कूटस्थ अव्यय आत्मा का जो मुनि नींद आवे तब तक तथा मृत्यु को प्राप्त हो तब तक ध्यान करता रहता है ॥ २ ॥ उसको जीवन्मुक्त समझना चाहिये। वह धन्य है, कृतकृत्य है। जीवन्मुक्त पद का त्याग कर अपने देह को काल के वश करने के पश्चात् यह विदेह मुक्ति को प्राप्त होता है जैसे पवन का बहना बंद हो जाय ॥ ३ ॥ पश्चात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध से रहित, अव्यय नित्य, अनादि, अनंत, महत् से पर और शाश्वत ऐसा वही निर्विकार शुद्ध ब्रह्म रह जाता है ॥ ४ ॥

॥ इति तृतीय अध्याय ॥

पुनः पैङ्गल ऋषि ने याज्ञवल्क्य से पूछा, 'ज्ञानियों के कर्म कैसे होते हैं और उनकी स्थिति कैसी होती है'। याज्ञवल्क्य बोले, अमानित्वादि साधन संपन्न मुमुक्षु इक्कीस कुल को तारता है। ब्रह्म को जानने मात्र ही से एक सौ एक कुल को तारता है। आत्मा को रथी जान और शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी और मन को लगाम जान ॥ १ ॥ इन्द्रियों को अश्व कहते हैं, विषय उनके मार्ग हैं और विद्वान् पुरुष के हृदय मानो उड़ते वाले विमान हैं ॥ २ ॥ इन्द्रिय और मन से युक्त आत्मा ही भोक्ता है ऐसा महान ऋषि लोग कहते हैं, इसलिये हृदय में साक्षात्

नारायण ही निवास करता है ॥ ३ ॥ सांप की केंचुली के समान प्रारब्ध कर्म क्षय होने तक व्यवहार करता है। जो देही चन्द्र के समान चलता रहता है वह मुक्त है, अनिकेतन (त्यागी) है ॥ ४ ॥ वह तीर्थ स्थान में या चाण्डाल के घर देह छोड़े, कैवल्य ही को प्राप्त होता है; प्राणों को त्याग कर वह कैवल्य को प्राप्त होता है। उसके देह को चाहे जंगल में फेंक दिया जाय या गाड़ दिया जाय। संन्यास पुरुष के लिये कहा है अन्य के लिये नहीं ॥ ५ ॥ ब्रह्मीभूत संन्यासी के लिये न सूतक रखना चाहिये, न उसको दाह देना चाहिये, न पिण्ड तर्पण करना चाहिये, न श्राद्ध ॥ ६ ॥ जैसे पके हुए को फिर से नहीं पकाया जाता, जले हुए को जलाया नहीं जाता, वैसे ही जिसका देह ज्ञानाग्नि से जला हुआ है उसका न श्राद्ध होता है न क्रिया ॥ ७ ॥ जब तक उपाधि का नाश न हो तब तक गुरु की सेवा करनी चाहिये और गुरु के समान उनकी स्त्री तथा पुत्रों के साथ वर्ताव करना चाहिये ॥८॥ जब "शुद्ध मन वाला, शुद्ध चैतन्यरूप सहिष्णु मैं हूँ, मैं ही सहिष्णु हूँ," इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त होने पर, ज्ञान से अनुभव स्वरूप ज्ञेयरूप परमात्मा हृदय में भली प्रकार आरूढ होजाय और देह शांतिपद को प्राप्त होजाय, तब वह मन और बुद्धि से रहित चैतन्य रूप होजाता है। अमृत से तृप्त हुए पुरुष को जल से क्या प्रयोजन ? उसी प्रकार अपने आत्माको जानने के पश्चात् वेदों से क्या प्रयोजन हो सकता है ? ज्ञानामृत से तृप्त हुए योगी को कुछ भी कर्तव्य नहीं रहता और यदि कर्तव्य है तो वह ज्ञानी

भी नहीं है। दूर स्थित होने पर भी वह दूर नहीं है और पिण्ड में स्थित हुए भी वह पिण्ड से भिन्न ऐसा प्रत्यगात्मा सर्वव्यापी है। हृदय को निर्मल करके और निरंजन का चिंतवन करके 'सर्व रूप ब्रह्म मैं हूँ परम सुख रूप ब्रह्म मैं हूँ' ऐसा जाने ॥ ९ ॥ जिस प्रकार जलमें जल, दूध में दूध और घी में घी डालने से एक रूप होजाता है वैसे ही जीवात्मा और परमात्मा एक रूप होजाते हैं ॥ १० ॥ ज्ञानसे देह दग्ध होने के पश्चात् जब बुद्धि अखंडाकार रूप होजाती है तब बुद्धिमान पुरुष ज्ञानाग्नि से कर्म बन्ध को दग्ध करता है। पश्चात् शुद्ध वस्त्र के समान, पवित्र, अद्वैत रूप परमात्मा में प्राप्त होकर, जैसे जल में जल मिल कर एक रूप होजाता है, वैसे ही वह उपाधिरहित अपने स्वरूपमें स्थित होजाता है ॥ ११ ॥ आत्मा आकाशके समान सूक्ष्म है तथा वायुके समान अदृश्य है। आत्मा बाह्य और आभ्यंतरमें निश्चल है और वह ज्ञान दीप से ही दीखता है ॥ १२ ॥ ज्ञानी कहीं भी और कैसे भी मरे जैसे आकाश सब स्थान पर है वैसा ब्रह्म सर्व व्यापक होने से ज्ञानी उसी स्थान पर ब्रह्म में विलीन होजाता है ॥ १३ ॥ आकाश में घटाकाश के समान जो अपना तत्त्व से लय जान लेता है वह सब ओर से निरालंब और ज्ञान स्वरूप ब्रह्म का प्रकाश पाता है ॥१४॥ यदि मनुष्य एक पाद पर स्थित होकर सहस्र वर्ष तक तपस्या करे तो भी वह ध्यान योग की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है॥ १५ ॥ जितना ज्ञान है और जितना ज्ञेय है उस सबको यदि कोई जानना चाहे तो सहस्र वर्षों में भी शास्त्रों का अन्त नहीं

पावेगा ॥१६॥ जानने योग्य एक केवल अक्षर परब्रह्म है और दूसरी यह जानने योग्य बात है कि मनुष्य का जीवन चंचल है, इसलिये शास्त्रों के आडंबर को छोड़ कर, जो सत्य है उसकी उपासना करो ॥१७॥ नाना प्रकार के कर्म, शौच, जप, यज्ञ, तीर्थ यात्रा; सब कुछ वहीं तक है जहां तक तत्त्व की प्राप्ति न हुई हो ॥ १८ ॥ "मैं ब्रह्म हूँ" यह भाव ही महात्माओं के मोक्ष का हेतु है। बन्ध और मोक्ष के लिये दो ही शब्द हैं, एक 'मेरा नहीं' और दूसरा 'मेरा' ॥ १९ ॥ मेरा कहने ही से बन्धन होता है और 'मेरा' को त्यागने ही से मोक्ष होता है। मन जब उन्मनी भाव को प्राप्त होता है तब द्वैतभाव नहीं रहता ॥ २० ॥ उन्मनी भाव का प्राप्त होना ही परमपद है; उन्मनी अवस्था में जहां जहां मन जाय वहीं पर परमपद है ॥ २१ ॥ सर्वत्र अवस्थित परब्रह्म ही है। जैसे आकाश में कोई घूँसा मारे या भूख लगने पर धान के बदले भूसी कूटे (उसके ये व्यवसाय जैसे निरर्थक होते हैं) ॥२२॥ उसी प्रकार जो 'मैं ब्रह्म हूँ' इस बात को नहीं जानता उसका मोक्ष नहीं होता।

जो इस उपनिषत् को नित्य पढ़ता है वह अग्नि, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, और शंकर के समान पवित्र हो जाता है उसको सब तीर्थों में स्नान करने का फल मिलता है, उसको सब वेदों के अध्ययन का फल मिलता है और सब वेद विहित व्रत आचरण करने का फल प्राप्त होता है। उसको इतिहास पुराण आदि पढ़ने का तथा रुद्र का लाखों जप करने का और

दस हजार प्रणव के जप का फल मिलता है। उसकी आगे की और पीछे की दस दस पीढ़ियां पवित्र हो जाती हैं, और वह अपने साथ बैठने वालों को पावन करता है। वह महान होता है ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्ण की चोरी, गुरु स्त्री गमन तथा ऐसे पाप करने वाले से संगति रखने के पाप से वह मुक्त हो जाता है।

आंख जैसे समस्त आकाश को देखती है वैसे ही विद्वान् ब्राह्मण विष्णु पद को स्पष्ट देखता है, वे सदा खुली आंख से उसे देखते हुए उस विष्णु पद की स्तुति कर उसको प्रकाश करते हैं। ॐ सत्य है, यह उपनिषत् है।

॥ इति पैङ्गलोपनिषत् समाप्त ॥

शाण्डिल्योपनिषत् ।

[४१]

शाण्डिल्य ने अथर्वा से कहा, 'आत्म प्राप्ति के लिये साधन रूप ऐसे अष्टांग योगका मुझे उपदेश दीजिये' अथर्वा ने उत्तर दिया, हे शाण्डिल्य यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि,—ये योग के आठ अंग हैं। योग में यम दस हैं, और उतने ही नियम हैं। आसन आठ हैं। प्राणायाम तीन हैं। प्रत्याहार पांच हैं और उतनी ही धारणाएं हैं। ध्यान दो प्रकार का है और समाधि एक ही है। इसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, जप, क्षमा, धृति, मिताहार और शौच—यह दस यम हैं। मन वचन और कर्म से किसी भूत प्राणी को किसी समय क्लेश पहुँचाना हिंसा है (इससे विपरीत अहिंसा है) मन, वचन और कर्म से सब भूत प्राणियों के हित के अर्थ यथार्थ भाषण करना सत्य कहलाता है। मन, वचन और कर्म से दूसरे के धन के लिये निस्पृह रहना अस्तेय है। मन, वचन और कर्म द्वारा सर्वदा सर्वत्र मैथुन का त्याग ब्रह्मचर्य कहा जाता है। सर्व भूत प्राणियों में सदा अनुग्रह (प्रेम) रखना दया है। कोई विहित आचरण करे या कोई अविहित आचरण करे उनके प्रवृत्ति निवृत्ति में सदा समान रहना, इसको आर्जव कहते हैं। कोई प्रिय हो या अप्रिय हो उन सबके सत्कार या तिरस्कार

को सहन करना क्षमा कही जाती है। अर्थ की हानि होने पर अथवा इष्ट मित्र का वियोग होने पर अथवा इनकी प्राप्ति होने पर मन को स्थिर रखना, इसको धृति कहते हैं। चौथाई पेट खाली रखकर स्निग्ध (चिकना) और मधुर आहार करना मिताहार कहा जाता है। बाह्य और आभ्यंतर मिलकर दो प्रकार का शौच होता है; मृत्तिका और जल से बाह्य शौच होता है और मन को शुद्ध करना आंतर शौच है, वह अध्यात्म ज्ञान से प्राप्त होता है ॥ १ ॥

तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, ईश्वरपूजा, सिद्धांत श्रवण, लज्जा, मति, जप और व्रत—ये दस नियम हैं। विधि के अनुसार कृच्छ चांद्रायणादि द्वारा शरीर को क्षीण करना तप है। जो कुछ सहज प्राप्त हो उसीमें आनन्द मानना संतोष है। वेद में कहे हुए धर्म और अधर्म के निर्णय में विश्वास रखना यह आस्तिक्य है। न्याय से उपार्जित धन और धान्य, जिसको आवश्यकता हो उसको, श्रद्धा पूर्वक देने का नाम दान है। प्रसन्नता पूर्वक और यथाशक्ति विष्णु शिव आदि देवताओं का पूजन करना वही ईश्वर पूजन कहा है। वेदांत वाक्यों के अर्थ का विचार करना यह श्रवण है। वेद वचन के अनुसार अथवा लौकिक रीति के अनुसार जो कर्म बुरे माने गये हैं, उनके करनेमें लज्जा रखने को लज्जा कहते हैं। वेद विहित मार्गमें श्रद्धा रखने का नाम मति है। वेद से विरुद्ध न हो ऐसे मंत्रका गुरुसे उपदेश लेकर उसका बारंबार उच्चारण करने को जप कहते हैं। जप दो

प्रकार का होता है; वाचिक और मानस। मन से ध्यान पूर्वक जप करते है उसको मानस जप कहते हैं। वाचिक जप दो प्रकार से होता है; उच्च ध्वनि से और धीरे स्वर से। मंत्र का उच्च ध्वनि से उच्चारण करने से यथोक्त फल होता है, धीरे स्वर से मंत्र जपने से सहस्र गुणा और मन ही मन जाप करने से कोटि गुणा फल होता है। वेदोक्त विधि निषेध का नित्य अनुष्ठान करना व्रत है ॥ २ ॥

स्वस्तिकासन, गोमुखासन, पद्मासन, वीरासन, सिंहासन, भद्रासन, मुक्तासन और मयूरासन—ये आठ आसन हैं। घोंटू और जांघ के बीच में पैर के तलुए रखकर सीधे बैठना उसको [illegible] कहते हैं ॥ १ ॥ पीठ के पीछे बाईं ओर दाहिने पैर की एड़ी और दाहिनी ओर बाएं पैर की एड़ी लगाकर दोनों हाथों से परस्पर अंगूठे पकड़ कर गोमुखाकार बनाकर बैठने से गोमुखासन होता है ॥ २ ॥ बाईं जांघ पर दाहिने पैर का तलुआ और दाहिनी जांघ पर बाएं पैर का तलुआ रखकर बैठने से, हे शाण्डिल्य, सबको पूजनीय ऐसा पद्मासन हो जाता है ॥ ३ ॥ बाईं जांघ पर दाहिना पैर और दाहिनी जांघ पर बायां पैर रखने से वीरासन होता है ॥ ४ ॥ दाहिनी जांघ में बाईं एड़ी और बाईं जांघ में दाहिनी एड़ी लगाकर हाथ घोंटू पर रखते हुए हाथ की उंगलियां पसार रखे ॥ ५ ॥ और मुख फाड़कर दृष्टि नासिकाग्र रखे—इस प्रकार सावधान बैठने से योगियों को पूजनीय ऐसा सिंहासन हो जाता है ॥ ६ ॥ बायां पैर गुदा और

लिंग के बीच में लगाकर दाहिना पैर लिंग के ऊपर लगावे और भ्रूमध्य में ध्यान लगावे, इसको सिद्धासन कहते हैं ॥ ७ ॥ एड़ियों को वृषण के नीचे सीवनी के बाजू में लगाकर और दोनों हाथों से उनको दृढ़ जमाने से सब रोगों को और विष को दूर करने वाला भद्रासन होता है ॥ ८ ॥ सीवनी के बाई और दाहिने पैर की एड़ी से और दाहिनी ओर बाएं पैर की एड़ी से सीवनी को दबा कर बैठना उसको मुक्तासन कहते हैं ॥ ९ ॥ दोनों हाथों की हथेलियां जमीन पर टेक कर हाथ की कोनियां नाभि के पास रखे ॥ १० ॥ और सिर तथा पैर अधर ऊंचे उठाकर दंडाकार हो जाय—सर्व दोषों को दूर करने वाला ऐसा यह मयूरासन हो जाता है ॥ ११ ॥ आसन से शरीरगत सब रोग नष्ट हो जाते हैं, तथा विष भी पच जाता है। जो अशक्त हो वह जिस किसी आसन को सुख पूर्वक कर सके उसीको करे। जिसने आसन साध लिया उसने तीनों जगत जीत लिये यम नियम से संयुक्त पुरुष प्राणायाम का आचरण करे, इससे नाड़ियां शुद्ध होतीहैं ॥ ३ ॥ पश्चात् शाण्डिल्य ने अथर्वा से पूछा, 'किस उपाय से नाड़ियां शुद्ध होती हैं ? नाड़ियां कितनी हैं और उनकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है ? उनमें कितने वायु होते हैं और उनके स्थान कौन से हैं ? उनके कर्म क्या होते हैं—यह तथा शरीर में और जो कुछ जानने योग्य हो सब मुझे बता दीजिये'।

अथर्वा बोले, यह शरीर छियानवे अंगुल लंबा होता है और शरीर से प्राण द्वादश अंगुल अधिक विस्तार वाला होता

है। जो योगाभ्यास से शरीर में अवस्थित प्राण को और अग्नि को समान अथवा न्यूनता रहित करता है वह उत्तम प्रकार का योगी है। मनुष्यों के देह में तप्त सुवर्ण के समान कान्तिवाला त्रिकोणाकार अग्नि स्थान होता है। पशुओं में चार कोने वाला और पक्षियों में अग्नि स्थान गोल होता है। अग्नि स्थान में छोटी सी और शोभायमान अग्नि की ज्वाला होती है। देह का मध्य गुदा के दो अंगुल ऊपर और लिंग के दो अंगुल नीचे मनुष्यों में होता है, पशुओं में उनके हृदय स्थान में और पक्षियों में पेट में होता है। मनुष्यों का देह मध्य नौ अंगुल लम्बा चार अंगुल चौड़ा और अंडे की आकृति का होता है। उसके मध्य में नाभि होती है। नाभि स्थान में बारह पखुरियों का एक चक्र होता है; पुण्य पाप से प्रेरित होकर जीव उसमें घूमा करता है तथा प्राण भी उसी में चला करता है। तन्तुओं के जाल में जैसे मकड़ी घूमा करती है वैसे ही यह प्राण उसमें घूमता रहता है। इस देह में जीव प्राण पर आरूढ रहता है। नाभि से ऊपर नीचे चारों ओर कुण्डलिनी का स्थान है (इसको स्कंध या कंद कहते हैं) अष्ट प्रकृतिरूप आठ आवर्त वाली कुण्डलिनी शक्ति होती है। प्राण का ठीक २ संचारण करने से अन्न जल आदि स्कंध के चारों ओर नियन्त्रित होते हैं और कुण्डलिनी शक्ति जो अपने मुखसे ब्रह्मरंध्र को ढांप कर रहती है। योगाभ्यास के समय अपान और अग्नि द्वारा चालित होती है। वह जब हृदयाकाश में पहुँचती है तब परम उज्ज्वल ऐसे ज्ञानस्वरूप को

प्राप्त होती है। मध्यस्थ कुण्डलिनी के आसरे चौदह प्रधान नाड़ियां होती हैं—इडा, पिंगला, सुषुम्ना, सरस्वती, वारुणी, पूषा, हस्तिजिव्हा, यशस्विनी, विश्वोदरी, कुहू, शंखिनी, पयस्विनी, अलम्बुसा और गान्धारी—यह चौदह नाड़ियां हैं। उनमें सुषुम्ना सबको धारण करने वाली और मोक्ष के मार्गरूप कही जाती है। यह गुदा के पृष्ठ भाग से शिरके ब्रह्मरन्ध्र तक व्यक्त रहती है और सूक्ष्म रूप से यह महाशक्ति है। सुषुम्ना की बाईं ओर इड़ा और दाहिनी ओर पिंगला होती है। इड़ा में चन्द्र नामा प्राण चलता है और पिंगला में सूर्यनामा प्राण चलता है। चन्द्र तमोरूप और सूर्य रजोरूप होता है; सूर्य विषवाला और चंद्र अमृत वाला होता है। वे दोनों काल को धारण करते हैं और सुषुम्ना काल का भोग करती है। सुषुम्ना के पीछे समीप ही सरस्वति और कुहू होती है। यशस्विनी और कुहू के बीच में वारुणी रहती है। पूषा और सरस्वति के बीच में पयस्विनी व्यवस्थित है। गान्धारी और सरस्वति के बीच में यशस्विनी रहती है। कन्द में अलंबुसा रहती है। सुषुम्ना के पूर्व भाग में लिंग तक कुहू पहुंचती है, कुण्डलिनी के ऊपर और नीचे वारुणी होती है, वह चारों ओर जाती है। यशस्विनी और सौम्या पैर के अंगूठों तक पहुंचती है। पिंगला ऊपर की ओर दाहिनी नासिका तक जाती है। पिंगला के पीछे से दाहिने नेत्र तक पूषा होती है। दाहिने कान तक यशस्विनी जाती है। जीभ के अग्रभाग तक सरस्वति रहती है।

ऊपर की ओर बाएं कान तक शंखिनी जाती है। इडा के पीछे से बाएं नेत्र के अन्त तक गांधारी होती है। गुदा के मूल भाग से नीचे अलम्बुसा जाती है; इन चौदह नाड़ियों में से अन्य नाड़ियां निकलती हैं और उनसे भी फिर और और नाड़ियां निकलती हैं।

जैसे पीपल के पत्र में रेखाएं होती हैं वैसे ही यह शरीर नाड़ियों से व्याप्त रहता है। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान तथा नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय—यह दश वायु सब नाड़ियों में चलते रहते हैं। मुख, नासिका, कण्ठ, नाभि दोनों चरण के अंगुष्ठ और कुण्डलिनी के ऊपर नीचे प्राण चलता है। कान, आंख, कमर, एड़ियां, नासिका, गला और चूतड़ों में व्यान का सचार रहता है। गुदा, लिंग, जांघें, घोंटू, पेट, वृषण, कमर, चूतड़, नाभि, गुदा और अग्नि स्थान में अपान संचार करता है। सब सन्धियों में उदान संचार करता है; सब अंगों में हाथ पैर में भी—समान संचार करता है।

खाये हुए अन्न के रस आदि को अग्नि के साथ समस्त शरीर में पहुँचा कर बहत्तर हजार नाड़ियों में चलता हुआ समान वायु अग्नि सहित सांगोपांग शरीर को व्याप कर रहता है। नाग आदि वायु त्वचा, अस्थि आदि पांच स्थान में उत्पन्न होते हैं। पेट में रहे हुए अन्न जल आदि को रसादि में परिणत करने के लिये पेट में रहा हुआ वायु उनको अलग अलग करता है। अग्नि के ऊपर जल और जल के ऊपर अन्न आदि

रख कर और स्वयं अपान बन कर, अपान के साथ प्राण देह में रहा हुआ ज्वलन उत्पन्न करता है। वायु से पालन किया हुआ अग्नि देह में शनैः शनैः जलता रहता है। प्राण से अग्नि की ज्वाला पेट में अवस्थित जल को अति उष्ण कर देती है और इस जल में डाला हुआ व्यंजनों के सहित अन्न अग्नि युक्त जल से पक्व होजाता है। उसीसे पसीना, मूत्र, जल, रक्त और वीर्य इन रसों को पुरीष (पाखाना) आदि से प्राण अलग करता है। समान वायु के साथ सब नाड़ियों में रस पहुंचा कर श्वास रूपसे वायु देहमें संचार करता है। शरीरके वायु नव द्वारोंसे मल मूत्र आदिका विसर्जन करते हैं। श्वास, उच्छ्वास और खांसना यह प्राणके कर्म हैं। मारना, ग्रहण करना चेष्टा करना आदि कर्म व्यान करता है। देह को उठाना आदिक कर्म उदान से होते हैं। शरीर का पोषण समान का काम है। उद्गार आदि नाग के कर्म हैं, आंख मूंदना कूर्म का काम है, छींकना कृकर का काम है, तन्द्रा देवदत्त का और नाक छिनकना धनंजय का काम है। इस प्रकार नाड़ियों के स्थान और प्राणों के स्थान तथा उनके कर्म ठीक २ जानकर नाड़ी शोधन करना चाहिये ॥ ४ ॥

अध्ययन समाप्त करके, सत्यधर्म से चलने वाला क्रोध को जीतने वाला, गुरु शुश्रूषा में तत्पर, माता पिता की आज्ञा पालन करने वाला अपने आश्रम के योग्य आचार जिसने गुरुओं से जान लिये हों ऐसा पुरुष सब संग का त्याग करके यम नियम से युक्त होकर फल मूल और उदक से समृद्ध तपो-

वन में चला जाय। वह तपोवन भी रमणीय देश में हो, उसके चारों ओर वेदपाठ होता हो और स्वधर्म निरत ब्राह्मण समाज निवास करता हो। वह फल मूल पुष्प तथा जल से समृद्ध हो। ऐसे देवभूमि समान तपोवन में नदी के किनारे, गांव में अथवा नगर में वहुत सुन्दर ऐसा मठ वनावे। मठ वहुत ऊंचा न होना चाहिये न वहुत नीचा और उसका द्वार छोटा होना चाहिये। उसको गोवर से खूव लीप कर और भली प्रकार सुरक्षित कर वहां वेदान्त का श्रवण करते हुए योगका अभ्यास करना चाहिये।

प्रथम गणेशजी का पूजन करके अपने इष्ट देवता को नमस्कार करे और पूर्वोक्त आसनों में से जो सिद्ध हो उस आसन से मृदु आसन पर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके वैठे। फिर विद्वान् साधक शिर और ग्रीवा समान रख, भ्रूमध्य में चंद्र मंडल का ध्यान करते हुए चंद्र के अमृत को नेत्र से पान करे। वारह मात्रा से इड़ा से पूरक करके उदर में स्थित ज्वालायुक्त अग्नि मंडल का 'र' वीज के सहित ध्यान करे और पिंगलासे रेचन करे।

पश्चात् पिंगला से पूरक करके कुंभक करे और इड़ासे रेचक करदे। तीन, चार, सात वा वारह मास पर्यंत तीनों संध्या काल में तथा वीच में मिलकर छः वार अभ्यास करने से नाड़ियां शुद्ध होती हैं। तव शरीर लघु और दीप्तिमान होता है, जठराग्नि वढ़ती है तथा नाद सुनाई देने लगता है।।।५।।

प्राण और अपान के योग को प्राणायाम कहते हैं, रेचक, पूरक और कुंभक भेद से प्राणायाम तीन प्रकार के होते हैं। वे वर्णात्मक हैं, इसलिये प्रणव ही प्राणायाम है। पद्म आदि किसी आसन से बैठ कर साधक नासिका के अग्रभाग में चंद्रमा की प्रभा से संवेष्टित, 'अ' कार स्वरूप रक्त वर्ण देह वाली, हाथ में दण्ड धारण करने वाली और हंस पर आरूढ हुई ऐसी बाल रूपा गायत्री का ध्यान करे। 'उ' कार स्वरूप शुभ्र देह वाली हाथ में चक्र धारण करने वाली गरुड़ पर आरूढ़ हुई युवती रूपा सावित्री होती है। 'म' कार स्वरूप कृष्ण देह वाली बैल पर आरूढ हुई त्रिशूलधारिणी वृद्धारूपा सरस्वति होती है। 'अ' कार आदि तीनों के सम्पूर्ण कारणरूप और पर ज्योति स्वरूप प्रणव है इस प्रकार ध्यान करे। सोलह मात्रा से बाहर के वायु को 'अ' कार का ध्यान करते हुए पूरक करे, चौसठ मात्रा से 'उ' कार का ध्यान करते हुए कुंभक करे और 'म' कार का ध्यान करते हुए पिंगला द्वारा बत्तीस मात्रा से रेचन करे; इसी क्रम से वारंवार करना चाहिये ॥ ६ ॥

आसन दृढ़ होने पर योगी इन्द्रियों का निग्रह करके परिमित और हितकर आहार ग्रहण करते हुए सुषुम्ना नाड़ी में स्थित मल को दूर करने के लिये पद्मासन से बैठकर चन्द्र से पूरक करके यथाशक्ति कुम्भक करे और सूर्य से रेचक करे; पुनः सूर्य से पूरक करके कुम्भक करे और चन्द्र से रेचन करे, जिससे

रेचन करे उसीसे पूरक करके कुम्भक करे। इस विषयक ये श्लोक हैं—

प्रथम इड़ा से प्राण आकर्षण करके कुम्भक करके पिंगला से रेचन करे, फिर पिंगला से वायु को प्राशन करके कुम्भक करें और बांईं नासिका से रेचक कर दें। इस प्रकार नियमपूर्वक सूर्य चन्द्र का अभ्यास लगातार करते रहने से तीन मास के पश्चात् नाड़ियां शुद्ध हो जाती हैं ॥ १ ॥

प्रातःकाल, दुपहर में सायंकाल और मध्य रात्रि में मिलकर चार बार शनैः शनैः अस्सी बार तक कुम्भक का अभ्यास किया करे ॥ २ ॥ साधारण प्राणायाम में पसीना आता है, मध्यम में कम्प होता है और उत्तम कुम्भक में पद्मासन ऊपर उठ जाता है ॥ ३ ॥ श्रम से निकले हुए पसीने से शरीर का मर्दन करे; इससे शरीर लघु और दृढ़ होजाता है ॥ ४ ॥ प्रथम अभ्यास काल में घी दूध का आहार रखना चाहिये परन्तु अभ्यास स्थिर होने के पश्चात् इसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है ॥ ५ ॥ जिस प्रकार सिंह, हाथी या व्याघ्र धीरे धीरे वश में किये जाते हैं उसी प्रकार वायु का सेवन करना चाहिये नहीं तो वह साधक को नष्ट कर देता है ॥ ६ ॥ सावधानतापूर्वक वायु को बाहर निकाले, सावधानतापूर्वक पूरक करे और सावधानतापूर्वक कुम्भक करे—इस प्रकार करने ही से सिद्धि प्राप्त होगी ॥ ७ ॥ प्राण को यथेष्ट धारण करने से अग्नि प्रदीप्त होता है, (अनाहत)

नाद सुनाई देता है और नाड़ी का शोधन होने से आरोग्यता प्राप्त होती है ॥ ८ ॥ विधिवत् प्राणायाम करने से सब नाड़ियां शुद्ध हो जाती हैं और उनमें से प्राण निकल कर सुषुम्ना के मुख में सुखपूर्वक प्रवेश करता है ॥ ९ ॥ मध्य में प्राण का संचार होने से मन स्थिर होजाता है और मन का जो सुस्थिर भाव है वही उन्मनी अवस्था है ॥ १० ॥ पूरक के अन्त में जालंधर बंध करना चाहिये और कुम्भक के अन्त में और रेचक के आदि में उड्डियान बंध करना चाहिये ॥ ११ ॥ नीचे से (गुदासे) संकोचन करके त्वरित कण्ठका संकोचन करे और बीचमें पश्चिमतान करने से प्राण महानाड़ी में गमन करता है ॥ १२ ॥ अपान को ऊर्ध्व उठाकर प्राण को कण्ठ से नीचे लेजाने से योगी जरा मरण से रहित होकर सोलह वर्ष का युवा हो जाता है ॥ १३ ॥

सुखासन से बैठ कर दाहिनी नासिका से बाहर रहा हुआ पवन भीतर खींचे, केश और नखों तक वायु को पूरण करके रोक रखे और बाईं नासिका से रेचक कर दे। ऐसा करने से कपाल की शुद्धि होती है और प्राण संचार की नाड़ियों के सर्व रोग नष्ट होजाते है। हृदय से लेकर कंठ तक आवाज करते हुए नासिका से धीरे २ पवन को खींचे और यथा शक्ति कुंभक करके इड़ा से रेचक करे—ऐसा चलते बैठते हर समय किया करे। इस से कफ दोष दूर होते हैं तथा जठराग्नि बढ़ती है। मुख से सीत्कार करते हुए वायु को खींचकर, यथा शक्ति कुंभक कर, नासिका से

रेचक करे। इससे भूख, प्यास आलस और निद्रा नहीं उत्पन्न होते। जीभ से वायु ग्रहण करके यथा शक्ति कुंभक करने पर नासिका से रेचन करे; ऐसा करने से गुल्म, प्लीहा, ज्वर, पित्त और क्षुधा आदि निवृत्त होजाते हैं।

अब कुंभक कहते हैं। कुंभक दो प्रकार के होते हैं; सहित और केवल। रेचक पूरकके सहित करते हैं उसको सहित कुंभक और रेचक पूरक न करते हुए करते हैं उसको केवल कुंभक कहते हैं। केवल कुंभक सिद्ध न हो वहां तक सहित कुंभक करना चाहिये। केवल कुंभक सिद्ध हो जाने पर उसके लिये तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। केवल कुंभक से कुण्डलिनी जागृत होजाती है, तब शरीर कृश (हलका) होजाता है, मुख प्रसन्न रहता है और दृष्टि निर्मल हो जाती है। उसको अनाहत ध्वनि सुनाई देता है; वह समस्त रोगों से मुक्त रहता है; उसका ब्रह्मचर्य अखंड रहता है और उसकी जठराग्नि तीव्र होजाती है।

अंतर में ध्यान रखना और बाहर बिना पलक गिराये एकसी दृष्टि रखना,—यही सब शास्त्रों में बताई हुई वैष्णवी मुद्रा है ॥ १४ ॥ अंतर के ध्यान में जिसका मन और प्राण विलीन होगया हो उसकी बहिर्दृष्टि नीची और निश्चल होती है, आंख का तारा तक नहीं हिलता, वह देखता कुछ नहीं परन्तु देखता सा प्रतीत होता है। जब यह कल्याण-कारिणी खेचरी मुद्रा एक ही लक्ष्य वाली होती है, तब शून्य

और अशून्य से रहित ऐसे पद की प्राप्ति होती है वही वैष्णवी पद है ॥ १५ ॥

आधी आंखें मूँद कर मनको स्थिर करते हुए दृष्टि नासिकाग्र रखे और चंद्र और सूर्य को विलीन करके प्राण निष्पंद भावको प्राप्त करे। इसके पश्चात् बाह्य जगत से रहित दैदीप्यमान परम-ज्योति स्वरूप, सबका आधार, ऐसा तत्त्व रह जाता है, हे शाण्डिल्य, उसको तू यहां जान ले ॥ १६ ॥ तारका को किंचित् ऊंची चढ़ा के भ्रुकुटी में लाकर ज्योति में मिलावे; यह त्वरित उन्मनी भावको प्राप्त कराने वाले मार्ग का प्रथम अभ्यास है ॥ १७ ॥ इसलिये खेचरी मुद्रा का अभ्यास करे, उससे उन्मनी अवस्था प्राप्त होती है और उन्मनी से योग निद्रा प्राप्त होती है। योग निद्रा जिसको प्राप्त होती है उस योगी के लिये काल नहीं है। शक्ति में मन प्रविष्ट कराकर मनमें शक्ति प्रविष्ट कर और मनसे मनको देखकर हे शाण्डिल्य, सुखी होजा ! ॥ १८ ॥ मनको आकाश में धार कर मनमें आकाश करदे इस प्रकार सब आकाश मय कर किसी की भी चिन्ता मत कर यानी भिन्न वृत्ति उठने मत दे ॥ १९ ॥ बाह्य विषय का चिन्तवन न कर वैसे ही आंतर का चिन्तवन छोड़ दे, इस प्रकार सब चिन्तवन छोड़ कर केवल चैतन्य स्वरूप होजा ॥ २० ॥ जिस प्रकार अग्नि में कपूर अथवा जल में नमक लीन हो जाता है इसी प्रकार मनका लय हो जाने से वह तत्त्व में विलीन हो जाता है ॥ २१ ॥ जितना जानने में आता है वह ज्ञेय है और उसका ज्ञान ही मन है; जब ज्ञान

और ज्ञेय दोनों नष्ट हो जांय तब और दूसरा मार्ग ही नहीं है ॥ २२ ॥ ज्ञेय वस्तुओं का त्याग करने से मनका लय हो जाता है और मनका लय हो जाने से कैवल्य ही शेष रहता है ॥ २३ ॥ हे मुनीश्वर चित्त के नाश के लिये, ज्ञान और योग दो मार्ग हैं; योग वृत्ति निरोध को कहते हैं और यथार्थ देखने को ज्ञान कहते हैं ॥ २४ ॥ उस निरोध में मन बहुत उपशान्त हो जाता है और मनका स्फुरण बंद हो जाने से संसार का भी लय हो जाता है ॥ २५ ॥ सूर्य प्रकाश चला जाने पर (रात में) जैसे सब व्यवहार बंद हो जाता है, वैसे ही शास्त्र का विचार और सज्जनों की संगति तथा वैराग्य और अभ्यास से (संसार नष्ट हो जाता है) ॥ २६ ॥ संसार के पदार्थों में पहिले जो आसक्ति थी उसका नाश होने से, इच्छानुसार ध्यान करने से अथवा अद्वैत का मनन करने से ॥ २७ ॥ या दृढ़ता से एक तत्त्व का अभ्यास करने से प्राण का स्पन्दन बंद होजाता है अथवा सुखकर ऐसा पूरकादि प्राणायाम का दृढ़ अभ्यास करने से प्राण की गति रुक जाती है ॥ २८ ॥ एकान्त में रहकर ध्यान योग करने से स्फुरणा बंद हो जाती है। ओङ्कार के उच्चारण के पश्चात् (अमात्र रूप) जो शब्द तत्त्व रहता है उसका अनुभव करने से अथवा सुषुप्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान करने से प्राण की गति रुक जाती है ॥ २९ ॥ तालु के मूल में जो उपजिह्वा होती है उसके पीछे जीभ को प्रयत्नपूर्वक डालने पर प्राण जब ऊर्ध्व रंध्र में जाते हैं, तब प्राण की गति रुक जाती

है ॥ ३० ॥ प्राण में जानने का (मनका) लय होकर अभ्यास वश तालु के ऊपर प्राण द्वादशान्त में जाने से ऊर्ध्व रंध्र द्वारा प्राण का स्पन्दन नहीं होता ॥ ३१ ॥ नासिका के अग्र भाग में बारह अंगुल तक निर्मल आकाश में मन स्थिर हो जाने से प्राण की गति रुक जाती है ॥ ३२ ॥ भ्रुकुटी के मध्य में तारका और ज्योति के शान्त होने पर प्राण जब द्वादशान्त में जाते हैं और मन के संकल्प बंद हो जाते हैं तब प्राण का निरोध हो जाता है ॥ ३३ ॥ जितना ज्ञान उत्पन्न हो वह संकल्प विकल्पों से पर ऐसा ज्ञेयरूप कल्याणकारक ॐ ही है ऐसा अनुभव करने से प्राण का रोध हो जाता है ॥ ३४ ॥ हे मुने हृदय में रहे हुए आकाश का चिरकाल तक ध्यान करने से और वासना रहित मनका ध्यान करने से प्राण निःस्पन्द हो जाता है ॥ ३५ ॥ इन मार्गों से अथवा अन्य प्रकार से, जो नाना योग के आचार्यों ने रचे हैं और कहे हैं, प्राण का निरोध होता है ॥ ३६ ॥

(अपान द्वार का) आकुंचन करके मोक्ष के द्वार रूप कुण्डलिनी का द्वार खोले। जिस द्वार से जाना है उस द्वार को मुख से ढांप कर सर्पिणी के समान लपेटे लगाये हुए कुण्डलिनी सोती है। उस शक्ति का जिसने चालन किया है वह मुक्त ही है। वह कुण्डलिनी यदि कण्ठ के ऊपर जाकर सोवे तो वह योगियों को मुक्ति देने वाली होती है और नीचे सो जाय तो वह मूढ़ों के बंधन का हेतु बनती है। वह इड़ा पिंगला के दो मार्ग छोड़कर यदि सुषुम्ना के मार्ग से जाय तो वही विष्णु का

परमपद है। प्राणायाम के जितने अभ्यास हैं सब में मन का योग देना अवश्य है। बुद्धिमानों को प्राणायाम के अभ्यास के समय मन को इधर उधर नहीं जाने देना चाहिये॥ ३७॥ दिन में विष्णु (प्राण) की पूजा नहीं करनी चाहिये न केवल रात में; केवल दिन या रात्रि में ही नहीं, हमेशा विष्णु की पूजा करनी चाहिये॥ ३८॥

ज्ञान देने वाले विवर में पांच स्रोत हैं, वहां खेचरी मुद्रा होती है, हे शाण्डिल्य उसका अभ्यास कर॥ ३९॥ दाहिनी और बांई नाड़ी में प्राण चला करता है। वह यदि बीच में स्थिर हो जाय तो वहीं खेचरी है, उसमें कोई शंका नहीं है॥ ४०॥ इड़ा और पिंगला के बीच में प्राण शून्य हो जाय, तो वहीं खेचरी मुद्रा है और वहीं सत्य प्रतिष्ठित है॥ ४१॥ चन्द्र और सूर्य के बीच निराधार स्थान में आकाश चक्र (सहस्रार) में खेचरी मुद्रा होती है॥ ४२॥ छेदन चालन और दोहन द्वारा कपाल तक जीभ लम्बी बढ़ाकर दृष्टि भृकुटी के मध्य में स्थापन करके वह लम्बी जीभ उलटी करके कपाल विवर में जब प्रविष्ट की जाती है तब खेचरी मुद्रा होती है। इसमें जिह्वा और चित्त आकाश में रहते हैं, इसलिये जिसकी जिह्वा ऊर्ध्व है वह पुरुष अमर हो जाता है। वाम चरण लिंग मूल में दबावे और दाहिना चरण लम्बा पसारे; लम्बे पैर को दोनों हाथ से पकड़ कर नासिका से वायु पूरण करे; पश्चात् जालंधर बंध करके वायु को ऊर्ध्व धारण कर रखे। ऐसा करने से सब क्लेश दूर हो

जाते हैं। तब विष भी अमृत के समान पच जाता है तथा क्षय, गुल्म गुदावर्त, जीर्णत्वक् आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह प्राण जय का उपाय सब प्रकार के मृत्यु को दूर करने वाला है। वामपाद के एड़ी को लिंग के नीचे लगाकर दाहिना पाद बांई जांघ पर रखे, फिर पूरक करके हृदय में ठोड़ी लगावे और योनि (गुदा के ऊपर लिंग के नीचे का स्थान) का आकुंचन करके मन से बने उतना समय आत्मा का ध्यान करे; इससे अपरोक्ष ज्ञान सिद्ध होता है। बाहर से वायु को खींच कर उदर में धारण करे फिर नाभि में, नासिका के अग्र भाग में तथा चरण के अंगूठे में युक्तिपूर्वक ॥ ४३ ॥ मन से प्राण को धारण करे इस प्रकार हमेशा सायंकाल अभ्यास करने से योगी सब रोगों से तथा परिश्रम से मुक्त हो जाता है ॥ ४४ ॥ नासिका के अग्र भाग में प्राण धारण करने से प्राण जय होता है, नाभि में करने से सब रोग नष्ट हो जाते हैं। चरणांगुष्ठ में प्राण धारण करने से शरीर लघु हो जाता है। जीभ से वायु को आकर्षण करके उसका जो पान करता है, उसको परिश्रम तथा उष्णता नहीं सताती और उसको कोई रोग भी नहीं होता ॥ ४५ ॥ संध्या समय ब्राह्म मुहूर्त पर जो पुरुष यह प्राणायाम करता हैं, तीन महीने के अन्दर कल्याणकारिणी सरस्वति उसकी वाणी में उपस्थित होती है ॥ ४६ ॥ और इस प्रकार छः महीने अभ्यास करने से सब रोग दूर हो जाते हैं। जिह्वा से वायु को खींचकर जिह्वा मूल में धारण करे। जो विद्वान् पुरुष इस प्रकार अमृत का

पान करता है उसको सर्व मंगल प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ इड़ा से पूरक करके भ्रुकुटी के मध्य में मन से आत्मा की धारणा कर अमृत का पान करता है, वह रोगी हो तो भी रोग से मुक्त हो जाता है ॥ ४८ ॥ पेट के पार्श्व की दोनों नाड़ियों से प्राण धारण करके नाभि में उसका एक घड़ी भर जो वहन करता है वह सब व्याधियों से मुक्त हो जाता है ॥ ४९ ॥ एक मास तक तीनों संध्याकाल में जो जिह्वा से वायु खींचता है और अमृत को गिराकर पेट में धारण करता है ॥ ५० ॥ उसके सब प्रकार के ज्वर तथा विष नष्ट हो जाते हैं। जो एक मुहूर्त भर भी नित्य प्रति नासिका के अग्र भाग में मन सहित प्राणों को स्थिर करता है ॥ ५१ ॥ उसके सैकड़ों जन्मों के पाप दूर हो जाते हैं।

तारे में संयम करने से सब विषयों का ज्ञान होता है। नासिका के अग्र भाग में चित्त का संयम करने से इन्द्रलोक का ज्ञान होता है। उसके नीचे संयम करने से अग्नि लोक का ज्ञान होता है। आंख में चित्त का संयम करने से सब लोकों का ज्ञान होता है। कान में चित्त का संयम करने से यमलोक का ज्ञान होता है। उसके पार्श्व में संयम करने से निऋति लोक का ज्ञान होता है। पृष्ठ भाग में संयम करने से वरुण लोक का ज्ञान होता है। वांये कान में संयम करने से वायु लोक का, कण्ठ में संयम करने से चन्द्रलोक का, वांई आंख में संयम करने से शिवलोक का और शिर में संयम करने से ब्रह्मलोक का ज्ञान होता है। पाद के नीचे के भाग में संयम करनेसे अतल लोकका,

पाद में संयम करने से वितल लोक का, पैर के जोड़ यानी मुल्ला में संयम करने से नितल लोक का, पिंडली में संयम करने से सुतल लोक का, घोंटू में संयम करनेसे महातल लोक का, जांघ में चित्त का संयम करने से रसातल लोक का, कमर में चित्त का संयम करने से तलातल लोक का, नाभि में चित्त का संयम करने से भूलोक का, कुचि (कुख) में संयम करने से भुवर्लोक का, हृदय में चित्त का संयम करने से स्वर्लोक का, हृदय के ऊर्ध्व भाग में चित्त का संयम करने से महर्लोक का, कण्ठ में चित्त का संयम करने से जनलोक का, भ्रूमध्य में चित्त का संयम करने से तपोलोक का और शिर में चित्त का संयम करने से सत्यलोक का ज्ञान होता है। धर्म और अधर्म में संयम करने से भूत और भविष्यत् का ज्ञान होता है। जीवों की ध्वनि में संयम करने से सब जन्तुओं की भाषा का ज्ञान होता है। सञ्चित कर्मों में चित्त का संयम करने से पूर्व जन्म का ज्ञान होता है। दूसरे के चित्त पर संयम करने से उसके चित्त का ज्ञान होजाता है। शरीर के रूप पर चित्त का संयम करने से अपना शरीर दूसरे किसी को दिखाई नहीं देता। बल में संयम करने से हनुमान आदि का सा बल प्राप्त होता है। सूर्य में चित्त का संयम करने से भुवनों का ज्ञान होता है। चन्द्र में संयम करने से तारागणों की रचना का ज्ञान होता है और ध्रुव में संयम करने से उनकी गति का ज्ञान होता है। अपने में संयम करने से पुरुष का ज्ञान होता है। नाभि चक्र में संयम करने से शरीर की

रचना का ज्ञान होता है। कण्ठ कूप में संयम करने से क्षुधा तृषा निवृत्त होजाती है। कूर्म नाड़ी में संयम करने से स्थिरता प्राप्त होती है। तारे में संयम करने से सिद्धों का दर्शन होता है। शरीर गत आकाश में संयम करने से आकाश में गमन करने की शक्ति आती है और उन २ स्थानों में संयम करने से उन २ सम्बन्धी सिद्धियां प्राप्त होती हैं॥ ७॥

अब प्रत्याहार का वर्णन करते हैं। प्रत्याहार पांच प्रकार का होता है विषयों में भटकने वाली इन्द्रियों को बलपूर्वक खींच लेने को प्रत्याहार कहते हैं। जो कुछ दीखता है वह सब आत्मा है, यह प्रत्याहार है नित्य और विहित कर्मों के फल का त्याग करना प्रत्याहार है। सब विषयों से मुंह मोड़ना प्रत्याहार है। अठारह मर्म स्थानों पर क्रम से धारणा करना प्रत्याहार है। पैर के अंगूठे, एड़ियां, पिंडलियां, घोंटू, जांघें, गुदा, मेढ्र, नाभि, हृदय, कंठ कूप, तालु, नासिका, आंख, भ्रूमध्य, ललाट और शिर,—ये स्थान हैं; इन स्थानों में नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे, इस प्रकार क्रम क्रम से प्रत्याहार करें॥ ८॥

अब धारणा कहते हैं। धारणा तीन प्रकार की होती है; आत्मा में मन को धारणा करना, अंतराकाश में बाहर के आकाश को धारणा करना और पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश में पांच मूर्तियों की धारणा करना॥ ९॥

अब ध्यान कहते हैं। ध्यान दो प्रकार का होता है; सगुण और निर्गुण। सगुण ध्यान मूर्ति का होता है और निर्गुण ध्यान आत्मा के यथार्थ स्वरूप का होता है॥ १०॥

अब समाधि कहते हैं—जीवात्मा और परमात्मा की त्रिपुटी रहित परमानन्द स्वरूप और शुद्ध चैतन्य स्वरूप एकता की अवस्था समाधि है॥ ११॥

॥ इति प्रथम अध्याय॥

ब्रह्मऋषि शाण्डिल्य को चारों वेदों में जब ब्रह्मज्ञान नहीं प्राप्त हुआ तब वह भगवान अथर्वा के पास ब्रह्मज्ञान के लिये आये और उनसे कहा, 'हे भगवन्, मुझे ब्रह्मज्ञान का उपदेश दीजिये, जिससे मैं कल्याणको प्राप्त होऊं।' अथर्वा ऋषि बोले, 'हे शाण्डिल्य, ब्रह्म सत्य, विज्ञानमय और अनन्त है जिसमें यह दृश्य ओत प्रोत है, जिसमें यह ताने बाने की तरह भरा हुआ है और जिसके जानने से यह सब जाना हुआ होजाता है। वह हाथ, पैर से रहित है, उसको आंख, कान वा जीभ नहीं है; न उसको शरीर है, न उसका ग्रहण वा निर्देश हो सकता है। जहां से मन सहित वाणी (यानी इन्द्रिय) बिना उसको प्राप्त किये ही लौट जाती है और जो केवल ज्ञानगम्य है; जहां से प्रज्ञा और वेद की उत्पत्ति है, जो अद्वितीय और

एक है, आकाश के समान जो सर्व व्यापक है, सूक्ष्म है, निरंजन, निष्क्रिय, और सत्स्वरूप है, जो चिदानंदस्वरूप, कल्याणस्वरूप, शान्त और अमृत है, वही परब्रह्म है वह तू है। जो एक मात्र देव है, आत्मशक्ति में प्रधान है, जो सर्वज्ञ, सब भूतों का अंतरात्मा, सब भूतों का निवास स्थान है, जो सब भूतों में छुपा हुआ है, जहां से सब भूत उत्पन्न हुए हैं और जो केवल योग द्वारा ही पाया जाता है; जो विश्व को उत्पन्न करता है, धारण करता है और नष्ट करता है वही आत्मा है, उसको ज्ञान से ही जानले। आत्मा में उन उन लोकों का ज्ञान कर। शोच मत कर आत्म विज्ञानी के शोक का अन्त होजाता है!'

॥ इति द्वितीय अध्याय ॥

अब शाण्डिल्य ने अथर्वा से पूछा, 'जब परब्रह्म एक अक्षर, निष्क्रिय शिव और केवल सत्स्वरूप है, तब यह विश्व किस प्रकार उत्पन्न होता है, किस प्रकार रहता है और किस प्रकार लय होता है? मेरा यह संशय आप दूर करें।' अथर्वा बोले, 'हे शांडिल्य परब्रह्म सत्य ही निष्क्रिय और अक्षर है। तथापि इस अरूप ब्रह्म के तीन रूप हैं, सकल, निष्कल और सकल निष्कल। जो सत्य विज्ञान स्वरूप, आनंद स्वरूप, निष्क्रिय, निरंजन, सर्व व्यापक, अतिसूक्ष्म, जिसका सर्वत्र मुख है, जिसका निर्देश नहीं होता और जो अमृत है वही इसका निष्कल रूप है। इसकी जो स्वाभाविक अविद्या, मूलप्रकृति, अथवा सत्व

रज और तमोगुण रूप माया है, उसकी सहायता से कृष्णपिंगल स्वरूप महेश्वर विश्व का नियन्त्रण करते हैं, यह ब्रह्म का सकल निष्कल रूप है। जब वह ज्ञानमय तपसे वृद्धि को प्राप्त हुआ तब उसने इच्छा की कि 'मैं एकसे बहुत होजाऊं"। तब उस सत्य काम ईश्वर के तप से तीन अक्षर उत्पन्न हुए। इसीसे तीन व्याहृतियां, तीन पद वाली गायत्री, तीन वेद, तीन देव तीन वर्ण और तीन अग्नि उत्पन्न हुए। यही वह सर्व ऐश्वर्य से सम्पन्न, सर्व व्यापक, सर्व भूतों के हृदय में अधिष्ठित, मायावी और अपनी माया से क्रीड़ा करने वाला देव है। वही ब्रह्मा है, वही विष्णु वही रुद्र है, वही इन्द्र वही सब देवता है, वही सब भूत है, वही आगे है, पीछे है, दाहिनी ओर और बाईं ओर वही है, नीचे वही है, ऊपर वही है और वही सब कुछ है। अपने ही से क्रीड़ा करने वाले उस ऐश्वर्य शाली देवता की शक्ति का भक्तों पर कृपा करने वाला, लाल कमल के समान सुन्दर रूप वाला, शान्त और निष्पाप रूप से प्रकाशने वाला, चार भुजा वाला श्री दत्तात्रय का रूप है; यह ब्रह्म का सकल रूप है' ॥ १ ॥

पुनः शाण्डिल्य ऋषि ने अथर्वा से पूछा, 'हे भगवन्, केवल सत्स्वरूप चैतन्य और आनंद स्वरूप ऐसे इस देवता को ब्रह्म क्यों कहते हैं?' अथर्वा बोले, 'इसे परब्रह्म इसलिये कहते हैं कि वह स्वयं बढ़ता है और सबको वही बढ़ाता है।' 'इसको आत्मा किस लिये कहते हैं?' 'वही सबको प्राप्त करता है, सबको ग्रहण करता है, सबको खाजाता है, इसी लिये उसको आत्मा कहते हैं।'

'इसको महेश्वर क्यों कहते हैं?' 'वह महान् का भी ईश्वर है अपने शब्दध्वनि से (आज्ञा से) और अपनी शक्ति से वह बड़ों से बड़ों का भी नियंत्रण करता है, इसलिये उसको महेश्वर कहते हैं।' 'उसको दत्तात्रेय क्यों कहते हैं?' पुत्र के लिये अति कठिन तपस्या करने वाले अत्रि ऋषि पर बहुत प्रसन्न होने के कारण भगवान् ने स्वयं ज्योतिर्मय ऐसे अपने ही को उसको दे दिया, और अनसूया और अत्रि का वह पुत्र हुआ, इसलिये उसको दत्तात्रेय कहते हैं। जो इसके निरुक्त को जानता है, वह सब कुछ जानता है। जो ज्ञान से उस श्रेष्ठ देवता को 'मैं वही हूँ' इस प्रकार से उपासना करता है वह ब्रह्मज्ञानी होजाता है। इस विषय के ये श्लोक हैं:—नीलमणि के समान कान्ति वाले, शान्त, अपनी माया में रत, देव, प्रभु, दिगंबर, ॥ १ ॥ भस्म से जिसका सर्व अंग लेपायमान है, जो जटा मुकुट धारण करता है, प्रभु है, जिसके चार हाथ हैं और जिसका देह विशाल है और नेत्र प्रफुल्ल कमल के समान है ॥ २ ॥ जो ज्ञान और योग का खजाना है, जो विश्व का गुरु है और योगियों को जो अत्यन्त प्रिय है; जो सबका साक्षी, सिद्धों द्वारा सेवित और भक्तों पर कृपा करने वाला है ॥ ३ ॥ ऐसे सनातन देवों के देव दत्तात्रेयका सदा ध्यान करता है वह सब पापों से मुक्त होकर परम कल्याण को प्राप्त करता है। इस प्रकार ॐ सत्य है यह उपनिषत् है। इति तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ इति शाण्डिल्योपनिषत् समाप्त ॥

कठरुद्रोपनिषत्।

[४२]

देवगण भगवान् ब्रह्माजी से बोले, 'भगवान्, हमको ब्रह्मविद्या का उपदेश दीजिये।' ब्रह्माजी बोले, '(मुमुक्षु पुरुष) शिखा सहित सब केश उतार कर यज्ञोपवीत का त्याग कर, पुत्र की ओर देख कर 'तू ब्रह्मा है, तू यज्ञ है, तू वषट्कार और ॐकार है, तू स्वाहा और स्वधा है, तू धाता और विधाता है, तूही जगत की प्रतिष्ठा है' ऐसा उससे कहे। फिर पुत्र बोले "मैं ब्रह्म हूँ, मैं यज्ञ हूँ, मैं वषट्कार और ॐकार हूँ, मैं स्वाहा और स्वधा हूँ; मैं ही धाता, विधाता और विश्वकर्मा हूँ और मैं ही जगत की प्रतिष्ठा हूँ।" पुत्रादि के साथ चलते हुए (उनको छोड़ने के ख्याल से) आंसू न बहावे। यदि आंसू बहे तो उसकी प्रजा का नाश होगा। सबको प्रदक्षिणा करके किसी की ओर ध्यान न देते हुए जो चल देता है वह स्वर्ग के योग्य होता है।

ब्रह्मचर्य अवस्था में वेदों का अध्ययन करके वेदोक्त रीति से ब्रह्मचर्य का पालन करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। पुत्र उत्पन्न करके और उनको सब प्रकार के उपाधि (झंझट) से रहित करके यथाशक्ति यज्ञ करे, फिर गुरु और बंधुवर्ग की आज्ञा से संन्यास ग्रहण करे। पश्चात् अरण्य में जा बारह रात्रि तक दूध

से अग्नि होत्र करे और बारह रात्रि तक दूध ही का भोजन करे। द्वादश रात्रि के अन्त में वैश्वानर और प्राजापत्य अग्नि, प्राजापत्य का चरु और राख के उठाने के बर्तन तथा पूर्व के रखे हुए काठ के बर्तन सब अग्नि में हवन कर दे। मिट्टी के बर्तन हों वे पानी में बहा दे और धातु के बर्तन गुरु को दे दे, ऐसा कहकर कि "मुझे छोड़ कर तुम (मेरे पास) लौटना मत और मैं भी तुमको छोड़ कर (संसार में) लौटूंगा नहीं !" कोई ऐसा कहते हैं कि गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय अग्नि में से अरणियों के स्थान से मुट्ठी भर भस्म निकाल कर पी लेना चाहिये।

शिखा सहित केश वपन यानी मुड़ा करके "भूः स्वाहा" कह कर यज्ञोपवीत जल में त्याग दे। इसके पश्चात् अन्न त्याग दे, जल में या अग्निमें प्रवेश करे अथवा वीर मार्ग का ग्रहण करे। इस प्रकार देह विसर्जन करे अथवा संन्यासी बन कर विचरण करे। संन्यासी जलपान करे वही उसका सायंकाल का होम है, प्रातःकाल जलपान करे वह प्रातःकाल का होम है, जल को देखे वही उसकी दर्श यज्ञ है, पूर्णमासी के दिन जलपान करे वही उसका पौर्णमास्य हवन है। वसंत ऋतु में केश श्मश्रु (डाढ़ी) लोम और नख उतरवा ले वही उसका अग्निष्टोम यज्ञ है। संन्यास लेने पर फिर अग्नि न जलावे, "मृत्युर्जायमावहम्" इत्यादि अध्यात्म मंत्रों का ही पाठ किया करे। "सब जीवों का कल्याण हो" ऐसा कह कर आत्मा का अनन्यता से ध्यान करे और खाली हाथ से स्वच्छन्द विचरण करने को निकल जाय। संन्यासी घर या

आश्रम में न रहे और भिक्षा छोड़ कर और कुछ भी न खावे। छोटे जीवों को कष्ट न पहुँचे इस ख्याल से संन्यासी क्षण मात्र भी दौड़े नहीं और वर्षा काल में विचरण भी न करे। इस अर्थ के श्लोक हैं—

कटोरा, चमस् (चमचा) छींका, तीन कटोरियां, जूता, शीत निवारण करे ऐसी कंथा, लंगोटी, ओढ़ने का वस्त्र ॥ १ ॥ पानी छानने का वस्त्र, स्नान के लिये एक धोती और एक ओढ़ने के लिये धोती, यज्ञोपवीत और वेद—सबको यति त्याग दे ॥ २ ॥ स्नान, पान तथा शौच विधि पवित्र जल से करे और नदी तालाव के किनारे अथवा देव मन्दिर में शयन करे ॥ ३ ॥ अधिक सुख या दुःख के लिये शरीर को कष्ट न दे; कोई स्तुति करे तो प्रसन्न न हो और कोई निन्दा करे तो उसको शाप भी न दे ॥ ४ ॥ संन्यासी ब्रह्मचर्य से रहे, प्रमाद से बचे; दर्शन, स्पर्शन, क्रीड़ा, कीर्तन, गुह्य भाषण, ॥ ५ ॥ संकल्प, चिन्तवन और आनन्द यह आठ प्रकार का मैथुन होता है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ६ ॥ मुमुक्षुओं को इसके विपरीत आचार रखना ही ब्रह्मचर्य है।

जिस चैतन्य से जगत भासित होता है और जो नित्य अपने प्रकाश ही से भासता है ॥ ७ ॥ वही शुद्ध स्वरूप चैतन्य जगत का साक्षी और सबका आत्मा है। वही प्रज्ञानघन है और सब भूतों का अधिष्ठान है ॥ ८ ॥ मनुष्य ब्रह्मज्ञान ही से ब्रह्म को प्राप्त

होता है; कर्म से प्रजा से अथवा अन्य किसी से भी ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती ॥ ९ ॥ वह सत्य, ज्ञान और आनन्द स्वरूप अद्वैत ब्रह्म केवल ज्ञान का ही विषय है। संसार में माया, अज्ञान आदि नाम से अंतःकरण की गुहा—॥ १० ॥ जिसे 'परम आकाश भी कहते हैं— उसमें छुपा हुआ ब्रह्म जो जानता है, उस ब्राह्मण की क्रम-से सब कामनाएं पूर्ण होती हैं ॥ ११ ॥ 'अज्ञान और मायाशक्ति का साक्षी प्रत्यगात्म स्वरूप अद्वितीय ब्रह्म मैं हूँ,' इस प्रकार जो जानता है, वह स्वयं ब्रह्म ही होता है ॥ १२ ॥

इस ब्रह्मभूत आत्मा में, शक्ति के योग से, रस्सी में जैसे सर्प की उत्पत्ति होती है, वैसे ही अपंचीकृत आकाश उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ इस आकाश से वायु नामक अपंचीकृत स्पर्श उत्पन्न हुआ, फिर वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई ॥ १४ ॥ उन सूक्ष्म भूतों को पंचीकृत करके ईश्वर ने ब्रह्माण्ड आदि की उत्पत्ति की ॥ १५ ॥ और ब्रह्माण्ड के भीतर देव, दानव, यक्ष, किन्नर, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि की उनके कर्मानुसार उत्पत्ति की ॥ १६ ॥ हाड़ मांस का जो यह प्राणियों का शरीर दीखता, है वही यह सर्व शरीरधारियों का अन्नमय आत्मा है ॥ १७ ॥ उससे भिन्न और उसके भीतर एक प्राणमय आत्मा होता है, उसके भीतर विज्ञानमय ॥ १८ ॥ और उसके भीतर आनन्दमय आत्मा रहा हुआ है। जो अन्नमय है वह प्राणमय से परिपूर्ण है ॥ १९ ॥ प्राणमय आत्मा मनोमय

आत्मा से पूर्ण होता है और मनोमय विज्ञानमय से पूर्ण है ॥२०॥ और विज्ञानमय सुखस्वरूप आनन्दमय आत्मासे पूर्ण है। वैसे ही आनन्दमय आत्मा ब्रह्म से भिन्न ऐसे सर्वान्तर्यामी साक्षी से पूर्ण है ॥ २१ ॥ परन्तु ब्रह्म और किसी से पूर्ण नहीं है; इसी-लिये इसको अद्वैत, सत्य ज्ञान आनंद रूप ब्रह्मपुच्छ यानी परम आधार कहते हैं ॥ २२ ॥

साक्षात् साररूप आनंदरूप ब्रह्म का लाभ करके ही देही सुखको प्राप्त होता है अन्यथा सुख कहां? ॥ २३ ॥ सब भूतों के आत्मभूत इस परमानन्द के अभाव में कौन प्राणी जी सकता है वा नित्य चेष्टा कर सकता है? ॥ २४ ॥ इसलिये चित्त में भासमान होने वाला यह पुरुष ही सर्वात्मरूप से दुःखी जीवात्मा को आनन्द की प्राप्ति कराता है ॥ २५ ॥ जब वह जीव इस दृश्यत्व आदि लक्षण वाले द्वैत में परम अद्वैतता को लाभ करता है वही महायति है ॥ २६ ॥ वही परम अभय स्थान है, अत्यन्त कल्याण है और वही परम अमृत है; वही देश काल अवस्था के परिच्छेद से रहित सद्रूप परब्रह्म है ॥ २७ ॥ जब पुरुष, जीव ब्रह्म को तत्त्व से क्षण भर के लिये भी जान लेगा तब वह अभय को प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ २८ ॥ निर्जीव खंभे से लेकर विष्णु पर्यन्त अल्प अधिक प्रमाण से इस आनन्दमय कोष ही से सुखको लाभ करते हैं ॥ २९ ॥ परन्तु उन उन पदों से विरक्त ऐसे विद्वान् और प्रसन्न पुरुष को अपने स्वरूप का आनन्द स्वयं वैसा ही प्रकट होता है जैसा कि परब्रह्म

में है ॥ ३० ॥ किसी निमित्त को ग्रहण करते हुए ही शब्द की प्रवृत्ति होती है; निमित्त के अभाव से जहां से वाणी लौट जाती है ॥ ३१ ॥ ऐसे निर्विशेष परमानन्द में शब्द की प्रवृत्ति किस प्रकार हो ? सबको विषय करने वाला मन भी वहां से लौट जाता है ॥ ३२ ॥ श्रोत्र, त्वक् नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रिय और मुख आदि कर्मेन्द्रिय भी जिसको प्राप्त करने के लिये समर्थ नहीं होते और लौट जाते हैं ॥ ३३ ॥ उस द्वंद्व रहित आनन्द रूप, निर्गुण, सत्य और चिद्घन ब्रह्म को आत्मरूप जान कर फिर वह किसी से भी डरता नहीं ॥ ३४ ॥ अपने गुरु के उपदेश द्वारा इस प्रकार जानता है वह अच्छे या बुरे कर्मों से दुःख नहीं पाता ॥ ३५ ॥ जो संपूर्ण जगत व्याप्यव्यापक रूप से भासता था वही अब वेदान्त वाक्य जनित ज्ञान से प्रत्यगात्म रूप से भासता है ॥ ३६ ॥ शुद्ध चैतन्य, ईश्वर चैतन्य, जीव चैतन्य, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय और फल ॥ ३७ ॥ व्यवहार दृष्टि से यह सात भिन्न २ हैं; उनमें मायाके उपाधि से रहित चैतन्य को शुद्ध चैतन्य कहते हैं ॥ ३८ ॥ मायाके संबंध से वही ईश्वर कहलाता है और अविद्या के सम्बन्ध से जीव। अन्तःकरण के सम्बन्ध से वही प्रमाता कहलाता है ॥ ३९ ॥ वैसे ही वृत्ति के सम्बन्ध से वह प्रमाण कहलाता है और अज्ञात चैतन्यको प्रमेय (जगत) कहते हैं ॥ ४० ॥ वैसे ही ज्ञात चैतन्य को फल कहते हैं। बुद्धिमान अपने को इन सब उपाधियों से मुक्त समझे ॥ ४१ ॥

इस प्रकार जो तत्त्व से जानता है वह ब्रह्मको प्राप्त होने के योग्य है—यह सर्व उपनिषदों के सिद्धांत का यथार्थ रूप से सार कहता हूँ ॥ ४२ ॥ स्वयं मर कर स्वयं होजाय तो स्वयं ही शेप रह जाता है, यह उपनिषत् है।

॥ इति कठरुद्रोपनिषत् समाप्त ॥

अवधूतोपनिषत् ।

[४३]

एक समय सांकृति ऋषि भगवान् दत्तात्रय की प्रदक्षिणा करके पूछने लगे, 'हे भगवन्, अवधूतकी स्थिति कैसी होती है ? उनका क्या लक्ष्य है तथा उनका संसार कैसा होता है' ?

परम करुणामय भगवान् दत्तात्रय ने उत्तर दिया—अक्षर होने के कारण, सबको इष्ट होने के कारण, संसार बंधन से निवृत्त होने के कारण तथा 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों का लक्ष्य होने के कारण उसको अवधूत कहते हैं ॥ १ ॥ वर्णाश्रम का उल्लंघन करके जो आत्मा ही में अवस्थित है, ऐसा वर्णाश्रम से पर हुआ योगी अवधूत कहा जाता है ॥ २ ॥ प्रिय उसका शिर करके मोद दक्षिण पक्ष करके प्रमोद उत्तर पक्ष करके गौ के पैर के समान आनन्द आत्मा है ॥ ३ ॥ वह शिर में मध्य में और नीचे नहीं है ब्रह्म ही पुच्छ रूप प्रतिष्ठा है ऐसी भावना करे ॥ ४ ॥ इस प्रकार चार मार्ग करने वाले परमपद को प्राप्त होते हैं। कर्म से, प्रजा से, धन से या त्याग से कोई परमपद को प्राप्त नहीं होता ॥ ५ ॥

स्वेच्छाचार से विहार करना यही उसका आचरण है। वे वस्त्र रखते हैं या नहीं भी रखते। उनके लिये न धर्म अधर्म है न पवित्र वा अपवित्र है। वे सदा सांग्रहण्या इष्टि तथा अश्वमेध

अपने अन्तर ही में करते हैं। यह महायज्ञ करना महायोग है। इनके सब कर्म विचित्र होते हैं। स्वेच्छाचारी अवधूत की निंदा नहीं करनी चाहिये यह महाव्रत है। क्योंकि मूढ़ मनुष्य के समान वे लेपायमान नहीं होते। जैसे सूर्य सब प्रकार के जल को खींच लेता है, जैसे, अग्नि सब का भक्षण करता है; इसी प्रकार योगी विषयों को भोगता है परन्तु वह शुद्ध रहता है, पुण्य पाप से लेपायमान नहीं होता॥ ६॥ पूर्ण भरे हुए और सदा एक समान रहने वाले समुद्र में जिस प्रकार जल प्रवेश करता है, उसी प्रकार जिसमें सब काम प्रवेश करते हैं उसीको शांति प्राप्त होती है; कामनाओं को चाहने वाले को नहीं॥ ७॥ न निरोध है, न उत्पत्ति है, न बद्ध है न साधक है, न मुमुक्षु है और न मुक्त है; यही परमार्थ है॥ ८॥ इहलोक और परलोक के सुख साधन के लिये तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये पहिले बहुत कुछ किया, वह सब अब पूर्ण होगया॥ ९॥ इसी कृत कृत्यता का पूर्व के कर्म की अशांति के साथ मिलान करके वह सदा तृप्त रहता है॥१०॥ अज्ञानी और दुखी जीव पुत्रादि की इच्छा से भले कर्म करें, पूर्णानन्द से पूर्ण हुआ मैं किस निमित्त कर्म करूं?॥ ११॥ परलोक प्राप्ति की इच्छा वाले भले कर्मों का अनुष्ठान करें, मैं सर्वलोक स्वरूप हूँ मैं कौनसा कर्म करूं और कैसे करूं?॥१२॥ जिनका अधिकार है, वे भले शास्त्रों का व्याख्यान करें और वेदों का अध्ययन करावें; मैं अक्रिय होने से मेरा तो अधिकार ही नहीं है॥ १३॥ निद्रा, भिक्षा, स्नान या शौच किसी की मुझे इच्छा नहीं है, न मैं कुछ करता हूं। देखने वाले यदि मुझमें

कल्पना करें तो उनकी कल्पना से मुझे कुछ हानि भी नहीं है ॥ १४ ॥ अन्य कोई गुंजा (गोंगची) के ढेर में अग्नि की कल्पना करें, तो उससे वह जलता नहीं, वैसे ही, औरों से आरोपित किये हुए संसार धर्मों का मेरे साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ॥ १५ ॥ जिनको तत्त्व का ज्ञान नहीं है वे भले श्रवण करें; मैं तत्त्वको जानता हूँ मैं किस लिये श्रवण करूं ? वैसे ही, जिनको संशय है वे मनन या विचार करें मुझे न संदेह है न मैं विचार करता हूं ॥ १६ ॥ जिसको विपरीत भाव हो वे निदिध्यासन करें, मुझे विपरीत भाव ही नहीं है तो मैं क्या ध्यान करूं ? देह में आत्म भाव रूप विपरीत भावना मैं कभी पास नहीं फटकने देता ॥ १७ ॥ 'मैं मनुष्य हूँ' इत्यादि का व्यवहार, इस विपरीत भाव के बिना ही, केवल चिरकाल के अभ्यास से हुआ करता है ॥ १८ ॥ यह व्यवहार प्रारब्ध का क्षय होते ही निवृत्त होजाता है; कर्मों का क्षय न हो तो सहस्रों ध्यान से वह निवृत्त नहीं होता ॥ १९ ॥ व्यवहार का क्षय होना यदि इष्ट हो तो तू ध्यान कर, मैं कर्मों के बाध के साथ व्यवहार देखता हूँ, फिर मैं क्यों ध्यान करूं ? ॥ २० ॥ मुझमें विक्षेप नहीं है, इसलिये मेरी कोई समाधि नहीं है। विक्षेप वा समाधि ये विकारी मन की अवस्थाएं हैं। मैं नित्य अनुभव स्वरूप हूं, मेरे लिये यहां पृथक् अनुभव ही कहां है ? ॥ २१ ॥ करने का था सो कर लिया, पाने का था सो पा लिया, इसलिये अब लौकिक अथवा शास्त्रानुसार अन्य किसी प्रकार का व्यवहार मेरे अकर्ता और अलिप्त रहते हुए जैसे नित्य से चलते आये हैं भले चला करें ॥ २२ ॥ अथवा,

यद्यपि मैं स्वयं कृत कृत्य हूँ, तो भी लोगों के कल्याण की इच्छा से शास्त्रों के अनुकूल मार्ग ही से बर्ताव रखूं तो भी मेरी हानि क्या है ? ॥ २३ ॥ देव पूजा, स्नान, शौच, भिक्षा आदि कर्म शरीर भले किया करे तथा वाणी भले प्रणव का जाप किया करे अथवा वेदान्त का पठन किया करे ॥ २४ ॥ बुद्धि भले विष्णु का ध्यान करे अथवा ब्रह्मानन्द में विलीन होजाय । मैं तो साक्षी हूं इसमें मैं तो न कुछ करता हूं, न कराता हूं ॥ २५ ॥ करने का कर चुकने से तथा पाने का पा चुकने से तृप्त हुआ वह अपने मन से उस तृप्ति की भावना नहीं करता रहता ॥ २६ ॥

मैं धन्य हूँ, धन्य हूं क्योंकि मैं निसंदेह आत्मा को जानता हूँ । मैं धन्य हूँ, धन्य हूं, ब्रह्मानन्द का मुझको स्पष्ट अनुभव होता है ॥ २७ ॥ मैं धन्य हूं, धन्य हूं, संसार के दुःख मुझे यहां दीखते ही नहीं ! मैं धन्य हूँ धन्य हूँ, मेरा अज्ञान न मालूम कहां भाग गया ॥ २८ ॥ मैं धन्य हूँ, धन्य हूं, मुझे अब कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा ! मैं धन्य हूँ, धन्य हूँ, क्योंकि पाने के योग्य था सो सब यहीं पर मिल गया ॥ २९ ॥ मैं धन्य हूं धन्य हूं । मेरी तृप्ति के लिये विश्व में उपमा ही क्या है ? इसलिये मैं धन्य हूँ धन्य हूं और बार बार कहता हूं कि मैं धन्य हूँ धन्य हूं धन्य हूँ ॥ ३० ॥ अहो पुण्य ! पुण्य फल मिला और मिला भी कैसा ? इस पुण्यकी संपत्ति से हम भी धन्य हैं ॥ ३१ ॥ अहो ज्ञान ! अहो ज्ञान ! अहो सुख ! अहो सुख ! अहो शास्त्र ! अहो शास्त्र ! अहो गुरु ! अहो गुरु ॥ ३२ ॥

जो इसको पढ़ता है वह भी कृत कृत्य होजाता है। उसका सुरापान का पाप निवृत्त होजाता है। सुवर्ण की चोरी का दोष निवृत्त होजाता है ब्रह्म हत्या का पाप दूर होजाता है अथवा और जो कुछ किया हो उसका पाप दूर होजाता है। ऐसा जानकर स्वेच्छाचार परायण हो जाय। ॐ सत् यह उपनिषत् है॥

॥ इति अवधूतोपनिषत् समाप्त ॥

अथर्वशिरोपनिषत् ।

[४४]

एक समय देव घूमते २ रुद्र लोक में गये और वहां जाकर रुद्र से पूछने लगे "आप कौन हैं" ? रुद्र भगवान् ने कहा "मैं एक हूँ, मैं भूत, भविष्य और वर्तमान काल में हूँ, ऐसा कोई नहीं है जो मुझसे रहित हो। जो अत्यन्त गुप्त है, जो सर्व दिशाओं में रहता है वह मैं हूं। मैं नित्यानित्यरूप, व्यक्तरूप, अव्यक्तरूप, ब्रह्म-रूप अब्रह्मरूप, पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशारूप, ऊर्ध्व और अधो रूप, दिशा, प्रतिदिशा पुमान, अपुमान, स्त्री, गायत्री, सावित्री, त्रिष्टुप, जगती, अनुष्टुप छन्द, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सत्य, गौ, गौरी, ऋग्, यजु, साम, अथर्व, अंगिरस, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वरिष्ठ, जल, तेल, गुह्य, अरण्य, अक्षर, क्षर, पुष्कर, पवित्र, उग्र, मध्य, वाह्य, पुरस्तात, इस प्रकार ज्योतिरूप मैं हूं। मुझको सब में रमा हुआ जानो। जो मुझको जानता है, वह सब देवों को जानता है और अंगों सहित सब वेदों को भी जानता है। मैं अपने तेज से ब्रह्म को ब्राह्मण से गौ को गौ से, ब्राह्मण को ब्राह्मण से, हविष्य को हविष्य से, आयुष्य को आयुष्य से, सत्य को सत्य से और धर्म से धर्म की तृप्ति करता हूं।" वे देव शंका के सम्बन्ध से रुद्र से पूछने लगे, रुद्र को देखने लगे और उनका

ध्यान करने लगे पीछे उन देवों ने ऊंचे हाथ कर के इस प्रकार स्तुति की ॥ १ ॥

हे रुद्र भगवन् ! आप ब्रह्मारूप, विष्णुरूप, रुद्ररूप, स्कंदरूप इन्द्ररूप, वायुरूप, अग्निरूप, सूर्यरूप, सोमरूप, आठ ग्रहरूप, प्रतिग्रहरूप, भूरूप, भुवरूप, स्वरूप, महररूप, पृथिवीरूप, अंतरिक्षरूप, द्योरूप जलरूप, तेजरूप, कालरूप, यमरूप, मृत्युरूप, अमृतरूप आकाशरूप, विश्वरूप, स्थूलरूप, सूक्ष्मरूप, कृष्णरूप, शुक्लरूप, सत्यरूप, सर्वरूप हो आपको नमस्कार हो ॥ २ ॥

पृथ्वी आपका आदिरूप, भुवर्लोक, मध्य प्रदेश रूप और स्वर्गलोक आपका शिररूप है। आप विश्व रूप केवल ब्रह्म रूप हो दो प्रकार के या तीन प्रकार से (भासते हो आप वृद्धिरूप, शांतिरूप, पुष्टिरूप, हुतरूप, अहुतरूप, दत्तरूप, अदत्तरूप, सर्वरूप, असर्वरूप, विश्व, अविश्व, कृत, अकृत, पर, अपर और परायणरूप हो आपने हमको अमृत पिला के अमृतरूप किया हम ज्योतिभाव को प्राप्त हुए और हमको ज्ञान प्राप्त हुआ अब शत्रु हमारा क्या कर सकेंगे ? हमको वे पीड़ा नहीं दे सकेंगे आप मनुष्य को अमृतरूप हो, चन्द्र सूर्य से प्रथम और सूक्ष्म पुरुष हो। जो यह अक्षर और अमृतरूप प्रजापति का सूक्ष्म रूप है वही जगत का कल्याण करने वाला पुरुष है। वही अपने तेज द्वारा ग्राह्यवस्तु को अग्राह्य वस्तु से, भाव को भाव से सौम्य को सौम्य से, सूक्ष्म को सूक्ष्म से वायु को वायु से ग्रास करता है।

ऐसे उपसंहार और महाग्रास करने वाले आपको नमस्कार है। सबके हृदय में देवताओं का, प्राणों का तथा आपका वास है। ये तीन मात्राएं हैं और उनके पर हो। उत्तर में उसका मस्तक है, दक्षिण में पाद है, जो उत्तर में है, सो ही ॐकाररूप है, जो ॐकार है सो ही प्रणवरूप है, जो प्रणव है सो सर्व व्यापीरूप है। जो सर्व व्यापी है सो ही अनन्त रूप, जो अनन्त रूप है सो ही ताररूप जो तार रूप है वही सूक्ष्म रूप है, जो सूक्ष्मरूप है वह शुक्लरूप और शुक्ल रूप है वही विद्युत रूप, जो विद्युत रूप है वही परब्रह्म रूप, जो परब्रह्मरूप है वही एक रूप, जो एक रूप है वही इन्द्र रूप जो इन्द्र रूप है वही ईशान रूप, जो ईशान रूप है वही भगवान् महेश्वर है ॥ ३ ॥

ॐकार इस कारण है कि ॐकार का उच्चारण करने के समय प्राण ऊपर खेंचने पड़ते हैं इसलिये आप ॐकार कहे जाते हो। प्रणव कहने का कारण यह है कि इस प्रणव के उच्चारण करते समय ऋग्, यजु, साम, अथर्व, अंगिरस और ब्रह्म ब्राह्मण को नमस्कार करने आते हैं, इसलिये प्रणव नाम है। सर्व व्यापी कहने का कारण यह है कि इसके उच्चारण करने के समय जैसे तिलों में तेल व्यापक होकर रहता है, तैसे आप सब लोकों में व्यापक हो रहे हो अर्थात् शांत रूप से आप सब में ओत प्रोत हो इसलिये आप सर्व व्यापी कहलाते हो। अनन्त कहने का कारण यह है कि उच्चारण करते समय, उच्च, नीच और तिर्यक कहीं भी आपका अन्त देखने में नहीं आता इसलिये आप

अनन्त कहलाते हो। तारक कहने का कारण यह है कि उच्चारण के समय पर गर्भ जन्म व्याधि जरा और मरण वाले संसार के महा भय से तारने वाले हैं इसलिये इसको तारक कहते हैं। शुक्ल कहने का कारण यह है कि उच्चार करने में क्लेद होता है अर्थात् श्रम पहुँचता है। सूक्ष्म कहने का कारण यह है कि उच्चारण करने में सूक्ष्म रूप वाले होकर स्थावरादि सब शरीरों को आधीन करता है। सूक्ष्म वैद्युत कहने का कारण यह है कि उच्चारण के साथ में स्थूल महान् अन्धकार में सब शरीर प्रकाश को प्राप्त होता है इसलिये वैद्युत रूप कहा है। ब्रह्म कहने का कारण यह है कि पर, अपर और परायण का बड़ी वीणा से ज्ञान कराते हो इसलिये आपको परब्रह्म कहते हैं। एक कहने का कारण यह है कि सब प्राणों का भक्षण करके अज रूप होकर उत्पत्ति और संहार करते हैं। कोई पुण्य तीर्थमें जाते हैं। कितने ही दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व दिशा में तीर्थाटन करते हैं, उन सबकी सद्गति यही है। सब प्राणियों के साथ में एक रूप से रहते हो इसलिये आपको एक कहते हैं। आपको रुद्र क्यों कहते हैं? ऋषियों को आपका रूप प्राप्त होसक्ता है, सामान्य भक्तों को आपका रूप प्राप्त नहीं होसक्ता इसलिये आपको रुद्र कहते हैं। ईशान् कहने का कारण यह है कि सब देवताओं का ईशानी और जननी नाम की परम शक्तियों से आप नियमन करते हो। हे शूर, जैसे दूध के लिये गाय को रिझाते हैं, वैसे ही आपकी हम स्तुति करते हैं, हे इन्द्र, आप

ही इस वर्तमान जगत के ईश और दिव्य दृष्टि वाले हो इसलिये आपको ईशान कहते हैं। आपको भगवान् परमेश्वर कहते हैं इसका कारण यह है कि भक्त जो ज्ञान के लिये भजते हैं उनके ऊपर आप अनुग्रह करते हो और उनके लिये वाणी का प्रादुर्भाव करते हो तथा सब भावों को त्याग कर आप आत्मज्ञान से तथा योग के ऐश्वर्य से अपने महिमा में विराजते हो इसलिये आपको भगवान् महेश्वर कहते हैं। ऐसा यह रुद्र चरित्र है ॥ ४ ॥

एक ही देव सब दिशाओं में रहता है। प्रथम जन्म उसीका है मध्य में तथा अन्त में वह ही है, वह ही उत्पन्न होता है और होगा। प्रत्येक व्यक्ति भाव में वह ही व्याप्त हो रहा है। एक रुद्र ही किसी अन्य की अपेक्षा न रखते हुए, अपनी महाशक्ति से इस लोक को नियम में रखता है। सब उसमें रहते हैं और अन्त में सबका संकोच उसीमें होता है। विश्व का प्रगट करने वाला और रक्षण करने वाला वही है। जो सब योनियों में व्याप रहा है और जिससे यह सर्व व्याप्त हो रहा है, उस पूज्य ईशान और देव रूप पुरुष का चिंतवन करने से मनुष्य परम शांति को प्राप्त करते हैं। सब हेतु समूह के मूल रूप अज्ञान का त्याग करके संचित कर्मों को बुद्धिसे रुद्र में स्थापित करने से एकता को प्राप्त होता है। जो शाश्वत, पुराण और अपने बल से प्राणियों को अन्न तथा पशु देकर उनके मृत्यु पाश को नाश करने वाला है उसके साथ आत्मज्ञानप्रद अर्ध चतुर्थ मात्रा से वह कर्म के बंध को तोड़ता हुआ परम शांति प्रदान

करता है। आपकी प्रथम ब्रह्मायुक्त मात्रा रक्त वर्ण वाली है, जो उसका नित्य ध्यान करते हैं वे ब्रह्मा के पद को प्राप्त होते हैं। विष्णु देव युक्त आपकी दूसरी मात्रा कृष्ण वर्ण वाली है, जो उसका नित्य ध्यान करते हैं वे वैष्णव पद को प्राप्त होते हैं। आपकी रुद्र देव युक्त जो तीसरी मात्रा है वह पीले वर्ण वाली है उसका जो नित्य ध्यान करते हैं वे ईशान यानी रुद्र लोक को प्राप्त होते हैं। अर्ध चतुर्थ मात्रा जो अव्यक्त रूप में रहकर आकाश में विचरती है उसका वर्ण शुद्ध स्फटिक के समान है, जो उसका ध्यान करते हैं उनको मोक्ष पद की प्राप्ति होती है। मुनि कहते हैं कि इस चौथी मात्रा की ही उपासना करनी चाहिये। जो इसकी उपासना करते हैं उसको कर्म बंध नहीं रहता। यह ही वह मार्ग है जिस उत्तर मार्ग से देव जाते हैं, जिससे पितृ जाते हैं और जिस उत्तर मार्ग से ऋषि जाते हैं वह ही पर, अपर और परायण मार्ग हैं। जो बाल के अग्र भाग समान सूक्ष्म रूप से हृदय में रहता है, जो विश्व रूप, देव रूप, सुन्दर और श्रेष्ठ है, जो विवेकी पुरुष हृदय में रहने वाले इस परमात्मा को देखते हैं उनको ही शांति भाव प्राप्त होता है दूसरे को नहीं।

क्रोध, तृष्णा, क्षमा और हेतु समूह का मूल रूप अज्ञान का त्याग करके संचित कर्मों को बुद्धि से रुद्र में अर्पण कर देने से रुद्र में एकता को प्राप्त होते हैं कि रुद्र ही शाश्वत और पुराण रूप होने से अपने तप और बल से अन्न का यानी प्राणियों का नियंता है। अग्नि, वायु, जल, स्थल और आकाश

ये सब भस्म रूप हैं। पशुपति की भस्म का जिसके अंग में स्पर्श नहीं होता, उसका मन और इन्द्रियां भस्म रूप यानी निरर्थक हैं, इसलिये पशुपति की ब्रह्म रूप भस्म पशु के बंधन को नाश करने वाली है ॥ ५ ॥

जो रुद्र अग्नि में है, जो रुद्र जलके भीतर है. उसी रुद्र ने औषधियों और वनस्पतियों में प्रवेश किया है। जिस रुद्र ने इस सब विश्व को उत्पन्न किया है, उस अग्नि रूप रुद्र को नमस्कार है। जो रुद्र अग्नि में, जल में, अंतरिक्ष में औषधियों और वनस्पतियों में रहता हैं और जिस रुद्र ने विश्व को और भुवनों को उत्पन्न किया है, उस रुद्र को नमस्कार है। जो रुद्र जल में, औषधियों में और वनस्पतियों में स्थिति कर रहा है, जिस रुद्र ने जगत को धारण कर रक्खा है, जो रुद्र शिवशक्ति रूप से और तीन गुणों से जगत को धारण करता है, जिसने अंतरिक्ष में नागों को धारण किया है, उस रुद्र को नमस्कार है। इस (रुद्र भगवान्) के प्रणव रूप मस्तक की उपासना करने से अथर्वा ऋषि के उच्च स्थिति प्राप्त होती है। जो इस प्रकार उपासना न की जाय तो नीच गति प्राप्त होती है। रुद्र भगवान् का मस्तक देवों का समूह रूप व्यक्त है, उसका प्राण और मन मस्तक का रक्षण करता है। देव समूह, स्वर्ग, आकाश अथवा पृथ्वी किसी का भी रक्षण नहीं कर सकते। इस रुद्र भगवान् में सब ओत प्रोत है। इससे पर कोई अन्य नहीं है, उससे पूर्व कुछ नहीं है तैसे ही उससे पर कुछ नहीं है, होगया और होते

वाला भी कुछ नहीं है। उसके हजार पाद हैं, एक मस्तक है और सब जगत में व्याप्त हो रहा है। अक्षर से काल उत्पन्न होता है, काल रूप होने से उसको व्यापक कहते हैं। व्यापक अथवा भोगायमान् रुद्र जब शयन करता है तब प्रजा का संहार होता है। जब वह श्वास सहित होता है तब तम होता है, तम से जल होता है जलमें अपनी अंगुली से मंथन करने से वह जल शिशिर ऋतु के द्रव (ओस) रूप होता है, उसका मंथन करने से उसमें फेन होता है, फेन से अंडा होता है, अण्डे से ब्रह्मा होता है, ब्रह्मा से वायु होता है, वायु से ॐकार होता है। ॐकार से सावित्री होती है, सावित्री से गायत्री होती है और गायत्री में से सब लोक होते हैं। फिर लोक तप की उपासना करते हैं, जिससे सत्य होता है और पीछे शाश्वत अमृत वहता है। यह ही परम तप है। यह ही तप, जल, ज्योति, रस अमृत, ब्रह्म भूलोक भुवलोक और स्वर्लोक हैं ॥ ६ ॥

जो कोई ब्राह्मण इस अथर्वशिर का अध्ययन करता है, वह अश्रोत्रिय हो तो श्रोत्रिय होजाता है, उपनयन संस्कार से रहित हो तो उपनयन संस्कार वाला होजाता है। वह अग्नि से पवित्र, वायुपूत, सूर्यपूत, सत्यपूत और सोमपूत होता है। वह सब देवों से जाना हुआ और ध्यान किया हुआ होता है। वह सब तीर्थों में स्नान किया हुआ होता है, उसको सब यज्ञों का फल मिलता है। साठ हजार गायत्री के जप का तथा इतिहास और पुराण में एवं रुद्र के एक लाख जप का उसको फल होता है, दश सहस्र

प्रणव के जप का फल उसको मिलता है। उसके दर्शन से मनुष्य पवित्र होता है। वह पूर्व में हुए सात पीढ़ी के पुरुषों को तारता है। भगवान् ने कहा है कि अथर्वशिर का एक वार जाप करने ही से पवित्र होता है और कर्म का अधिकारी होता है। दूसरी वार जपने से गणों में अधिपतिपन प्राप्त करता है और तीसरी वार जप करने से सत्य स्वरूप ॐकार में उसका प्रवेश होता है ॥ ७ ॥

॥ इति अथर्वशिरोपनिषत् समाप्त ॥

वज्रसूचिका उपनिषत् ।

[४५]

चित्सदानन्द रूप वाला, सबकी बुद्धि का साक्षी रूप, वेदान्त से जानने योग्य और अनंत रूप वाले ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ। अज्ञान को नाश करने वाले वज्रसूचि नामका शास्त्र मैं कहता हूं। यह ज्ञान रहित को दूषण रूप है और ज्ञान चक्षु वाले को आभूषण रूप है॥ १॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ऐसे चार वर्ण हैं उनमें ब्राह्मण मुख्य है ऐसा वेद और स्मृति में कहा है। यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि ब्राह्मण कौन है ? क्या वह जीव है ? क्या वह देह है, क्या जाति है ? क्या वह ज्ञान कर्म या कोई धार्मिक व्यक्ति है ?

उसमें प्रथम जीव को जो ब्राह्मण कहा सो नहीं होसक्ता; क्योंकि हुए और होने वाले अनेक देहों में जीव का एकपना है। जीव एक है और कर्म के कारण से अनेक देहों में उसकी उत्पत्ति होती है। सब शरीरों के जीव की एकता है इसलिये भी जीव ब्राह्मण रूप नहीं है। तब क्या देह ब्राह्मण है ? नहीं ! इस प्रकार भी नहीं है, चांडाल से लेकर सब मनुष्यों का पंच महाभूतों से बना हुआ देह एक रूप है इसलिये बुढ़ापा, मरण, धर्म और अधर्मादि सबको एक ही प्रकार होते हैं, ब्राह्मण श्वेत वर्ण वाला,

क्षत्रिय रक्त वर्ण वाला, वैश्य पीत वर्ण वाला और शूद्र कृष्ण वर्ण वाला ही हो, ऐसा नियम नहीं है और पिता आदिक के शरीर का दहन करने में पुत्रादिक को ब्रह्महत्यादिक दोषका संभव होता है। इसलिये देह ब्राह्मण है ऐसा कभी भी सिद्ध नहीं होता। तब क्या जाति ब्राह्मण है? नहीं! ऐसा भी नहीं है। भिन्न जाति वाले जन्तुओं से अनेक जाति वाले बहुत महर्षि उत्पन्न हुए हैं। जैसेः– ऋष्यश्रृंग मृगली से, कौशिक कुश से, जेबुक श्याल से, वाल्मीकि वांबी (राफड़ा) में से, व्यास मल्लाह की कन्या से, गौतम खरगोश की पीठ में से, वंशिष्ठ उर्वशी से और अगस्त्य कलश से उत्पन्न हुए हैं ऐसा सुना है। इन ऋषियों में से अनेक, जाति की प्राप्ति विना भी पूर्ण ज्ञानवान् थे इसलिये ब्राह्मण जाति रूप नहीं है। तब क्या ज्ञान ब्राह्मण है? नहीं! ऐसा भी नहीं है। परमार्थ को जानने वाले और ज्ञानवान् बहुत क्षत्रिय भी हैं इसलिये ज्ञान ब्राह्मण रूप नहीं है। तब क्या कर्म ब्राह्मण रूप है? नहीं! ऐसा भी नहीं है। सब प्राणियों के प्रारब्ध संचित और आगामी कर्मों का साधर्म्य दीखता है और कर्म से प्रेरित हुए जीव क्रिया करते हैं इसलिये कर्म भी ब्राह्मण नहीं है। तब क्या धार्मिक व्यक्ति ब्राह्मण है? नहीं, ऐसा भी नहीं हैं। बहुत क्षत्रिय सुवर्ण का दान करने वाले होते हैं इसलिये धार्मिक व्यक्ति ब्राह्मण नहीं है। तब ब्राह्मण किसको कहें? जो आत्मा के द्वैत भाव से रहित, जाति, गुण और क्रिया से रहित, छः ऊर्मी और छः प्रकार के भाव आदिक

दोषों से रहित सत्य ज्ञान आनंद अनंत स्वरूप स्वयं निर्विकल्प रूप से रहने वाले, अशेष कल्पों का आधार रूप अशेष भूतों में अंतर्यामी रूप से रहने वाले, भीतर और बाहर आकाश की समान प्रोये हुए अखंड आनन्द स्वभाव वाले, प्रमेय से रहित अनुभव से ही जानने योग्य, अपरोक्ष भासने वाले आत्मा को हाथ में रहने वाले आमले की समान अपरोक्ष साक्षात्कार करता है और कृतार्थ होकर कामरागादि दोषों से रहित, शम दमादि से युक्त भाव, मात्सर्य, तृष्णा, आशा मोहादिक से रहित और दंभ अहंकारादि को जिसका चित्त कभी छूता न हो ऐसे लक्षण वाले को ब्राह्मण कहे। ऐसा श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहास का अभिप्राय है। इसके सिवाय अन्य कोई स्थान पर ब्राह्मणत्व की सिद्धि ही नहीं होती। आत्मा सच्चिदानन्द रूप और अद्वितीय है ऐसे ब्रह्म रूपसे मनुष्यों को मानना चाहिये। यह उपनिषत् है।

॥ इति वज्रसूचिका उपनिषत् समाप्त ॥

कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषत् ।

[४६]

प्रथम अध्याय ।

गार्ग्य का पुत्र चित्र यज्ञ करने वाला था। उसने यज्ञ कराने के लिये आरुणि को पसन्द किया। आरुणि ने आप न जाकर अपने बदले में अपने पुत्र श्वेतकेतु को भेजा। जब वह चित्र के पास आया तब चित्र ने पूछा "तू गौतम का पुत्र है, क्या इस लोक में कोई ऐसा गुप्त स्थान है कि जहां तू यज्ञ करके मुझे स्थापित कर सकेगा? अथवा अर्चिरादि मार्गसे जिस लोक में जाया जाता है उस लोक में क्या तू मुझे स्थापित करेगा?" श्वेतकेतुने कहा "यह मैं कुछ नहीं जानता, इसके विषय में आचार्य से पूछ देखूँगा।"

वह (श्वेत केतु) अपने पिता के पास लौट गया और बोला "चित्र ने मुझसे इस प्रकार पूछा है, मैं इसका क्या उत्तर दूं?" उसके पिता ने कहा "मैं भी यह नहीं जानता, चल हम उसके घर पर चलें और वहां वेदाध्ययन करके उससे ज्ञान प्राप्त करें, क्योंकि जब अन्य अपने को देता है तो प्राप्ति के लिये दोनों चलें। (उसकी ना न करनी चाहिये।)" अनन्तर हाथ में समिध लेकर वह गार्ग्य के पुत्र चित्र के पास गया और कहा 'मैं आप से ज्ञान प्राप्त करने आया हूं' तब चित्र ने कहा "गौतम! तू

ब्रह्मविद्या प्राप्त करने योग्य है (क्योंकि तुझमें अहंकार नहीं है) तू मेरे पास आ, मैं तुझे ब्रह्म विद्या का उपदेश करूंगा" ॥ १ ॥

चित्र बोला:—"जो कोई इस लोक में से जाते हैं वे सब चन्द्रलोक में जाते हैं। शुक्ल पक्ष में चन्द्र उन लोगों के प्राणों से पुष्ट होता है परन्तु कृष्ण पक्ष में उनको फिर उत्पन्न नहीं करता सचमुच चन्द्र स्वर्ग का द्वार है, जिसको इस चन्द्रलोक की इच्छा नहीं होती उसको वह ऊर्ध्व लोक में भेजता है, परंतु जिसको चन्द्रलोक की इच्छा होती है उसको वह वृष्टि रूप से इस लोक में भेजता है। वहां वह कीट, पतंग, पक्षी, वाघ, सिंह, मत्स्य, रीछ, मनुष्य अथवा कोई अन्य इतने स्थानों में प्राणी रूप से अपने कर्म और विद्या के अनुसार जन्म धारण करता है। जब वह जन्म लेता है तब गुरु उसको पूछता है "तू कौन है?" तब इसका उत्तर नीचे के समान देना चाहिये "विचक्षण और ऋतु के अधिष्ठाता ऐसे चन्द्र में से रेत एकत्र हुआ था यह चन्द्र शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष को उत्पन्न करता है, वह पितरों का स्थान रूप है। उस चन्द्र की उत्पत्ति नित्य के हवि में से होती है। रेत रूप मुझको देवताओं ने मनुष्य में रक्खा। मनुष्य का निमित्त करके देवताओं ने मुझे स्त्री में रक्खा, उस में से मैं बारह अथवा तेरह मास रूप से अथवा जीवित रूप से मनुष्य जन्म को प्राप्त हुआ था। सत्य असत्य का ज्ञान जानने के निमित्त बारह अथवा तेरह मास रूप पिता के साथ जुड़ा था, हे देवताओ! मेरा जीवित योग्य समय तक रहने दो कि जिससे

अमृतता को प्राप्त होऊं। अपने सत्य से-महनत और सहन शीलतासे मैं काल रूप हूं, मैं कालके आधीन हूं, तुम कौन हो?" तब वह कहता है "मैं भी तेरे समान हूं!" पश्चात् वह उसको आगे जाने देता है ॥ २ ॥

देवयान मार्ग को प्राप्त होकर वह अग्निलोक की तरफ जाता है, उस स्थान से वायु लोक में जाता है। वहां से वरुण लोक में, वहां से आदित्य लोक में, वहां से इन्द्र लोक में, वहां से प्रजापतिलोक में और वहां से ब्रह्मलोक में जाता है। ब्रह्म लोक में अर नामका सरोवर, इष्टिह नाम का समय, विरजा नामकी नदी, इल्य नामका वृक्ष, सालज्य नामका नगर, अपराजित नामका प्रासाद, इन्द्र (वायु) और प्रजापति (आकाश) द्वारपाल रूप से हैं। ब्रह्म का विभु नामक सुसज्जित कमरा है, विचक्षणा (बुद्धि) उसकी गद्दी है। उत्कृष्ट तेज वाला उसका पलंग है, मानसी नाम की प्रिया, चाक्षुषी नाम का प्रतिबिम्ब हैं जो पुष्पों के समान जगत को बुनता है सबकी माता (श्रुति) रूप और अक्षर (श्रुति ज्ञान) रूप अप्सरायें और ब्रह्मज्ञान में वहन करने वाली नदियां होती हैं। ब्रह्म को जानने वाला आगे बढ़ता है, उस समय ब्रह्मा अपने सेवकों से कहता है:—मेरे यश से तुम दौड़े जाकर उससे मिलो, वह विरजा नाम की नदी को फलांग चुका है, अब वह कभी भी जरा युक्त नहीं होगा ॥ ३ ॥

पांच सौ अप्सरायें उसे मिलने को सामने जाती हैं। उनमें से सौ अप्सराओंके हाथोंमें मालाएं होती हैं, एक सौ अप्सराओं के हाथों में अंजन होता है, एक सौ अप्सराओं के हाथों में चूर्ण होता है, एक सौ अप्सराओं के हाथों में वस्त्र होते हैं और एक सौ अप्सराओं के हाथों में जवाहरात होते हैं। वे उसको ब्रह्मके अलंकार से सुशोभित बनाती हैं। ब्रह्म के अलंकारों से अलंकृत और ब्रह्म को जानने वाला ऐसा वह ब्रह्म के समीप जाने लगता है। प्रथम वह अर नाम के सरोवर के पास आता है, मन से इस सरोवर का अतिक्रमण करता है। जो वर्तमान समय को जानते हैं वे इस सरोवर के पास आते ही उसमें डूब जाते हैं। पश्चात् वह यज्ञ की इष्टि के नाश करने वाले मुहूर्तों के पास आता है। वे उसे देखते ही भाग जाते हैं, पीछे वह विरजा नाम की नदी के पास आता है, इस नदी का मन से अतिक्रमण करता है। इस स्थान पर वह अपने सुकृत और दुष्कृतका त्याग करता है। उसके प्रिय कुटुम्बी—उपासना करने वाले उसके सुकृत को प्राप्त करते हैं और उसका अप्रिय करने वाले, उसके दुष्कृत को लेते हैं। जैसे रथ में बैठकर जल्दी से गमन करने वाला पुरुष रथ के चक्र की तरफ दृष्टि करता है वैसे ही वह दिन और रात्रि को देखता है। इसी प्रकार सुकृत और दुष्कृत तथा सर्व द्वन्द्व भावों को देखता है। इस प्रकार सुकृत और दुष्कृत से रहित होकर ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्म के प्रति जाता है॥ ४॥

वह इल्य नाम के वृक्ष के पास आता है, उसको ब्रह्म की गंध आती है। पीछे सालज्य नाम के शहर के पास आता है, उसमें ब्रह्म तेज का प्रवेश होता है, पीछे वह अपराजित महल के पास आता है उसमें ब्रह्म तेज प्रवेश करता है पीछे जिस स्थान पर इन्द्र और प्रजापति द्वारपाल है वहां आता है। वे उसे देख कर भग जाते हैं। वह विभु नाम के कमरे में आता है तब उसमें ब्रह्म का यश प्रवेश करता है। वह विलक्षण नाम की गद्दी के पास आता है। इस गद्दी के पूर्व की तरफ़ के दो पाद बृहत् और रथंतर नाम के साम हैं। श्यैत और नौधस उसकी पश्चिम तरफ़ के पाद हैं। विरूप और वैराज साम उसके उत्तर और दक्षिण के कौण हैं और शाकर और रैवत साम पूर्व और पश्चिम की तरफ़ के कौण हैं। यह वेदी ज्ञान रूप है। प्रज्ञा से वह सबको देखता है। पीछे वह उत्कृष्ट तेज वाले पलंग के पास आता है। यह पलंग प्राण रूप है, भूत और भविष्य उसके पूर्व पाद हैं, श्री और पृथ्वी उसके पश्चिम पाद हैं, बृहत् और रथंतर नाम के साम उत्तर और दक्षिण तरफ़ की पाटी हैं, भद्र और यज्ञायज्ञीय पूर्व और पश्चिम की तरफ़ की पाटी हैं। ऋक् तथा यजुष् पूर्व, पश्चिम तरफ़ की निवार है यजुष् उत्तर दक्षिण तरफ़ की निवार है। चन्द्र की किरणें गेंदुआ (कान के नीचे रखने का तकिया) है, उद्गीथ चद्दर है, अभ्युदय तकिया है, इस पलंग पर ब्रह्म विराजता है। जब एक पैर को ऊपर रख कर ब्रह्म का ज्ञाता ऊपर चढ़ने को

जाता है, तब ब्रह्म उससे पूछता है "तू कौन है ?" तब उसे नीचे के समान कहना चाहिये ॥ ५ ॥

"मैं काल रूप हूँ, ऋतुओं में जो होता है, सो रूप मैं हूं। मेरी उत्पत्ति आकाश में से है, संवत्सर का रेत रूप, भूत और कारण का तेज रूप, जड़, चैतन्य सबका आत्मा रूप और पंच भूतात्मक सबल ब्रह्म के तेज में से मेरा उद्भव है। तू यह आत्मा रूप है, जैसा तू है वैसा ही मैं हूँ।" ब्रह्म उससे पूछता है "मैं कौन हूं ?" तब कहना चाहिये "तू सत्य रूप है" "सत्य क्या है ?" "जो सब (इन्द्रियां) के अधिष्ठाता, देवों और प्राणों से भिन्न है। तत् यह ही सत्य रूप से है। जो देव और प्राण हैं सो सत्य रूप है। यह 'सत्य' इस शब्द से सब से पहिचाना जाता है। इस प्रकार का सब विश्व है। तू भी सर्व रूप है, इस प्रकार वेद के मंत्र से कहा जाता है ॥ ६ ॥"

यजुष् उदर रूप है। साम मस्तक रूप है। ऋक् उसकी मूर्ति रूप है इस प्रकार अक्षर ब्रह्म है, उसको ऋषि, ब्रह्ममय अथवा महान् रूप से जाने। ब्रह्म उससे पूछता है "मेरे पुलिंग नाम तूने किस प्रकार प्राप्त किये ?" वह उत्तर देता है "प्राण से।" "मेरे स्त्री लिंग के नाम किस प्रकार प्राप्त किये ?" तब कहता है "वाणी से" "मेरे नपुंसक नाम किस प्रकार प्राप्त किये" तब कहता है "मन से" गंध किससे ? "घ्राणेन्द्रिय से" "रूप किससे ?" "चक्षु से" "शब्द किससे ?" "श्रोत्रेन्द्रिय से" "अन्नका रस किससे ?"

"जिह्वा से" "कर्म किससे" "हाथों से" "सुख दुख किससे ?" "शरीर से" "आनन्द रति और प्रजा किससे ?" "उपस्थेन्द्रिय से" 'गति किससे ?" "पग से" "बुद्धि किससे पहिचानती है ?" "प्रज्ञा से" इस प्रकार उससे कहना चाहिये। पीछे ब्रह्म उससे कहता है "यह जल मेरा है, उस जल से बना हुआ यह लोक तेरा है।" जिसको इस प्रकार ब्रह्म ज्ञान होता है वह ब्रह्म में जो सम्पत्ति है, उसको जीतता है और ब्रह्म में जो कुछ शक्ति है वह उसको प्राप्त होती है ॥ ७ ॥

दूसरा अध्याय।

कौषीतकि कहने लगे:-प्राण ब्रह्म रूप है, प्राण जो ब्रह्म रूप है उसका दूत रूप मन है, वाणी परोसने वाली है। चक्षु शरीर का रक्षक रूप है और श्रोत्र द्वारपाल है। प्राण रूप ब्रह्म का मन दूत है, ऐसे जो जानता है वह दूत वाला होता है; चक्षु को रक्षक जानने वाला रक्षक वाला होता है। जो श्रोत्र को द्वारपाल जानता है वह द्वारपाल से युक्त होता है। जो वाणी को परोसने वाली जानता है वह परोसने वाले से युक्त होता है। इस प्राण रूप ब्रह्म के लिये सब देवता अर्थात् इन्द्रियां न मांगने पर भी बलि लाते हैं इसी प्रकार उसकी उपासना करने वाला नहीं मांगे तो भी सब प्राणी बलि लाते हैं। जो इस प्रकार जानता है, उसका परम रहस्य व्रत यह है कि वह किसीसे कुछ न मांगे। जैसे एक मनुष्य ग्राम में भिक्षा मांगने जाता है; जब उसको कुछ

नहीं मिलता तब वह ऐसा कह कर बैठता है कि अन्न में भिक्षा में मिला हुआ भक्षण न करूंगा; तब जो लोग भिक्षा देने की नाहीं करते थे वेही उसको बुला कर देने लगते हैं। जो याचना नहीं करता उसका इस प्रकार का धर्म है; परन्तु धन देने वाले ,हम तुझको देंगे' ऐसा कह कर बुलाते हैं ॥ १ ॥

पैंग बोला:–प्राण यह ही ब्रह्म है। प्राण रूप ब्रह्मको वाणी के पीछे चक्षु आवरण करते हैं, चक्षु के पीछे श्रोत्र आवरण करते हैं। श्रोत्र के पीछे मन आवरण करता है और मन के पीछे प्राण आवरण करते हैं। देवता-इन्द्रियां न मांगने पर इस प्राण रूप ब्रह्म को बलि लाकर देते हैं। इसी प्रकार प्राण को ब्रह्म रूप से उपासना करने वाले को नहीं मांगने पर भी प्राणी बलि लाकर देते हैं। ऊपर के समान नहीं मांगने वाले को सब देते हैं ॥ २ ॥

अब उत्तम धनकी प्राप्तिका उपाय कहते हैं। उस उत्तम धनकी इच्छा करने वाला मनुष्य पौर्णिमा या अमावस्या को अथवा शुक्ल पक्ष में किसी शुभ नक्षत्र पर अग्नि सिद्ध करे। अग्नि के चारों ओर की भूमिको झाड़ कर उसके चारों ओर दर्भ बिछावे, जल के छींटे लगावे और दाहिना घोंटू झुका कर स्रुवा से अथवा चम्मच से अथवा कांसे के किसी पात्र से आगे लिखे के अनुसार आहुति दे। "वाणी नाम का देवता अवरोधी (प्राप्त कराने वाला) है, वह मुझको उससे मिलादे; उसके लिये स्वाहा।" "प्राण नाम का देवता अवरोधी है, वह मुझको

उसमें यह प्राप्त करादे, उसके लिये स्वाहा।" नेत्र नाम का देवता अवरोधी है, वह मुझको उससे यह प्राप्त करादे, उसके लिये स्वाहा" "श्रोत्र नामका देवता अवरोधी है, वह मुझको उससे यह प्राप्त करादे, उसके लिये स्वाहा।" "मन नामका देवता अवरोधी है, वह मुझको उससे यह प्राप्त करादे, उसके लिये स्वाहा।" प्रज्ञा नामका देवता अवरोधी है, वह मुझको उससे यह प्राप्त करादे, उसके लिये स्वाहा। (यह आहुतियां देने के बाद) वह नाक से धुयें को सूँघे और सर्वांग में घृत का लेपन करे, मौन धारण करते हुए (वह पदार्थ जिसके पास हो उसके पास) चला जाय और अपनी इच्छा प्रकट करे अथवा किसी दूत को भेज कर ऐसा करे। उसको अर्थ की प्राप्ति हो जायगी ॥ ३ ॥

अब देवस्मर (देवताओं से पूर्ण होने वाली कामना) कहते हैं। जिस किसी एक पुरुष को वा स्त्री को अथवा अनेक पुरुषों को वा स्त्रियों को हम प्रिय हों ऐसी किसी को इच्छा हो तो वह ऊपर लिखे हुए मुहूर्त पर बरावर उसी रीति के अनुसार अग्नि में नीचे लिखे मन्त्रों से आहुतियां दे—तेरे वाणी का यह मैं अपने में हवन करता हूँ, स्वाहा। तेरे श्रोत्र का मैं अपने में हवन करता हूँ, स्वाहा। तेरे मनका यह मैं अपने में हवन करता हूँ, स्वाहा। तेरे प्रज्ञा का यह मैं अपने में हवन करता हूँ, स्वाहा! (ये आहुतियां देने के पश्चात्) वह नाक से धुयें को सूँघे और सब अंगों में घृत का लेपन करे, मौन धारण करते हुए उससे स्पर्श हो इस प्रकार उसके पास जाने की इच्छा करे अथवा दूर से

वैसा कहता हुआ खड़ा रहे। निश्चय वह प्रिय हो जायगा और वह उसको याद करेंगे ॥ ४ ॥

अब प्रतर्दन का अनुष्ठान किया हुआ संयमन (निरोधन) कहते हैं—इसी को आन्तर अग्निहोत्र कहते हैं। मनुष्य जब तक बोलता रहता है, तब तक वह श्वासोश्वास नहीं ले सकता। इस समय वह अपने वाणी में प्राण का हवन करता है और जब तक वह श्वासोश्वास करता रहता है तब तक वह अपने प्राण का वाणी में हवन करता है—वह जागता हो या निद्रित। यह कभी न समाप्त होने वाली अखण्ड आहुतियाँ बराबर हुआ करती हैं। सामान्य आहुतियाँ अन्त वाली होती हैं क्योंकि वे कर्म रूप हैं। प्राचीन काल के विद्वान् लोग इस अग्निहोत्र को करते थे ॥ ५ ॥

उक्थ ब्रह्म है, ऐसा शुष्कः भृङ्गार ने कहा है। यह उक्थ और ऋक् एक ही है ऐसा समझ कर उसका मनन करे। सर्व प्राणी उसी को श्रेष्ठ मानकर उसकी ही अर्चा करते हैं। वह और यजुर्वेद एक ही है ऐसा समझ कर उसका मनन करे। सर्व प्राणी उसी को श्रेष्ठ मान के उसका योग करते हैं (ध्यान करते हैं)। वह और साम एक ही है ऐसा समझ कर उसका मनन करे। समस्त प्राणी उसको श्रेष्ठ मानकर उसको नमस्कार करते हैं। यह और ऐश्वर्य एक ही है, ऐसा ध्यान करे, यह और यश एक ही है ऐसा ध्यान करे। यह और तेज एक ही है ऐसा ध्यान

करे। जिस प्रकार धनुष सब शस्त्रों में अत्यन्त श्री युक्त और अत्यन्त तेजस्वी होता है उसी प्रकार यह जानने वाला मनुष्य समस्त प्राणियों में अत्यन्त श्री युक्त, अत्यन्त यशस्वी और अत्यंत तेजस्वी होता है। कर्म का साधन रूप इष्ट का (लकड़ियाँ) से प्रज्वलित अग्नि ही वह स्वयं है ऐसा अध्वर्यु मानता है और वह यज्ञ का यजुर्भाग उसमें प्रवेश करता है। होता यजुर्भाग में ऋग् भाग का प्रवेश कराता है। उद्गाता ऋग् भाग में साम भाग का प्रवेश कराता है, वही त्रयी विद्या का आत्मा है, सचमुच वही उसका आत्मा है—यह जो जानता है वह वही हो जाता है ॥ ६ ॥

अब सर्वजित कौषीतकी (नामक प्रयोग) कहते हैं। इसके तीन प्रकार होते हैं। यज्ञोपवीत पहन कर और आचमन करके जल के पात्र का तीन बार सिंचन करके उदय होने वाले आदित्य की प्रार्थना करे—"तू वर्ग (दुखों से मुक्त करने वाला) है, मुझे पातकों से मुक्त कर।" इसी प्रकार सूर्य मध्याह्न होने पर वह प्रार्थना करे—"तू दुखों से मुक्त करने वाले में श्रेष्ठ है, मुझे पातकों से मुक्त कर।" इसी प्रकार अस्त समय में सूर्य की प्रार्थना करे—"तू सम्पूर्ण रीति से पातकों से मुक्त करने वाला है, मुझे समस्त पातकों से मुक्त कर। इस प्रकार दिन में और रात में किये हुए, समस्त पापों का वह नाश करता है। इसी प्रकार यह जानने वाला मनुष्य भी सूर्य की उपासना करता है और उससे वह दिन और रात में किये हुए सब पातकों का नाश करता है ॥ ७ ॥

अब प्रति मास अमावस्या के पश्चात् पश्चिम में स्थित चन्द्र की उपासना करे अथवा चन्द्र की ओर दो दूर्वांकुर फेंक कर कहे—"हे मरण रहित आनन्दमय देव चन्द्र में रहे हुए तेरे कोमल हृदय से ऐसा करो कि मुझे मेरे पुत्र के आपत्ति सम्बन्धी शोक करने का प्रसंग कभी न आवे।" उसकी सन्तति उसके आगे कभी नहीं मरेगी जिसके पहले से पुत्र हैं उसके सम्बन्ध में यह समझना, जिसके अभी पुत्र नहीं है उसके सम्बन्ध में कहते हैं—ऐसा मनुष्य आगे लिखी हुई ऋग्वेद की तीन ऋचायें पठन करे—"आप्या यस्व समेतु ते" [ऋ० १–९१–१६] (हे सोम तेरी समृद्धि हो और तेरे अंगों में सामर्थ्य प्राप्त हो); "सन्तेपयांसि समुयन्तु वाजा" [ऋ० ९–३१–४] (दूध और अन्न तुझे प्राप्त हो); "यमादित्या अंशुमाप्या ययन्ति" [ऋ० १–९१–१८] (जिस किरण को सूर्य आनन्दमय बनाता है)। इन तीन ऋचाओं का जप करके वह प्रार्थना करे—"हमारे प्राण, हमारी सन्तति और हमारे पशु इनसे (हमारे शत्रुओं को) समृद्ध न कर। जो हमारा द्वेष करते हैं और जिनका हम द्वेष करते हैं उनके प्राण, उनकी सन्तति, उनके पशु इनसे हमारी समृद्धि कर। इस प्रकार मैं दैवी आवृति करता हूं। मैं आदित्य का संचार घुमाता हूँ।" ऐसा कहकर चन्द्र की तरफ़ दाहिना हाथ ऊंचा करके पुनः दूर्वांकुर प्रदान करे॥ ८॥

पौर्णमासी के दिन चन्द्र पूर्व की ओर दिखाई देता है। उसकी इसी प्रकार पूजा करते समय यह प्रार्थना करे—"तू सोम

है, राजा है, ज्ञानी है, पांच मुख वाला है, प्रजापति है, ब्राह्मण तेरा एक मुख है उस एक मुख से तू राजाओं को खाता है। उसी मुख से मुझे अन्न खाने वाला कर। क्षत्रिय तेरा एक मुख है, उस मुख से तू वैश्यों को खाता है। उसी मुख से मुझे अन्न खाने वाला कर। श्येन पक्षी तेरा एक मुख है, उस मुख से तू पक्षियों को खाता है। उसी मुख से तू मुझे अन्न खाने वाला कर। अग्नि तेरा एक मुख है, उस मुखसे तू इस लोकको खाता है। उस मुख से तू मुझे अन्न खाने वाला कर। तुझमें पाँचवाँ मुख है उससे तू सब भूतों को खाता है, उससे तू मुझे अन्न खाने वाला कर। हमारे प्राण, हमारी सन्तति, हमारे पशु इनसे तेरा क्षय न हो। जो हमारा द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं उसका प्राण, उसकी सन्तति, उसके पशु इनसे तू क्षीण हो"। इस प्रकार मैं देवों का संचार कराता हूँ, मैं आदित्य का संचार अनुसरता हूँ। ऐसा कह कर दाहिना हाथ ऊंचा करके दूर्वांकुर प्रदान करे॥ ९॥

अब अपनी स्त्री को पास बुलाकर, उसके हृदय को स्पर्श करके कहे जो तुझमें तेरे कोमल हृदय में प्रजापति के अर्थ प्रविष्ट हुआ है, उससे कभी नाश न होने वाले आनन्द को प्राप्त हुई, हे सुन्दरी, तुझे पुत्र सम्बन्धी शोक करने का प्रसंग कभी न प्राप्त हो उसकी सन्तति उसके पहिले कभी नहीं मरेगी॥ १०॥

प्रवास करके वापस आने पर पुत्र का मस्तक सूँघे और कहे "तू मेरे प्रत्येक अवयव से उत्पन्न हुआ है, तू हृदय से उत्पन्न हुआ है, हे पुत्र सचमुच तू मेरा आत्मा है, सो तू सौ वर्ष पर्यन्त जी।" वह उसका नामलेकर कहे, "तू पत्थर हो, तू परशु हो, सोने का डेला हो। हे पुत्र, तू सचमुच तेज है सो तू सौ वर्ष तक जी।" उसका नामलेकर आलिंगन करते हुए वह कहता है, प्रजापति ने प्राणी मात्र का कल्याण के लिये आलिंगन किया, वैसे ही मैं तेरा आलिंगन करता हूँ। पश्चात् पुत्रके दाहिने कान में यह मन्त्र कहे—"अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन् [ऋ० ३-३६-१०] (हे चपल इन्द्र तू इसको दे) और बांए कान में कहे—'इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि [ऋ० २-२१-६] (हे इन्द्र तू श्रेष्ठ द्रव्य दे) पश्चात् तीन वार मस्तक सूँघते हुए कहे, तू हमारा वंश छेद न कर, दुखी न होते हुए सौ वर्ष तक जी। हे पुत्र यह मैं तेरा नाम लेकर तेरा मस्तक सूंघता हूँ।" पश्चात् मैं गाय के हुँकार के समान तुझ पर हुंकारता हूँ, ऐसा कह कर वह पुत्रके मस्तक पर तीन वार हुंकार करे॥ ११॥

अब दैवपरिमर (सब देवताओं का ब्रह्म में लीन होना) कहते हैं—अग्नि जलते हुए ब्रह्म ही प्रकाशता है, वह नहीं जलता है, तब मरता है। उसका तेज सूर्य में जाता है और प्राणवायु में जाता है, सूर्य प्रकाशता है तब ब्रह्म ही प्रकाशता है। वह नहीं दीखता तब मर जाता है। उसका तेज चन्द्रमा ही में जाता है, प्राणवायु में जाता है चन्द्र दीखता है तब ब्रह्म ही प्रकाशता

है—वह नहीं दीखता तब मर जाता है। उसका तेज विजली में जाता है और प्राण वायु में जाता है। विजली चमकती है तब ब्रह्म ही प्रकाशता है, वह नहीं चमकती तब मरता है। उसका तेज वायु में जाता है, और प्राण वायु में जाता है। इस प्रकार यह सब देवता वायु में प्रवेश करके वायु में रहते हैं, नष्ट नहीं होते। उसी वायु से वे सदा बाहर निकलते हैं—यह देवता सम्बन्धी कथन हुआ; अब शरीर सम्बंधी कहते हैं ॥ १२ ॥

मनुष्य वाणीसे बोलता है तब ब्रह्म ही प्रकाशता है, जब नहीं बोलता तब मर जाता है। उसका तेज नेत्र ही में जाता है, प्राण प्राणमें जाता है, मनुष्य आंखों से देखता है तब ब्रह्म ही प्रकाशता है और नहीं देखता तब मरता है। उसका तेज कान ही में जाता है और प्राण प्राण में जाता है। अब मनुष्य कान से सुनता है, तब ब्रह्म ही प्रकाशता है और नहीं सुनता तब मर जाता है। उसका तेज मन ही में जाता है, प्राण प्राण में जाता है। मनुष्य मन से विचार करता है तब ब्रह्म ही प्रकाशता है जब नहीं विचार करता तब मर जाता है। उसका तेज मनमें जाता है और प्राण प्राण में जाता है। इस प्रकार ये सब देवता (इन्द्रियां) प्राण ही में प्रवेश करके प्राण ही में लीन रहते हैं और नष्ट नहीं होते। उसी प्राणसे वे फिर बाहर निकलते हैं। यह दक्षिण और उत्तरके दोनों पर्वत ऐसा जानने वालेको पीस डालनेके लिये आगे बढ़नेपर भी नहीं पीस सकेंगे। परन्तु जो उससे द्वेष करते हैं और वे सब जिससे वह द्वेष करता है उसके पास आकर मर जाते हैं ॥१३॥

अब निःश्रेयसादान (प्राणोंका श्रेष्ठत्व ग्रहण) कहते हैं; देवता अपनी श्रेष्ठता के लिये वाद करने लगे और शरीर के बाहर निकल गये और शरीर लकड़ी के समान पड़ा रहा। पश्चात् वाणी ने उसमें प्रवेश किया परन्तु वाणी से बोलता हुआ भी वह पड़ा ही रहा। पश्चात् नेत्र ने प्रवेश किया परन्तु वाणी से बोलता हुआ और नेत्र से देखता हुआ भी वह पड़ा रहा। पश्चात् कर्णेन्द्रिय ने प्रवेश किया परन्तु वाणी से बोलता, नेत्रों से देखता और कर्णों से सुनता हुआ भी वह पड़ा ही रहा। पश्चात् मन ने उसमें प्रवेश किया परन्तु वाणी से बोलता हुआ, नेत्रों से देखता हुआ, कानों से सुनता हुआ और मन से विचार करता हुआ भी वह पड़ा ही रहा। पश्चात् प्राण ने उसमें प्रवेश किया—तत्काल ही वह उठ खड़ा हुआ। तब प्राण का श्रेष्ठत्व स्वीकार करके प्राण ही एक जानने वाला आत्मा है ऐसा जानकर सब देवता प्राणों के साथ उस शरीर से बाहर निकले और वायु में स्थिर होकर और आकाश में लीन होकर स्वर्गलोक में गये। ऐसा जानने वाले मनुष्यको प्राणोंका श्रेष्ठत्व विदित होता है और प्राण ही प्रज्ञात्मा है ऐसा वह जानता है और इसी प्रकार वह शरीर से बाहर निकलता है और वायु में स्थिर होकर और आकाश में लय होकर स्वर्गलोक में जाता है—जिस स्थान में वे देवता होते हैं उस स्थान में वह जाता है इस अवस्था को पहुँचने पर यह जानने वाला मनुष्य उन देवताओं को प्राप्त हुए अमरत्व से अमर होजाता है॥ १४॥

अब आगे पिता पुत्रीय सम्प्रदान (पिता का पुत्र को देने का उपदेश) कहते हैं—(पिता मरते समय अपने पुत्र को बुलाता है) उसके पहले घर में नयी घास बिछाकर, अग्नि सिद्ध करके, उसके पास पात्रों के साथ पानी का घड़ा रखकर श्वेत वस्त्र पहन करके और कोरा कपड़ा ओढ़ कर आ बैठता है और पुत्र के ऊपर झुकता है और अपने इन्द्रियों से उसकी इन्द्रियों को स्पर्श करता है अथवा वह उसके आगे बैठकर यह उपदेश करे—"मेरी वाणी तुममें स्थित हो।" पुत्र कहे "तुम्हारी वाणी मैं ग्रहण करता हूँ।" पिता कहे, "मेरा प्राण तुझमें प्रविष्ट हो।" पुत्र कहे, तुम्हारा प्राण मैं ग्रहण करता हूं।" पिता कहे, "मेरे नेत्र तुझमें स्थित हों" पुत्र कहे, "तुम्हारे नेत्र मैं ग्रहण करता हूँ।" पिता कहे, "मेरा कर्ण तुझमें प्रविष्ट हो।" पुत्र कहे "तुम्हारे कर्ण अपने में ग्रहण करता हूं।" पिता कहे, "मेरा अन्न रस मैं तुझमें स्थित हो ।" पुत्र कहे, "तुम्हारे अन्न रस को अपने में ग्रहण करता हूं।" पिता कहे, "मैं अपने कर्म तुझको देता हूँ। पुत्र कहे, "मैं तुम्हारे कर्म अपने में ग्रहण करता हूँ।" पिता कहे, "मैं अपने सुख दुःख तुझमें प्रविष्ट कराता हूँ।" पुत्र कहे, "तुम्हारे सुख दुःख मैं ग्रहण करता हूँ।" पिता कहे, "मेरा आनन्द, सन्तोष और सन्तति तुझको प्राप्त हो।" पुत्र कहे, "तुम्हारा आनन्द, सन्तोष और सन्तति अपने में ग्रहण करता हूँ।" पिता कहे, "मेरा गमन तुझमें होने दे।" पुत्र कहे, "तुम्हारा गमन मैं अपने में कराता हूँ।" पिता कहे, "मेरा मन तुझमें रहने दे।" पुत्र कहे, "तुम्हारा मन

मैं मुझमें प्रविष्ट कराता हूँ।" पिता कहे, "मेरी प्रज्ञा तुझमें रहने दे।" पुत्र कहे, "तुम्हारी प्रज्ञा को मैं ग्रहण करता हूँ।" यदि वह बहुत बीमार हो तो "मेरे प्राण तुझमें रहने दे" इतना कहे और पुत्र-तुम्हारे प्राण मैं अपने में ग्रहण करता हूँ, ऐसा उत्तर दे। पश्चात् दाहिने नेत्र से पिता को देखते रहते हुए पुत्र पिता को प्रदक्षिणा करते हुए चला जाता है। पिता उसको बुला कर कहता है "मेरा यश, ब्रह्मवर्चस और सम्मान तुझे हमेशा प्राप्त हो।" इसके पश्चात् कोई अपने हाथ से अथवा वस्त्र से अपने को ढक कर बांये स्कन्ध से पीछे देखे और कहे, स्वर्ग लोक तथा सम्पूर्ण इच्छित पदार्थ तुझको प्राप्त हो। इसके पश्चात् यदि पिता अच्छा होजाय तो वह पुत्र के अधिकार में रहे। अथवा संन्यास ग्रहण करे। परन्तु यदि मर जाय तो उसकी अंत क्रिया योग्यता अनुसार कर दे। उसकी क्रिया योग्यता के अनुसार कर दे॥ १५॥

तीसरा अध्याय।

दिवोदास का पुत्र प्रतर्दन युद्ध और पराक्रम से इन्द्र के परम धाम में पहुंचा, उससे इन्द्र ने कहा, "हे प्रतर्दन! मैं तुझे क्या वरदान दूँ?" प्रतर्दन ने कहा "आपको जो पसन्द हो जिसको आप मनुष्य के लिये हितकारी समझते हों वह वरदान मुझे दीजिये।" इन्द्र बोला "कोई दूसरे के लिये वरदान पसंद नहीं करता, तू अपने लिये आप ही वरदान मांग?"-प्रतर्दन बोला "मुझे पसंद करने के लिये कुछ है ही नहीं।" इन्द्र ने कभी

सत्य का त्याग नहीं किया क्योंकि इन्द्र सत्य रूप है ! इन्द्र बोला "तू मुझही को जान, मनुष्य के लिये मैं यही उत्तम हित मानता हूँ कि वह मुझे पहिचाने । त्वष्टा के तीन मस्तक वाले पुत्र को मैंने मार डाला था, वेद से रहित संन्यासियों को मैंने भेड़ियों को दे दिया । अनेक संधियों का अतिक्रमण करके आकाशमें प्रह्लाद के वंशजों को मैंने मारा था इस करके भी मेरे शिर का एक बाल भी टूटने न पाया । जो मुझको जानता है, (जीवात्मा और परमात्मा के बीच में जिसको अद्वैत भाव होता है) उसका लोक (सुख) किसी कर्म से मातृ वध से, पितृ वध से, चोरी से और भ्रूण हत्या से कभी नष्ट नहीं होता । कभी वह पाप कर्म करने की इच्छा करता है तो भी उसके मुख की कान्ति फीकी नहीं पड़ती" ॥ १ ॥

इन्द्र बोला:—"मैं प्राण रूप हूँ । प्रज्ञा रूप, आयुष् और अमृत रूप से मेरी उपासना कर । आयुष् प्राण रूप है, प्राण आयुष् रूप है और प्राण को अमृत रूप से कहा है । जब तक इस शरीर में प्राण रहता है तब तक आयुष्य रहता है मनुष्य प्राण करके इस लोक में अमृतत्व को प्राप्त करते हैं और प्रज्ञा से सत्य संकल्प को प्राप्त करते हैं । जो आयुष्य रूप और अमृत रूप से मेरी उपासना करता है वह इस लोक में पूर्ण आयुष्य को प्राप्त होता है और स्वर्गमें अमृत भावको प्राप्त करता है और अक्षयरूप होता है ।" तब प्रतर्दन बोला "कितनेक कहते हैं कि जब कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियरूप प्राण एकत्र होकर गमन करते हैं तब

वाणी से नाम जानने को कोई समर्थ नहीं होता। तैसे ही चक्षु रूप को, श्रोत्र शब्द को और मन ध्यान को नहीं जान सकता। जब प्राण एक रूप होता है तब वह भिन्न २ जानने की शक्ति देता है। इस प्रकार जब वाणी बोलती है तब सब प्राण उसके पीछे बोलते हैं। जब चक्षु देखता है तब उसके पीछे सब प्राण देखते हैं। जब श्रोत्र सुनता है तब उसके पीछे सब प्राण सुनते हैं और जब मन विचारता है तब उसके पीछे सब प्राण विचारते हैं। जब प्राण श्वास लेता है तब सब प्राण उसके पीछे श्वास लेते हैं।" इन्द्र बोला:-"इस प्रकार है तो सही, परन्तु त्कृष्ट सुख तो प्राण को ही होता है॥ २॥

हम गूंगे को देखते हैं उससे जान सक्ते हैं कि वाणी रहित मनुष्य जीता है, अंधे को देख कर जान सक्ते हैं कि चक्षु रहित मनुष्य जीता है। बहरे को देख कर जान सक्ते हैं कि श्रोत्र रहित जीता है, हाथ से रहित जीता है, तैसे ही उरू कटा हुआ जीता है। इस प्रकार देखते हैं कि प्राण ही प्रज्ञात्मा रूप है, इस शरीर को धारण करके वह इसको उठाता है, इसलिये उसकी उक्थ रूप से उपासना करनी चाहिये। जो प्राण है वह ही प्रज्ञा रूप है, जो प्रज्ञा है सो प्राण रूप है। इस प्राण का स्वरूप इस प्रकार है:—प्राण और प्रज्ञा इस शरीर में साथ रहते हैं, उनमें से दोनों साथ ही उत्क्रमण करते हैं, यह उसकी दृष्टि विज्ञान रूप है। जब पुरुष सुषुप्ति अवस्था में होता है, जब वह कुछ भी स्वप्न नहीं देखता, उस समय प्राण के विषे एक ही

प्रकार का होता है। पीछे वाणी सब नामों सहित उसमें प्रवेश करती है, चक्षु सर्व रूपों सहित उसमें प्रवेश करते हैं, श्रोत्र सर्व शब्दों सहित उसमें प्रवेश करते हैं और मन सर्व संकल्पों सहित उसमें प्रवेश करता है। जब मनुष्य जाग्रतावस्था में आता है तब जैसे जलते हुए अग्नि में से सब दिशाओं में चिनगारियां उड़ती हैं वैसे ही इस आनन्द रूप आत्मा में से सब प्राण अपने अपने स्थान प्रति जा जाकर बैठते हैं। प्राणों से देव और देवों से लोक होते हैं इस रीति का उसका प्रमाण और विज्ञान है। कोई एक पुरुष रोगग्रस्त होता है और मरण के समीप होता है, बल से रहित होता है, भान रहित अवस्था में पड़ता है, तब उसके पास बैठने वाले कहते हैं कि उसका चित्त जाता रहा है, वह सुनता नहीं है, वह देखता नहीं है, वह वाणी से बोलता नहीं है, वह इस प्राण में एक रूप हो गया है। पीछे सब नामों सहित वाणी उसमें प्रवेश करती है, सब रूप सहित चक्षु उसमें प्रवेश करते हैं, सर्व शब्दों सहित श्रोत्र उसमें प्रवेश करते हैं और सब संकल्पों सहित मन उसमें प्रवेश करता है। जब वह जाग्रत होता है तब जैसे जलते हुए अग्नि की चिनगारियां सब दिशाओं में उड़ती हैं इसी प्रकार आनन्द रूप आत्मा में से प्राण अपने अपने स्थान पर चले जाते हैं। प्राणों में से देवताओं का और देवताओं में से लोकों का उद्भव होता है॥ ३॥

जब इस शरीर में से प्राण का उत्क्रमण होता है तब शरीर से वाणी सब नामों का त्याग करती है, वाणी की सहायता से सब नामों की प्राप्ति होती है। प्राण सर्व गंधों का त्याग करता है। प्राण की सहायता से सब गंध शरीर को प्राप्त होता है। चक्षु शरीर में से सब रूपों का त्याग करता है, शरीर को चक्षु से सर्व रूपों की प्राप्ति होती है। मन शरीर में से सर्व संकल्पों का त्याग करता है, मनसे उसको सर्व संकल्पों की प्राप्ति होती है। प्राण की विद्यमानता से शरीर को इन सब की प्राप्ति होती है। प्राण प्रज्ञा रूप है और जो प्रज्ञा रूप है सो प्राण है। अब जिस प्रकार प्रज्ञा में सब भूत एक भाव को प्राप्त होते हैं, उसका वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

वाक् देवता ने अपना एक अंश निकाल लिया इससे उसका विषय शब्द भूत मात्रा रूप से बाहर जाता रहा। जिह्वा ने अपना एक अंश निकाल लिया इससे उसका विषय रस भूत मात्रा रूप से बाहर जाता रहा। हाथ ने एक अंश निकाल लिया इससे उसका विषय सुख और दुःख मात्रा रूप से बाहर जाता रहा। उपस्थेन्द्रिय ने अपना एक अंश निकाल लिया इससे उसका विषय आनन्द, रति और प्रजोत्पत्ति भूत मात्रा रूप से बाहर जाता रहा। पादों ने अपना एक अंश निकाल लिया इससे उनका विषय गति भूत मात्रा रूप से बाहर जाती रही। प्रज्ञा ने अपना एक अंश निकाल लिया इससे उसका विषय बुद्धि, ज्ञान और काम भूत तन्मात्रा रूप से बाहर जाता रहा ॥ ५ ॥

प्रज्ञा वाणी से आरुढ़ होने से-उसी रूप बनने से वाणी से सब नामों को प्राप्त करती है। प्रज्ञा से प्राण में आरोहण होने से प्रज्ञा प्राणों से सब गंधों को प्राप्त करती है। प्रज्ञासे चक्षु में आरोहण होने से प्रज्ञा चक्षु से सब रूपों को प्राप्त करती है प्रज्ञा से श्रोत्र में आरोहण होने से प्रज्ञा श्रोत्र से सब शब्दों को प्राप्त करती है। प्रज्ञा से जिह्वा में आरोहण होने से प्रज्ञा जीभ से सब रसों को प्राप्त करती है। प्रज्ञा से हस्तों में आरोहण होने से प्रज्ञा दोनों हाथों से सब कर्मों को प्राप्त करती है। प्रज्ञा से उपस्थेन्द्रिय से आरोहण होने से प्रज्ञा उपस्थ से आनन्द, रति और प्रजोत्पत्ति की शक्ति प्राप्त करती है। प्रज्ञा से दोनों पैरों में समारोहण होने से प्रज्ञा पैरों से सर्व गति को प्राप्त करती हैं। प्रज्ञा से मनमें आरोहण होनेसे प्रज्ञा मनसे विज्ञान और काम को प्राप्त करती है॥ ६॥

प्रज्ञा से रहित वाणी किसी नाम को भी नहीं जना सकती। उस समय ऐसा कहा जाता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था मैंने उस नाम को नहीं जाना। सच है कि प्रज्ञा से रहित घ्राण किसी गंध को भी नहीं जना सक्ता। ऐसा कहा जाता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था, इसलिये मैंने गंध को नहीं जाना। प्रज्ञा से रहित चक्षु किसी रूप को भी नहीं जना सक्ता, वह कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलिये मैंने रूप को नहीं देखा। प्रज्ञा से रहित श्रोत्र किसी भी शब्द को सुन नहीं सक्ता, वह ऐसा कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलिये

मैंने शब्द नहीं सुना। प्रज्ञा से रहित जीभ रस के स्वाद को नहीं जना सक्ती, वह कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलिये मैंने रस को नहीं जाना। प्रज्ञा से रहित हाथ किसी कर्म को नहीं जना सक्ता, वह कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलिये मैंने कर्म को नहीं जाना। प्रज्ञा से रहित शरीर किसी भी सुख दुःख को नहीं जानता। ऐसे कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलिये मैं इस सुख दुःख को जान न सका। प्रज्ञासे रहित उपस्थ रति, आनन्द और प्रजोत्पत्ति को नहीं जना सक्ता। वह कहता है कि मेरा मन अन्यत्र था जिससे मैं आनन्द, रति और प्रजोत्पत्ति को जान न सका। प्रज्ञा से रहित पाद किसी गतिको नहीं जना सक्के, वह कहता है कि मेरा मन अन्य ठिकाने था इसलिये मैं गति को जान न सका। प्रज्ञा से रहित बुद्धि किसी को नहीं जना सक्ती और जानने योग्य जाना नहीं जा सक्ता॥ ७॥

मनुष्य वाणी को जानने की इच्छा न करे, वक्ता को जानना चाहिये। मनुष्य गंध जानने की इच्छा न करे गंध के ज्ञाता को जानना चाहिये। मनुष्य रूप देखने की इच्छा न करे, रूप के ज्ञाता को जानना चाहिये। शब्द जानने की इच्छा न करे, श्रोता को जानना चाहिये। रस जानने की इच्छा न करे, रस के ज्ञाता को जानना चाहिये। मनुष्य कर्म जानने की इच्छा न करे, उसके कर्ता को जानना चाहिये। मनुष्य सुख दुःख जानने की इच्छा न करे सुख दुःख के ज्ञाता को जानना चाहिये। मनुष्य को आनन्द, रति और प्रजोत्पत्ति के ज्ञाता को जानना चाहिये।

मनुष्य गति को जानने की इच्छा न करे, गमन करने वाले को जानना चाहिये। मनुष्य को मन को न जानना चाहिये, मनन करने वाले को जानना चाहिये। सच ही ये दश भूत मात्रायें प्रज्ञा की अधिष्ठित हैं और प्रज्ञा की दश मात्रायें भूतों के अधिष्ठित हैं। जो भूत मात्रायें न हों तो प्रज्ञा मात्रायें न होनी चाहिये और जहां प्रज्ञा तन्मात्रायें न हों वहां भूत मात्रायें भी न होनी चाहिये ॥ ८ ॥

इन दोनों में से एक करके किसी रूपकी भी सिद्धि नहीं होती। इस एकता का कभी विभाग नहीं होता। जैसे रथ के चक्र के आरे में नेमि रहती है और नेमि में आरे रहते हैं इसी प्रकार भूत मात्रायें प्रज्ञा मात्राओं में रहती हैं और प्रज्ञा मात्रा प्राण में रहती है। यह प्राण ठीक प्रज्ञा रूप है, वह आनन्द रूप है, वह अजर और अमृत रूप है। वह शुभ कर्मों से महान् नहीं होता और अशुभ कर्मों से छोटा नहीं होता। यह प्रज्ञा ठीक २ जिस मनुष्य को इस लोक में से उच्च से उच्च गति को पहुंचाने की इच्छा करती है उससे शुभ कर्म कराती है और इस लोक में से जिस मनुष्य को नीच गति में पहुंचाने की इच्छा करती है उससे अशुभ कर्म कराती है। वह लोकों का पति रूप है, वह लोकों का अधिपति रूप है। यह प्रज्ञा सर्वेश्वर रूप है। वह मेरा आत्मरूप है ऐसा जाने, मेरा आत्म रूप है ऐसा जाने ॥ ९ ॥

चौथा अध्याय।

गार्ग्य गोत्र में बालाकि नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् हुआ। वह उशीनर में, मत्स देश में, कुरुपंचाल तथा काशी विदेह देश में रहा हुआ था। वह काशी के राजा अजात शत्रु के पास जाकर उससे बोला, "मैं तुझे ब्रह्म का वर्णन करता हूँ।" अजात शत्रु उससे बोला "इस बात के लिये मैं तुझे एक सहस्र (गायें) देता हूं, क्योंकि लोग जनक ही को ब्रह्मविद्या का श्रोता समझते हैं इसलिये उसीके पास लोग (ब्रह्मविद्या के वक्ता) जाया करते हैं" ॥ १ ॥ बालाकि बोला, "आदित्य में जो पुरुष है, उसीकी मैं (ब्रह्मरूप से) उपासना करता हूँ।" अजात शत्रु ने कहा, "इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। जो बड़ा है, शुभ्र वस्त्र परिधान करता है, तथा जो सब भूतों में श्रेष्ठ और उसका राजा है, उसकी मैं उपासना करता हूँ। जो इस प्रकार उपासना करता है वह सब भूतों का राजा होता है" ॥ २ ॥ बालाकि बोला, "चन्द्र में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूं।" अजात शत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। वह सोम राजा है तथा अन्न का आत्मा (जीवन) है ऐसा मान कर मैं उसकी उपासना करता हूँ. इस प्रकार उपासना करने वाला मनुष्य अन्न का आत्मा होता है, यानी उसे अन्न की कमी नहीं होती ॥ ३ ॥ "बालाकि बोला, जो विद्युत् में पुरुष है उसी की मैं ब्रह्मरूप से उपासना करता हूँ।" तब अजात शत्रु ने कहा,

"इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। वह तेज का आत्मा है ऐसा मानकर मैं उसकी उपासना करता हूँ। जो इस प्रकार उपासना करता है वह तेज का आत्मा होता है" ॥ ४ ॥ बालाकि बोला, "मेघ गर्जना में जो पुरुप है उसकी मैं ब्रह्मरूप से उपासना करता हूँ।" उससे अजात शत्रु ने कहा, "इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। वह शब्द का आत्मा है ऐसा जान कर मैं उसकी उपासना करता हूँ। जो इस प्रकार इसकी उपासना करता है वह शब्दका आत्मा होता है" ॥ ५ ॥ बालिका बोला, "आकाश में जो पुरुप है उसकी मैं उपासना करता हूं।" अजात शत्रु ने कहा, "इस विपय में तू मुझसे संवाद मत कर। वह पूर्ण और प्रवृति रहित ब्रह्म है ऐसा जान कर मैं उसकी उपासना करता हूँ।" इस प्रकार जो उसकी उपासना करता है वह प्रजा और पशुओं से पूर्ण (संपन्न) होता है। वह स्वयं अथवा उसकी प्रजा योग्य काल के पूर्व मरण को प्राप्त नहीं होती ॥ ६ ॥ बालाकि ने कहा, "वायुमें जो पुरुप है उसकी मैं उपासना करता हूँ।" उससे अजात शत्रु ने कहा, "इस विपय में तू मुझसे संवाद मत कर। वह वैकुण्ठ (महा पराक्रमी) इंद्र है तथा पराजय न होने वाली सेना है ऐसा समझ कर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार इसकी उपासना करने वाला विजयी दुर्जय तथा शत्रुओं को जीतने वाला होता है" ॥ ७ ॥ बालाकि बोला, "अग्निमें जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूं।" अजात शत्रु ने कहा, "इस सम्बन्ध में तू मुझसे संवाद मत कर। वह प्रबल है ऐसा समझ

कर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार जो इसकी उपासना करता है वह प्रबल होता है ॥ ८ ॥ बालाकि बोला, "जल में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ।" अजात शत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर यह नाम स्वरूप (अथवा तेज स्वरूप) है ऐसा समझ कर मैं इसकी उपासना करता हूँ। जो इसकी इस प्रकार उपासना करता है वह नाम स्वरूप (अथवा तेज स्वरूप) होता है। इतना देवता संबन्धी हुआ अब शरीर सम्बन्धी कहते हैं ॥ ९ ॥

बालाकि बोला, "आदर्श (आईना) में दीखने वाला जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ।" अजात शत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। इसको प्रतिरूप समझ कर मैं इसकी उपासना करता हूँ, इस प्रकार जो इसकी उपासना करता है उसके घरमें उसीके समान रूप वाला पुत्र उत्पन्न होता है उसके समान रूप न हो ऐसा पुत्र नहीं उत्पन्न होता ॥ १० ॥ बालाकि बोला, "प्रतिध्वनि में जो पुरुष होता है उसकी मैं उपासना करता हूँ।" अजात शत्रु बोला, इस विषय में तू मुझसे संवाद मतकर। मैं इसको द्वितीय तथा कभी अलग न होने वाला ऐसा जानकर इसकी उपासना करता हूँ। जो इस प्रकार इसकी उपासना करता है उसको द्वितीय से (पत्नी से) द्वितीय पुत्र प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ बालाकि बोला, मनुष्य के चलने में जो शब्द होता है, उसकी मैं उपासना करता हूं। अजात शत्रु ने कहा इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। मैं उसका प्राण समझकर उपासना

करता हूँ—जो इस प्रकार इसकी उपासना करता है वह अथवा उसकी प्रजा योग्य समय के पहिले नहीं मरती ॥ १२ ॥ बालाकि बोला, छाया में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ। अजात शत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। उसको मृत्यु समझकर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार जो इसकी उपासना करता है वह अथवा उसकी प्रजा योग्य समय से पहिले मृत्यु को प्राप्त नहीं होती ॥ १३ ॥ बालाकि बोला, शरीर में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ। अजात शत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवाद न कर। उसको प्रजापति समझकर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार जो उसकी उपासना करता है उसकी प्रजा और पशु वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ बालाकि बोला, जो प्राज्ञ आत्मा है और जिससे सोया हुआ पुरुष स्वप्न में भ्रमण करता है उस आत्मा की मैं उपासना करता हूँ। अजात शत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। वह राजा यम है ऐसा समझकर मैं उसकी उपासना करता हूं। इस प्रकार जो उसकी उपासना करता है उसकी श्रेष्ठता को सब कोई स्वीकार करते हैं ॥ १५ ॥ बालाकि बोला—दाहिने नेत्र में जो पुरुष है उसको मैं उपासना करता हूँ। अजात शत्रुने कहा—इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। यह पुरुष नाम का आत्मा, अग्नि का आत्मा तथा तेज का आत्मा है ऐसा समझ कर मैं इसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार जो इसकी उपासना करता है वह इन सबका आत्मा होता है ॥ १६ ॥

बालाकि बोला—बांए नेत्र में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ। अजात शत्रु ने कहा—इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। यह पुरुष सत्य का आत्मा, विद्युत् का आत्मा तथा तेज का आत्मा है, ऐसा समझ कर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार इसकी उपासना करने वाला पुरुष इन सबका आत्मा होता है ॥ १७ ॥

इस पर अजात शत्रु चुप होगया। तब अजात शत्रु ने कहा—क्या इतना ही तू जानता है? गार्ग्य ने कहा—इतना ही जाना है। अजात शत्रु बोला—मैं तुझसे ब्रह्म का वर्णन करता हूँ, ऐसा कह कर वृथा ही तू मुझसे संवाद करने को आया है। हे बालाकि, इन सब पुरुषों का जो कर्त्ता है, उसी ने यह विश्व उत्पन्न किया है और वही एक जानने के योग्य है।

तदन्तर हाथ में समिधा ग्रहण करके बालाकि उसके पास जाकर बोला—मैं तेरे पास (शिष्य भाव से) आया हूँ। अजात शत्रु ने कहा—क्षत्रिय ब्राह्मण को उपदेश दे यह अयोग्य होगा। चल मैं तुझे समझाता हूँ। पश्चात् उसका हाथ पकड़ कर वह चलने लगा। वे दोनों एक सोये हुए पुरुष के पास गये। अजात शत्रु ने पुकारा—हे ब्रह्मन्, शुद्ध वस्त्र वाले। हे सोम राजन्। परन्तु वह चुप रहा। पश्चात् उसने उसको हिला के जगाया—तब वह उठ कर खड़ा हुआ। तब अजात शत्रु बोला—यह पुरुष कहां सोया था, वह कहां था और इस प्रकार से वह कहां से आया। बालाकि यह नहीं जानता था ॥ १८ ॥ इस पर अजात

शत्रु बोला—वह पुरुष कहां था और कहां से इस प्रकार आया—इसका उत्तर यह है—हृदय में हिता नाम की नाड़ियां उस पुरुष के हृदय से पुरीतता तक फैली हुई हैं। एक बाल के सहस्र भाग के समान ये नाड़ियां सूक्ष्म हैं। इनमें शुभ्र, काला, पीला और लाल इस प्रकार के अनेक रंग का रस भरा रहता है। मनुष्य सोने पर स्वप्न नहीं देखता तब वह इन नाड़ियों में होता है। इस समय वह प्राण के साथ एक रूप होता है। वाणी सब नामों को लेकर इस समय उसको प्राप्त होती है। फिर चक्षु सम्पूर्ण आकार लेकर उसको प्राप्त होता है। कर्ण सब शब्द लेकर उसको प्राप्त होता है। मन सम्पूर्ण विचार लेकर उसको प्राप्त होता है। जब यह जग उठता है तब जैसे जलते हुए अग्नि से चारों तरफ़ चिनगारियां उठती हैं वैसे ही उस आत्मा से प्राण (वाणी इत्यादि) बाहर निकल कर अपने अपने स्थान पर जाते हैं। प्राण से देवता और देवताओं से लोक बाहर निकलते हैं और जिस प्रकार छुरी के घर में छुरी रहती है अथवा अग्नि कुण्ड में अग्नि रहता है इसी प्रकार यह प्राज्ञ आत्मा चोटी से पैर के नख तक शरीर में प्रवेश करता है॥ १९॥ जैसे किसी सेठजी के पीछे उसके सेवक जाते हैं वैसे ही (वाणी आदिक) सब आत्मा इस आत्मा के पीछे जाते हैं। जिस प्रकार प्रधान पुरुष अपने स्वजनों के साथ भोजन करता है वैसे ही यह प्राज्ञ आत्मा इन आत्माओं के साथ भोजन करता है। तथा लोक धनी का अनुसरण करते हैं वैसे ही यह इतर आत्मा इस

आत्मा का अनुकरण करते हैं। जब तक इन्द्र को इस आत्मा का ज्ञान नहीं था तब तक वह असुरों से जीता गया—परन्तु जब उसको इसका ज्ञान हुआ तब उसने असुरों को जीत लिया तथा उसको समस्त देवताओं में श्रेष्ठता, स्वाराज्य और आधिपत्य की प्राप्ति हुई। वह सम्पूर्ण प्राणियों में श्रेष्ठता, स्वाराज्य और आधिपत्य को प्राप्त होता है—जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार जानता है ॥ २० ॥

॥ इति कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषत् समाप्त ॥

अथर्वशिखोपनिषत् ।

[४७]

अंगिरस कुल में उत्पन्न हुए ऋषि पैप्पलाद और सनत्कुमार ने अथर्व मुनि से पूछा "हे भगवन्! प्रथम ध्यान करने योग्य क्या है? वह ध्यान क्या है, ध्याता कौन है और ध्येय क्या है?" इसके उत्तर में अथर्व मुनि ने कहा "ॐकार यह अक्षर प्रथम ध्यान करने योग्य है और वह परब्रह्म है। उसके चार पाद और चार वेद हैं इसलिये वह चार पाद वाला कहलाता है। यह ॐकार अक्षर और परब्रह्म है। उसकी प्रथम मात्रा अकार पृथ्वी रूप है तथा वह ऋचा वाले ऋग्वेद रूप है. उसका अधिष्ठाता ब्रह्मा है, वसु देव है, गायत्री छंद है और गार्हपत्य अग्नि है। उसकी दूसरी मात्रा उकार अन्तरिक्ष रूप है, वह यजुप् से यजुर्वेद रूप है, उसका अधिष्ठाता विष्णु, देव इन्द्र, त्रिष्टुप छंद और दक्षिणाग्नि है। तीसरी मात्रा मकार स्वर्ग रूप है और साम के मंत्रों से सामवेद रूप है, उसका अधिष्ठाता रुद्र देव, आदित्य जगती छंद और आह्वनीय अग्नि है। अन्त की अर्ध मात्रा सोम लोक रूप है, वह अथर्वण के मंत्र से अथर्व वेद रूप, संवर्तक, अग्नि, मरुद्, विराट और एकर्षि और भास्वती रूप है। प्रथम मात्रा रक्त पीत है और ब्रह्मा देवता वाली है। दूसरी मात्रा श्वेत कृष्ण है और विष्णु देवता वाली है। तीसरी मात्रा शुभ अशुभ

वाली शुक्ल है और वह रुद्र देवता वाली है। अन्तिम चौथी अर्ध मात्रा विद्युत् वाली और सर्व वर्ण वाली है और वह पुरुष देवता वाली है। यह ॐकार चार अक्षर वाला, चार पाद वाला, चार मस्तक वाला और चतुर्थ मात्रा रूप है। ये स्थूल, सूक्ष्म, दीर्घ और प्लुत हैं। ॐ तीन वार उच्चार करने के पीछे चौथी वार ॐकार कहने से शान्तात्मा प्रणव युक्त होता है। सब ॐकार रूप है ऐसा कहा है। एक वार ॐकार उच्चार करने से एक वार आत्म प्रकाश होता है। वह प्राणोंको ऊर्ध्व गति में ले जाता है इसलिये ॐकार कहलाता है। ॐकार को प्रलय रूप कहने में आता है, कारण वह सब प्राणों का प्रलय करता है। वह सब प्राणों को परमात्मा में नमाता है इसलिये प्रणव कहते हैं। उसने चतुर्थावस्था में स्थिति की है इसलिये वह सब वेदों और देवों का कारण रूप, सब वाच्य वस्तु और प्रणव रूप है ॥ १ ॥ उसको देव रूप कहते हैं क्योंकि वह सबका रचण करता है। सब दुःखों से मनुष्य का तारण करता है इसलिये उसको तारक कहते हैं। सब देवताओं का प्रवेश स्थान होने से उसको विष्णु कहते हैं। सबका वर्धन करता है इसलिये ब्रह्म है। सबके अन्तर में रहे हुए ध्येयों को दीप के समान प्रकाश करता है इसलिये प्रकाश है। शरीर के हृदयाकाश में विद्युत् के समान प्रकाश करने वाला होने से उसको सत् ॐ कहते हैं। विद्युत के समान वारम्वार गति करके सब दिशाओं को भेदन करता है और सब लोकों को व्याप्त करके रहता है इसलिये इसको व्यापक

और महादेव कहते हैं ॥ २ ॥ इसकी प्रथम मात्रा जाग्रत अवस्था है, दूसरी मात्रा स्वप्नावस्था है, तीसरी मात्रा सुषुप्ति है और चौथी मात्रा तुरीया है। हर एक मात्रा अन्य मात्रा में मिलने से सब पापों का लय होता है और वह स्वयं प्रकाश और स्वयं ब्रह्म हो जाता है। इसलिये उसको सिद्धिकर कहते हैं और ध्यानादिमें इसकी योजना की जाती है। सब इन्द्रियों का उपसंहरण कर्ता और सबका धारण कर्ता होने से ब्रह्म तुरीय है। सब इन्द्रियों की स्थापना मनमें करके ध्यान विष्णु रूप है। प्राण सह इन्द्रियोंकी मनमें स्थापना करनेसे ध्याता रुद्र है। इन्द्रिय प्राण और मनकी नाद के अन्तमें परमात्मामें स्थिति होने से ध्येय ईशान है ऐसे महादेव का ध्यान करना। येसब-ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र और भूतोंके साथ सब इन्द्रियों की उत्पत्ति उसमें से होती हैं। कारण का कारण नहीं होता। ध्याता कारण रूप है और सब ऐश्वर्य युक्त सर्वेश्वर ध्येय रूप है। ऐसे शिवका क्षण भरसे अधिक आकाशमें स्थिर ध्यान करनेसे चोहत्तर (७४) वार सौ सौ यज्ञ करने का जो फल होता है, वह सब फल प्राप्त होता है। उसकी ॐ में गति होती है। सर्व ध्यान, योग और ज्ञान का जो फल है वह ॐकार है। वह वेद रूप, पर रूप, ईश रूप, शिव रूप, एक रूप, ध्येय रूप और कल्याण कर्ता रूप है। सब वस्तु का त्याग करके इस संपूर्ण अथर्व शिखा का जो अध्ययन करता है सो द्विज गर्भवास के भय से निवृत्त होता है। सचमुच गर्भवास से मुक्त होता है ॥ ३ ॥

॥ इति अथर्वशिखोपनिषत् समाप्त ॥

शरभोपनिषत् ।

[४८]

भगवान् पैप्पलाद ऋषि एकवार ब्रह्माजी से बोले 'हे भगवन्, ब्रह्मा विष्णु और रुद्र इनमें से अधिकतर ध्यान करने योग्य कौन है सो आपही हमसे कह दीजिये'। पितामह ब्रह्मा ने उसको उत्तर दिया हे पैप्पलाद वाक्य को सुनो। जिसने बहुत ही पुण्य किये हों उसीको यह परमेश्वर प्राप्त होता है, जिसके अंग से मैं उत्पन्न हुआ हूँ और जिसको मुख्य विष्णु रुद्र तथा मुख्य सुरेन्द्र मोह के कारण जान नहीं सकता ॥ १ ॥ जो सबका प्रभु है, श्रेष्ठ है पिता और महेश्वर है जो ब्रह्मा को धारण करता है जो सब वेदोंका निर्णय करता है और जो श्रेष्ठ और देवताओंका पिता और प्रभु है ॥ २ ॥ मेरा तथा विष्णु का भी पिता है [उसको नमस्कार है] जो अंत काल में सब लोकों का संहार करता है ॥ ३ ॥ वही एक सबसे श्रेष्ठ और वरिष्ट है जिस महा बलवान् महेश्वर ने शरभ का घोर रूप धारण करके लोकों का नाश करने वाले नृसिंह को मार दिया ॥ ४ ॥ रुद्र जब विष्णु को दोनों पैर पकड कर लेजाते थे तब पीछे २ सब देव आने लगे और कहने लगे, 'कृपा करके पुरुषोत्तम विष्णु का वध न कीजिये आप महान् हैं और आपहीं की जय है।' तब भगवान् रुद्र ने विष्णु को तीक्ष्ण नखों से विदारित किया। तबसे चर्म को धारण करने वाला

रुद्र महावीर तथा वीरभद्र नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ५—६ ॥ ऐसा एक रुद्र ही सबके लिये सब सिद्धियों के साधनार्थ पूजन करने योग्य है ।

'जिसने ब्रह्मा का पांचवां मुख नष्ट कर दिया उस रुद्र को नमस्कार है ॥ ७ ॥ जो ललाट से निकले हुए अग्नि से सब जगत को भस्म कर देता है और पुनः उत्पन्न करके पालन भी करता है और इस प्रकार अपना सामर्थ्य प्रकट करता है, उस रुद्र को नमस्कार है ॥ ८ ॥ जिसने वांए पैर से काल को मार डाला और धधकता हुआ विष जिसने पीलिया था, उस रुद्र को नमस्कार है ॥ ९ ॥ जिसके वांए चरण पर विष्णु ने अपनी आंख निकाल कर चढ़ा दी और इस पूजन से संतुष्ट होकर जिसने विष्णु को चक्र दे दिया, उस रुद्र को नमस्कार है ॥ १० ॥ दक्ष यज्ञ में सब देवोंका पराजय करके जिस वीरने विष्णुको नाग पाशसे बांधडाला था, उस रुद्रको नमस्कार है ॥ ११ ॥ जिसके चन्द्र सूर्य और अग्नि ऐसे तीन नेत्र हैं, 'जिसने लीला मात्र से त्रिपुर को जलाया था और जिससे सब देव गण पशुता ही (दीनता) को प्राप्त हुए और आप पशुपति बन गये, उस रुद्र को नमस्कार है ॥ १२ ॥ मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन आदि विष्णु को भी श्रमित करके पीड़ा पहुंचाता है, कामदेव और यम को जिसने भस्म किया, उस रुद्र को नमस्कार है ॥ १३ ॥ इस प्रकार नाना विध स्तुति करके देव लोगों ने नीलकण्ठ महेश्वर से क्षमा मांगी । फिर परमेश्वर ने

ताप त्रय तथा जन्म मृत्यु जरा और व्याधि, इनसे उत्पन्न होने वाले नाना प्रकारके दुःखों का संहार किया ॥ १४ ॥

इस प्रकार के मन्त्रों से प्रार्थित होने पर उस आद्य भगवान सब के आत्म रूप शंकर ने सब की रक्षा की ॥ १५ ॥ मन वाणी से अगोचर और स्तुति करने के योग्य ऐसे महेश्वर की स्तुति करके श्रीविष्णु जिसके चरण कमलों को प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं ॥ १६ ॥ भक्ति से नमस्कार करने वाले ऐसे विष्णु पर रुद्र प्रसन्न हुए।

जिसको न प्राप्त करके वाणी मन के साथ लौट जाती है ऐसे ब्रह्मानन्द को जानने वाला कभी भी भय को प्राप्त नहीं होता ॥ १७ ॥ आत्मा अणु से भी अणु है और महान् से भी महान् है और वह सब प्राणियों के हृदय रूप गुफा में छुपा रहता है। उस द्रष्टा रूप महान् ईश्वर को शोक रहित पुरुष ईश्वरानुग्रह से देखता है ॥ १८ ॥ वशिष्ट, शुक और वामदेव तथा ब्रह्मा आदि देवता जिसका हृदय में ध्यान करते हैं और सनत् सुजान तथा सनातन आदि जिसकी स्तुति करते हैं वह भगवान् आदि देव महेश्वर हैं ॥ १९ ॥ महेश्वर सत्य नित्य और सर्वसाक्षी है। वह नित्य आनन्द रूप निर्विकल्प और कथन करने योग्य नहीं है। भगवान् गिरीश की शक्तिकी किसीको कल्पना नहीं हो सकती अपने अज्ञान ही से हमने उसके स्थान आदि की कल्पना की है ॥ २० ॥ हे आचार शील, उसकी माया मेरे लिये तथा

विष्णु के लिये भी अत्यन्त मोह उत्पन्न करनेवाली है। वह अत्यंत दुस्तर है तो भी उसके चरण कमलों के ध्यान से वह सहज पार को जा सकती है॥ २१॥

सव जगत का कारण विष्णु है वह अपने अंश रूप जीवों के साथ मेरे ही अंश से उत्पन्न होकर समस्त विश्व की रचा करता है॥ २२॥ काल पाकर अन्य सव नष्ट होजाता है इसलिये सब मिथ्या है सबका ग्रास करने वाले उस शूलधारी, महादेव, महेश्वर और कृपा करने वाले ऐसे रुद्रको नमस्कार है॥ २३॥ नाना विध सृष्टि में सबसे पृथक् ऐसा विष्णु सबसे महान् है वह तीनों लोकों को व्याप्त कर भूतोंके आत्म रूप से सब भोग भोगते हुए भी अव्यय रहता है॥ २४॥ चार आहुतियोंसे फिर चार आहुतियोंसे फिर पांचसे और फिर दो आहुतियोंसे जिसके लिये हवन किया जाता है वह विष्णु मुझ पर प्रसन्न हो॥ २५॥ अर्पण ब्रह्म है, हवि ब्रह्म है ब्रह्म रूप अग्निमें ब्रह्म रूप कर्ताके द्वारा जो हवन किया गया है वह भी ब्रह्म ही है इसलिये ब्रह्म रूप कर्म में समाधिस्थ पुरुष द्वारा ब्रह्म ही प्राप्त होने योग्य है॥ २६॥ शर जीव है जिसके अंगोंमें स्वयम् हरि नित्य प्रकाशते हैं वह शरभ हे महामुने, मोच देने वाला साक्षात् ब्रह्म ही है॥ २७॥

जिसकी माया से ममतादि के कारण देवता गण प्राप्त हुए हैं उसके महिमा का अल्प अंश भी कहने के

भी समर्थ नहीं है ॥ २८ ॥ परसे पर ब्रह्म है उसके परसे पर विष्णु है और उसके परसे भी पर ईश है इसलिये उसके बराबर अथवा अधिक कोई भी नहीं है ॥ २९ ॥ शिव ही एक और नित्य हैं और सब मिथ्या है इसलिये ध्येय रूप विष्णु आदि सब देवताओं को त्याग कर ॥ ३० ॥ सब संसार से छुड़ाने वाले केवल एक ही का ध्यान करना चाहिये। सबका संहार करने वाले उस महेश्वर को नमस्कार है ॥ ३१ ॥

यह पैप्पलाद ऋषिको प्राप्त हुआ महा शास्त्र रूप उपनिषत् हर किसी को नहीं देना चाहिये, अथवा जो नास्तिक, कृतघ्न, दुर्व्यवसायी, दुराचारी ॥ ३२ ॥ दांभिक, निर्दय, शठ अथवा झूठ बोलने वाला हो उसको न देना चाहिये। जो अच्छा काम करने वाला, भक्त, सदाचारी, सुशील ॥ ३३ ॥ गुरु भक्त, शम दम युक्त और सीधा हो, शिव भक्त हो, वेदाज्ञा के अनुसार बुद्धि रखने वाला हो ॥ ३४ ॥ जो हे सुव्रत, अपनेमें भक्ति रखता हो और कृतघ्न न हो उसी को यह देना चाहिये। अन्यथा किसी को न देकर हे द्विज श्रेष्ठ! इसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३५ ॥ पैप्पलाद ऋषि को प्राप्त हुआ यह महा शास्त्र जो पढ़ता है और ब्राह्मणोंको सुनाता है, वह जन्म मरणसे मुक्त होजाता है। जो जानता है वह अमृतत्वको प्राप्त होता है। वह पुनः गर्भमें आने से मुक्त होजाता है। उसके सुरा पान के दोष की निवृत्ति हो सकती है। सुवर्ण चोरीके दोष से वह निवृत्त होजाता है। ब्रह्म घातक उसमें हो तो वह नष्ट होजाता है। गुरुकी स्त्रीसे की है।

गमन किया हो तो उस दोष से भी उसकी निवृत्ति होजाती है। सर्व वेदों के अध्ययन का उसे फल मिलता है। सब देवों के ध्यानका उसे फल मिलता है। वह सब महापातक और उप पातकों से रहित होजाता है। इसलिये वह शिवजी के आश्रय को प्राप्त होता है और शिवको प्रिय होने से शिवसायुज्यको प्राप्त होता है। उसका पुनरागमन नहीं होता, उसका पुनरागमन नहीं होता, वह ब्रह्म ही होजाता है। इस प्रकार भगवान् ब्रह्मा बोले। ऐसा यह उपनिषत् है।

॥ इति शरभोपनिषत् समाप्त ॥

पाशुपत ब्रह्मोपनिषत् ।

[४६]

एक वार स्वयंभू ब्रह्मा को 'मैं प्रजा उत्पन्न करूं' इस प्रकार की इच्छा हुई और सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले रुद्र और कुबेर उत्पन्न हुए। ब्रह्मा का पुत्र कुबेर और वालखिल्य स्वयंभू से पूछने लगे, 'जगत की विद्या कौनसी है ? जाग्रत और तुरीय के देवता कौन हैं ? जगत किसके वश में है ? काल का क्या प्रमाण है ? सूर्य चन्द्र तथा ग्रहादि किसकी आज्ञा से प्रकाशते हैं ? और किसकी महिमा आकाश के सदृश (विशाल) है ? सो मैं सुनना चाहता हूँ। आपके सिवाय और कोई इन बातों को नहीं जानता इसलिये हे ब्रह्मन्, आपही कहिये।'

स्वयंभू बोले, 'इस जगत की मातृका वर्णमाला रूप माता विद्या है। वह दो वर्णवाली ('हंस' रूप) और तीन वर्ण वाली (प्रणवात्मक) है; द्विवर्ण वाली (हंसात्मक) विद्या तीन वर्ण युक्त (प्रणवस्वरूप ही) है। चार मात्रा वाला ॐकार मेरा प्राणरूप देवता है। मैंही तीनों जगत का एक मात्र पति हूँ और मेरे ही वश सब युग हैं। रात्रि और दिन आदि ये सब मुझही से कालरूप से उत्पन्न हुए हैं। सूर्य का तेज और चन्द्र नक्षत्र और ग्रह आदि की ज्योति यह मेरा ही रूप है। मेरी तीन शक्तिवाली माया रूप ही यह आकाश है, मुझसे अन्य कुछ भी

नहीं है। तमोगुणी मायारूप रुद्र है, सत्त्वगुणी मायारूप विष्णु और रजोगुणी मायारूप ब्रह्मा है। इन्द्रादि रजोगुण और तमोगुण दोनों से युक्त हैं, इनमें कोई भी सात्त्विक नहीं है, एक अघोर (शिव) सर्व साधारण स्वरूप है।

समस्त यज्ञों का कर्ता पशुपति रुद्र है। यज्ञदेव रुद्र है, विष्णु अध्वर्यु और होता इन्द्र है, महेश्वर का मानस ब्रह्मही यज्ञ का भोक्तारूप देवता है। 'हंसः सोहं हंसः' यही वह मानस ब्रह्म है। इसमें तन्मय होने के लिये करने का यज्ञ ही नादानुसंधान है। तन्मयत्व का विकार ही जीव भाव है। हंस परमात्मा स्वरूप है। हंस ही भीतर बाहर चलता है। जब भीतर जाता है अवकाश रहित स्थान में रहने वाला वही सुपर्ण पक्षी (ईश्वर) स्वरूप हंस है।

छियानवे तत्त्वों के तंतुओं से व्यक्त, चित् के तीन सूत्रों से चिन्मय, नव तत्त्वों को तीन गुणा किया हुआ; ब्रह्मा, विष्णु और शिव स्वरूप तीन अग्नियों से युक्त और चिद्ग्रन्थि से बंधा हुआ, अद्वैत की गांठ वाला, यज्ञ का साधारण अंगरूप बाहर भीतर प्रकाशने वाला और यज्ञ के अंगरूप (यज्ञोपवीत स्वरूप) ब्रह्म स्वरूप हंस ही है। उपवीत के लक्षण रूप सूत्र ब्रह्म के प्रति यज्ञ ले जाते हैं और ब्रह्म के अंग रूप लक्षणों से युक्त यज्ञसूत्र होता है, वही ब्रह्मसूत्र है। यज्ञसूत्र के साथ सम्बन्ध रखने वाला ब्रह्मयज्ञ उसका स्वरूप है। मात्रा उसके अंग हैं। इस मानसिक यज्ञ का हंस यज्ञसूत्र है। ब्रह्मयज्ञ

मय प्रणव ब्रह्मसूत्र है। प्रणव के भीतर रहने वाला हंस ही यह ब्रह्मसूत्र है। वही ब्रह्मयज्ञ मय मोक्ष का साधन रूप है।

ब्रह्मसंध्या की क्रिया मानसिक याग है। संध्या करना यानी मिलाना यही इस मानसिक याग का लक्षण है। यज्ञसूत्र प्रणव है। जो ब्रह्मयज्ञ क्रिया से युक्त है वह ब्राह्मण है। ब्रह्मचर्य से देव रहते हैं और यज्ञों में सूत्र रूप हंस के साथ अनुसंधान रहता है। हंस और प्रणव का अभेद है।

हंस की तीनों काल में प्रार्थना होती है। तीन काल तीन वर्ण हैं। तीन अग्नि से करने का यह याग है। तीन अग्नि रूप आत्मा की आकृति और वर्ण वाले ॐकार रूप हंस का अनुसंधान करना अन्तर्याग है। चित् के स्वरूप के समान तन्मय होना तुरीय का स्वरूप है। आन्तर आदित्य में ज्योति स्वरूप हंस है। यज्ञांग (हंस) ही ब्रह्मप्राप्ति का उत्तम साधन है। इसलिये ब्रह्मप्राप्ति की साधना में उस प्रणव रूप हंस का अनुसंधान रूप ही ध्यान किया करते हैं।'

ब्रह्मा के पुत्र वालखिल्य ऋषि फिर स्वयंभू ब्रह्माजी से बोले, भगवन् आप सब जानते हैं; कहिये, हंससूत्र कितने होते हैं और उनका प्रमाण कितना है। भगवान् बोले, "हृदय रूप सूर्यके किरणों की संख्या बहत्तर है। चित्सूत्र रूप प्राण से स्वर के साथ निकलने वाली प्रणव धारा बहत्तर अंगुल की होती है। बायीं बांह और कमर की दाहिनी ओर, इनके बीच में परमात्मा

हंस रहता है। यह अत्यन्त गुह्य बात अन्यत्र कहीं भी विदित नहीं है। अमृत रूप फल को पाये हुए उस प्रकाशक हंस को सर्वकाल जानते हैं। प्रणव रूप हंस का सदा ध्यान किये बिना मुक्ति नहीं होती।

रंगे हुए नौ सूत्र (स्थूल यज्ञोपवीत) को जो धारण करते हैं, वे भी वह ब्रह्म है यही मानकर उपासना करते हैं। परन्तु इन मनुष्यों को अन्तरादित्य रूप ब्रह्म का पता नहीं है। सूर्य जगत का प्रकाश करता है ऐसा जानकर वे बुद्धिमान मनुष्य अपनी शुद्धि के निमित्त या ज्ञान के निमित्त प्रार्थना करते हुए उसकी उपासना करते हैं। वाजपेय यज्ञ ही पशुपति हैं, इन्द्र देवता इसमें अध्वर्यु है। अहिंसा धर्म याग है। इसमें परमहंस अध्वर्यु और परमात्मा पशुपति देवता है। वेद और उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्म ही की ये स्वाध्यायशील ब्राह्मण उपासना करते हैं।

(पशुपति रूप) महायज्ञ का ज्ञान ही अश्वमेध है। उसके बल ही से वे ब्रह्मकी उपासना करते हैं। पहिले कह आये वह ब्रह्मयज्ञ की साधना ही सबके लिये मोक्ष मार्ग है।

इस पर ब्रह्मा के पुत्र वालखिल्य ऋषि बोले, 'हंस ऋषि का उदय हुआ' यानी ब्रह्माजी के उपदेशसे उनको आत्मज्ञान होगया। तब स्वयंभू तिरोधान होगये। वालखिल्य ने जाना कि वेद और उपनिषदों में प्रतिपादित हंस ज्योति ही रुद्र है, संसार से तारने वाला प्रणव ही पशुपति है॥ इति पूर्वकाण्ड॥

सहज रूप से 'हंस हंस' इस प्रकार अखंड जाप हो यही वर्ण ब्रह्म है और ब्रह्म के प्रति पहुंचाने वाला है। यही परमात्मा है और पुरुष यही है ॥ १ ॥ स्वयं ब्रह्म पुरुष होजाय उसका स्वरूप भी क्या और उसकी कथा भी क्या ? ब्रह्म ज्ञान रूप संध्या ही में ज्ञानियों का काल जाता है। हंस और आत्मा की एकता होजाती है ऐसी अवस्था में उसके अवस्थादि रूप प्रजा किस प्रकार हो सकती है ॥ २ ॥ भीतर होने वाले प्रणव नाद से विदित होने वाला हंस ही सब ज्ञान को करने वाला है। (बाहर होने वाले ज्ञान के हेतु रूप) अन्तरानुभव स्वरूप होने से गूढ़ ऐसा वही ज्ञान नाल में विराजता है ॥ ३ ॥ वही शिव शक्ति रूप है और चैतन्य मय है और आनंद से जाना जाता है। वह नाद बिंदु और कला तीन नेत्रों से समस्त जगत (चेतन) विचेष्टित है ॥४॥ उसके तीन अंग (शरीर) हैं तीन शिखाएं (अवस्थाएं) हैं, दो अथवा तीन मात्राओं के साथ उसकी आकृति देखने में आती है। इस प्रकार भीतर ज्ञान स्वरूप होने से गूढ़ ऐसा यह आत्मा इन्द्रियों से बाहर निकलता है ॥ ५ ॥ समस्त विश्व के सूत्र रूप ऐसे ब्रह्म को जानना चाहिये और उसको जानने के लिये विधि के अनुसार हंस रूपी सूर्य का प्रणव के साथ ध्यान भी जानना चाहिये ऐसा ज्ञानसागर में कहा है ॥ ६ ॥ इसको जानने ही से उस ज्ञान सागर को जाना जाता है।

स्वयं शिव या पशुपति ही सबका सर्व काल साक्षी है ॥ ७ ॥ और सबके मन का वही नियमन और प्रेरणा करता है। उसकी

प्रेरणा ही से मन विषय में जाता है, प्राण चेष्टा करते हैं और वाणी बोलती है ॥ ८ ॥ चक्षु रूप देखता है, कान सब सुनते हैं और अन्य सब इन्द्रियां भी उसीकी प्रेरणा से ॥ ९ ॥ अपने अपने विषय को ग्रहण कर उसमें प्रवृत्त होती हैं। इसका प्रवर्तकत्व भी माया ही से है अपने स्वभाव से नहीं हैं ॥ १० ॥ श्रोत्र आत्मा में अध्यस्त है और स्वयं पशुपति ही श्रोत्र में अनुप्रवेश करके श्रोत्र को श्रोत्रत्व प्राप्त कराता है ॥ ११ ॥ आत्मा में अध्यस्त मनमें परमेश्वर प्रवेश करके उसीमें रह कर उसका नियमन करते हुए उसको मनस्त्व प्रदान करते हैं ॥ १२ ॥ वही जाने हुए से और न जाने हुए से भिन्न है और अन्य कल्पित इन्द्रियों का भी वही ईश्वर ॥ १३ ॥ उनका नियमन करके उन उनके रूप देता है। इसीलिये चक्षु, वाचा, मन तथा अन्य इन्द्रियां ॥ १४ ॥ उस स्वयं प्रकाश रूप परमात्मा को नहीं प्राप्त होतीं। जो ब्रह्मको अंतःकरण के विषय रूप से नहीं परन्तु प्रत्यक् प्रकाश रूप अपने आत्मा ही से जानता है ॥ १५ ॥ तर्क प्रमाण के बिना ही अनुभव से जानता है, वही यथार्थ रूप से ब्रह्म को जानता हैं।

प्रत्यगात्मा परम प्रकाश रूप है और माया महान् अन्धकार रूप है ॥ १६ ॥ ऐसा होने पर प्रत्यगात्मा में माया किस प्रकार संभव है। इसलिये तर्क और (श्रुति) प्रमाणोंसे तथा अनुभवसे निश्चय होता है कि चैतन्यघन ॥ १७ ॥ एक और अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होने वाले, ऐसे परमात्मा में माया है ही नहीं। यह विद्या और यह अविद्या, यह दृष्टि व्यावहारिक है,

पारमार्थिक नहीं है ॥ १८ ॥ तत्त्व दृष्टि से ये कुछ नहीं है, केवल एक तत्त्व ही है। व्यावहारिक दृष्टि उसी के प्रकाश से होने से ॥ १९ ॥ एक सतत यानी अखण्ड प्रकाश ही रहा, इसलिये भी अद्वैत ही है। अद्वैत है यह कहना भी उस प्रकाश के अभेद ही से है ॥ २० ॥ इस प्रकार सब उसका प्रकाशही प्रकाश है, इसलिये (बोलना भी व्यर्थ है) मौन ही शोभा देता है।

जिसको यह परमार्थ स्वयं ही प्रकाशित हुआ है ॥ २१ ॥ वह न जीव है न ब्रह्म न और कुछ है। उसको न वर्ण है न आश्रम ॥ २२ ॥ उसको न धर्म है न अधर्म, न विधि है न निषेध। जब सब कुछ उसे स्वयं ही ब्रह्म रूप से प्रकाशता है ॥ २३ ॥ तब दुःखादि भेद वाला यह आभास भी उसको नहीं दीखता। परमात्मा को जानने वाला जीवादि रूप जगत को देखते हुए भी ॥ २४ ॥ नहीं देखता, चिद्रूप ब्रह्म वस्तु ही देखता है। धर्मी और धर्म की बात भेद के रहते हुएही पृथक् है ॥ २५ ॥ भेद, अभेद तथा भेदाभेद ये साक्षात् रूप से परमात्मा में अपनेसे भिन्न रूप से नहीं हैं, वह ही स्वयं सर्वदा वर्तमान है ॥ २६ ॥ वस्तु रूप से अथवा अवस्तु रूप से साक्षात् ब्रह्म ही विराजमान है। ऐसा होने से, ब्रह्म को जानने वाला ज्ञानी किसका ग्रहण वा त्याग करे ॥ २७ ॥ सबका अधिष्ठान, उपमा रहित, वाणी और मनका अविषय दृष्टि का अविषय, अग्राह्य, अज, रूप रहित ॥ २८ ॥ आंख कान से रहित, तथा उनके अर्थ से पर, हाथ पैर रहित तथा नित्य विभु, सर्वत्र उपस्थित और अत्यन्त सूक्ष्म अव्यय ॥ २९ ॥

ऐसा यह मृत्यु रहित ब्रह्म ही है। उसके आगे और पीछे श्रेष्ठ प्रकार का ब्रह्मानन्द ही है, बांए दांए भी वही श्रेष्ठ ब्रह्मानन्द वर्तमान है ॥ ३० ॥ वह अपने में ही सबको अपने रूप से निर्भयता पूर्वक देखता है। ऐसा देखने वाला मुक्त (ज्ञानी) ही मुक्त नहीं होता परन्तु बद्ध (अज्ञानी) भी मुक्त हो जाता है ॥ ३१ ॥

इस प्रकार की यह पर विद्या सत्य से, तप से तथा ब्रह्मचर्यादि धर्माचरण से वेदान्त के साधना द्वारा प्राप्त हो सकती है ॥ ३२ ॥ अपने शरीर में स्वयं प्रकाश रूप परब्रह्म को शुद्ध अन्तःकरण वाले देख सकते हैं, माया से मलिन अन्तःकरण वाले नहीं देख सकते ॥ ३३ ॥ जिस किसी योगी को अपने स्वरूप का इस प्रकार का अनुभव है, उस परिपूर्ण रूप वाले का कहीं भी गमन नहीं होता ॥ ३४ ॥ जैसे सर्वत्र भरा हुआ एक अखंड आकाश कहीं भी नहीं जाता, वैसे ही ब्रह्म को आत्म भाव से जानने वाला कहीं भी नहीं जाता ॥ ३५ ॥

अभक्ष्य आहार छोड़ देने से चित्त विशुद्ध होजाता है; आहार की शुद्धि से चित्त की शुद्धि आप ही आप हो जाती है ॥ ३६ ॥ चित्त शुद्ध होने पर क्रम से ज्ञान होता है और (अज्ञान) ग्रन्थियां स्पष्टतया टूट जाती हैं। अभक्ष्य का विचार ब्रह्म ज्ञान से रहित हो ऐसे ही जीव के लिये (जरूरी) है ॥ ३७ ॥ क्योंकि यह बात प्रसिद्ध है कि जो सम्यक ज्ञानी है उनका स्वरूप अज्ञानी के समान कला वाला (भेद ज्ञान

युक्त) नहीं होता । ज्ञानी यही जानता है कि खाने वाला मैं हूँ ।और अन्न भी मैं ही हूं ॥ ३८ ॥ ब्रह्म ज्ञानी अपने ज्ञान से सबको आत्म रूप ही देखता है, इसलिये ब्राह्मण और क्षत्रिय यह भाव ही उसका अन्न होजाता है ॥ ३९ ॥ मृत्यु जिसका अन्न है उसको जानने वाला भी वैसा ही होजाता है, इसलिये ब्रह्म के स्वरूप को जानने से यह सब जगत जानने वाले का भोजन बन जाता है ॥ ४० ॥ जगत जब आत्म रूप से भासता है, तब वह भोजन बन जाता है और आत्म रूपसे ब्रह्म उसका नित्य भक्षण करता है ॥ ४१ ॥ जिसके आभास रूप से भोज्य जगत बनता है वह प्रमाण रूप आत्म रूप से भासता है तब वह उससे अवश्य भक्षित ही होगया ॥ ४२ ॥ अपने स्वरूप को आप ही खाता है, भोजन का पदार्थ अपने से पृथक् नहीं है, और यदि है तो वह अस्तित्व रूप है, अस्तित्व लक्षण एक ब्रह्म ही का है ॥ ४३ ॥ सत्ता का लक्षण अस्तित्व है इसलिये सत्ता ब्रह्म से भिन्न नहीं है । ब्रह्म को छोड़ कर सत्ता नहीं है, इसलिये माया वस्तु रूप नहीं है ॥ ४४ ॥ आत्मनिष्ठ योगियों के लिये माया अपनी आत्मामें कल्पित है वह ब्रह्म ज्ञानसे बाधित होकर उनको साक्षी रूप से भासती है ॥ ४५ ॥ ब्रह्म का अनुभव जिसको प्राप्त हुआ है उसको प्रतीत होने वाले जगत को देखते हुए भी वह उसको अपने से पृथक् नहीं देखता ॥ ४६ ॥

॥ इति पाशुपत ब्रह्मोपनिषत् समाप्त ॥

योग कुण्डल्युपनिषत् ।

[५०]

मन की चंचलता के दो कारण हैं; वासना और प्राण। इनमें से एक का नाश हो जाय तो दोनों ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥ इनमें से मनुष्य प्रथम प्राण ही जय करें। (इसके लिये तीन साधन हैं) परिमित आहार, आसन और शक्ति चालन ॥ २ ॥ हे गौतम, इन सबके लक्षण कहता हूं, उनको आदर के साथ सुन। पेट का चतुर्थांश खाली रखते हुए, घी तथा दूध से युक्त (सुस्निग्ध) और मधुर ऐसा आहार ॥ ३ ॥ शिव के प्रीत्यर्थ किया जाय, उसको मिताहार कहते हैं। आसन दो प्रकार के होते हैं पद्मासन और वज्रासन ॥ ४ ॥ दोनों जांघों के ऊपर (दूसरे) पैर के तलुवे (सीधे) रखने से सर्व पापों को दूर करने वाला पद्मासन होता है ॥ ५ ॥ वाम चरण की एड़ी लिंग और गुदा के बीच में लगा कर दक्षिण चरण की एड़ी उसके ऊपर रखे और गर्दन सिर तथा शरीर समान रखे; इसको वज्रासन कहते हैं ॥ ६ ॥ कुण्डली ही शक्ति है बुद्धिमान साधक चालन करके उसको उसके स्थान से, भ्रूकुटी मध्य तक ले जाय, इसको शक्ति चालन कहते हैं ॥ ७ ॥ इसके मुख्य दो साधन हैं, सरस्वती का चालन और प्राण निरोध। अभ्यास से कुण्डलिनी सीधी हो जाती है ॥ ८ ॥

इनमें से प्रथम मैं तुझको सरस्वती का चालन कहता हूं। प्राचीन कथा जानने वाले सरस्वती को अरुन्धती कहते हैं ॥ ९ ॥ जिसका संचालन करने से कुण्डलिनी आप ही आप चलने लगती है। जब इड़ा से प्राण वहता हो तब बुद्धिमान योगी भली प्रकार पद्मासन लगा कर बैठे ॥ १० ॥ फिर बारह अंगुल लम्बा और चार अंगुल चौड़ा, ऐसे आकाश से कुण्डलिनी का वेष्ठन करे ॥ ११ ॥ [पश्चात्] हाथ के अंगूठेसे और तर्जनी से दाहिनी और बांई नासिका दृढ़तापूर्वक ग्रहण करके प्रथम दाहिनी और पश्चात् बांई नासिका द्वारा बार बार रेचक पूरक करते हुए उसको भावना द्वारा दाहिनी और बांई ओर चालन करे ॥ १२ ॥ बुद्धिमान योगी दो मुहूर्त पर्यन्त इस प्रकार सरस्वती का चालन करे। इससे कुण्डलिनी के समीप अवस्थित सुषुम्ना को फिर किंचित् ऊपर की तरफ खींचे ॥ १३ ॥ इससे कुण्डलिनी सुषुम्ना के मुख में प्रवेश करती है और प्राण उस स्थान को छोड़कर अपने आप सुषुम्ना में प्रवेश करता है ॥ १४ ॥ इस समय पेट को ऊपर खींच कर कण्ठ का संकोच करते हुए सरस्वती का चालन करने से वायु हृदय कमल से ऊपर चला जाता है ॥ १५ ॥ सरस्वती का चालन करते समय कण्ठ का संकोचन करके सूर्य से रेचन करे; इससे प्राण हृदय कमल से ऊपर चला जाता है ॥ १६ ॥ इसलिये शब्दमयी सरस्वती का नित्य संचालन करना चाहिये जिसके संचालन ही से योगी सर्व रोगों से मुक्त हो जाता है ॥१७॥

गुल्म, जलोदर, प्लीहा तथा पेट के अन्य रोग शक्तिचालन से निश्चय पूर्वक नष्ट हो जाते हैं ॥ १८ ॥

अब आगे संक्षेप से प्राण निरोध का वर्णन करता हूँ। देह में गमन करने वाले वायु को प्राण कहते हैं और वह स्थिर होता है तब उसको कुंभक कहते हैं ॥१९॥ कुम्भक दो प्रकारका होता है, सहित और केवल। जब तक केवल कुम्भक सिद्ध न हो तब तक सहित कुम्भक का अभ्यास करना चाहिये ॥ २० ॥ सूर्य भेदन, उज्जायी, शीतली और भस्त्रिका इन चार प्राणायामों के साथ कुम्भक किया जाय उसको सहित कुम्भक कहते हैं ॥ २१ ॥]

जहां कंकड़ पत्थर न हो और जिसके आस पास धनुष प्रमाण यानी कुछ दूरी तक घास अग्नि या जल न हो, ऐसे निर्जन और पवित्र स्थान में ॥ २२ ॥ न अत्यंत ऊंचा हो न नीचा, ऐसे सुखप्रद आसन पर पद्मासन से बैठ कर सरस्वती का चालन किया जाता है ॥ २३ ॥ दाहिनी नासिका से वाहर का पवन धीरे २ खींच कर जितना आसानी से वन सके पूरक करे और पश्चात् वाईं नासिका से रेचक करे ॥ २४ ॥ कपाल शोधन क्रिया में भी वायु धीरे २ बाहर छोड़ना चाहिये। इससे चार प्रकार के वात दोष और कृमि दोष नष्ट हो जाते हैं ॥ २५ ॥ इस प्रकार वार वार किया जाय, उसको सूर्य भेदन कहते हैं। मुख बन्द करके दोनों नासिका द्वारा ॥२६॥ कंठसे लेकर हृदय पर्यन्त

स्पर्श करते हुए तथा आवाज करते हुए वायु को ग्रहण करके पहिले के समान कुम्भक करके इडा [वाईं नासिका] से रेचक करदे ॥ २७ ॥ इससे मस्तक की गरमी गले का कफ तथा अन्य बहुत से रोग दूर होते हैं। इस पवित्र क्रिया से देह की अग्नि भी बढ़ती है ॥ २८ ॥ इससे नाड़ी जलोदर तथा धातु संबंधी रोग नष्ट हो जाते हैं। यह उज्जाई कुंभक चलते फिरते, उठते बैठते यानी हमेशा करना चाहिये ॥ २९ ॥ जीभ से वायु को खींच कर पूर्ववत् कुंभक करके पश्चात् दोनों नासिकाओं द्वारा विद्वान् योगी धीरे धीरे रेचक करे ॥ ३० ॥ इस शीतली कुंभक से गुल्म, प्लीहा, पित्त, ज्वर तथा प्यास नष्ट हो जाती है और विष भी पच जाता है ॥ ३१ ॥ पश्चात् पद्मासन बांध कर गर्दन तथा सिर समान रख कर बैठे और मुख बन्द करते हुए प्राण को नासिका से रेचन करे ॥ ३२ ॥ वायु आवाज के साथ इस प्रकार खींचे कि मस्तक में तथा कण्ठ से लेकर हृदय कमल तक स्पर्श प्रतीत हो ॥ ३३ ॥ फिर रेचक करे, और इस प्रकार बार बार पूरक तथा रेचक करे; जैसे कि लुहार की धोंकनी जल्दी जल्दी चलाई जाती है ॥ ३४ ॥ वैसे ही शरीर में रहे हुए प्राण को धीरे धीरे चलावे और जब श्रम प्रतीत होने लगे सूर्य से पूरक करने लगे ॥ ३५ ॥ जितना सुलभतापूर्वक बन सके उतना, वायु से उदर पूर्ण करके नासिका को मध्य भाग में तर्जनी छोड़ कर अन्य चार उगलियों से दृढ़ता पूर्वक ग्रहण करे ॥ ३६ ॥ और पूर्ववत् कुंभक करे, फिर इडा से रेचक करे। कण्ठ की जलन

को यह दूर करता है तथा शरीर की अग्नि को बढ़ाता है ॥ ३७ ॥ पुण्य को बढ़ाने वाला, पाप का नाश करने वाला, परम कल्याण-प्रद और सुखदायी ऐसा यह कुंभक सुषुम्ना के मुख में रहे हुए कफादि की रुकावटें दूर करता है ॥ ३८ ॥ तीनों गुणों से उत्पन्न हुई तीनों ग्रंथियों का भेदन करता है, इसलिये इस भस्त्रा कुंभक को ख़ास करके करना चाहिये ॥ ३९ ॥

चारों प्रकार के कुम्भक करते समय निष्पाप योगी इन तीनों बंधों को भी करें ॥ ४० ॥ प्रथम मूल बंध, द्वितीय उड्डियान और तृतीय जालंधर बंध कहलाता है । इन सबके लक्षण आगे कहते हैं ॥ ४१ ॥ नीचे गति रखने वाले अपान को अपान द्वार का आकुंचन करके जो बलपूर्वक ऊर्ध्व चढ़ाता है उसको मूल बन्ध कहते हैं ॥ ४२ ॥ जब अपान ऊपर चढ़ कर वह्नि मण्डल को प्राप्त होता है तब वहां की अग्नि की ज्वाला बहुत बढ़ जाती है ॥ ४३ ॥ वहां की ज्वाला में से निकलने के कारण प्राण उष्ण होता है, वही जब अत्यन्त प्रदीप्त हो जाता है तब देह में ज्वलन यानी गरमी उत्पन्न होती है ॥ ४४ ॥ उससे सोई हुई कुण्डलिनी संतप्त हो जाने से जागृत हो जाती है और लकड़ी की चोट खाई हुई भुजंगी के समान फुत्कार करती हुई कुण्डलिनी सीधी हो जाती है ॥ ४५ ॥ और बिल में प्रवेश करते हुए वह ब्रह्म नाड़ी में यानी सुषुम्ना के भीतर प्रवेश करती है, इसलिये योगियों को मूल बंध सर्वदा करना चाहिये ॥ ४६ ॥ कुंभक के अन्त में और रेचक के आदि में उड्डियान बंध करना चाहिये । इसके करने से

प्राण सुषुम्ना में ऊपर उड़ते हैं ॥ ४७ ॥ इसलिये इसको योगी लोग उड्डियान यानी उड़ने वाला कहते हैं। वज्रासन (सिद्धासन) लगा कर हाथ जानुओं पर जमा कर रखे ॥४८॥ (सिद्धासन में) पैर के टखने के पास कन्द होता है उसको भीतर दबाते हुए पेट को ऊपर की तरफ खींचे; यह खिचाव हृदय तथा गले में भी रहे ॥ ४९ ॥ धीरे धीरे प्राण जब पेट के संधी में प्रवेश करता है तब वह पेट के सब दोष निवृत्त करता है, इसलिये इसको हमेशा करना चाहिये ॥ ५० ॥ पूरक के अन्त में जालंधर नामक बंध किया जाता है। इस बंध में कण्ठ का संकोचन किया जाता है जिससे कि वायु का मार्ग रुकना है ॥ ५१ ॥ नीचे से मूल बंध द्वारा आकुंचन करे. ऊपर जालंधर बंध द्वारा कण्ठ का संकोच कर और बीच में उड्डियान द्वारा प्राण को ऊपर खींचे, इस प्रकार करने से प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करता है ॥ ५२ ॥

पूर्वोक्त क्रम से भली प्रकार आसन लगा कर सरस्वती का चालन करके पश्चात् प्राण का निरोध करना चाहिये ॥ ५३ ॥ प्रथम दिवस चारों कुंभक, प्रत्येक दश बार करना चाहिये। दूसरे दिन पंद्रह बार ॥ ५४ ॥ तीसरे दिन बीस बीस बार; इस प्रकार प्रति दिन पांच पांच बढ़ाते हुए, तीनों बंधों सहित कुंभकों का अभ्यास नित्य करना चाहिये ॥ ५५ ॥ दिन में सोना, रात में जागना, अति मैथुन करना, अधिक चलना, नित्य मलमूत्र को रोकना ॥५६॥ यदि प्राणायाम करने वाला पुरुष आसन की

विषमता अथवा दुराग्रह पूर्वक प्राणका चिन्तवन (अभ्यास) करे तो इन दोषों से शीघ्र ही रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ योगाभ्यास से मुझे रोग हुआ है ऐसा कोई कहे तब योगाभ्यास का त्याग करना यह प्रथम विघ्न है ॥ ५८ ॥ संशय नामक दूसरा विघ्न है, तीसरा दोष प्रमाद है, चौथा आलस दोष, निद्रा पांचवां ॥ ५९ ॥ प्रेम न रहना छठा, भ्रान्ति सातवां, विषमता आठवां, अनाख्य नवां कहा गया है ॥ ६० ॥ और योग तत्त्व की अप्राप्ति दशवां विघ्न विद्वान् कहते हैं, बुद्धिमान योगी इन दस विघ्नों को विचार से त्याग दे ॥ ६१ ॥

उसके पश्चात् सदा सतोगुणी बुद्धि रखते हुए प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये इससे चित्त सुषुम्ना में लीन होता है और प्राण स्थिर होता है ॥६२॥ जब योगी का मल शुष्क होजाय और प्राण चलित हो तब नीचे चलने वाले अपान को बलपूर्वक ऊपर चढ़ावे ॥६३॥ इसमें आकुंचन होने से इसको मूलबंध कहते हैं; अपान अग्नि के साथ ऊपर जाता है ॥६४॥ तब अग्नि प्राण स्थान को प्राप्त होता है और सत्वर प्राणापान के साथ मिलकर कुंडलाकृति सोती हुई कुण्डलिनीको प्राप्त होता है ॥६५॥ उस अग्निसे तपायमान होकर तथा अपान वायुसे प्रेरित होकर यह कुण्डलिनी अपने शरीर को सुषुम्ना के मुख में फैजाती है ॥ ६६ ॥ फिर रजोगुण से उत्पन्न ब्रह्म ग्रंथि को भेदन करके सुषुम्ना के मुख में से वह बिजली की लकीर तरह ऊपर चढ़ती है ॥ ६७ ॥ तेजी के साथ ऊपर चढ़ कर हृदय में स्थित

विष्णु ग्रंथि को प्राप्त होती है। पश्चात् ऊपर जाकर तमोगुण से उत्पन्न हुई रुद्र ग्रंथि को प्राप्त होती है॥ ६८ ॥ फिर भृकुटी मध्य में होकर चन्द्र मंडल को प्राप्त होती है। इस स्थान पर सोलह पखुरियों का अनाहत चक्र होता है॥ ६९॥ उसमें वह चंद्रामृत का पान करती है। प्राण के वेग के कारण प्रेरित होकर सूर्य रक्त पित्त का शोषण कर लेता है॥ ७०॥ जहां शुद्ध श्लेष्मा के द्रव रूप चन्द्र मंडल होता है, वहां प्राप्त होने पर उसको उष्णता वहां के द्रव को ग्रस जाती है फिर वह ठंडा किस प्रकार रहे?॥ ७१॥ बड़े जोर से जाकर शुभ्र चन्द्र के रूप को भी गरम करती है, क्षुब्ध होकर ऊपर चढ़ती है॥ ७२॥ इसलिये जो चित्त पहिले वाह्य विषयों में रमता था अब परम पद का अनुभव प्राप्त करके अपने ही में रह कर आनन्द भोगता है॥ ७३॥ अष्टधा प्रकृति को कुण्डलिनी प्राप्त करती है, वह शिव से मिली हुई रहती है और शिव से मिली हुई लय हो जाती है॥ ७४॥ इस प्रकार नीचे का रज और ऊपर का शुक्ल दोनों शिव में लीन होते हैं और उनके पीछे प्राण अपान भी समान होकर लीन हो जाते हैं क्योंकि वे समान ही उत्पन्न होते हैं॥ ७५॥ देह छोटा हो या बड़ा हो जब अग्नि बहुत बढ़ जाती है तब सब प्राण आग में रखे हुए मूषा में सुवर्ण के समान (शरीर में) फैल जाते हैं॥ ७६॥ तब अधिभौतिक देह अधिदैविक अवतार शरीर बन जाता है, स्थूल देह आतिवाहिक सूक्ष्म देह के समान निर्मल हो जाता है॥ ७७॥ उसकी मुख्य

देह जड़ताके भावसे रहित शुद्ध चित्स्वरूप होता है। अन्य जीवोंके आतिवाहक देह जड़ ही होते हैं ॥ ७८ ॥ उसका स्त्री से उत्पन्न होना छूट जाता है वैसे ही कालको भी वह वंचित करता है। इस प्रकार उसको अपने स्वरूप का ज्ञान उत्पन्न होता है। रज्जु में जैसे सर्प की प्रतीति होती है ॥ ७९ ॥ उसी प्रकार सब मिथ्या ही उत्पन्न होते और मिथ्या ही लय को प्राप्त होते हैं, अथवा जैसे सीप में चांदी की बुद्धि अथवा स्त्री में पुरुष का भ्रम होता है उसी प्रकार की उसकी अपने देह में मिथ्या बुद्धि होती है ॥ ८० ॥ पिण्ड और ब्रह्मांड की एकता होती है लिंग और सूत्रात्मा की और अपने आत्मा की चैतन्य स्वप्रकाश स्वरूप से एकता होती है ॥ ८१ ॥ कुण्डलिनी शक्ति कमल के डंडी के समान होती है और कमल कंद के समान मूलकंदको फणाग्र से देखकर ॥ ८२ ॥ अपने मुख में पुच्छ पकड़ते हुए ब्रह्मरंध्र को बन्द करती है। साधक पद्मासन लगाकर शान्तिपूर्वक गुदा का आकुंचन करे ॥ ८३ ॥ फिर मनोयोग पूर्वक कुंभक करके प्राण को ऊपर चढ़ावे। वायु के आघात से स्वाधिष्ठान का अग्नि प्रदीप्त करे ॥ ८४ ॥ अग्नि और पवन के आघात से कुण्डलिनी जागृत होती है। वह ब्रह्म ग्रंथि को भेदन करके विष्णु ग्रंथि का भेदन करती है ॥ ८५ ॥ फिर रुद्र ग्रंथि का भेदन करती है और छः ओं कमलों का भेदन करके सहस्र दल में यह शक्ति शिव से मिलकर आनन्द का भोग करती है ॥ ८६ ॥ यही श्रेष्ठ अवस्था है और यही मोक्ष देने वाली है।

॥ इति प्रथम अध्याय ॥

अब मैं खेचरी नाम की विद्या को कहता हूँ। इसको जानने वाला इस लोक में जरा मृत्यु को नहीं प्राप्त होता ॥ १ ॥ इसलिये हे मुने, जो जरा मृत्यु से ग्रस्त हैं वे इस विद्या को जानकर, बुद्धि दृढ़ करके इसका अभ्यास करे ॥ २ ॥ जरा, मृत्यु और रोगों के नाश करने वाली इस खेचरी विद्या को इस लोक में जो ग्रंथसे, भाव से और अभ्यास द्वारा जानता है ॥ ३ ॥ ऐसे पुरुष को हे मुने, सर्व भाव से गुरु मान कर उसीका आश्रय लेना चाहिये। खेचरी विद्या दुर्लभ है और उसका अभ्यास उससे भी दुर्लभ है ॥ ४ ॥ अभ्यास और मेलन (योग) दोनों एक साथ करने से सिद्धि नहीं होती और केवल अभ्यास में लगे रहने वालों को मेलन (योग) की प्राप्ति नहीं होती ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन्, अभ्यास तो कभी जन्मान्तर में भी मिल सकता है परन्तु मेलन (योग) सौ जन्मों में भी नहीं मिलता ॥ ६ ॥ बहुत जन्मों तक अभ्यास करके कोई योगी अनेक जन्मों के पश्चात् मेलन को प्राप्त करता है ॥ ७ ॥ जब योगी गुरु मुख से मेलन मंत्र को प्राप्त करता है तब वह शास्त्र में कही हुई सिद्धि को प्राप्त करता है ॥ ८ ॥ ग्रंथ से और उसके अर्थ से जब मेलन प्राप्त करता है तब संसार से निर्मुक्त होकर वह शिव रूप बन जाता है ॥ ९ ॥ शास्त्र के बिना गुरु भी इसका बोध नहीं करा सकता, इसलिये इस शास्त्र का मिलना भी, हे मुने, अत्यन्त कठिन है ॥ १० ॥ जब तक इस शास्त्र की प्राप्ति न हो वहां तक यति पृथ्वी पर पर्यटन किया करे और जब इस शास्त्र की प्राप्ति होजाय तब सिद्धि हाथ में ही

है ॥ ११ ॥ शास्त्र के विना तीनों लोकों में सिद्धि देखने में नहीं आती इसलिये मेलन देने वाला शास्त्र देने वाला ॥ १२ ॥ और अभ्यास देने वाला ऐसा गुरु अच्युत रूप शिव ही है ऐसा मान कर उसका आश्रय करना चाहिये। इस शास्त्र को प्राप्त करके और किसी को प्रकट नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥ इसलिये जो कोई इसे जानता है वह यत्न से इसको गुप्त रखे। हे ब्रह्मा, जहां इस दिव्य योग का देने वाला गुरु रहता हो ॥ १४ ॥ वहां जाकर उसके मुख से इस खेचरी विद्या का ग्रहण करके उसके कथन के अनुसार सावधान पूर्वक अभ्यास करने में लग जाय ॥ १५ ॥ इस विद्या से योगीको खेचरी की सिद्धि होती है, खेचरी में खेचरी का खेचरी के वीज सहित योग करने से ॥ १६ ॥ देवताओं का अधिपति बनकर देवताओं में ही सदा रहता है। खेचर शब्द का द्योतक 'ह' कार है, आवसथ यानी धारणा शक्ति का दीर्घ 'ई' कार, अग्नि का वीज 'र' कार और जल का 'म' कार है (इन सबको मिलाने से 'ह्रीं' होजाता है) ॥ १७ ॥ यही खेचरी बीज है और इसीसे खेचरी सिद्ध होती है। सोमांश 'सकार' है, उसका प्रतिलोम से नवां अक्षर 'भ' को लिखे ॥ १८ ॥ पश्चात् तीसरा अक्षर चन्द्र का वीज अर्थात् 'स' है, फिर हे मुने, प्रतिलोम से आठवां अक्षर यानी 'म' का ग्रहण करना चाहिये, ॥ १९ ॥ पश्चात् 'म' कार से उलटी गिनती से पांचवां वर्ण 'प' चन्द्र बीज 'स' और अनेक वर्ण वाला 'क्ष' अन्तिम अक्षर है (वीज मन्त्र के प्रत्येक वर्ण में अनुस्वार सम्मिलित करना पड़ता है इसलिये

इन सबमें अनुस्वार का योग देकर "ह्रीं भं सं मं पं सं चं" यह खेचरी मंत्र दिये हुए पहेली के अनुसार सिद्ध होता है) ॥ २० ॥

यह सब सिद्धियां देने वाला मंत्र गुरु के उपदेश ही से प्राप्त होता है। जो इसका बारह बार नित्य जाप करता है उसे स्वप्न में भी अंतःकरणमें रहने वाली देह सम्बन्धी मायाकी प्राप्ति नहीं होती। जो इसका ध्यान देकर पांच लाख जाप करेगा ॥ २१-२२ ॥ उसको खेचरी आप ही सिद्ध होजाती है, उसके सब विघ्न दूर होते हैं और सब देवता उस पर प्रसन्न रहते हैं ॥२३॥ उसके शरीर पर झुर्रियां पड़ी हुई दूर होती हैं, इसमें संदेह नहीं है। इस प्रकार यह महा विद्या प्राप्त करने के पश्चात् इसको अन्य से अभ्यास करावे ॥ २४ ॥ अन्यथा, हे ब्रह्मन्, खेचरी के साधन में कष्ट ही होते हैं, सिद्धि नहीं प्राप्त होती। जब विधि पूर्वक अभ्यास करने पर भी इस अमृतमयी विद्या का लाभ न हो ॥२५॥

तब संमेलक आदि से इस विद्या को प्राप्त करके इसका सदा जाप करे। हे ब्रह्मन्, बिना संमेलक गुरु के इसका जाप न करे क्योंकि ऐसा करने से किंचित् भी सिद्धि नहीं होगी ॥ २६ ॥ जब इस शास्त्र को प्राप्ति हो जाय तभी इस विद्या का सेवन करना चाहिये। इस प्रकार करने से शास्त्र में लिखे अनुसार फल की योगी को त्वरित प्राप्ति होगी ॥ २७ ॥ योगी सात दिन तक अपने गुरु के आदेशानुसार तालु मूल का घर्षण आदि करके वहां के सब मल को दूर करे ॥ २८ ॥ पश्चात् स्नुही (थुहर) पत्र के समान अच्छा तीक्ष्ण शुद्ध और स्निग्ध ऐसा

शस्त्र ग्रहण करके उससे एक रोम के बराबर छेदन करे ॥ २९ ॥ फिर सैंधव और हर्र का चूर्ण वहां लगावे, फिर सातवें दिन एक रोम के समान छेदन करे ॥ ३० ॥ इस क्रम से नित्य उद्योग करके छः मास तक छेदन करे तो छः मास के पश्चात् जीभ के मूल की शिरा का बंधन नष्ट हो जायगा ॥ ३१ ॥ पश्चात् जीभ के अग्रभाग को वस्त्र से बांधकर नियमित रूप से उसको धीरे धीरे खींचता रहे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार से छः मास तक नित्य दोहन करने से जीभ भ्रू मध्य तक जाती है और पार्श्व में कर्ण विवर तक पहुंचती है ॥ ३३ ॥ वैसे ही नीचे को ठोड़ी के मूल तक पहुँचती हैं। क्रम पूर्वक अभ्यास करने से तीसरे वर्ष में ॥ ३४ ॥ जीभ ऊपर केश के अन्त तक जाती है और बाजू पे कंधों तक पहुंचती है नीचे को कण्ठ कूप तक जाती है। फिर तीन वर्ष के बाद ॥ ३५ ॥ जीभ ब्रह्मरंध्र को ढांप कर रहेगी इसमें तनिक भी संशय नहीं है, और पार्श्व में जीभ गर्दन के पीछे तक जायगी और नीचे कंठके अन्त तक पहुंच जायगी ॥३६॥ इस प्रकार क्रमपूर्वक अनुष्ठान करने से जीभ मस्तक में ब्रह्मरंध्र को भेद कर जाती है।

जिस अति दुर्लभ विद्या का पहिले बीज के साथ कथन किया है ॥ ३७ ॥ उसका उसके छः भिन्न २ अक्षरों से षडंगन्यास करने चाहिये तथा संपूर्ण सिद्धि लाभ करने के लिये उससे करन्यास भी करने चाहिये ॥ ३८ ॥ इस प्रकार धीरे धीरे अभ्यास करना चाहिये, शीघ्रता नहीं करनी चाहिये।

शीघ्रता करने से शरीर की हानि होगी ॥ ३९ ॥ इसलिये, हे मुनि श्रेष्ठ, अभ्यास धीरे धीरे ही करना चाहिये। जब बाहर के मार्ग से जीभ ब्रह्म विवर के भीतर जायगी ॥ ४० ॥ तब देवताओं को दुर्भेद्य ऐसे ब्रह्मार्गल (पड जीभ) को उंगली से उठाकर जीभ को ब्रह्म विवर में प्रविष्ट करादे ॥ ४१ ॥ इस प्रकार तीन वर्ष तक अभ्यास करने से जीभ ब्रह्म द्वार में प्रवेश करती है। जीभ ब्रह्म द्वार में प्रवेप करे तब ठीक ठीक मथन का प्रारंभ करना चाहिये ॥ ४२ ॥ कोई विद्वान् मथन न करते हुए ही खेचरी साधते हैं। जिनका खेचरी मंत्र सिद्ध हुआ है वे विना मथन ही खेचरी कर लेते हैं ॥ ४३ ॥ जप और मथन दोनों का प्रयोग करने से फल अधिक शीघ्र मिलता है। सोने की रूपे की अथवा लोहे की एक सलाई में दुग्ध युक्त तन्तु लगा कर ॥ ४४ ॥ उसको नासिका में प्रविष्ट करे फिर सुखासन में बैठकर अपने हृदय में प्राण का निरोध करके ॥ ४५ ॥ और आंखें भ्रूमध्य में लगाकर धीरे धीरे मथन किया करे। छः मास में मथनावस्था भाव में गोचर होती है ॥ ४६ ॥ जिस प्रकार बालकों की सुषुप्ति अवस्था होती है, जैसा उसका भाव होता है वैसा ही इसका भाव होता है ।

मथन हमेशा नहीं करना चाहिये मास में एक वार करना चाहिये ॥ ४७ ॥ योगी वार वार जिह्वा को ब्रह्मरंध्र में प्रवेश न करावे। इस प्रकार अभ्यास करने से बारह वर्ष में अवश्य सिद्धि होगी ॥ ४८ ॥ तब योगी अपने शरीर में समस्त विश्व को

देखता है; क्योंकि जीभ को ब्रह्मरंध्र से ऊपर जाने के मार्ग में ही समस्त ब्रह्माण्ड अवस्थित है ॥ ४९ ॥

॥ इति द्वितीय अध्याय ॥

मेलन मन्त्र यह है:—ह्रीं भं सं मं पं सं त्तम् ।

ब्रह्मा बोले, हे शंकर, अमावास्या प्रतिपदा तथा पौर्णमासी का वास्तविक भावार्थ क्या है सो कहिये ॥ १ ॥ प्रतिपदा का अर्थ सूर्य है अमावास्या का अर्थ सूर्य चन्द्र का अभाव और पौर्णमासी का अर्थ चन्द्र मण्डल है अर्थात् इस क्रमसे चन्द्र मण्डलमें स्थिर रहना चाहिये; इसके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं है ॥ २ ॥ कामना के कारण विषय की इच्छा मनुष्य करता है और विषयों द्वारा कामना में फंस जाता है; इसलिये कामना और विषय दोनों का त्याग करके निरंजन आत्मा ही का आश्रय करना चाहिये ॥ ३ ॥ यदि मनुष्य अपना हित चाहता हो तो आत्मा से भिन्न सब पदार्थों का त्याग करना चाहिये तथा मनको शक्ति में प्रविष्ट कर शक्ति में ही उसको रखना चाहिये ॥ ४ ॥ मन से मन को देखकर उसका त्याग करना ही परम पद है। मन ही उत्पत्ति स्थिति का कारण रूप बिन्दु है ॥ ५ ॥ जैसे दूध से घी निकलता है; वैसे ही मन से बिन्दु उत्पन्न होता है। उसमें बंधन नहीं है बंधन का कारण तो मन ही है ॥ ६ ॥ चन्द्र और सूर्य के बीच में शक्ति का रहना ही बंधन रूप है, इसलिये सुषुम्ना को जानकर उसका भेद करके उसमें प्राण को चलाना

चाहिये ॥ ७ ॥ प्राण को विन्दु में स्थिर करके प्राणरंध्रों का निरोध करना चाहिये। इस प्रकार प्राण विन्दु सत्त्व (मन) और प्रकृति (शक्ति) का वर्णन हुआ ॥ ८ ॥ इनको तथा षट् चक्रों को जानकर सुखस्वरूप स्थानमें प्रवेश करना चाहिये। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर तीसरा ॥ ९ ॥ अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा ये छः चक्र हैं। मूलाधार गुदा के स्थान में, स्वाधिष्ठान लिंग के स्थान में ॥ १० ॥ मणिपूर नाभि के देशमें, हृदय स्थानमें अनाहत, कण्ठ मूल में विशुद्धि चक्र और मस्तक में आज्ञा चक्र होता है ॥ ११ ॥ छओं चक्रों का ज्ञान करके सुखरूप सहस्रार में प्रवेश करे। प्राण को ऊपर खींचकर कुण्डलिनी के साथ उसको ऊपर स्थिर रखे ॥ १२ ॥ इस प्रकार प्राण का अभ्यास करता है वह ब्रह्माण्डमय होजाता है। प्राण, विन्दु, चक्र और मन का अभ्यास करके ॥ १३ ॥ एक रूपता की समाधि प्राप्त करके योगी लोग अमृत रूप परमपद को प्राप्त होते हैं।

जिस प्रकार काष्ठ में रहा हुआ अग्नि विना मंथन प्रकट नहीं होता ॥ १४ ॥ इसी प्रकार विना अभ्यास योगके ज्ञान दीप प्रकट नहीं होता। जिस प्रकार घट में स्थित दीप बाहर प्रकाश नहीं देता ॥ १५ ॥ परन्तु घट का भेदन करने से दीप की ज्वाला प्रकाशती है। उसी प्रकार अपना शरीर ही घट है और परमपद ही दीप है ॥ १६ ॥ और गुरु के वचन से उसका भेद हो जाने से ब्रह्म ज्ञान प्रकट होजाता है। साधक लोग गुरुको कर्णधार

करके आसानी से भवसागर को तैर जाते हैं ॥ १७ ॥ अभ्यास और वासना के बल से वे भवसागर को तैर जाते हैं। वाणी परा में अंकुरित होती है पश्यंति में द्विदली भूत होती है यानी अधिक स्फुट होती है ॥ १८ ॥ मध्यमा में उसको कली आती है और वैखरी में वह स्फुट रूप से प्रकट होती है। वाणी पहिले जिस रूप से उदय होती है उसी के उलटे क्रम से वह विलीन होजाती है ॥ १९ ॥ इस वाणी का परमदेव वाणी का बोध कराने वाला कूटस्थ है, वही मैं हूँ, ऐसा निश्चय करके जो पुरुष वर्तता है ॥ २० ॥ उसको अच्छा बुरा शब्द कैसे भी कोई कहे वह लेपायमान नहीं होता। विश्व, तैजस और प्राज्ञ ये तीन पिण्ड के ॥ २१ ॥ तथा विराट् हिरण्यगर्भ और ईश्वर ये तीन ब्रह्मांड के हैं ये तथा भू आदि लोक क्रम से ॥ २२ ॥ अपनी अपनी उपाधि के लय द्वारा प्रत्यगात्मा में लीन हो जाते हैं। ज्ञानाग्नि से तप्त होने के कारण ब्रह्मांड अपने कारणों के साथ विलीन होजाता है ॥ २३ ॥ वह परमात्मा में लीन होकर परब्रह्म रूप ही होजाता है। उसके बाद एक अगाध, गंभीर और जो न प्रकाश है न अंधकार ऐसा ॥ २४ ॥ जिसका वर्णन नहीं हो सके ऐसा, अव्यक्त एक सत् स्वरूप शेष रहता है। जैसे घड़े के भीतर दीपक हो ऐसे अपने अंतर में ॥ २५ ॥ अंगूठे के समान निर्धूम ज्योति रूप से वह अपने अन्तःकरण को प्रकाश करता है इस प्रकार उस अव्यय कूटस्थ का ध्यान करना चाहिये ॥ २६ ॥ विज्ञान स्वरूप आत्मा देह में जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति द्वारा माया से विमोहित होजाता है, वह अनेक

जन्मों के पश्चात फिर ॥ २७ ॥ शुभ कर्मों का उदय होता है तब अपने विकारों को जानने की इच्छा करता है कि मैं कौन हूँ यह संसार रूप दोष कहां से आया ॥ २८ ॥ अपने मिथ्या स्वरूप से सोचता है कि जाग्रत् और स्वप्न में तो मैं व्यवहार करता हूँ परन्तु सुषुप्ति में मेरी क्या गति होती है ॥ २९ ॥ जैसे रुई का पिण्डा अग्नि से जल जाता है वैसे चिदाभास अज्ञान के कारण जगत् के ताप से दग्ध होता है ॥ ३० ॥

इस प्रकार ज्ञान के नष्ट होने पर हृदय में रहा हुआ प्रत्यगात्मा विस्तार को प्राप्त होकर विज्ञान का भी क्षण मात्र में नाश करता है ॥ ३१ ॥ क्रमशः मनोमय और विज्ञानमय दोनों को भली प्रकार दग्ध कर शाश्वत के लिये, घट में दीप जलता रहता है वैसे ही अंतरमें हा प्रकाशता रहता है ॥ ३२ ॥ इस आत्मा का जो मुनि मृत्यु के समय पर्यन्त, प्रतिदिन सोने तक ध्यान करता है उसको जीवन्मुक्त ही समझना चाहिये; ऐसा पुरुष धन्य है और कृतकृत्य हुआ है ॥ ३३ ॥ जब इसका देह काल के वश होजाता है तब यह जीवन्मुक्ति का पद छोड़ कर जिस प्रकार हवा का चलना बन्द होजाता है उसी प्रकार वह विदेहत्व को प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध रहित नित्य और अव्यय है; जिसको आदि अन्त नहीं है, जो महान् परम और ध्रुव है वही अन्त में शुद्ध और विकार रहित ब्रह्म शेष रहता है ॥ ३५ ॥

॥ इति योग कुण्डल्युपनिषत् समाप्त ॥

नारद परिव्राजकोपनिषत् ।

[५१]

एक समय परिव्राजक के वस्त्र धारण किये हुए नारदजी तीनों लोकों में विचर रहे थे। अपूर्व पुण्य स्थल तथा पुण्य तीर्थों का दर्शन करते हुए वे और तीर्थों को पावन करते जा रहे थे। तीर्थों के दर्शन से उनको चित्त शुद्धि लाभ हुई और वे निर्वैर और शान्त हुए। इन्द्रियों को वश में करके उन्होंने सब प्रकार से वैराग्य धारण किया और वे स्वरूप के अनुसंधान में रहने लगे। (चलते चलते) वे नियम से रहने ही में विशेष आनन्द मानने वाले मुनियों से भरे हुए नैमिषारण्यमें आ पहुँचे। चल और अचल भगवद्भक्ति से युक्त, प्रपंच से विमुख करके वैराग्य का बोध कराने वाली हरि कथाओं का **स रि ग म प ध नि स** इन स्वरों के सहित मधुर गायन करके, मनुष्य, पशु, किंपुरुष, देव, किन्नर और अप्सरा गण को मोहित करते हुए, ब्रह्माजी के पुत्र भगवद्भक्त नारदजी को आते हुए देखकर, नैमिषारण्य के शौनकादि ऋषियों ने—जो सत्र याग में बारह संवत्सर उपस्थित थे, वेदाध्ययन संपन्न, सर्वज्ञ, तपोनिष्ठ और ज्ञान वैराग्य से युक्त थे—नारदजी को उत्थान दिया, नमस्कार किया और यथोचित आतिथ्य करके उनको आसन देने के पश्चात् सब ऋषि उनके आस पास बैठ गये।

ऋषि बोले, 'भगवन् हमको मोक्ष के लिये किस प्रकार साधन करना चाहिये, कृपा करके उसका उपदेश दीजिये !'

नारदजी बोले, 'उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ द्विज शास्त्रोक्त विधि से उपनयन होने के पश्चात्, चवालीस संस्कारों से युक्त होकर किसी योग्य गुरु के पास जावे और अपनी शाखा के अध्ययन सहित सब विद्याओं का अभ्यास करके बारह वर्ष गुरु शुश्रुषा पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करे और पचीस वर्ष गृहस्थ धर्म और वानप्रस्थ धर्म का विधि सहित पालन करे। चार प्रकार का ब्रह्मचर्य, छः प्रकार का गृहस्थ धर्म और चार प्रकार वानप्रस्थ धर्म भली प्रकार समझ ले और उनके अनुसार सब कर्म यथा विधि करने के पश्चात्, साधन चतुष्टय संपन्न होकर, मन, वचन कर्म से जिस प्रकार सब संसार की आशा वह छोड़ देता है; इसी प्रकार उसकी वासना तथा तीनों ईषणाओं का भी त्याग करके, निर्वैर शान्त और इन्द्रियों को वश में किये हुए परमहंस संन्यास आश्रम का ग्रहण करके अस्खलित आत्मस्वरूप के ध्यान में रहते हुए, जो पुरुष देह त्याग करता है वह मुक्त होजाता है, निःसंदेह वह मुक्त होजाता है' ॥ इति प्रथम उपदेश ॥

शौनकादिक ऋषियों ने भगवान् नारदजी से कहा, "भगवन् संन्यास की विधि हमको सुनाइये।" उनकी ओर देखते हुए नारदजी बोले, "संन्यास का स्वरूप ब्रह्माजी से जानना ही उचित है।" इतना कहकर, सत्र याग पूर्ण होने के पश्चात् सब ऋषियों

समेत नारदजी सत्यलोक को चले गये। ब्रह्म ध्यान में निमग्न ऐसे ब्रह्माजी को नमस्कार करके तथा उनका स्तवन करके नारदादि सब ऋषि उनकी आज्ञा से यथोचित स्थान पर बैठ गये। पश्चात् नारदजी पितामह से बोले, "हे पितामह आप गुरु हो, पिता हो, सब विद्याओं का रहस्य आप ही जानते हो, आप ही सर्वज्ञ हो, इसलिये मेरी ओर से मेरी इच्छा के अनुसार एक गुह्य बात आपको कहनी होगी। आपके बिना मेरे अभिमत रहस्य को और कौन बता सकता है? यदि आप पूछिये कि वह क्या है तो निवेदन है कि परिव्राजक धर्म का स्वरूप हमको बता दीजिये।"

ब्रह्माजी ने चारों ओर बैठे हुए सब ऋषियोंको एक बार देखा और एक मुहूर्त पर्यंत समाधि में स्थित रह कर संसार दुःख को नष्ट करने का उपाय ऋषि चाहते हैं ऐसा निश्चय होने पर नारद की ओर देखकर ब्रह्माजी बोले, "हे पुत्र, यह रहस्य पहिले विशालाकृति विराट् पुरुष ने पुरुष सूक्त उपनिषत् द्वारा बताया था; वही आज तुझे विस्तार से सुनाता हूँ। वह बहुत ही गूढ़ है इसलिये, हे नारद ध्यान देकर सुनो। अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ, पुरुष माता पिता की आज्ञा में रह कर विधि पूर्वक उपनयन संस्कार होने के पश्चात् पितासे आज्ञा लेकर उत्तम संप्रदाय वाले किसी सद्गुरु के पास चला जाय। गुरु अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ, श्रद्धावान् श्रोत्रिय, शास्त्र में प्रेम रखने वाला, गुणवान् और सीधा होना चाहिये। ऐसे गुरु के यहां जाकर, नमस्कार करके,

यथायोग्य शुश्रुषा करनेके पश्चात् उनसे अपनी इच्छा प्रगट करे। बारह वर्ष पर्यंत उनकी सेवा करते हुए सब विद्या पढ़े। पश्चात् उनकी आज्ञा लेकर अपने कुल के योग्य और अपने को प्रिय हो, ऐसी कन्या के साथ विवाह करके पच्चीस वर्ष का गुरुकुल वास समाप्त करके गुरु की आज्ञा से यथोचित गृहस्थ के कर्म करने लग जाय। ब्राह्मणत्व को प्राप्त करके अपने वंश की वृद्धि के निमित्त एक पुत्र को उत्पन्न करे और इस प्रकार गृहस्थाश्रम के पच्चीस वर्ष पूरे करे। पश्चात् पच्चीस वर्ष पर्यंत वन में रहकर तीन बार केवल स्नान करके चतुर्थ बार आहार ग्रहण करे और पूर्व के अनुसार ग्राम और नगर में न जाते हुए वन में अकेला जा रहे। फल की इच्छा का परित्याग करके उस आश्रम के उचित ऐसे कर्मों को कर चुकने पर दृष्ट और आनुश्रविक (परलोक में प्राप्त होने वाले) विषयों से उपराम को प्राप्त हो, चवालीस संस्कारों से युक्त हुआ सर्व प्रकार से विरक्त होजाय। इस प्रकार चित्त की शुद्धि लाभ करके आशा, असूया, ईर्षा और अहंकार इनको दग्ध करके और साधनचतुष्टय संपन्न होकर संन्यास ग्रहण करे, यह उपनिषत् है॥ इति द्वितीयोपदेश॥

नारदजी ने पितामह से कहा, 'भगवन्, किस लक्षण से संन्यास का अधिकारी पहिचानना चाहिये?' ब्रह्माजी बोले, प्रथम सँन्यास के अधिकारी के लक्षण कहता हूँ पश्चात् संन्यास का विधि कहूँगा। ध्यान देकर सुनो!

नपुंसक, पतित, अंगहीन, स्त्रैण, (स्त्रीत्व से प्रीति रखने वाला) बधिर, बालक, मूक, पाखण्डो, चक्र (का चिह्न) धारण करने वाला, लिंग धारण करने वाला, शैव चिह्न धारण करने वाला, वेतन लेकर पढ़ाने वाला, गंजा और अग्निहोत्र न किया हो ऐसा पुरुष—ये सब वैराग्य युक्त होने पर भी संन्यास के अधिकारी नहीं हैं। यद्यपि इन्होंने संन्यास ग्रहण भी किया हो, तो ये महावाक्य के उपदेश के अधिकारी नहीं हैं। पूर्वोक्त संन्यासी ही परमहंस का अधिकारी होता है। (स्मृति में कहा है कि)—

अपने से दूसरे को और दूसरे से अपने को भयकी संभावना नहीं रखता वही परिव्राजक कहा जाता है॥ १॥ नपुंसक, अंगहीन, अंधा बालक, पापी, पतित, परद्वारी, वैखानस (जंगली), शिव चिह्न धारण करने वाला॥ २॥ चक्र या लिंग धारण करने वाला, पाखण्डी, गंजा, अग्निहोत्र न किया हो ऐसा या दो तीन वार संन्यास ले चुका हो वह और वेतन लेकर पढ़ाने वाला, ये सब—क्रम संन्यास नहीं ले सकते; आतुर संन्यास ले सकते हैं॥ ३॥

आतुर काल आपको कौनसा संमत है ?

प्राण निकलने के समीप का समय ही आतुर काल कहा जाता है, अन्य नहीं। आतुर काल मुक्ति मार्ग में प्रवृत्त कराता है॥ ४॥ आतुर संन्यास में भी यथा विधि मंत्र पठन तथा मंत्रा-

वृत्ति (जप) करके, बुद्धिमान पुरुष को चाहिये, कि वह विधियुक्त संन्यास धारण करे ॥ ५ ॥ आतुर संन्यास में क्या और क्रम संन्यास में क्या, प्रेष भेद नहीं होता; क्योंकि मंत्र रहित कर्म नहीं होता। कर्म मंत्र की अपेक्षा रखते हैं ॥ ६ ॥ मत्र रहित कर्म व्यर्थ हो जाता है, इसलिये मंत्र का त्याग नहीं करना चाहिये। मंत्र रहित कर्म वैसा ही है जैसा भस्म में आहुति देना ॥७॥ विधि युक्त कर्मों का संक्षेप होने ही से इसको आतुर संन्यास कहते हैं, इसलिये हे मुने आतुर संन्यास में मंत्रों का उपयोग अवश्य करना चाहिये ॥ ८ ॥ यदि कोई प्रथम अग्नि होत्र करता हो, परन्तु पश्चात् विरक्त होकर देश छोड़कर चला गया हो, तो उसको जल में प्राजापत्य इष्टि करके संन्यास धारण करना चाहिये ॥ ९ ॥ यह कर्म चाहे मानसिक किया जाय या विधि अनुसार जल में किया जाय या वेद में जिस प्रकार इस कर्म का अनुष्ठान बताया है, उसके अनुसार किया जाय ॥ १० ॥ इसको समाप्त करके ही विद्वान् संन्यास धारण करे, ऐसा न करे तो उसका पतन हो जायगा ॥ ११ ॥ जब मन में सब वस्तुओं के लिये वैराग्य उत्पन्न होजाय तब ही संन्यास की इच्छा करना योग्य है, अन्यथा संन्यास की इच्छा करने से वह पतित हो जायगा ॥ १२ ॥ इसलिये बुद्धिमान विरक्त ही को संन्यास में प्रवृत्त होना चाहिये और जो राग वाला हो उसके लिये घर ही अच्छा है जो अधम द्विज राग के होते हुए संन्यास धारण करता है, वह नरक को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जिसको

जीभ, उपस्थ, पेट और हाथ अपने वश में हों ब्रह्मचर्यवान् वह ब्राह्मण विवाह करने के पूर्व ही संन्यास धारण करे ॥ १४ ॥ संसार को विवेक दृष्टि से जब निःसार देखता है तब वह उत्तम श्रेणी के वैराग्य से युक्त पुरुष विवाह न करते हुए ही संन्यास ग्रहण करता है ॥ १५ ॥ कर्म का लक्षण प्रवृत्ति है यानी कर्म से प्रवृत्ति बढ़ती है और ज्ञान में उसका लक्षण संन्यास है इसलिये ज्ञान (विवेक) होने के पश्चात् ही बुद्धिमान संन्यास ग्रहण करे ॥ १६ ॥

जब सनातन ब्रह्मरूप परम तत्त्व का ज्ञान होजाय, तब एक दंड धारण करके यज्ञोपवीत और शिखा का त्याग करना चाहिये ॥ १७ ॥ वही भिक्षा का अन्न भोजन कर सकता है जो परमात्मा में प्रेम रखता हो, संसार के पदार्थों में वैराग्य रखता हो और सब प्रकार की कामनाओं से रहित हो ॥ १८ ॥ नमस्कार करने से अथवा पूजा करने से जैसी प्रसन्नता होती है यदि मार पड़ने पर भी जिसको वैसी ही प्रसन्नता होती हो, तभी वह सच्चा भिक्षान्न का भागी होता है ॥ १९ ॥ वासुदेव नामक अद्वय और अक्षर ब्रह्म मैं ही हूँ, यह भाव जिसका दृढ़ होजाता है वही सच्चा भिक्षान्न का भोगी है ॥ २० ॥ जिस पुरुष में शान्ति, शम, शौच, सत्य, संतोष और आर्जव (सीधापन) हो, जो अपने पास कुछ भी न रखता हो और जिसमें दम्भ (मक्कारी) भी न हो, वही पुरुष कैवल्याश्रम में अर्थात् संन्यास आश्रम में रहे ॥ २१ ॥ जो मन, वचन या कर्म द्वारा किसी भूत

प्राणी के प्रति पाप की भावना नहीं करता वही सच्चा भिक्षान्न भोगी होता है ॥ २२ ॥ सावधानता पूर्वक दस लक्षण वाले, धर्म का अनुष्ठान करता हुआ और यथा विधि वेदान्त का श्रवण करता हुआ द्विज सब ऋणों से मुक्त होने के पश्चात् संन्यास ग्रहण करे ॥ २३ ॥ धृति, क्षमा, दम, अस्तेय (चोरी न करना), शौच, इन्द्रिय वश में रखना, (विवेक) से काम करना, विद्या, सत्य और क्रोध न करना—यह दस धर्म के लक्षण हैं ॥ २४ ॥ प्रथम भोगे हुए भोगों का तथा प्राप्त होने वाले भोगों का जो स्मरण न करे और प्राप्त भोगों में जो सुख न माने, वही पुरुष संन्यास आश्रम में रहे ॥ २५ ॥ जो भीतर की इन्द्रियां भीतर और बाहर के विषय बाहर सदा रख सके, वही संन्यास आश्रम में रहे ॥ २६ ॥ प्राण निकल जाने पर जिस प्रकार देह को सुख दुःख नहीं होते वैसे ही प्राण के होते हुए जिसको सुख दुःख न हो वही संन्यास के योग्य है ॥ २७ ॥ दो लंगोटियां, एक गुदड़ी और एक दंड इतना ही सामान परमहंस संन्यासी को अपने पास रखना चाहिये अधिक नहीं ॥ २८ ॥ राग के कारण यदि परमहंस संन्यासी अधिक परिग्रह करे, तो वह रौरव नरक को प्राप्त होकर, पशु आदि की तिर्यक योनि में जन्म लेता है ॥ २९ ॥ संन्यासी पुराने फटे हुए निर्मल वस्त्रों को जोड़ २ कर कन्था बनावे और उसका बाहरी परत गेरुआ करले ॥ ३० ॥ वह या तो एक ही वस्त्र धारण करे या एक भी वस्त्र न रखे और नीचे दृष्टि रखते हुए वासना रहित होकर नित्य अकेला ही विचरण

करे और वर्षाकाल में मात्र एक स्थान पर निवास करे ॥ ३१ ॥ पुत्र दारादि परिवार तथा वेदांग, यज्ञ और यज्ञोपवीत इन सबका त्याग करके, यति एकांत में अकेला विचरण करे ॥ ३२ ॥ काम, क्रोध, घमंड, लोभ इत्यादि दोषों का परित्याग करके परिव्राजक ममता रहित हो जाय ॥ ३३ ॥ राग द्वेष को छोड़कर मुनि मिट्टी का डेला, पत्थर तथा सुवर्ण को समान देखे और किसी प्राणी की हिंसा न करते हुए निस्पृह हो रहे ॥ ३४ ॥ दम्भ [मक्कारी] अहंकार, हिंसा और पैशुन्य [दुराचार] को छोड़ कर और आत्म ज्ञान से युक्त होकर यति मोक्ष का लाभ करे ॥ ३५ ॥ इन्द्रियों को साथ देने से अवश्य दोष की ही प्राप्ति होती है, परन्तु यदि उनको वश में रखा जाय तो उससे अवश्य सिद्धि का लाभ होता है ॥ ३६ ॥ भोग की इच्छा भोगों के भोगने से कभी शान्त नहीं होती; परन्तु घी डालने से जैसी आग भभकती जाती है वैसे वह भी बढ़ती ही जाती है ॥ ३७ ॥

विषयों को सुनकर, स्पर्शकर, चख कर, देखकर या सूंघ कर जो पुरुष उनमें हर्ष या ग्लानि नहीं करता उसीको जितेन्द्रिय जानना चाहिये ॥ ३८ ॥ जिसका मन और वाणी सदा शुद्ध और अपने वश में है, वह वेदान्त का अन्तिम फल मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) अपने सन्मान से सदा विष प्राप्ति के समान अप्रसन्न रहे और अमृत प्राप्त होने के समान अपमान की प्राप्ति को समझे ॥ ४० ॥ अपमानित होने पर भी ब्राह्मण सुख से सोता है, सुख से ही जागता है और सुख से

विचरण करता है; परन्तु उसका अपमान करने वाला नष्ट हो जाता है ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण बहुत बोलने से बचता रहे और अपमान तो किसी का भी न करे। वैसे ही, अपने देह का आश्रय करके और किसी से भी वैर न बांधे ॥ ४२ ॥ कोई क्रोध करे तो उसके ऊपर वह क्रोध न करे, कोई बुरी बात कहे तो भी उसको मीठे वचन ही कहे और न बहु अर्थ वाले वचन कहे, न असत्य भाषण करे ॥ ४३ ॥ अपने आत्मा ही में प्रेम रखे और किसी से कुछ पाने की भी इच्छा न रखे, न किसी को आशीर्वाद दे। अपने ही पुरुषार्थ से सुख प्राप्त करने के लिये इस जगत में विचरण करे ॥ ४४ ॥ इन्द्रियों का निरोध करने से राग द्वेश का क्षय करने से और प्राणियों की हिंसा न करने से मनुष्य अमृतत्व के योग्य होता है ॥ ४५ ॥ हड्डियों के जिसमें खंभे लगे हुए हैं, जो स्नायु से बंधा हुआ और रक्त मांस से लिपा हुआ है, जो चमड़े से मढ़ा हुआ और दुर्गंध युक्त मलमूत्र से भरा हुआ है ॥ ४६ ॥ जो वृद्धावस्था के दुःख से युक्त है और रोगों का घर है और सदा रोगों से पीड़ित है, जो स्त्री के रज से उत्पन्न होता है, अनित्य है और भूतों का निवास स्थान है, ऐसा यह मनुष्य शरीर त्यागने योग्य ही है ॥ ४७ ॥ मांस, रक्त, पीव, मल, मूत्र, स्नायु, मज्जा और हड्डियां—इनके संघात रूप देह में यदि कोई मूढ़ मनुष्य प्रीति करे, तो वह नरक में भी प्रीति करेगा ! ॥ ४८ ॥ देह में अहंकार रखना ही काल का दास होना है, वही महावीचि नामक नरक में खींच ले जाने वाला जाल है या महान् कष्टप्रद ऐसी

असिपत्र वन श्रेणी (एक प्रकार का नरक जहां पेड़ों के पत्ते तलवार की धार के समान होते हैं) वही हैं ॥ ४९ ॥ सब कुछ भले ही नष्ट होजाय तो भी हर प्रयत्न से देहाहंकार का त्याग अवश्य ही करना चाहिये। देहाहंकार को भले मनुष्य को छूना तक नहीं चाहिये; जैसे कि श्वान का मांस जिसके पास है ऐसे चांडालिनी को उत्तम पुरुष नहीं छूते ॥ ५० ॥ अपने प्रियजन हो उनका अच्छा करना या जो अप्रिय हों उनका बुरा करना, दोनों से अलग रह कर, ध्यान योग से वह सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ इस विधि से धीरे २ सब प्रकार के संग को छोड़कर और सब द्वंद्वों से मुक्त होकर वह ब्रह्म में टिक जाता है ॥ ५२ ॥ किसी के सहाय की अपेक्षा न रखकर परमार्थ की सिद्धि के लिये अकेला ही विचरण करे; जो जानता है कि अकेले रहने ही से परमार्थ की सिद्धि होती है, वह उसको त्यागता नहीं और सिद्धि को प्राप्त कर ही छोड़ता है ॥ ५३ ॥

पात्रके लिये कपाल (खप्पर), खानेके लिये कन्द मूल, पहिनने के लिये पुराने फटे वस्त्र, किसीकी सहायता अपेक्षा न रखना, सबमें समान बुद्धि रखना—ये ही मुक्त के लक्षण है ॥ ५४ ॥ सब भूत प्राणियोंका हित चाहने वाला, शान्त, तीन दंड और एक कमंडलु रखने वाला और अकेला ही आनंदमें रहने वाला, ऐसा संन्यासी भिक्षा के लिये ग्राम में प्रवेश करे ॥ ५५ ॥ अकेला ही भिक्षु कहा जाता है, दो जुड़ जांय तो मिथुन कहाता है तीन मिल जाने से ग्राम और तीन से अधिक भिक्षु मिलने पर उनको नगर

कहते हैं ॥ ५६ ॥ इसलिये भिक्षुकों को तीन से अधिक तीन या दो की संख्या में नहीं रहना चाहिये यदि वैसे रहें तो वे अपने धर्म से च्युत हो जाते हैं ॥ ५७ ॥ (क्योंकि दो या अधिक यति मिलने से) उसमें आपस में राजा संबंधी या भिक्षा संबंधी अवश्य बात चीत होगी अथवा अधिक परिचय से आपस में स्नेह, दुराचार या मत्सर आदि भी उत्पन्न होंगे, इसमें संदेह नहीं है ॥ ५८ ॥

भिक्षु किसी की आशा न करते हुए अकेला ही रहे, किसी के साथ बात भी न करे और यति सबको 'नारायण' यही उत्तर दे ॥ ५९ ॥ अकेला ही मन वचन कर्म से ब्रह्म का चिन्तवन करे। जीवन में या मृत्यु में हर्ष न माने ॥ ६० ॥ जहां तक आयु की समाप्ति न हो काल ही की प्रतीक्षा किया करे जीवन या मरण का हर्ष न माने। जैसा सेवक आज्ञा की प्रतीक्षा करता रहता है वैसे काल ही की प्रतीक्षा करता रहे ॥ ६१ ॥ अजिह्व, मौन, नपुंषक, पंगु, अन्धा, बधिर और मुग्ध इन छओं का आचरण करे इससे भिक्षु अवश्य मुक्त हो जायगा, इसमें संदेह नहीं है ॥६२॥ भोजन करते समय यह अच्छा है और यह बुरा है इस प्रकार मानकर जो जिह्वाके विषयोंमें आसक्ति नहीं करता और हितकर, परिमित, और सत्य भाषण करता है, उसको अजिह्व कहते हैं ॥ ६३ ॥ हाल की उत्पन्न हुई बालिका, सोलह वर्ष की तरुणी और सौ वर्ष की वृद्धा स्त्री, तीनों को जो चित्त में विकार उत्पन्न हुए विना ही देखता है उसको पंडक (नपुंसक) कहते हैं ॥ ६४ ॥ जो केवल

भिक्षा के लिये अथवा मल मूत्र त्याग के लिये ही चलता है और एक योजन से अधिक चलता ही नहीं उस यति को पंगु कहना चाहिये ॥ ६५ ॥ बैठा हो या गमन करता हो जिसकी दृष्टि चार हाथ धरती से अधिक दूर नहीं जाती उस यति को अन्ध कहते हैं ॥ ६६ ॥ हितकारक या अहितकारक आनन्द देने वाला या दुःख देने वाला, ऐसा वचन सुनकर भी न सुनने के समान स्थिर बुद्धि रहता है, उसको बहिरा कहते हैं ॥ ६७ ॥ विषय संमुख उपस्थित होने पर भी जिस समर्थ यति की इन्द्रियां चलायमान नहीं होतीं, जो सदा सोये हुए के समान वर्ताव करता है, उस भिक्षु को मुग्ध कहते हैं ॥ ६८ ॥ नाटक आदि जुआ, युवतियां, खाने पीने के पदार्थ और रजस्वला स्त्री, इन छओं को यति कभी न देखे ॥ ६९ ॥ अन्य पदार्थ में राग, द्वेष, मद, माया, द्रोह और मोह इन छः को यति मन में कभी भी न लावे ॥ ७० ॥ मंचक (पलंग), सफेद कपड़ा, स्त्रियों की कथा, लोलुपता, दिन में सोना और किसी यान (सवारी) में बैठना यह छः संन्यासी के लिये पाप है ॥ ७१ ॥ आत्म चिन्ता करने वाला प्रयत्न से दूर यात्रा न करे और मोक्ष देने वाले उपनिषदादि सत् शास्त्रों का अभ्यास किया करे ॥ ७२ ॥ यति तीर्थ स्थान में अधिक न रहे, न उपवास ही करे, वैसे ही यति न पढ़ने में लगा रहे न व्याख्यान (पढ़ाने) में ॥ ७३ ॥ यति हमेशा पाप रहित, शठता विहीन और सरल ऐसा आचरण रखे और कछुआ जैसे अपने अङ्गों को समेट लेता है वैसे

इन्द्रियों को समेट ले यानी उनको अपने वश में रखे ॥ ७४ ॥ इन्द्रिय और मन की वृत्ति जिसकी क्षीण हुई है, जो आशा और परिग्रह से रहित हो, जो द्वन्द्व रहित हो और किसी को नमस्कार न करे न तर्पण आदि करे ॥ ७५ ॥ जो ममता और अहंकार रहित हो, किसी से कुछ अपेक्षा न रखता हो, न किसी को आशीर्वाद देता हो और जो सदा एकान्त का ही सेवन करता हो—ऐसा पुरुष मुक्त ही होता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ७६ ॥

नियम से ही चलने वाला, कर्म, भक्ति और ज्ञान से संपन्न और स्वतंत्र ऐसा पुरुष वैराग्य प्राप्त होने पर—फिर वह ब्रह्मचारी हो, गृहस्थ हो या वानप्रस्थ हो, संन्यास ग्रहण करे। ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य समाप्त करके गृही हो, फिर वानप्रस्थ होकर पश्चात् संन्यास धारण करे। अथवा अन्य प्रकार से, ब्रह्मचर्य ही से संन्यास ग्रहण करे, वा गृहस्थी से या वानप्रस्थ से करे। अथवा, व्रती हो या व्रतहीन, स्नातक (पढ़ा हुआ विद्वान्) हो या अस्नातक (बेपढ़ा), अग्नि का त्याग किया हो या अग्निहोत्र रखा ही न हो, जिसको जिस दिन वैराग्य उत्पन्न हो जाय, उसी दिन वह संन्यास धारण करे। प्रजापत्य इष्टि (हवन विशेष) ही केवल करे अथवा न करे; केवल आग्नेय इष्टि ही करे। प्राण ही अग्नि है, इसलिये त्रैधातवीय इष्टि अर्थात् तीन धातु सम्बन्धी हवन इसी में करे। तीन धातु ये हैं, सत्व, रज और तम। 'अयंते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो आरोचथाः। तं जानन्नग्न आरोहाथानो

वर्धया रयिम् ।' (हे अग्नि देव ! यह प्राण तुम्हारा कारण रूप है; प्राण से उत्पन्न हुए तुम प्रकाश को प्राप्त हो । प्राण के जानने वाले, हे अग्नि देव ! तुम वृद्धि को प्राप्त हो और हमारी सम्पत्ति बढ़ाओ) इस मंत्र से अग्नि को सूंघे । अथवा 'अग्नेर्योनिर्यः प्राणः प्राणं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ।' (जो प्राण अग्नि का कारण है उस अपने कारण में हे अग्निदेव ! तुम प्रवेश करो) इस मंत्र से आहवनीय अग्नि को लेकर पूर्व के अनुसार उसको सूंघे । यदि अग्नि न मिले तो जलमें आहुतियां दे । जल ही सब देवता रूप है (इसलिये) 'सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा ।' (सब देवताओं के लिये इस मंत्र से हवन करता हूँ) हवन करके उस जल को लेकर 'साज्यं हविरनामयं मोक्षदम्' (यह घृत सहित हवि है जो रोगहारक और मोक्षदायक है) इस मंत्र से जल प्राशन करे ।

पश्चात् शिखा, यज्ञोपवीत, पिता, पुत्र, स्त्री, कर्म, अध्ययन तथा अन्य मन्त्रों का विसर्जन कर वह परिव्राजक हो जाता है । आत्म ज्ञानी परिव्राजक त्रैधातवीय मोक्ष मंत्रों से विधिवत् ब्रह्म की उपासना करे ।

नारदजी ने ब्रह्माजी से पुनः प्रश्न किया, 'जिसको यज्ञोपवीत न हो वह ब्राह्मण कैसे हो सकता है ?

पितामह ने उत्तर दिया:—

शिखा सहित मुण्डन करके विद्वान् बाहर के सूत्र (यज्ञोपवीत) का त्याग करे और जो अक्षर परब्रह्म है वही सूत्र है इस

प्रकार समझे ॥ ७७ ॥ पिरोया हुआ होने से उसको सूत्र कहते हैं–वह सूत्र वस्तुतः परमपद रूपी सूत्र को जिसने जान लिया है, वही ब्राह्मण वेदों का पारगामी है यानी संपूर्ण वेदों को भली प्रकार जानने वाला है ॥ ७८ ॥ जिसमें यह सर्व जगत सूत्र में जैसे मणि पिरोये हुए होते हैं वैसा पिरोया हुआ है, उस ब्रह्म रूपी सूत्र को तत्त्वदर्शी योगी धारण करे ॥ ७९ ॥ उत्तम प्रकार से योग में स्थिर विद्वान् बाहर के सूत्र को त्याग कर सावधानता पूर्वक इस ब्रह्म भावका सूत्र धारण करे। इस सूत्रको धारण करने वाला उच्छिष्ट (झूठा) और अशुचि नहीं होता ॥८०॥ ब्रह्मज्ञान रूप यज्ञोपवीत धारण करने वाले, जिनका सूत्र भीतर रहता है वे ही सच्चे सूत्रको जाननेवाले हैं और सच्चे यज्ञोपवीत पहिनने वाले हैं ॥८१॥ उनकी ज्ञान ही शिखा है, ज्ञान ही निष्ठा है, और ज्ञान ही उनका यज्ञोपवीत है; उनका पवित्र भी ज्ञान ही है और ज्ञान ही उनका परम (पद) है ॥ ८२ ॥ अग्नि की समान प्रज्वलित ऐसी जिसकी ज्ञानमय शिखा है, वही ज्ञानी सच्चा शिखा धारी है और सामान्य मनुष्य शिखा जो रखते हैं, वे वास्तविक में शिखा-धारी नहीं है ॥ ८३ ॥ ब्राह्मणादि जिनको वैदिक कर्म करने का अधिकार है, उनको यह बाहरी यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये; क्योंकि वह एक कर्म ही का अंग है ॥ ८४ ॥ जिसकी शिखा और उपवीत ज्ञानमय है, संपूर्ण ब्राह्मणत्व उसी में है, ऐसा ब्रह्मज्ञानियों का निश्चय है ॥ ८५ ॥

इस प्रकार यह सब जान कर ब्राह्मण परिव्राजक (संन्यासी) वन जाय। संन्यासी एक पहनने की शाटी (वस्त्र) सिवाय और कोई वस्तु पास न रखे, सब सिर मुंडवाले और सब प्रकार से शारीरिक कष्ट सहने के लिये तय्यार रहे। अथवा विधि देखा जाय तो वह जैसा उत्पन्न हुआ है, उसी रूपको धारण कर यानी नग्न होकर अपने पुत्र, मित्र, स्त्री, आप्त (गृह) बांधव आदि तथा स्वाध्याय और सब कर्मों को त्यागकर 'यह सब ब्रह्माण्ड ही उसकी लगोटी हैं' ऐसा समझकर दण्ड और लँगोटीका त्याग करे और द्वंद्व को सहन करता हुआ न शीत माने न उष्ण, न सुख, न दुःख, न निद्रा, न मानापमान माने और शोक, मोह, जरा, मृत्यु, भूख और प्यास इन छओं ऊर्मियोंसे रहित होजाय। निन्दा, अहंकार, मत्सर, गर्व, दंभ, ईर्षा असूया, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को छोड़ कर अपने शरीर को मृत शरीर के समान मानकर अपने आत्माको छोड़कर भीतर और वाहर, और कुछ है ही नहीं ऐसी निष्ठा रखे। किसी की भी वंदना न करे, न नमस्कार करे, न हवन वा तर्पण करे। निन्दा स्तुति छोड़दे और जैसा होजाय वैसा ही होने दे, जो मिले उसीमें संतुष्ट रहे। सुवर्ण आदि पास न रखे। उसके लिये न आवाहन है न विसर्जन, न मंत्र है न अमंत्र, न ध्यान है न उपासना, न लक्ष्य है न अलक्ष्य, न पृथक् है न अपृथक् है, न कोई अन्य स्थान है। सभी स्थान उसीका निवास है और उसीकी बुद्धि

स्थिर है। वह सूने मकान में, वृक्ष के नीचे, मंदिर में, फूंस के ढेर में, कुम्हार के घर, अग्नि होत्र के स्थान अथवा यज्ञशाला में, नदी के तीरमें, नदी के बालू में, भूमि के विवर में, पर्वत के कन्दरा में, झरने पर अथवा यज्ञागार में अथवा वन में रहे श्वेतकेतु, ऋभु निदाघ, ऋषभ, दुर्वासा, संवर्तक, दत्तात्रेय और रैवतक–इनके समान कोई जान न सके इस प्रकार वेश तथा आचार रखकर, बालक के समान, पागल के समान अथवा पिशाच के समान रहे। पागल न होते हुए पागल का सा आचरण रखे और त्रिदंड, छीका, पात्र, कमंडलु, कटिसूत्र और कौपीन–यह सब जल में 'भूः स्वाहा' कहकर त्याग दे। कटिसूत्र, कौपीन, दण्ड, वस्त्र और कमण्डलु–यह सब जल में प्रवाहित करे, नग्न होकर विचरण करे और आत्मा का अनुसंधान करता रहे। जैसा नग्न रहे वैसा निर्द्वंद्व और परिग्रह रहित भी रहे। परिव्राजक तत्त्वरूप ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग में अच्छी प्रकार संपन्न हो। मन को निर्मल रखते हुए प्राण धारण के निमित्त यथोक्त काल पर हाथ में अथवा किसी पात्र में भिक्षा मांग कर खाय। लाभ हानि में समान रहे और ममता कहीं भी न रखे। आत्मध्यान में सदा निमग्न रहकर सदा ब्रह्मनिष्ठ बना रहे और शुभ तथा अशुभ कर्मों का उच्छेद करने की इच्छा से उनका त्याग कर, 'पूर्णानंद, अद्वैत और बोध स्वरूप ऐसा ब्रह्म मैं हूँ' इस अर्थ वाले ब्रह्म प्रणव का अनुस्मरण करे। भ्रमर जैसा एक फूल से दूसरे फूल पर जाता है, अथवा जैसे कीट एक पत्ते से दूसरे पत्ते पर जाता है, वैसे ही,

तीनों शरीर का त्याग करे। इस प्रकार संन्यास ही से जो देह—त्याग करता है, वह कृतकृत्य होता है। यह उपनिषत् है ॥ इति तृतीय उपदेश ॥

वेद विहित कर्मों सहित तीनों लोक, विषय तथा इन्द्रिय इन सबका त्याग कर जो आत्मा में ही टिक जाता है, वह परमगति को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ सच्चा यति अपना नाम, गोत्र, देश, काल, अपनी विद्वत्ता, कुल, उम्र, पेशा, व्रत, शील इत्यादि किसी को न बतावे ॥ २ ॥ स्त्री के साथ वह संभाषण न करे अथवा देखी हुई स्त्री का स्मरण न करे, स्त्री सम्बन्धी वार्ता भी न करे, और तो क्या स्त्री का चित्र भी यति न देखे ! ॥ ३ ॥ इन चार बातोंका यदि कोई यति मोह वश आचरण करे, तो उसका चित्त को अवश्य विकार होगा और उस विकार से वह नाश को प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

तृष्णा, क्रोध, असत्य, धूर्तता, लोभ, मोह, प्रिय, अप्रिय, शिल्प, व्याख्यान करना, काम, राग, परिग्रह ॥ ५ ॥ अहंकार, ममता, व्याधि चिकित्सा करना, धर्म का कोई बड़ा काम उठाना, प्रायश्चित्त करना, प्रवास, मंत्र, औषधि, विष और आशीर्वाद ॥ ६ ॥ यह सब यतिके लिये निषिद्ध हैं और यदि कोई यति इनका सेवन करे तो उसका पतन होगा। मित्र भी आ मिले तो उसको 'आजा, अथवा बैठ' ऐसा कहकर उसका स्वागत न करे ॥७॥ वैसे ही मोक्ष मार्गमें परायण मुनि किसीसे मान पूर्वक न बोले, किसीसे कुछ ले नहीं न किसीको कुछ दे ॥ ८ ॥ अथवा देने

दिलवाने की यति स्वप्न में भी कभी प्रेरणा न करे। स्त्री, भाई, पुत्र इत्यादि बांधवों का हानि लाभ ॥ ९ ॥ सुनकर वा देख कर यति विचलित न हो और हर्ष शोक दोनों का वह त्याग करे। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह से रहे ॥ १० ॥ उद्दण्डता न करना, दीनता रहित रहना, प्रसन्नता, स्थिरता, सीधापन, अस्नेह, गुरु सेवा, श्रद्धा, क्षमा, दम, शम, ॥ ११ ॥ उपेक्षा, धैर्य, माधुर्य तितिक्षा, करुणा, लज्जा, ज्ञान, विज्ञान, योग मिताहार और धृति ॥ १२ ॥ इन सबका पालन करना, जिनका मन वशमें होता है ऐसे यतियोंका यह प्रसिद्ध धर्म है। द्वंद्व रहित, सदा आत्मा में टिका हुआ, सबको समान देखने वाला ॥ १३ ॥ ऐसा तुरीय अवस्था को पहुँचा हुआ परमहंस यति साक्षात् नारायण ही है। यति ग्राम में एक ही रात्रि रहे, नगर में पांच रात्रि रह सकता है ॥ १४ ॥ परन्तु यह नियम वर्षाऋतु के लिये नहीं है; वर्षा काल में चार महीने एक ही स्थान रह सकता है। यदि और कोई भिक्षु ग्राम में हो तो उस ग्राम में यति दो रात्रि भी न ठहरे ॥ १५ ॥

क्योंकि इसमें रागद्वेश बढ़ता है और उससे यति नरक गति को प्राप्त होता है। गांव की सीमा में अथवा किसी निर्जन देश में विना आश्रम बनाये यति संयम पूर्वक रहे ॥ १६ ॥ किसी क्षुद्र प्राणी के समान जमीन पर यानी पैदल ही घूमता रहे, मात्र वर्षाकाल में एक ही स्थान रह जाय। वह या तो एक ही स्थान

पर निवास करे अथवा निवास करे ही नहीं; एकाग्र दृष्टि रखे और लोलुपता न रखे ॥ १७ ॥

इस प्रकार संतजनों के मार्ग को दूषण न लगाता हुआ ध्यानयुक्त रह कर यति पृथ्वी पर भ्रमण करे। पवित्र देश में अपने धर्म का पालन करते हुए यति ॥ १८ ॥ परिभ्रमण करता रहे और योगरत रह कर पृथ्वी पर घूमता रहे। यति को रात्रि में, दुपहर में अथवा संध्या समय पर्यटन नहीं करना चाहिये ॥१९॥ शून्य स्थानों में, कठिन स्थानों में अथवा जहां जाने से प्राणियों को कष्ट पहुंचे ऐसे देश में भी वह पर्यटन न करे। यति गांव में एक रात्रि रहे, कसवे में तीन रात ॥ २० ॥ छोटे कसवे में दो ही रात रहे, शहर में पांच रात्रि रह सकता है परन्तु वर्षाकाल में (चार महीने) तीर्थ स्थान देखकर वहीं रहे ॥ २१ ॥ अन्धे के समान कूबरे के समान, बहिरा, पागल या गूँगे के समान (जिसके लक्षण पहले दे चुके हैं) और अपने समान सब भूतों को देखता हुआ भिक्षु पृथ्वी पर परिभ्रमण करे ॥ २२ ॥

बहूदक और वानप्रस्थ संन्यासियों को तीन बार स्नान करना चाहिये, हंस को एकवार और परमहंस के लिये स्नान आवश्यक ही नहीं है ॥ २३ ॥ मौन, योगासन, योग, तितिक्षा, एकान्त सेवन, निस्पृहता और समता ये सात धर्म एक दंड धारण करने वाले के हैं ॥ २४ ॥ परन्तु परमहंस आश्रम वाले के लिये स्नानादि का कुछ विधानं नहीं है। वह हमेशा केवल सभी चित्त वृत्तियों के त्याग में ही लगा रहे ॥ २५ ॥

चमड़ा, मांस, रक्त, स्नायु, मेद, मज्जा और हड्डियां इनके संघात रूप शरीर में रहने वालों में और मल मूत्र पीव आदि में रहने वाले कीड़ों में अन्तर ही क्या है ? ॥ २६ ॥ कहां कफ आदि मलिन पदार्थों के ढेर रूप यह शरीर और कहां उस शरीर के शोभा सौंदर्य आदि गुण ! ॥ २७ ॥ मांस, रक्त, पीव, मल, मूत्र, स्नायु, मज्जा और हड्डी आदि के समूहभूत इस शरीर में यदि कोई मूढ़ पुरुष प्रीति रखे तो वह नरकमें भी प्रीति रखेगा ! ॥२८॥ स्त्रियों के गुह्य देश में और बहते हुए फोड़े में कुछ भी अन्तर नहीं है। यदि है तो केवल मनुष्य के मन का ही अन्तर है, और इसी से मनुष्य धोखा खा जाता है ॥ २९ ॥ द्विधा भिन्न और अपान मल से दुर्गंध देने वाले चमड़े के टुकड़े में जो आनंद मानते हैं, उनको नमस्कार है ! इससे बढ़ कर और साहस ही क्या हो सकता है ! ॥ ३० ॥

विद्वान् यति का न कोई कार्य है न कोई चिह्न है। ममता हीन, भयहीन, शान्त, द्वंद्वरहित, किसी वर्ण से आहार ग्रहण करने वाला ॥ ३१ ॥ मौन धारण करने वाला यति लंगोटी भी धारण करे अथवा न करे और सदा ध्यान में तत्पर रहे। ऐसा ज्ञानी योगी ब्रह्म को प्राप्त होने योग्य है ॥ ३२ ॥ यति कोई बाह्य चिह्न धारण करे तो भी यति का वास्तविक लक्षण तो ज्ञान ही है, क्योंकि जीव के मोक्ष का हेतु ज्ञान ही है और बाहरी चिह्न मोक्ष के लिये अत्यंत निरुपयोगी हैं ॥ ३३ ॥ जो किसी को अच्छा या बुरा, विद्वान् या अविद्वान्, सदाचारी या दुरा-

चारी नहीं समझता वही सच्चा ब्राह्मण है ॥ ३४ ॥ इसलिये धर्मवेत्ता यति बहिर्लक्षण रहित ही अत्यंत श्रेष्ठ ऐसे ब्रह्मचर्य का आचरण करे; परन्तु महान् गहन ऐसे धर्म का आचरण करते हुए भी बाहरी आचार अज्ञानी के समान ही रखे ॥ ३५ ॥ वर्ण और आश्रम से रहित होकर सब मनुष्यों से पृथक् ऐसा कोई विशेष चिह्न न रखे और अन्ध, मूर्ख और गूँगे के समान (जिस के लक्षण पहिले कह चुके हैं) पृथ्वी तल पर परिभ्रमण करे ॥ ३६ ॥ ऐसे शान्त मन वाले यति की देवगण भी चाहना करते हैं।

'लिंगाभावात्तु कैवल्यम्' (लिंग यानी व्यक्तित्व का निशान न होना ही कैवल्य है) यह वेद वचन है ॥ ३७ ॥

फिर से नारदजी ने ब्रह्माजी से कहा, 'हमको संन्यास की विधि बताइये।' पितामह ने 'अच्छा' कह कर अंगीकार किया और वे बोले—

आतुर संन्यास में और क्रम संन्यास में भी संन्यास आश्रम ग्रहण करने वाला प्रथम कृच्छ्र चांद्रायण व्रत से प्रायश्चित्त करे और अष्ट श्राद्ध करे। देव, ऋषि, दिव्य, मनुष्य, भूत, पिता, माता इनका तथा अपना ये आठ श्राद्ध हैं। प्रथम देव श्राद्ध में सत्य वसु नामक देवताओं तथा ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर इनका अर्चन करे; ऋषि श्राद्ध में देवर्षि, क्षत्रिय ऋषि और मनुष्य ऋषि इनका; दिव्य श्राद्ध में वसु, रुद्र और आदित्य इनका; मनुष्य श्राद्ध में

सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनत्सुजात इनका; भूत श्राद्ध में पृथिव्यादि महाभूत चक्षु आदि इन्द्रियां और चार स्थूल भूत इनका; पितृ श्राद्ध में पिता, बाबा और परबाबा इनका; मातृ श्राद्ध में माता दादी और परदादी इनका और आत्म श्राद्ध में अपना पिता का और बाबा का श्राद्ध करे। पिता जीवित हो तो पिता को छोड़कर अपना, बाबा का और परबाबा का श्राद्ध करे। सब श्राद्धों में प्रति श्राद्ध के लिये दो दो ब्राह्मणों की नियुक्ति द्वारा एक अध्वर पक्ष में, अथवा आठ अध्वर पक्ष में, एक दिन में अथवा आठ दिन में अपनी शाखा के मंत्रों से आठों श्राद्ध समाप्त करे। अथवा पितृ याग के विधान से ब्राह्मणों का पूजन करके भुक्ति तक सब कर्म यथा विधान करके पिण्ड दान करे। ब्राह्मणों को ताम्बूल (पान का बीड़ा) और दक्षिणा देकर संतुष्ट करके उनको विदा करे। पश्चात् शेष रहा कर्म समाप्त करने के लिये सात बाल छोड़कर ब्राह्मण सिरके बाल, तथा मूछें मुंडवावे और नाखून कटवावे। सात आठ बाल (की छोटी चुटिया) तथा कांख के और गुह्य स्थान के बाल छोड़कर संपूर्ण चौर करवावे और स्नान संध्या से निवृत्त होकर एक हजार गायत्री का जप करे तथा ब्रह्म यज्ञ करे। फिर अपना अलग अग्नि स्थापन करके अपनी शाखा के अनुसार सामिग्री एकत्रित कर उस शाखा के अनुसार ही जितनी आज्य भाग में कही हो उतनी घी की आहुतियां देकर हवन विधि समाप्त करे। 'आत्मा' आदि मंत्रोंसे तीन बार सत्तु प्राशन करे। पश्चात् आच-

मन करके अग्निका संरक्षण करे। अग्नि के उत्तर को कृष्णाजिन (काला मृगचर्म बिछा कर उस पर बैठ कर रात भर पुराण श्रवण करते हुए जागरण करे। रात्रि के चौथे प्रहर में स्नान करके उसी अग्नि में चरु (भात) बनावे। पुरुष सूक्त से उसी अग्नि में सोलह आहुतियां देकर पश्चात् विरजा होम करे। फिर आचमन करके दक्षिणा सहित वस्त्र, सुवर्ण, पात्र और धेनु का दान करके पश्चात् ब्रह्मा का विसर्जन करे। पश्चात् नीचे लिखे हुए मंत्र से अग्नि को आत्मा में आरोपित करके अग्नि का इस प्रकार ध्यान करे। अग्नि का आरोपण करने का मंत्रः—

"संमासिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः संबृहस्पतिः। संमायमग्निः सिञ्चत्वायुषा च धनेन च बलेन च चायुष्मन्तः करोतुमेति।

याते अग्ने यज्ञिया तनूस्तयेह्यारो ह्यात्मात्मानम्। अच्छा वसूनि कृण्वन्नस्मे नर्या पुरूणि। यज्ञो भूत्वा यज्ञमासीद स्वां योनिं जातवेदो भुव आजायमानः सक्षय एधि।" (मरुत, इन्द्र, बृहस्पति तथा यह अग्नि मेरे ऊपर धन और बलकी वर्षा करे और मुझे दीर्घ आयु प्रदान करे। हे अग्ने, जो तेरी यज्ञ रूपी तनू है उस तनू से यहां इस मेरे आत्मा में तू आरोहण कर, (हमारे लिये) धन की वृद्धि कर और हे अन्न को बढ़ाने वाले, (हमारे खाने के लिये) बहुत अन्न उत्पन्न कर। यज्ञ बनकर तू यज्ञ करा ले और हे अग्ने, तू अपने कारण के प्रति प्राप्त होजा। इस समय जो तू प्रगट हुआ है सो फिर विलीन होजा।

अग्नि का ध्यान करने के पश्चात् उसकी प्रदक्षिणा और नमस्कार करके अग्नि का विसर्जन कर दे। पश्चात् प्रातः संध्या करे, एक सहस्र गायत्री का जप करके सूर्योपस्थान (सूर्य की प्रार्थना) करे फिर नाभि तक पानीमें खड़ा रहकर आठ दिक्पालों को अर्घ्य प्रदान करे, गायत्री का विसर्जन करे और सावित्री को व्याहृतियों में प्रविष्ट करदे।

'मैं (संसार रूपी) वृक्ष का (अन्तर्यामी रूप से) धारण करने वाला हूँ, मेरी कीर्ति पर्वत पृष्ठ के समान स्थिर है। सूर्य में जैसा अत्यन्त पवित्र अमृत रहा हुआ है उसीके समान मैं अत्यंत पवित्र हूँ। प्रकाश युक्त ऐसा (ब्रह्म रूपी) धन मेरे पास है। मैं उत्तम बुद्धि वाला, मृत्यु रहित और अक्षय हूँ।' यह त्रिशंकु ऋषि का वेद का व्याख्यान है।

जो वेदों में प्रधान (रूप से वर्णित) है, विश्व रूप है, अमृत स्वरूप वेदों से जो उत्पन्न हुआ है ऐसा (ॐकार रूप) इन्द्र मुझे बुद्धि (ज्ञान) प्रदान करे; हे देव, मैं अमृतको धारण करने वाला होऊँ, मेरा शरीर बलवान् हो, मेरी जीभ मधुर भाषण करने वाली हो और मैं कान से बहुत अच्छी तरह से सुनूं, तू ब्रह्म का कोश यानी खजाना है परन्तु (लौकिक) बुद्धि से तू पाया नहीं जाता तू मेरे जाने हुए (ज्ञान) की रक्षा कर।

"स्त्री की वासना, धनकी वासना और स्वर्ग आदि लोकों की वासनाका मैंने त्याग किया है।" "ॐ भूः संन्यस्तं मया, ॐ भुवः

संन्यस्तं मया, ॐ सुवः संन्यस्तं मया ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया" (मैंने भू लोक का संन्यास किया इ० इ०) इस मंत्र को मंद स्वर से, मध्यम स्वर से और फिर उच्च स्वर से मन से और वाणीसे कहकर, "अभयं सर्व भूतेभ्यः मत्तः सर्वं प्रवर्तते स्वाहा।" (सब भूतोंको मैं अभय देता हूँ; सब कुछ मुझसे ही उत्पन्न होता है) इस मंत्रसे जल प्राशन करे। पूर्व दिशाकी ओर पूर्ण अंजली देकर 'ॐ स्वाहा' इस मंत्रसे शिखा उखाड़ डाले। फिर 'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बल मस्तुतेजः॥ यज्ञोपवीतं वहिर्न निवसेत्त्वमंतः प्रविश्य मध्ये ह्यजस्रं परमं पवित्रं यशोबलं ज्ञान वैराग्यं मेधां प्रयच्छ॥' (यह यज्ञोपवीत अत्यंत पावन करने वाला है और यह पहिले प्रजापति के साथ ही उत्पन्न हुआ है। हे देव, मुझे सुदीर्घ आयुष्य प्रदान कर। यह शुभ्र यज्ञोपवीत मुझे बल और कांति देने वाला हो॥ यह यज्ञोपवीत अब बाहर न रहे, भीतर प्रवेश करके (हे यज्ञोपवीत अब) तुम मेरे अन्तर में परम पवित्र और विशाल ऐसा सुयश, बल, ज्ञान, वैराग्य और बुद्धि प्रदान करो!) इस मंत्र से यज्ञोपवीत तोड़कर अंजुलि में जल लेकर "ॐ भूः समुद्रं गच्छ स्वाहा" ऐसा कहकर जल में छोड़ दे। "ॐ भूः संन्यस्तं मया, ॐ भुवः संन्यस्तं मया ॐ सुवः संन्यस्तं मया" इस मन्त्र को तीन वार उच्चारण करके जल को अभिमन्त्रित कर प्राशन करे। फिर आचमन करके 'ॐ भूः स्वाहा' ऐसा कहकर जलमें वस्त्र तथा कटिसूत्र (करधनी) भी त्याग दे और 'मैं अब

सब कर्मों से निवृत्त हुआ हूँ ऐसा समझकर नग्न रूप से आत्मा का अनुसंधान करते हुए उत्तर दिशा की ओर चला जाय। यदि संन्यास लेने वाला विद्वान् हो तो गुरु से प्रणव महावाक्य का उपदेश लेकर 'मुझसे अन्य कुछ नहीं है' ऐसा समझकर स्वेच्छा पूर्वक विचरण करे और फल, पत्ते और जल का आहार कर पहाड़ जंगल तथा मंदिरोंमें घूमे। संन्यास लेने के पश्चात् दिगंबर रहे और हमेशा अपने आनन्द के अनुभव से जिसका अन्तर परिपूर्ण है ऐसा सर्वत्र विचरण करे। अन्य कर्मों से दूर रहकर फल, रस, छिलके, पत्ते, मूल और उदक इनका आहार करते हुए मोक्ष की इच्छा रखने वाला संन्यासी प्राणायाम में परायण रहे और गिरि कन्दराओंमें निवास करते हुए और तारक मन्त्र प्रणव का स्मरण करते हुए देह विसर्जन करे।

विविदिषा संन्यासी (ज्ञान प्राप्ति के हेतु संन्यास धारण करे वह) उपरोक्त रीति से नग्न होकर सौ क़दम चले। फिर आचार्य तथा ब्राह्मण उससे कहे कि "हे भाग्यवान् पुरुष ठहरो; दण्ड, कमण्डलु और वस्त्र धारण करो और प्रणव महावाक्य ग्रहण करने के निमित्त आचार्य के पास जाओ।" फिर आचार्य उसे दण्ड, कटिसूत्र, (करधनी) लंगोटी, एक ओढ़ने का वस्त्र और कमण्डलु दे दे। "सखामागोपायोजः सखायोऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारय" (हे सखे, मेरी रक्षा कर, तू इन्द्र का ऐश्वर्य (अतुल सामर्थ्य) है तू वृत्रासुर को मारने वाला वज्र है तू मेरा रक्षण कर और मुझे पापों से दूर रख) इस

मन्त्र से दण्ड ग्रहण करे। "जगज्जीवन जीवनाधार भूतं मातेव मा मन्त्रयस्व सर्वदा सर्वसौम्य" (हे जगत को जीवन देने वाले और उसके जीवन के आधार भूत, हे सर्व कल्याण करने वाले मुझे माता के समान सर्वदा उपदेश देते रहना!) इस मन्त्र को कहकर और ॐ का उच्चारण करके कमण्डलु को ग्रहण करे, ॐ कहकर लँगोटी बांधने के लिये कटिसूत्र (करधनी) धारण करे, ॐ कहकर गुह्य भाग ढकने के लिये लंगोटी धारण करे और ॐ कहकर शीतोष्ण से रक्षा करने के लिये केवल एक वस्त्र धारण करे। कटिसूत्र कौपीन तथा वस्त्र धारण करने के पूर्व तीनों वार आचमन करे।

इस प्रकार संन्यास दीक्षा को प्राप्त कर "मैं कृतार्थ हुआ हूँ" ऐसा मानकर यति अपने आश्रम विहित कर्म सर्वदा करता रहे यह उपनिषत् है॥ इति चतुर्थ उपदेश॥

नारदजी ने ब्रह्माजी से प्रश्न किया, 'भगवन् आपने पहिले संन्यास को सब कर्मों के निवृत्त रूप बताया था और फिर आप बताते हैं कि संन्यासी अपने आश्रम के अनुसार कर्माचरण करता रहे, (इससे आपका क्या अभिप्राय है?)

पितामह बोले, 'देहधारी जीवों की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय ऐसी चार अवस्थाएं होती हैं, उनकी अवस्था के अनुसार वे कर्म, ज्ञान या वैराग्य की प्रवृत्ति वाले होते हैं और वैसे ही उनके आचार होते हैं।'

नारदजी बोले, 'ऐसा है तो संन्यास के कितने प्रकार हैं, और उन भिन्न २ प्रकार के संन्यासियों के आचार में क्या २ अन्तर होता है वह सव कृपा करके सुनाइये।'

इसके उत्तर में ब्रह्माजी ने नारदजी से संन्यास के भेद इस प्रकार कहे—

संन्यास वास्तव में तो एक है, परन्तु अज्ञान, दुर्वलता और विहीत कर्मों के त्याग के कारण वह तीन प्रकार का है और चार प्रकार का भी होता है; वैराग्य संन्यास, ज्ञान संन्यास, ज्ञान वैराग्य संन्यास और कर्म संन्यास। जिसका पूर्व जीवन अधर्ममय हो परन्तु पश्चात् शुभ कर्मों के उदय से जिसको वैराग्य प्राप्त होजाय उनका संन्यास वैराग्य संन्यास कहा जाता है। शास्त्रों द्वारा स्वर्गनरक के भोगों का अनुभव सुनकर संसार से जो उपराम को प्राप्त होता है और क्रोध, ईर्षा, असूया, अहंकार, अभिमान आदि रूप सव संसार से निवृत्त होकर दारेषणा (स्त्री की वासना), धनेषणा, लोकेषणा (स्वर्गादि की वासाना) रूप देह वासना, शास्त्र वासना और लोकवासना का त्याग कर, प्रकृति का वना हुआ जितना जो कुछ है, सव वमन (कै) किये हुए भोजन के समान त्याज्य है, ऐसा समझ कर साधन चतुष्टय संपन्न होकर जो संन्यास ग्रहण करता है, उसको ज्ञान संन्यासी कहते हैं। क्रम से सव का अभ्यास और अनुभव करते हुए ज्ञान वैराग्य और स्वरूपानुसन्धान से जिसका केवल देह ही शेष रहा हो अर्थात्

जिसकी कहीं भी आसक्ति न रही हो, जो संन्यास लेकर नग्न रहता है वह ज्ञान वैराग्य संन्यासी है। ब्रह्मचर्य को समाप्त करके गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम के समाप्ति के पश्चात् वैराग्य न होते हुए ही आश्रम क्रम से जो संन्यास धारण करता है वह कर्म संन्यासी है। वैराग्य संन्यासी ब्रह्मचर्य से संन्यास लेता है और संन्यास अवस्था में नग्न ही रहता है।

विद्वत् सँन्यासी, ज्ञान सँन्यासी, विविदिषा सँन्यासी और कर्म सँन्यासी (ऐसे भी सँन्यास के चार विभाग हैं)। कर्म संन्यास दो प्रकार का होता है, निमित्त सँन्यास और अनिमित्त सँन्यास। आतुर सँन्यास को निमित्त संन्यास और क्रम सँन्यास को अनिमित्त सँन्यास कहते हैं। आतुर सँन्यास में सब कर्मों का लोप होता है और प्राण छूटनें के समय वह लिया जाता है। इसको निमित्त सँन्यास कहते हैं। मन को दृढ़ करके जितना जो कुछ उत्पन्न हुआ है, वह सब अवश्य नष्ट होगा, इसलिये देह आदिक सर्व हेय (त्यागने योग्य) है, सूर्य लोक में रहने वाला हंस (आत्मा) अँतरिक्ष में रहने वाले वसु, वेदी के पास बैठने वाला होता, तथा कठिन मार्ग चलने वाला पथिक, वैसे ही ब्रह्मलोक इन्द्र लोक में विष्णुलोक और अंतरिक्ष में रहने वाले, तथा जल, पृथ्वी, तेज, नदियां पहाड़ आदि में उत्पन्न हुए जीव यह सब नश्वर हैं केवल सत्य स्वरूप और महान ब्रह्म ही नित्य है, ऐसा निश्चय करके पश्चात् क्रम पूर्वक जो संन्यास ग्रहण किया जाता है वह अनिमित्त संन्यास है।

संन्यास और छः प्रकार का होता हैः—कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस. तुरीयातीत और अवधूत।

कुटीचक संन्यासी शिखा, यज्ञोपवीत, दण्ड और कमंडलु रखता है। लंगोटी पहिनता है और ओढ़ने के लिये कँथा (गुदड़ी) भी रखता है। वह माता पिता और गुरु इनकी सेवा करता है। खप्पर, कुदाली और छींका रखता है और मन्त्र जपता है एकही स्थान पर भोजन करता है, सफेद ऊर्ध्व तिलक धारण करता है और तीन दण्ड रखता है।

बहूदक संन्यासी शिखा, यज्ञोपवीत, दण्ड, कमण्डलु, कौपीन और कंथा रखते हैं, त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं और सब बातों में कटीचक के समान होते हैं। वे मधुकरी मांग कर केवल आठ ग्रास ही भोजन करते हैं।

हँस जटा रखते हैं। त्रिपुण्ड्र और ऊर्ध्व पुण्ड्र दोनों प्रकार के तिलक लगाते हैं। पूर्व संकल्प न करते हुए मधुकरी मांग कर खाते हैं और कमर में एक कौपीन का टुकड़ा पहिनते हैं।

परमहँस संन्यासी शिखासूत्र रहित होता है, वह प्रतिदिन पांच घरों में से भिक्षा मांग कर हाथ ही में खाता है; एक लंगोटी और ऊपर लपेटने के लिये एक शाटी (वस्त्र) तथा एक बांस का दण्ड धारण करता है। वह या तो एक शाटी रखता है नहीं तो शरीर में भस्म लगा लेता है, और कुछ भी पास नहीं रखता।

तुरीयातीत संन्यासी गाय के समान मुख ही से फल आदि खाता है, यदि वह अन्न खाय तो तीन ही घर मांग कर खाय, कुछ भी पास नहीं रखता वह दिगम्बर रहता है। उसके शरीर का निर्वाह मृत देहवत् होता है यानी वह निर्वाह के लिये चेष्टा नहीं करता।

अवधूत के लिये कोई नियम नहीं है। वह दुराचारी और पतित इनको छोड़ कर किसी भी वर्ण से अजगर वृत्ति से रहता है यानी बिना प्रयत्न किये हुए जो कुछ प्राप्त हो वही खा लेता है और स्वरूपानुसंधान परायण होता है।

आतुर संन्यासी यदि जीवित रहे तो उसको क्रम संन्यास का आचरण करना चाहिये। कुटीचक, बहूदक और हंस, इनकी संन्यास विधि ब्रह्मचर्य आदि संन्यास लेने वाले के समान ही होती है। (ये तीन वास्तविक संन्यास नहीं है, ये संन्यास की तैयारी की अवस्थाएँ हैं; इसीसे इनमें शिखासूत्र का त्याग नहीं होता।) परमहंस तुरीयातीत और अवधूत ये करधनी, लंगोटी, वस्त्र, कमंडलु, दण्ड कुछ भी नहीं रखते। उनको सब वर्णों से भिक्षा मांग कर खाना चाहिये और नग्न रहना चाहिये।

संन्यास लेने के पश्चात् भी जहां तक तृप्ति न हो वहां तक शास्त्राध्ययन करना चाहिये तृप्त होते ही कटिसूत्र, कौपीन, वस्त्र,

कमण्डलु आदि जल में बहा दे, और नग्न होकर विचरे कन्था भी न रखे। न कुछ पढ़े, न सुने; केवल प्रणव का उच्चारण किया करे। तर्क न पढ़े, न व्याकरण पढ़े। अधिक बोले नहीं; क्योंकि उसके लिये अधिक बोलना व्यर्थ वाणी को कष्ट देना ही है। वाणी से अथवा हाथ आदि से इसारे करके अथवा और किसी प्रकार के विशेषण से भी न बोले। शूद्र, स्त्री, पतित अथवा रजस्वला स्त्री से यति भाषण न करे। वैसे ही यति देवपूजा भी न करे, उत्सव न देखे और यात्रा भी न करे।

यतियों के लिये ये भी नियम हैः—कुटीचक एक स्थान ही से पूरी भिक्षा करले, बहूदक माधुकरी करके पर्याप्त भोजन करे। हंस आठ घर से आठ ग्रास मांग लावे, परमहंस पांच ही घर भिक्षा मांगे और पात्र न रखे, हाथ ही में भिक्षा करे। तुरीयातीत गाय के समान मुख ही से फलाहार करे और अवधूत अजगर वृत्ति रखे यानी विना प्रयत्न जो कुछ आ पहुंचे उसीका आहार करे। किसी भी ग्राम में जहां सब वर्ण के लोग रहते हों यति एक दिन से अधिक न रहे, न वह किसी को नमस्कार करे। तुरीयातीत और अवधूत से कोई बड़ा नहीं है; परन्तु जो स्वरूप ज्ञान से रहित है वह बड़ा होते हुए भी छोटा ही है। यति हाथों से नदी तैर कर न जाय न कभी पेड़ पर चढ़े, न यान (सवारी) में बैठे। यति क्रय विक्रय न करे वैसे बदला भी न करे। वह दम्भ न करे, न कभी असत्य भाषण करे। यति के लिये कर्तव्य कुछ भी नहीं है और यदि वह कुछ करेगा तो अवश्य

उसका पतन होगा; इसलिये संन्यासियों को केवल मनन आदि का ही अधिकार है।

आतुर और कुटीचक को भू लोक की प्राप्ति होती है; बहूदक को स्वर्गलोक की, हंस को तपोलोक की, परमहंस को सत्य-लोक की और तुरीयातीत और अवधूत को भ्रमर जैसा एक फूल से दूसरे फूल पर जाता है वा कीट एक पत्ते से अन्य पत्ते पर जाता है वैसे, (इस देह के छूटते ही) स्वरूपानुसंधान से आत्मा में कैवल्य की प्राप्ति होती है।

"जिस २ भाव का स्मरण करते हुए जीव देह का त्याग करता है, उस २ भाव ही को वह प्राप्त होता है।" श्रुतिका कथन अन्यथा नहीं हो सकता।

इसलिये, यह जान कर यति स्वरूपानुसंधान को छोड़ कर और कुछ भी न करे, क्योंकि और कोई भाव होने से उस लोक की प्राप्ति होगी, और ज्ञान वैराग्य संपन्न हो, उसकी इसी देह में मुक्ति होती है। इसलिये और किसी के भी आचार में यति को आसक्ति न होना, यही उसका आचार है।

जिसका जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में एक ही शरीर है वही आत्मा जाग्रत काल में विश्व, स्वप्न काल में तैजस् और सुषुप्ति काल में प्राज्ञ बनता है। अवस्था भेद से अवस्था के अधिपति का भेद होता है और कार्य भेद ही से कारण भेद होता है।

उन अवस्थाओं में चतुर्दश करणों की बाह्य वृत्तियां होती हैं उनका उपादान कारण उनकी आंतर वृत्तियां है। वृत्तियां चार प्रकार की होती हैं—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। उन २ वृत्तियों के भेद से जीवका पृथक् देशी व्यवहार होता है। नेत्र में जाग्रत, कण्ठ में स्वप्न, हृदय में सुषुप्ति और मस्तक में तुरीय अवस्था में जीव रहता है। तुरीय को अक्षर मानकर, जाग्रत अवस्था में सोये हुए के समान जो कुछ देखे सुने, वह सब न देखे न जाने के समान करके जो वर्तता है, वह स्वप्नावस्था में भी वैसा ही अनुभव करता है। इसीको जीवन्मुक्त कहते हैं। इसीकी मुक्ति होती है; यही सब श्रुतियों का कथन है। भिक्षु को इहलोक परलोक की इच्छा नहीं होती और यदि अपेक्षा हो तो वह वैसा ही आचरण करेगा। (परन्तु) स्वरूपानुसंधान छोड़कर अन्य शास्त्रों का अध्ययन करना वैसा ही व्यर्थ है जैसा ऊँट के लिये रोरी का बोझा ढोना। इसलिये यति न योगशास्त्र की प्रवृत्तियां करे, न सांख्य शास्त्र का अभ्यास करे और न मंत्र तंत्रकी साधना करे। यदि यति इतर शास्त्रों की प्रवृत्ति करे तो वह उसको शोभा नहीं देती। उसकी वह प्रवृत्ति मृत देह के अलंकार के समान ही है। वैसे तो यतिको कर्म का अल्प भी अधिकार है ही नहीं और यदि वह ज्ञान से भी हीन है तो ऐसा यति चमार के समान है। यति प्रणव का मंत्र जप छोड़कर जो कुछ कर्म करता है वह अंडी के तेल के झाग के समान नश्वर फल को जरूर भोगता है। इसलिये यति ऐसे सब कर्म तथा उनमें आसक्त ऐसे मन रूपी दंडको

त्याग दे और हाथ ही जिसका पात्र है, ऐसा दिगंबर बन कर भिक्षु विचरण करे। वह बाल, उन्मत्त वा पिशाच के समान रहे। मरने की वा जीने की इच्छा न करे; आज्ञा दिये हुए नौकर के समान मृत्यु की यति प्रतीक्षा करता रहे।

तितिक्षा, ज्ञान, वैराग्य और शम आदि गुण जिस यति में न हों, केवल जो भिक्षा मांगकर खाना जानता हो, वह यति समस्त संन्यास की संस्था को हानि पहुंचाता है ॥ १ ॥ दण्ड धारण करने से, सिर मुंडवाने से, वेष धारण करने से या दम्भ करने से मुक्ति नहीं मिलती। इसलिये, जिसने ज्ञानका दंड धारण किया हो वही एक यति है ऐसा जानो। परन्तु ज्ञान हीन होते हुए किसी सर्वभक्षी ने काठ का दण्ड धारण कर लिया हो तो ऐसा पुरुष घोर रौरव नरक को प्राप्त होगा ॥ २ ॥ प्रतिष्ठा को महर्षि लोग सूकर की विष्ठा के समान बताते हैं; इसलिये प्रतिष्ठा का मोह छोड़कर क्षुद्र कीट के समान यति विचरण करे ॥ ३ ॥ बिना मांगे जैसा मिल जाय वही उसका परेच्छा प्राप्त अन्न वस्त्र हो अथवा वह बिना वस्त्र ही रहे। स्नान भी अपनी इच्छा से यति न करे ॥ ४ ॥ जो स्वप्न में भी आत्मा में योग वाला रहता है और जाग्रतावस्था में तो विशेषता से युक्त रहता है, शास्त्र इस प्रकार रहने वालेको श्रेष्ठ और ब्रह्मवादियों में वरिष्ठ बताते हैं ॥५॥ कुछ न मिले तो उसके लिये विषाद नहीं, मिल जाय तो हर्ष नहीं; इस प्रकार इन्द्रियों के विषयों से असंग होकर यति केवल प्राण धारण करे ॥ ६ ॥ जिन लाभों की चाहना उठे उनका सब प्रकार

से यति तिरस्कार करे; क्योंकि लाभ की चाहना से यति मुक्त हुआ भी फिर बंधन को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ प्राण यात्रा निमित्त तीन वर्णों के यहां उनका चूल्हा बुझ जाय और वे लोग भोजन करलें उसके पश्चात् योग्य कालमें भिक्षु भिक्षा करनेके लिये उनके घर जाय ॥ ८ ॥ यदि योगी पात्र न रखता हो, हाथ ही में भिक्षा करता हो, तो उसको एक साथ ही खाना आवश्यक नहीं है; वह बैठकर वा चलते हुए भी खा सकता है; इतना ही है कि वह बीच में आचमन न करे ॥ ९ ॥ शुद्ध अन्तःकरण वाले महा-पुरुष समुद्र के समान मर्यादा को धारण करते हैं, महापुरुष सूर्य के समान कभी भी नियम का उल्लंघन नहीं करते ॥ १० ॥ जब गाय के समान मुख ही से मुनि आहार ग्रहण करे, तब उसको चाहिये कि वह सबमें सम बुद्धि रखे, (तब ही) वह अमृत (ब्रह्म) होने के योग्य होजाता है ॥११॥ मुनि निंद्यजनों के घर (भिक्षार्थ) न जाय, केवल अनिंद्य पुरुषों ही के यहां (भिक्षाके लिये) जाय और यदि द्वार बन्द हो तो वहां भी न जाय; खुला द्वार हो वहीं जाय ॥ १२ ॥ शून्य गृह में अथवा पेड़ के नीचे रहने वाला, शरीर में धूल लगी है और जिसको प्रिय वा अप्रिय कुछ भी न हो ऐसा मुनि ॥ १३ ॥ जहां पर सूर्य अस्त होजाय वहीं सोजाय। वह न अग्नि रखे न घर में रहे; मन और इन्द्रियों को वश में किये हुए (वह) जो कुछ प्राप्त हो उसी पर अपना निर्वाह करले ॥ १४ ॥ घर छोड़कर वन में रहने वाला, इन्द्रियों को जीतने वाला और सदा ज्ञान यज्ञ (स्वरूपानुसंधान) में रत रहने

वाला जो काल की अपेक्षा करते हुए भ्रमण करता है वह ब्रह्म होने के योग्य है ॥ १५ ॥ सब भूतों को अभय दान देकर जो मुनि विचरण करता है, उसको किसी प्राणी से कभी भय नहीं होता ॥ १६ ॥ वह मान नहीं चाहता और अहंकार भी नहीं करता, द्वन्द्व रहित और निःसंशय बन कर रहता है; न किसी पर क्रोध करता है, न किसी का द्वेष और न कभी असत्य भाषण ही करता है ॥ १७ ॥ पुण्य स्थानों में गमन करने वाला और किसी प्राणी की हिंसा न करने वाला, ऐसा मुनि समय होने पर भिक्षा करे तो उससे उसका परम कल्याण होता है ॥ १८ ॥ मुनि वानप्रस्थ या गृहस्थ आश्रम वालों से सम्बन्ध न रखे। मुनि के आचरण का किसी को पता भी न चलना चाहिये और न इसमें भी उसको हर्ष मानना चाहिये ॥ १९ ॥ क्षुद्र कीट के समान (अज्ञात रूप से) यति दिन में पृथ्वी तल पर घूमा करे। जिसमें आशीर्वाद देना पड़े या जिसमें किसी की हिंसा हो ॥ २० ॥ अथवा जिसमें बहुत लोगों का कल्याण हो ऐसे कर्म यति न करे न करवावे। यति असत् शास्त्रों में अनुराग भी न रखे, न किसी से वेतन ग्रहण करे। बहुत बोले भी नहीं, तर्क को छोड़े, किसी पक्ष को ग्रहण न करे ॥ २१ ॥ शिष्य न करे, न बहुत ग्रन्थ पढ़े, न व्याख्यान करे, न कोई बड़ा कार्य करने का उद्यम करे ॥ २२ ॥ यति अपना कोई विशेष चिह्न धारण न करे, न किसी को अपना उद्देश बतावे। विद्वान् मुनि उन्मत्त के समान, बालक के समान, गुंगे के समान अपने को

समझे और वैसे ही दूसरों को भी देखे ॥ २३ ॥ न कुछ करे, न कुछ बोले, न किसी का भला बुरा देखे; अपने ही में आनन्द अनुभव करते हुए, इसी वृत्ति से जड़ के समान मुनि विचरण करे ॥ २४ ॥ इन्द्रियों को वश में कर और निःसंग होकर इस पृथ्वी तल पर यति अकेला ही घूमे। आत्मा ही में क्रीडा करे, उसी में प्रेम करे और इस प्रकार आत्मलाभ करके सबमें उसीको देखे ॥ २५ ॥ बुद्धिमान होते हुए भी वह बालक के समान रहे, चतुर होते हुए भी जड़ के समान वर्ताव करे, विद्वान् होते हुए भी पागल के समान वातें करे और वेदज्ञ होते हुए भी वह भिक्षा मांगकर ही खाय ॥ २६ ॥ दुष्ट लोग दोष लगावें, अपमान भी करें, ताने लगावें या ईर्षा करें अथवा मार मारें पकड़ लें या खाने पीने का कष्ट दें ॥ २७ ॥ अथवा शरीर पर मल मूत्र फेंकें; अज्ञ लोग इस प्रकार के अनेक कष्ट दें तो भी अपना कल्याण चाहने वाला यति ऐसे कष्ट में भी दृढ़ बुद्धि रखकर अपना उद्धार करे ॥ २८ ॥ योग की वृद्धि में सन्मान हानिरूप है, इसलिये लोगों से जो योगी अपमान पाता है, उसका योग त्वरित सिद्ध होता है ॥ २९ ॥ योगी अपना आचरण इस प्रकार रखे कि वह सज्जनों से प्रतिपादित धर्म के विरुद्ध न हो और उसका आचरण ऐसा भी हो कि लोग उसका अपमान भी करें और उसके संग रहना पसन्द न करें ॥ ३० ॥ सर्व संग परित्याग करके योगी जरायुज, अण्डज आदि क्षुद्र जीवों का भी मन, वाणी वा कर्म से द्रोह न करे ॥ ३१ ॥ जो काम, क्रोध, घमण्ड, लोभ,

मोह आदि दोष समूह को संपूर्ण रूप से त्याग कर परिव्राजक निर्भय रूप से रहे ॥ ३२ ॥ भिक्षा का भोजन, मौन, तप, ध्यान, यथार्थ ज्ञान और वैराग्य इनका आचरण करना यही विशेषतया भिक्षुओं का धर्म है ॥ ३३ ॥ गेरुए वस्त्र धारण करके योगी सदा ध्यानयोग में रत रह कर ग्राम के सीमा प्रदेश में, पेड़ के नीचे अथवा देव मन्दिर में जा रहे ॥ ३४ ॥ नित्य भिक्षा ही से निर्वाह करे। कभी एक ही के यहां भोजन न करे और इस प्रकार चित्त शुद्धि होने तक विद्वान् यति हमेशा विचरण किया करे ॥ ३५ ॥ शुद्ध मन वाला यति विचरता हुआ कहीं भी जाय और बाहर और भीतर सब स्थान पर वह जनार्दन ही देखता रहे ॥ ३६ ॥ वायु के समान शुद्ध पाप रहित रह कर मुनि सर्वत्र विचरण करे। वह क्षमा-शील तथा सुख दुःख में सम रहे और जो हाथमें आवे (अर्थात् पास आजाय) वही खाले ॥ ३७ ॥ वैर को छोड़कर ब्राह्मण, गाय, कुत्ता और हिरन आदि में समान रूप से परमात्मा परमेश्वर ऐसे विष्णु की ही मन से भावना किया करे ॥ ३८ ॥ और 'चित्स्वरूप, आनन्दमय ब्रह्म मैं ही हूँ' ऐसा स्मरण किया करे।

इस प्रकार जानता हुआ, मनरूपी दण्ड को धारण करता हुआ, सब आशाओं से निवृत्त होकर दिगम्बर होकर और मन, वाणी, शरीर और कर्म से सब संसार का त्याग कर, प्रपंच से मुख मोड़कर वह स्वरूप का अनुसंधान करता है और कीट जैसे भ्रमर का ध्यान करते करते भ्रमर बन जाता है; वैसे ही वह

स्वरूप का अनुसंधान करते करते स्वरूप को प्राप्त हो जाता है यानी मुक्त होजाता है ॥ इति पंचम उपदेश ॥

नारद ब्रह्माजी से बोले, 'भगवन्, आपने कहा कि भ्रमर कीट न्याय से अभ्यास द्वारा यति मुक्त होता है, तो वह अभ्यास कैसे होता है?' पितामह बोले, 'सत्य भाषण करने वाला (यति) ज्ञान और वैराग्य से एक विशिष्ट देह वाला होजाय। ज्ञान उसका शरीर हो, वैराग्य जीवन हो शम दम उसके नेत्र हों; मन मुख हो और बुद्धि उसकी कला (तेज) हो, पच्चीस तत्त्व उस शरीर के अवयव हों, पंच महा भूत उसकी अवस्था हों; कर्म, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य ये उसके हाथ पैर हों, जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय ये उसकी अवस्थाएं तथा चौदह करण ये इस शरीर के कादव और स्तंभ (यानी मांस और हड्डियां) हों। इस प्रकार अपने देह को समझकर कीचड़ में फंसी हुई नाव को जिस प्रकार कुशल कर्णधार वश में लाता है या हाथी को महावत वश में करता है, इसी प्रकार इस शरीर को भी अपने वश करके, आत्मा को छोड़ कर जो कुछ है सब कार्य रूप है, और नश्वर है, ऐसा जानकर विरक्त पुरुष सदा 'मैं ब्रह्म हूँ मेरे सिवाय और कुछ भी जानने योग्य नहीं है' इसी प्रकार (मान कर) व्यवहार करे। इस प्रकार जो पुरुष जीवन्मुक्त होकर रहता है वह कृतकृत्य हो जाता है। 'मैं ब्रह्म नहीं हूं' ऐसा समझ कर कभी भी वर्ताव न करे। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में एकसा 'मैं ब्रह्म हूँ' यही निश्चय रखे। (इस प्रकार) तुरीयावस्था को प्राप्त

कर फिर तुरीयातीत अवस्था प्राप्त करे। जाग्रत दिन, रात्रि स्वप्न और सुषुप्ति मध्यरात्र है इस प्रकार एक अवस्था ही में चार अवस्थाएं हैं और चौदह करणों का व्यापार चक्षु आदि एक एक करण के अधीन है। चक्षु का देखना, कान का सुनना, जिह्वा से रस चाखना, नाक से सूंघना, वाणी से बोलना, हाथ से ग्रहण करना, पैर से चलना, पायु से मल त्याग, उपस्थ से आनन्द ग्रहण और त्वचा से स्पर्श, इनके अधीन इनके विषय ग्रहण करने की बुद्धि हैं। इस बुद्धि से विषय जाने जाते हैं, चित्त से विचार बनता है और अहंकार से (मैं जानता हूँ इस प्रकार) अहंकार धारण करता है। इनको उत्पन्न करके देहाभिमान से जीव बनता है।

घर के अभिमान से जैसा गृहस्थ घर में रहता है वैसा ही जीव इस शरीर में रहता है। वह जब (हृदय) कमल के पूर्व दल में रहता है तब वह पुण्य कर्म करता है, अग्नेय कोण के दल में निद्रा और आलस होता है, दक्षिण दल में वह होता है तब उसमें क्रूरता आ जाती है, नैर्ऋत्य दल में पाप बुद्धि, पश्चिम में क्रीड़ा का प्रेम, वायव्य में गमन करने की बुद्धि होती है, उत्तर में शान्ति और ईशान में ज्ञान होता है; कर्णिका (कमल के बीच का भाग जहां बीज होते हैं) में वैराग्य और केसर में आत्म चिन्तवन होता है। इस चक्र को जानकर जीवित अवस्था में पहिली जाग्रत, दूसरी स्वप्न, तीसरी सुषुप्ति, चौथी तुरीय और चारों से रहित ऐसी अवस्था को तुरीयातीत जाने।

एक ही देव इन चारों अवस्थाओं के साक्षी भूत, विश्व तैजस् प्राज्ञ और तटस्थ, इन भेदों के रूप से भासता है; वही निर्गुण और सबके साक्षी रूप ब्रह्म में हूँ इस प्रकार यति निश्चय करे।

अथवा यों समझे:—जाग्रत अवस्था में जाग्रत आदि चारों अवस्थाएं होती हैं, स्वप्न में स्वप्न आदि चार अवस्थाएं, सुषुप्ति में सुषुप्ति आदि चार अवस्थाएं और तुरीय में तुरीयादि चार अवस्थाएं होती हैं परंतु निर्गुण ऐसे तुरीयातीत में कोई अवस्था नहीं है। स्थूल सूक्ष्म और कारण देह के अभिमानी विश्व, तैजस् और प्राज्ञ (तथा समष्टि रूप ईश्वर) इनके सब अवस्थाओं का साक्षी तो एक ही है। तटस्थ (अलग रहा हुआ) ही द्रष्टा होता है, अतटस्थ द्रष्टा नहीं होता; क्योंकि जो अलग ही नहीं है वह देखे कैसे ? (इसलिये) द्रष्टा ही कर्तृत्व; भोक्तृत्व, अहंकार आदि से युक्त जीव है, जीव को छोड़ कर जो द्रष्टा है वह कर्तृत्वादि से युक्त नहीं होता। यदि कहो कि जीव भी कहां कर्तृत्वादि से युक्त है ? तो वह ठीक नहीं है; क्योंकि जीव के अभिमान ही से शरीर का अभिमान धारण होता है और शरीराभिमान ही से जीवत्व सिद्ध होता है। जीवत्व घटाकाश और महाकाश के समान उपाधि से सिद्ध होता है। उपाधि के कारण ही 'हंसः सोऽहं' इस मंत्र से श्वास प्रश्वास लेकर उसके द्वारा जीव आत्मा का अनुसंधान करता है। इस प्रकार जानकर शरीराभिमान को छोड़ना चाहिये, शरीर में अभिमान जरा भी न रखना चाहिये। जिसको शरीर का अभिमान न हो उसीको ब्रह्म कहते हैं।

सर्व संग परित्याग करे, क्रोध को जीते, अल्प आहार करते हुए इन्द्रियों को वश में रखे और सब इन्द्रिय रूपी द्वारों को रोक कर मन ध्यान में लगावे ॥ १ ॥ शून्य स्थान में, गुहा में अथवा वन में योगी नित्य प्रति नियम से यथाविधि ध्यान करना प्रारंभ करे ॥ २ ॥ योगी कभी भी किसी का अतिथि न बने, न श्राद्ध या यज्ञ में जाय। देव स्थान में यात्रा, उत्सवों में या ऐसा किसी स्थान पर जहां बहुत मनुष्य एकत्र हों सिद्धि चाहने वाला योगी कभी भी न जाय॥ ३ ॥ जिस करके लोग अपमान और तिरस्कार करें, ऐसा ही योगी बर्ताव करे। परन्तु, वह बर्ताव सदाचरण से विरुद्ध न होना चाहिये॥ ४ ॥ वाग्दण्ड, कर्म दण्ड और मनोदंड यह तीन दण्ड जो नियम से धारण करता है वही महान् यति त्रिदंडी कहलाने योग्य है॥ ५ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणों के यहां से, उनका चूल्हा बुझ जाने पर जो यति मधुकरी मांग लाता है वही यति सब यतियों में श्रेष्ठ है॥ ६ ॥ यति धर्म में प्रेम न रखते हुए जो मनुष्य दण्ड धारण करता है, जो भिक्षा मांगता है परन्तु जिसमें वैराग्य नहीं है वह यति नीचता को प्राप्त होता है॥ ७ ॥ जिस गृह में अपनी इच्छा के अनुसार भिक्षा मिलती हो, वहां जो यति फिर कभी नहीं जाता, सच्चा वही यति है, अन्य नहीं॥ ८ ॥ जो शरीर, इन्द्रिय आदि से रहित, सबका साक्षी, परमार्थ ज्ञान स्वरूप, आनन्दमय और स्वयंप्रभ॥ ९ ॥ ऐसे परम तत्त्व को जो जानता है वही वर्णाश्रम के परे अर्थात् संन्यासी होता है वर्णाश्रम आदि इस देह में माया से परिकल्पित

है ॥ १० ॥ आत्म बोध रूप मुझमें वे कभी भी नहीं है, इस प्रकार जो वेदान्त के ज्ञान द्वारा जानता है, वह वर्णाश्रम के परे यानी संन्यासी होता है ॥ ११ ॥ आत्म दर्शन से जिसका वर्णाश्रम आचार छुट गया है वह सब वर्णों के परे रहे हुए आत्मतत्त्व में टिका हुआ है ॥ १२ ॥ जो पुरुष वर्णाश्रम के परे रहे हुए अपने आत्मा में टिका हुआ है, उसी को वेदों का रहस्य जानने वाले वर्णाश्रमातीत (संन्यासी) कहते हैं ॥ १३ ॥ इसलिये हे नारद, अन्य में रहे हुए सब वर्ण और आश्रम, अज्ञानियों द्वारा भ्रांति से आत्मा में आरोपित हैं ॥ १४ ॥ हे नारद, ब्रह्म ज्ञानी के लिये, न विधि है न निषेध और न कोई वर्ज्यावर्ज्य का विचार या और कोई वैसी बात है ॥ १५ ॥ सब प्राणीमात्रों के लिये—ब्रह्मा के पद के लिये भी वैराग्य लाभ करके और पुत्र मित्रादि सब में घृणा करके ॥ १६ ॥ श्रद्धालु पुरुष मोक्ष मार्ग में अग्रसर होने के लिये वेदान्त ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से हाथ में कुछ भेट लेकर ब्रह्मज्ञानी गुरु के पास चला जाय ॥१७॥ दीर्घ काल तक शान्त चित्त से गुरु की सेवा करके उनको संतोष दे और उनसे सदा समाहित चित्त से वेदान्त वाक्यों का अर्थ सुना करे ॥ १८ ॥ ममता और अहंकार का त्याग कर कुछ भी पास न रखते हुए और सदा शांति से युक्त होकर आत्मा को आत्मा में देखे ॥ १९ ॥ संसार में दोष दृष्टि रखने ही से पुरुष को वैराग्य होता है और विरक्त का ही संसार से संन्यास होता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ २० ॥ परमहंस मुमुक्षु मोक्ष के

साक्षात् और-एक मात्र साधन रूप ब्रह्मानुभव का वेदान्त के श्रवण आदि से अभ्यास करे ॥ २१ ॥ ब्रह्म का अनुभव प्राप्त करने के लिये परमहंस संन्यासी को शम दम आदि सब साधन सामग्री से युक्त होना चाहिये ॥ २२ ॥ यति वेदान्त के अभ्यास में रत रहने वाला, शम दमादि से युक्त, इन्द्रियों को वश में किया हुआ, ममता और भय से रहित होकर हमेशा निर्द्वंद्व और निष्परिग्रह रहे ॥ २३ ॥ वह फटे पुराने वस्त्र की लँगोटी पहिना करे और सिर मुंडवा लिया करे, अथवा नग्न ही रहे। बुद्धिमान यति ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके ममता और अभिमान से दूर रहे ॥२४॥ जो ज्ञानी और प्रशान्त पुरुष सब प्राणियों में मित्र के समान ही भाव रखता है वह संसार को तैर जाता है, अन्य नहीं ॥ २५ ॥ गुरु की सेवा के लिये एक वर्ष पर्यंत (गुरु के पास) रहे और उस समय प्रमाद रहित होकर यम नियम का पालन करे ॥२६॥ उसके पश्चात् सबसे श्रेष्ठ ज्ञान योग को प्राप्त करके धर्म के विरुद्ध न हो इस प्रकार से इस पृथिवी तल पर विचरण करे ॥ २७ ॥ संवत्सर के अन्तमें अत्यंन्त श्रेष्ठ ऐसे ज्ञान योग को प्राप्त करके तीनों आश्रमों का त्याग करे तब वह परमहंस होता है ॥ २८ ॥ असंग होकर और क्रोध को जीतकर मिताहार करते हुए इन्द्रियों को वश में करके गुरुकी आज्ञासे पृथ्वी तल पर घूमा करे ॥२९॥ कर्म हीन गृहस्थ और कर्म करने वाला भिक्षुक इन दोनों को संन्यास लेने से वैराग्य नहीं होता ॥ ३० ॥ मद्य के पीने से नशा चढ़ता है; परन्तु युवती स्त्रीके देखते ही नशा चढ़ता है। इसलिये,

स्त्री को, जिसकी दृष्टि में ही विष है, दूर ही से त्याग देना चाहिये ॥ ३१ ॥ यति स्त्री के साथ संभाषण न करे और न कोई वार्तालाप करे। स्त्रीको देखना उसका नाच, गाना, हँसना, उसकी वकवाद आदि सव उसके लिये वर्ज हैं ॥ ३२ ॥ हे नारद, यति के लिये स्नान, जप, पूजा, होम तथा अन्य किसी साधन की आवश्यकता नहीं है तथा यति के लिये न अग्नि होत्र है ॥ ३३ ॥ न अर्चन है, न श्राद्ध तीर्थयात्रा या व्रत है। यति के लिये धर्माधर्म तथा लौकिक विधि या क्रिया कुछ भी उपयोगी नहीं है ॥ ३४ ॥ वह सव कर्म तथा लोकाचारों का संपूर्ण त्याग करे। कृमि कीट या पतंग जैसे छोटे २ जीवोंको तथा वनस्पतियों को भी ॥ ३५ ॥ योगी नष्ट न करे, बुद्धिमान योगी हमेशा परमार्थ को बुद्धि से ही जीवन व्यतीत करे, सदा अन्तर्मुख रहे, स्वच्छ प्रशान्त हृदय वाला वना रहे और अपनी बुद्धि सदा आत्मभाव वाली ही रखा करे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार भीतर के सव संगको छोड़कर, हे नारद, इस लोक में विचरा कर। अकेला चलने वाला यति राज सत्ता न चलती हो, ऐसे देश में न जाय ॥ ३७ ॥ यति न स्तुति करे, न नमस्कार करे न श्राद्ध। चल और अचल निवास रखने वाला यति सहज जीवन व्यतीत करे ॥ इति षष्ठ उपदेश ॥

यतियों को कौन से नियम पालन करना चाहिये ऐसा पूछने पर ब्रह्माजी नारदजी की ओर देखकर वोले, विरक्त को चाहिये कि वह वर्षा काल में एक ही स्थान पर रहे और आठों मास अकेला विचरा करे, एक स्थान पर कभी न रहे। भिक्षु सारंग

पक्षी के समान भय के कारण एक स्थान पर न रहे, न कोई ऐसा निमित्त ग्रहण करे जो उसके विचरण में बाधारूप हो जाय। यति अपने हाथ से नदी तैर कर पार न करे, न कभी पेड़ पर चढ़े न देवताओं का उत्सव देखे। यति को एक ही के यहां भिक्षा नहीं करना चाहिये। यति बाहर का देवतार्चन न करे (मानस अर्चन कर सकता है) अपने को छोड़कर और सबका त्याग करके मधुकरी मांगकर जीवन व्यतीत करे। यति कृश बना रहे, मेद बढ़ने न दे। घी को लोहू, एकही घर के भोजन को मांस, गंध लेपन को अशुद्धि लेपन, नमकीन पदार्थों को अंत्यज के समान, वस्त्र को झूंठे बर्तन के समान, तेल उबटन लगाना स्त्री सँग के समान, आनन्द देने वाला मित्र मूत्र के समान, इच्छा को गोमांस के समान, अपना जाना हुआ प्रदेश चाण्डाल के बगीचे के समान, स्त्री को सर्प के समान, सुवर्ण को विषके समान, सभागृह को स्मशान के समान, राजधानी को कुंभीपाक नरक के समान और एक स्थान पर भोजन करना मृतों के पिंड खाने के समान समझ कर और किसी को मिलना तथा अन्य प्रपंच की प्रवृत्तियों को यति त्याग दे। अपने देश को तथा एक बार जिसमें विचरण कर चुका हो ऐसे देश को यति छोड़ दे। भूले हुए पदार्थ की पुनः प्राप्ति होने से जैसा हर्ष होता है वैसा ही आत्मानन्द का अनुभव करे। देहाभिमान को छोड़ना ही अपने देश को छोड़ना है ऐसा समझ कर अपने

शरीर को शव के समान त्याज्य समझे और जैसे जेलखाने से छुटा हुआ पुरुष अपने पुत्र, बंधु आदि के स्थान से दूर रहता है वैसा ही यति उनसे दूर रहे।

बिना प्रयत्न जो आहार प्राप्त हो उसका भोजन करे और ब्रह्म प्रणव के ध्यान में लगा रहे, अन्य सब कर्म छोड़ दे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि को जलाकर त्रिगुणातीत, क्षुधा पिपासा आदि छओं ऊर्मियों से रहित और छओं मनो विकारों से रहित होकर रहे। सत्य बोलने वाला, शुद्ध हृदय वाला और किसी का द्रोह न करने वाला, ऐसा यति ग्राम में एक रात, शहर में पांच रात, क्षेत्र में पांच रात तथा तीर्थ में भी पांच रात रह सकता है। वह स्थिर निवास न करे परन्तु बुद्धि स्थिर रखे और मिथ्या कभी न बोले। यति गिरि कन्दरा में अकेला ही बसे; क्योंकि दो यति एकत्र होने से मिथुन तीन यति एकत्र हो जाने से ग्राम और चार एकत्र होने पर वह नगर होता है, इसलिये यति अकेला ही विचरा करे। भिक्षु अंतःकरण और इन्द्रियों को कभी भी अवसर न दे। ज्ञान वैराग्य आदि संपत्ति की कभी भी कमी न अनुभव करे और उसी में मस्त रहे। आत्मा को छोड़कर और कुछ भी नहीं है, ऐसा समझ कर दृश्य मात्र को आत्मा में अपने स्वरूप ही देखे। इस प्रकार जीवन्मुक्ति लाभ करके प्रारब्ध से दीखता हुआ दृश्य पसारा नष्ट न हो वहां तक यति अपने चारों प्रकार के स्वरूप को जानकर देह पतन पर्यंत आत्मानुसंधान से जीवन व्यतीत करे।

कुटीचक तीन वार स्नान करे बहूदक दो वार, हंस एक वार और परमहंस केवल मानस स्नान करे। तुरीयातीत को भस्म-स्नान और अवधूत को वायु से ही स्नान होता है।

कुटीचक ऊर्ध्व (खड़ा) तिलक लगावे, बहूदक त्रिपुण्ड्र लगावे, हंस खड़ा तिलक और त्रिपुण्ड्र दोनों लगावे, परमहंस भस्म रमावे, तुरीयातीत पुण्ड्र और तिलक लगावे अवधूत कुछ भी न लगावे।

तुरीयातीत और अवधूत दो दो महीने पर चौर करवाते हैं कुटीचक चार महीने पर और बहूदक, हंस और परमहंस चौर ही नहीं करवाते और करवाले तो अयन बदलने पर यानी छः महीने के बाद। तुरीयातीत अवधूत चौर करवाते ही नहीं।

कुटीचक एक ही घरका भोजन ले सकता है, बहूदक मधुकरी मांगे, हंस परमहंस पात्र न रखे हाथ ही में भिक्षा करले, तुरीयातीत मुख से करे और अवधूत विना यत्न जो कुछ आ पहुंचे उसी को खाकर रहे।

कुटीचक के दो वस्त्र होते हैं, बहूदक का एक, हंस के पास वस्त्र का एक टुकड़ा, परमहंस का दिशा ही वस्त्र होता है यानी वे नग्न रहते हैं, अथवा लंगोटी भी पहिनते हैं, तुरीयातीत और अवधूत तो नग्न-ही रहते हैं। हंस और परमहंस मृगचर्म रखते हैं और कोई नहीं रखते।

कुटीचक और बहूदक देवार्चन करें, हंस और परमहंस मानस पूजा करें और तुरीयातीत और अवधूत 'सोऽहं' भावना करे।

कुटीचक और ब दक को मंत्र जपने का अधिकार होता है, हंस और परमहंस को ध्यान करने का अधिकार है, तुरीयातीत और अवधूत दोनों को इनका अधिकार नहीं है उनको तो केवल महावाक्यों के उपदेश का अधिकार है, यह अधिकार परमहंसका भी है।

कुटीचक, बहूदक और हंस को दूसरों को उपदेश देने का अधिकार नहीं है।

कुटीचक बहूदक को शब्दमय प्रणव का अधिकार है; हंस और परमहंस को आन्तर (मानस) प्रणव का और तुरीयातीत अवधूत को ब्रह्मप्रणव का अधिकार है।

कुटीचक बहूदक को श्रवण का, हंस और परमहंस को मननका, तुरीयातीत और अवधूतको निदिध्यासनका अधिकार है।

आत्मानुसंधान तो सब किसी को करना चाहिये; इसलिये मुमुक्षु यति सर्वदा संसार से तारण करने वाले तारक मंत्र का स्मरण रखते हुए जीवन्मुक्त होकर रहें और अपने अधिकार विशेष के अनुसार कैवल्य प्राप्ति का उपाय खोजता रहे; यह उपनिषत् है ॥ इति सप्तम उपदेश ॥

भगवान् ब्रह्माजी से नारद ने कहा, 'भगवन् प्रसन्न होकर संसार तारक मंत्र वताइये !' ब्रह्माजी कहने लगे व्यष्टि औरसमष्टि रूपसे ॐ ही ब्रह्म है। 'व्यष्टि क्या है और समष्टि क्या है?' संहारप्रणव, सृष्टि प्रणव ऐसे दो प्रकारका तथा अन्तः प्रणव, वहिः प्रणव और उभयात्मक प्रणव ऐसे तीन प्रकारका ब्रह्मप्रणव होता हैं। व्यावहारिक प्रणव अन्तःप्रणव है; आर्ष प्रणव ब्राह्मप्रणव है, उभयात्मक प्रणव विराट् प्रणव है, संहार प्रणव ब्रह्म प्रणव है वही अर्धमात्रा प्रणव है। ॐ यह ब्रह्म है। ॐ को एकाक्षर अन्तःप्रणव समझो, उसके आठ भेद हैं; अकार, उकार, मकार, अर्धमात्र, नाद, विंदु, कला और शक्ति। प्रथम चारों में अकार अयुत अवयव वाला है उकार सहस्र अवयव वाला, मकार सौ अवयव वाला और अमात्र प्रणव अनन्त अवयव वाला होता है।

'विराट् प्रणव सगुण होता है, संहार प्रणव निर्गुण प्रणव है और उभयात्मक प्रणव उत्पत्ति प्रणव है। विराट् प्रणव प्लुत है और प्लुत प्लुत संहार प्रणव है। विराट् प्रणव सोलह मात्रा का और छत्तीस तत्त्वोंसे परे है। षोडश मात्रात्मक प्रणव किस प्रकार होता है? अकार प्रथम मात्रा है, उकार द्वितीय, मकार तृतीय, अर्धमात्रा चतुर्थ, नाद पांचवीं, विंदु छठी, कला सातवीं, कलातीत आठवीं, शांति नवमी, शांतातीत दशवीं, उन्मनी ग्यारहवीं, मनोन्मनी बारहवीं, पुरी (या पुरीतती) तेरहवीं, मध्यमा चौदहवीं, पश्यन्ति पन्द्रहवीं और परा सोलहवीं है। फिर उसकी चौसठ मात्राएँ भी हैं उन प्रत्येक को पुरुष और प्रकृति भेद से

द्विगुणित करने से एक सौ अट्ठाईस भिन्न २ मात्राएं होती हैं। ब्रह्म प्रणव एक होते हुए भी इस प्रकार सगुण निर्गुणत्वको प्राप्त होकर सबका आधार बनता है। यह परम ज्योति है, यही सबका आधार है, सबका ईश्वर और सबमें व्यापक है। सब देवताओं में यही व्यापक है और सब प्रपंच का अप्रकट आधार यही है ॥१॥ सब अक्षर (वर्णमाला) वही है, काल वही है, वेद वही है, शिव वही है और वेदों में उत्तम वेदान्त भी वही है। सब उपनिषत् वही है और सबको वही एक प्राप्त करने योग्य है ॥ २ ॥ भूत वर्तमान और भविष्यत्में तीनों काल उसी अव्यक्त को प्रकाशित करते हैं, इसलिये उस ॐकार ही को मोक्षदाता मानो ॥३॥ उसी आत्मा को ॐ इस शब्द ब्रह्म से वर्णन किया है। वही एक अजर और अमृत तत्त्व ॐ है ऐसा अनुभव करो ॥ ४ ॥ उसमें अपने शरीरके साथ अपना आरोप करके तन्मय होकर यही ॐ है ऐसा जानकर निश्चय करो कि यही तीन शरीर वाला ॐ ही परब्रह्म है ॥५॥ विश्व आदिके क्रमसे परब्रह्मका अनुसंधान करना चाहिये। स्थूलत्व (की उपाधि) से स्थूल भोग भोगने वाला सूक्ष्मत्व से सूक्ष्म भोग भोगने वाला ॥ ६ ॥ अभेदानुभव से आनन्द भोगने वाला यह आत्मा इस प्रकार चार प्रकारका है। चार पाद वाला यह आत्मा जाग्रत अवस्था में स्थूल के अभिमान वाला होकर स्थूल का बोध करने वाला और विश्व (स्थूल जगत) का भोग करने वाला ॥ ७ ॥ उन्नीस मुखवाला आठ अंगवाला सर्व व्यापक और ईश्वर है। स्थूल भोग भोगने वाले इस चतुरात्मा को

ही विश्व, वैश्वानर या पुरुष कहते हैं ॥ ८ ॥ यही विश्व जित् है, और यही आत्मा का प्रथम पाद है। स्वप्न स्थान में वही आत्मा सूक्ष्म का अभिमानी होता है। हे परंतप, वह सूक्ष्म प्रज्ञ अपने ही में आठ अंगों की कल्पना करता है वहां वह एक ही होता है और कोई नहीं होता ॥ ९ ॥ सूक्ष्म भोग भोगने वाला तैजस् ऐसा यह आत्मा भूतों का अधिपति है; इसको हिरण्यगर्भ कहते हैं स्थूल के भीतर होता है। यह आत्माका दूसरा पाद है ॥ १० ॥ जहां सोने पर किसी की इच्छा नहीं करता, न स्वप्न देखता है, ऐसी अवस्था में वह सुषुप्त है ॥ ११ ॥ सुषुप्त अवस्था में रहा हुआ यह सब स्थान से हट कर एक ही स्थान में आता है, इसी लिये इसको प्रज्ञान घन कहते हैं, यहां यह सुखी होता है, नित्यानंदमय होता है, यह सब जीवों के अन्दर रहा हुआ होता है ॥ १२ ॥ वही आनन्द का भोग करने वाला चैतन्य के मुख वाला सर्व व्यापक अव्यय है। यही चार पाद वाले आत्मा का प्राज्ञ नामक तीसरा पाद है ॥ १३ ॥ यही सर्वेश्वर है यही सर्वज्ञ है सूक्ष्म का भी कारण है, यही अन्तर्यामी है और यही सबकी उत्पत्ति और लय का कारण है। ॥ १४ ॥ ये तीनों अवस्था, सब प्राणियों के मोक्ष में विघ्नरूप है; क्योंकि जैसा सुषुप्त वैसाही स्वप्न केवल माया का ही विकार है ॥ १५ ॥ चतुर्थ पाद में रहा हुआ चार पाद वाला आत्मा होते हुए भी यहां यह सत् चिद्रूप एक रस है। यही तुरीय अवस्था में ऊपर की तीनों अवस्था का आधार होने से ॥ १६ ॥ यही ज्ञाता (जाग्रत का

बोध करने वाला) अनुज्ञाता (स्वप्न का बोध करने वाला) आदि विकल्पों का हेतु होता है और यह तीनों विकल्प सुषुप्त और स्वप्न अवस्था में भी होते हैं ॥ १७ ॥ इन सब को माया मात्र समझ कर सच्चिद् रूप एक रस, ऐसा आत्मा इनसे भिन्न है ऐसा जानो। वह न स्थूल को जानता है ॥ १८ ॥ न सूक्ष्म को जानता है, न वह ठीक २ जानने वाला ही है और है सुने, न इसको न जानने वाला भी कह सकते हैं न वह भीतर जानता है न बाहर ॥ १९ ॥ इसको न जानने वाला नहीं कह सकते, वैसे वह प्रज्ञानघन भी नहीं (क्योंकि प्रज्ञानघन विविक्त ज्ञान की अपेक्षा ही से कहा जाता है) वास्तव में तो इसका कोई लक्षण ही नहीं है, न इसका ग्रहण हो सकता है। वह अव्यवहार्य अचिंत्य और अकथनीय है और केवल आत्मानुभव स्वरूप है, प्रपंच के निरास रूप, शिव, शान्त और अद्वैत है। यही चतुर्थ पाद है, यही ब्रह्म प्रणव है, इसी को जानना चाहिये और अन्य को नहीं। यह तुरीय आत्मा सदा सूर्य के समान प्रकाशता रहता है और मुमुक्षुओं के आधार रूप यह स्वयं ज्योति और ब्रह्माकाश रूप तुरीय परब्रह्मरूप सदा विराजमान रहता है। यह उपनिषत् है। ॥ इति आठवां उपदेश ॥

नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा कि ब्रह्म का स्वरूप कैसा होता है। ब्रह्माजी ने ब्रह्म का स्वरूप कैसा होता है वह इस प्रकार बताया:—'यह अन्य है और मैं अन्य हूँ' ऐसा जो जानते हैं वेही पशु है, न कि वे जो पशु योनि में जन्मे हुए हैं। इस प्रकार जान कर विद्वान् मृत्यु से मुक्त होजाता है। मोक्ष के लिये और कोई

मार्ग नहीं है। काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा (संयोग) भूत, प्रकृति और पुरुष (इनमें से कौन ब्रह्म है) इसका विचार करना चाहिये। इन सबका समुदाय ब्रह्म नहीं हो सकता क्योंकि (इनका आधार) आत्मा है, सुख दुख के होने से आत्मा भी ब्रह्म नहीं है ॥ १ ॥ ध्यान योग करने वालों ने उस दैवीशक्ति (ब्रह्म) को अपने गुणों से छुपी हुई ऐसी देखी है जो काल से लेकर आत्मा तक जितने कारण रूप प्रतीत होते हैं सबका एक ही अधिष्ठान है ॥ २ ॥ जिसको एक नेमि (नाय) है, तीन आवर्त, सोलह सिरे (धारें), पचास आरे, बीस छोटे आरे अड़तालीस कीलें और अनेक रूप वाली एक रस्सी है जो तीन प्रकार से चलने वाला और दो निमित्तों से परिवर्तन होने वाला है (ऐसा यह ब्रह्म चक्र है)॥ ३ ॥ जो पांच स्रोत वाली और पांचों का उत्पत्ति स्थान है, जिसका मुख कराल है, पांच प्राण जिसके उर्मि रूप है, जो पांच प्रकार के अन्तःकरण का आधार है, जिसमें पांच आवर्त है और पांच दुख के प्रवाह जिससे बहते हैं ऐसे पांच विभाग वाले नदी (नदी रूप ब्रह्म) का हम चिन्तन करते हैं ॥ ४ ॥ सबका जीवन और सबके आधार रूप उस बृहत् ब्रह्म चक्र में हंस (आत्मा) भ्रमण करता है। जब अपने को वह उससे पृथक् द्रष्टा स्वरूप मानता है तब वह अमृतत्व को प्राप्त होता है॥ ५॥ यही उद्गीथ (ॐकार) और यही परब्रह्म है। उसीमें तीनों (उत्पत्ति स्थिति और प्रलय) दीखते हैं वही अपनी प्रतिष्ठा है यानी उसका और कोई आधार नहीं है और वह अक्षर

है। ब्रह्म ज्ञानी उसको जानकर उसके परायण होते हुए उसीमें लीन होजाते हैं॥ ६॥ क्षर और अक्षर और व्यक्त और अव्यक्त दोनों का ईश्वर पालन करता है। जो आत्मा, भोक्ता का भाव धारण करता है वह बंधन को प्राप्त होता है वह जीव है। जब वह परब्रह्म को जानता है तब वही सब पापों से मुक्त होजाता है॥ ७॥ एक ज्ञानवान् और दूसरा अज्ञ, एक ईश्वर और दूसरा जीव ऐसे दो अज (अनादि अजन्मा अथवा भेड़) हैं, एक अजा (माया) भोक्ता के भोग के लिये हैं। आत्मा विश्व रूप अनन्त और अकर्ता है, तीनों को जब कोई जानता है तब वह ब्रह्म होजाता है॥ ८॥ प्रधान क्षर है, अमृत रूप ईश्वर अक्षर है। इस क्षर और अक्षर दोनों का एक ही देव नियंत्रण करता है। उस देव का ध्यान करने से, उसके साथ तन्मय हो जाने से और उसकी बार २ भावना करने से अन्त में इस विश्व रूपिणी माया से निवृत्ति होजाती है॥ ९॥ ब्रह्म को जानने से सर्व बन्धनों से मुक्ति होती है, क्लेश क्षीण होजाते हैं और जन्म मृत्यु निवृत्त होजाते हैं। उसका ध्यान करने से देह छूटनेके पश्चात् आत्मपद की इच्छा करने वाले अनासक्त पुरुष को समस्त ऐश्वर्य वाले ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है॥ १०॥ इस ब्रह्मको सदा अपने ही में देखना चाहिये। इससे आगे अब कुछ जानने योग्य नहीं है। भोक्ता, भोग्य और प्रेरक इनका विचार करके ये सब त्रिविध ब्रह्म ही है ऐसा कहते हैं॥ ११॥ आत्मज्ञान और तप से ही उस श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। जो इस

प्रकार जान कर स्वरूप ही का चिन्तवन करता है उसी एक भाव को सर्वत्र देखता है फिर उसको शोक और मोह कहां ? ॥ १२ ॥ इसलिये विराट् ही वर्तमान भूत और भविष्यत् में एकसा और अनश्वर (नाश रहित) स्वरूप है वह अणु से भी अणु और महान् से भी महान् आत्मा प्राणी मात्र के हृदय रूपी गुह्य में छुपा हुआ है। ईश्वर के अनुग्रह से उस महान् और अकृत यानी यज्ञादि कर्म रहित ऐसे ईश्वर को शोक रहित होकर (कोई) देख पाता है ॥ १३ ॥ उसको हाथ और पैर नहीं है परन्तु वह ग्रहण करता है और चलता भी है, कान और आंख नहीं हैं तो भी सुनता और देखता है, वह सब वेद्य जगत को जानता है परन्तु उसको कोई नहीं जानता उसी महान् और श्रेष्ठ पुरुष को जानो ॥ १४ ॥ नाशवान् शरीरों में स्थित होते हुए भी जो शरीर से रहित और अक्षय हैं, ऐसे महान् और व्यापक आत्मा को जान कर वह फिर शोक को प्राप्त नहीं होता ॥ १५ ॥ वह सबका धारण करने वाला है, उसकी शक्ति अचिंत्य है और वेदान्त से ही वही जाना जा सकता है। उसी को पर से पर जानो। सब के अवसान होने पर जो शेष रहता है उसी को ब्रह्म जानना चाहिये ॥ १६ ॥ वह सर्वज्ञ है, सब से पुराना है, उत्तम पुरुषों से भी उत्तम है, सबका ईश्वर है और सब देव उसकी उपासना करते हैं। उसका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, वह अनन्त अव्यय, शिव, विष्णु और ब्रह्मा है ॥ १७ ॥ पंचात्मक और पांचों में वर्तमान ऐसा यह सब प्रपंच उसी में है, अनंत भव प्रपंच उसी ने पंचीकृत किये हैं; परन्तु पंचीकृत अव-

यत्नों से वह आवृत नहीं हुआ है जो पर से भी पर महान् अपने ही तेज वाला शाश्वत और शिव है ॥ १८ ॥ जिसने अभी दुराचरण त्यागा नहीं है जो अशान्त और अस्थिर चित्त वाला है अथवा जिसका चित्त अशान्त है वह केवल प्रज्ञा से उसको जान नहीं सकता ॥ १९ ॥ वह न भीतर जानता है न बाहर न स्थूल है न सूक्ष्म न ज्ञान है न अज्ञान न उभय प्रकार जानने वाला है, वह इन्द्रियों से ग्रहण नहीं किया जाता और न वह शब्द से कथन किया जा सकता है। वह अपने में रहा हुआ अपना आप ही है ऐसा जो जानता है वही मुक्त होता है, निश्चय वह मुक्त होता है, ऐसा भगवान् ब्रह्माजी ने कहा। अपने स्वरूप को जानता है वही परिव्राजक है, ऐसा परिव्राजक अकेला विचरता है और भयभीत हिरनके समान रहता है; विचरना कभी बन्द नहीं करता। अपना शरीर छोड़कर और सबका त्याग करता है और मधुकर वृत्ति से स्थित होकर सब में अनन्य बुद्धि रखकर अपने स्वरूप का अनुसंधान करता हुआ वह अपने ही में मुक्त होता है। वह परिव्राजक न कुछ करता है न कराता है। गुरु शिष्य और शास्त्रादि से वह विमुक्त है; सब संसार को छोड़कर जो निर्मोह होजाता है उसको निर्धन कैसे कहें? जो सुखी है, धनवान् है ज्ञान और अज्ञान दोनों से परे है सुख दुख से परे है, स्वयं ज्योति प्रकाश है, सबको जानने योग्य सर्वज्ञ सर्व सिद्धिदाता सर्वेश्वर है, वही मैं हूँ, वही विष्णु का परमपद है। उसको प्राप्त करके योगी लोग

लौटते नहीं। जिस स्थान को सूर्य चन्द्र प्रकाश नहीं दे सकते जहां से वह लौटता नहीं, कभी भी लौटता नहीं, वही कैवल्य है, यह उपनिषत् है ॥ इति नवम उपदेश ॥

॥ इति नारद परिव्राजकोपनिषत् समाप्त ॥

वेदान्त केसरी कार्यालय की पुस्तकें

वेदान्त केसरी मासिक पत्र।

दसवाँ साल चालू है वार्षिक मूल्य ३) वर्ष के मध्य में ग्राहक होने वालों को वर्ष के आरंभ से सब अंक लेने होंगे मई मास से वर्ष आरंभ होता है नमूने की कापी मुफ्त नहीं मिलती। एक प्रति का मूल्य पाँच आना। पिछले नवों साल की जिल्द (प्रत्येक बारह अङ्कों की) तय्यार है, थोड़ी कापियां शेष रही है। श्रीमच्छङ्कराचार्य्य के अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण वेदान्त की प्रक्रिया आगई हैं। प्रत्येक का मूल्य ३)

उपासना।

इसमें साकार, सगुण, निर्गुण, कार्य ब्रह्म तथा कारण ब्रह्म आदि कई प्रकार की उपासना को भिन्न २ प्रकार से समझाया है। उपासना की स्थिरता ही से मन एकाग्र होकर आत्म साक्षात्कार होता है। मूल्य ॥)

चर्पट पंजरिका।

"भज गोविंदं भज गोविंदं" पद्य का विवेचन सहित भाषानुवाद है। अनेक दृष्टांतों से रोचक है। सम श्लोकी पद्य भी है। मूल्य १)

कौशल्य गीतावली भाग १—२

वेदान्त केसरी में आई हुई कविताओं का संग्रह। कविता रोचक सरल और ज्ञानके संस्कारों को प्रदीप्त करने वाली तथा श्रवण, मनन और निदिध्यासन रूप है। प्रत्येक भाग का मूल्य ।≈)

वेदान्त स्तोत्र संग्रह।

श्रीमच्छङ्कराचार्य्य आदि के प्रतिभाशाली वेदान्त के मुख्य २ चुने हुए २१ स्तोत्रोंका संग्रह मूल्य ॥)

वेदान्त दीपिका।

इस ग्रन्थमें जिज्ञासुको स्वाभाविकता से होने वाली शंकाओं का अत्यंत मार्मिकता से समाधान किया गया है। वेदान्त के महत्व के ग्रन्थों को पढ़ने पर भी जिन शंकाओं का समाधान न होने से जिज्ञासु का चित्त अशान्त रहता है, वे शंकाएं इस ग्रन्थ को पढ़ने से समूल नष्ट हो जायंगी। ग्रन्थ को पढ़ते समय जो नयी शंकाएं उत्पन्न होंगी उनका समाधान आगे ही मिलने से पाठकों को अत्यन्त आनन्द होगा।

प्रत्येक विषय को प्रथम युक्तिपूर्वक समझा कर उसको दृढ़ करने के लिये प्रसंगानुकूल दृष्टान्त दिये गये हैं, जिससे ग्रन्थ अत्यंत ही रोचक बन गया है। भाषा अत्यंत सरल होनेसे सामान्य भाषा ज्ञान वाले भी इससे लाभ उठा सकते हैं। ग्रन्थ सबके लिये संग्राह्य है। सजिल्द मूल्य १॥)

काया पलट नाटक।

राजा रानी और मंत्री के रूप से जीव बुद्धि और मन का जगत आसक्ति में फँसना और सद्गुरुके उपदेश द्वारा अज्ञान का टूट कर ज्ञान भाव में आने का वर्णन है। प्रारब्ध दुःख आदि का भी वर्णन है। मूल्य।)

वाक्य सुधा।

वेदान्त ग्रन्थों में ज्ञान समाधि का वर्णन बहुत स्थान पर है परन्तु इसमें जैसा वर्णन है ऐसा सूक्ष्म वर्णन और स्थान में कहीं नहीं मिलता रहस्य पूर्ण विवेचन से भली प्रकार समझाया गया है मुमुक्षुओं को अत्यन्त हितकर है। मूल्य १) रु०।

सब पुस्तकों का डाक खर्च ग्राहकों को देना होगा।

व्यवस्थापक—वेदान्त केसरी, बेलनगंज—आगरा।